योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल

डॉ० उदय नारायण सिन्हा

अखिल भारतीय संस्कृत–परिषद्
महात्मा गाँधी मार्ग, हज़रतगंज, लखनऊ

योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल

डॉ० उदय नारायण सिन्हा

अखिल-भारतीय-संस्कृत-परिषद्
महात्मा गाँधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ - 226 001

योगवासिष्ठ महारामायण
का रचनाकाल

योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल

डॉ० उदय नारायण सिन्हा

अखिल भारतीय संस्कृत–परिषद्
महात्मा गाँधी मार्ग, हज़रतगंज
लखनऊ – 226 001

प्रकाशिका :
अखिल भारतीय संस्कृत–परिषद्
महात्मा गाँधी मार्ग, हज़रतगञ्ज
लखनऊ–226 001

The Publication of this book
has been Financially Supported
by the Indian Council of Historical
Research. The responsibility for
the facts stated or opinions
expressed is entirely of the
author and not of the ICHR.

प्रथम संस्करण
2001

मूल्य : रु. 400/-

मुद्रक :
पनार आफसेट
इन्द्रा अनुष्ठान
गुईन रोड, अमीनाबाद
लखनऊ

प्रकाशकीय

डॉ० उदयनारायण सिन्हा विरचित 'योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल' शीर्षक ग्रन्थ को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। दार्शनिक कविता के नाम से भारत में कोई काव्य की विधा नहीं रही है। दार्शनिक–कविता–विधा की आधुनिक परिकल्पना को ध्यान में रख कर जब हम भारतीय साहित्यिक–परम्परा में इसके उदाहरण ढूँढने का प्रयास करते हैं तो हमें दो तीन ग्रन्थ ही ऐसे प्राप्त होते हैं जिन्हें इस विधा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। योगवासिष्ठ महारामायण को निश्चित रूप से दार्शनिक–काव्य की कोटि में भारतीय उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है। इस महनीय ग्रन्थ में काव्यात्मक सौष्ठव मन को आकृष्ट करता है साथ ही भारतीय दर्शन, विशेषतया अद्वैतवेदान्त का प्रतिपादन अत्यन्त प्रभावित करने वाला है। योगवासिष्ठ महारामायण ने अपनी महत्ता से अनेक विशिष्ट विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। परिणामस्वरूप उन्होंने इस पर महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान कार्य भी किया है। इस ग्रन्थ–विशेष के रचनाकाल का निर्धारण एक जटिल समस्या है जिस पर विद्वानों का ध्यान तो गया किन्तु ऐकमत्य नहीं हो सका। इसी समस्या से प्रेरित होकर डॉ० उदय नारायण सिन्हा ने इस समस्या को अपने अनुसन्धान का विषय बनाया है। मुझे प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ का प्रकाशन ICHR के आर्थिक सहयोग से अखिल भारतीय संस्कृत–परिषद्, लखनऊ द्वारा किया जा रहा है। इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रकाशन संस्कृत–परिषद् के उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुरूप है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि डॉ० उदय नारायण सिन्हा ने अपनी जिन सहज सीमाओं के अन्तर्गत इस महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान-कार्य को मूर्तरूप प्रदान किया है उसका विद्याजगत् में अवश्य स्वागत होगा।

–प्रो० अशोककुमार कालिया
मन्त्री, अखिल भारतीय संस्कृत–परिषद्
महात्मा गाँधी मार्ग, हज़रतगंज
लखनऊ–226 001

जन्म यस्य कुले लेभे येन चाऽसौ सुपालितः।
कुर्वतः सरस्वतीरक्षां सदा हृदयवासिनः।।

तस्मै श्रीपितृदेवाय कीर्तिशेषाय साम्प्रतम्।
स्मृत्यर्थं तस्य यत्किञ्चिद् इतिहासकुसुमाञ्जलिम्।।

अग्रेऽग्रे लंघितुं मल्लो यथा गच्छति पृष्ठतः।
नूतनं स्रष्टुकामोऽहं प्राचीनं सन्दधे तथा।।

—उदयनारायण सिन्हा

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

प्राणी इस संसार में मृत्यु के लिए जन्म लेता है। इस संसार में व्याप्त भव तथा विभव की समस्त चेष्टाएँ चंचल हैं। पाप से व्यक्ति का पतन होता है। जितने पदार्थ हैं और उनसे उत्पन्न जो विषय हैं सब लोहे की शलाका के समान एक दूसरे से अलग हैं केवल अपने मन की कल्पना से ही मिलाए जाते हैं। सर्वत्र अपरिच्छिन्न रूप से कहीं भेद-कल्पना नहीं है, जो कुछ है वह भी उसका अनुभव-मात्र है।

(यो. महा. 1.12.7–9, 3.14.27)

जीवन का सक्रिय तत्त्व, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति निजी स्थिति तथा लोक की स्थिति को सम्भव बनाता रहता है, उसी को अद्वैत, योग–दर्शन तथा अनुभववाद के द्वारा प्रतिपादित और स्पष्ट करते हुए जो कुछ योगवासिष्ठ महारामायण में कहा गया है, वह वास्तव में ब्रह्मवाद और प्रज्ञावाद के समन्वय से जीवन के जिस कर्मपरायण एवं उत्थानशील मार्ग की उद्‌भावना प्राचीन भारत में की गई थी, उसी का प्रतिदर्शन है। इसी गम्भीर दार्शनिक चिन्तन के साथ ही साथ ग्रन्थकार ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का भी प्रतिबिम्बन कराया है, और इसीलिए इस ग्रन्थ को राष्ट्रीय ज्ञान–संहिता कहा जाना चाहिए। सरल संस्कृत का प्रयोग किन्तु छिपी हुई गूढता ग्रन्थ की एक विशेषता है। सम्भवतः इसी को ध्यान में रखते हुए हमसे पूर्व के अध्येताओं ने इस ग्रन्थ के सम्पूर्ण दर्शन का मन्थन कर नवीन तथ्य प्रस्तुत किए। इनमें प्रोफेसर भीखनलाल आत्रेय तथा डॉ. टी. जी. मयंकर महोदय का नाम सर्वोपरि है, जिनकी अमूल्य कृतियों के प्रति हम ऋणी हैं। इनके अतिरिक्त यत्र–तत्र विभिन्न विद्वानों के इस ग्रन्थ पर लिखे गये लेख, जिनमें डॉ. सुरेन्द्र नाथ दास गुप्ता, डॉ. वी. राघवन, प्रोफेसर शिवप्रसाद भट्टाचार्य, डॉ. एन. के. देवराज, डॉ. जे. एन. फर्कुहर, डॉ. प्रह्लाद चन्द्र दीवान जी, स्वामी भूमानन्द, मोरिस विन्टरनिट्ज, फादर कामिल बुल्के आदि स्तुत्य हैं। ये ही नहीं, वरन् प्रोफेसर ए. बी. कीथ तथा प्रोफेसर बीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव जैसे इतिहास–मनीषियों के इस ग्रन्थ पर किए गये उद्धरण रूपी पुट विशेष सम्मोहन एवं स्तुति के केन्द्र हैं, क्योंकि ये ही वे अद्वितीय मार्गदर्शक उल्लेख हैं, जिन्होंने हृदय के कोने में जिज्ञासा जगाई और अन्ततोगत्वा हम 'योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल' नामक प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की परिणति में आगे बढ़ सके।

मानव जीवन ईश्वरीय जिज्ञासा का परिणाम है। सम्भवतः ईश्वर के अत्यन्त सन्निकट होने के कारण यही भावना मनुष्य में भी विद्यमान है इसीलिए जब हमारे सामने 'योगवासिष्ठ महारामायण' जैसा बृहद् ग्रन्थ आया तो इसके रचनाकाल की स्वाभाविक मानवीय जिज्ञासा उत्पन्न हुई। मन में उठने वाली ऐसी ही जिज्ञासा की यथार्थ परिणति ही इतिहासशास्त्र है। इसके पूर्व उपर्युक्त कतिपय विद्वानों द्वारा इस विषय पर दार्शनिक आधारों पर ही मन्तव्य प्रस्तुत किए गये और ये मन्तव्य लेखों में ही संग्रहीत हैं। अतः दर्शन के इस विराट् ग्रन्थ, जिसमें प्राचीन इतिहास का कोष सञ्चित है, इसके रचनाकाल की समालोचना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझी गई, किन्तु विषय में किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो अतः प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय, उसकी विषय–वस्तु का सार-संक्षेप, रचनाकार का निर्धारण तथा रचना के स्थान के निर्धारण के विषय में अनेक मन्तव्य प्रस्तुत किए गए। तदनन्तर द्वितीय अध्याय में गंगा के प्रवाह के समान प्रवाहित मनीषियों की तत्सम्बद्ध दार्शनिक विचारधाराओं को दो शाखाओं में विभक्त

कर (चौदह सौ ईसवी से सात सौ ईसवी तक तथा सात सौ ईसवी से पाँच सौ ईसवी तक) संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया। तदनन्तर तृतीय अध्याय में रचनाकाल से सम्बद्ध विभिन्न बाधाओं का मूल्यांकन करने के पश्चात् उसमें आए विभिन्न साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक आयामों की ऐतिहासिक समालोचना करके ग्रन्थ के रचनाकाल से सम्बद्ध तर्क प्रस्तुत किए गए। इसी प्रकार उक्त क्रम में ही ग्रन्थ में आए विभिन्न नामों तथा भौगोलिक आंकड़ों का ऐतिहासिक रूप से विवेचन कर ग्रन्थ के रचनाकाल से सम्बद्ध तदाधारित समीक्षित तर्क चतुर्थ तथा पंचम अध्याय में क्रमशः प्रस्तुत किए गए। साथ ही साथ एक लघु अध्याय के रूप में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में जुड़ा हुआ षष्ठ अध्याय, जिसमें यशस्कर नामक कश्मीरी राजा के विवरण के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया और अन्तिम अध्याय में विषय को उपसंहृत करते हुए न केवल इस सम्बन्ध में विद्वानों की स्थिर किन्तु भिन्न विचारधाराओं का कारण स्पष्ट करने का प्रयास किया गया, अपितु इस योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विकास की शनैःशनैः गति की सीमा लगभग छठी–सातवीं शताब्दी ईसवी से लेकर बारहवीं शताब्दी ईसवी तक मानक रूप में प्रस्तुत ही नहीं की गई, वरन् उक्त ग्रन्थ में अन्य प्रतिपाद्य विषयों को भी इसलिए परिलक्षित किया गया कि आने वाला कल इस पर और गम्भीरता से विचार कर इस सम्बन्ध में टूटी हुई कड़ी को जोड़ सके। हम उक्त प्रयास में प्रयोग की गई ऐतिहासिक सामग्री के अध्येताओं के ग्रन्थों के प्रति ऋणी हैं। यही नहीं, यदि टैगोर पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् लखनऊ के पुस्तकालयाध्यक्ष, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के केन्द्रीय पुस्तकालय तथा पाण्डुलिपि पुस्तकालय के अध्यक्ष तथा अधिकारी, उत्तर प्रदेश विधानसभा पुस्तकालय के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा वर्तमान अध्यक्षा एवं विधानसभा के भूतपूर्व सचिव श्री भालचन्द्र शुक्ल जी का सहयोग न प्राप्त कर सकते तो अपने इस अकिञ्चन प्रयास को सार्थकत्व प्रदान करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। इसके अतिरिक्त भी लखनऊ संग्रहालय के निदेशक, मद्रास संग्रहालय के निदेशक एवं केरल पाण्डुलिपि पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष, इण्डियन काउंसिल ऑफ हिस्टॉरिकल रिसर्च, नई दिल्ली के पुस्तकालयाध्यक्ष, केन्द्रीय पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के पुस्तकालयाध्यक्ष, मैक्समूलर भवन की जर्मन पुस्तकालयाध्यक्ष कुमारी साईकाट, आर्किलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के पुस्तकालयाध्यक्ष, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूज़ियम, मुम्बई के निदेशक डॉ. सदाशिव राव गोरक्षकर तथा अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी एवं विशेष रूप से आचार्य नरेन्द्र देव पुस्तकालय, मोतीमहल, लखनऊ का जो विशेष सहयोग हमें प्राप्त हुआ है, वह स्तुति के योग्य है, क्योंकि अपने इस गम्भीर कार्य में हमें यहाँ न केवल अनुसंधान सम्बन्धी सामग्री की प्राप्ति हुई, अपितु हमारी दृष्टि की विकलांगता की कठिनाई को समझते हुए व्यक्तिगत रूप से सहायता प्रदान की गई। पुंनः हम ऋणी हैं इण्डियन कांउसिल ऑफ हिस्टॉरिकल रिसर्च, नई दिल्ली के डॉ. पी. के. शुक्ल के प्रति, जिनकी विशेष अनुकम्पा से पाँच हजार रुपये की स्टडी–कम–ट्रेवल ग्रांट प्राप्त हुई थी, जिसे प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अवतरण के साथ ही सार्थकता प्राप्त हुई प्रतीत होती है। वास्तव में इस शोध–प्रबन्ध के लिए श्रेय अनुसंधाता से अधिक उसकी सहायिका डॉ० कांतिशिखा वर्मा, को जाता है, जिनके लगनशील, अटूट श्रम तथा अभिनव प्रयासों से हम अपने मांगलिक प्रयास में सफल हो सके, किन्तु यदि अपने मित्र एवं पर्यवेक्षक डॉ. देवी प्रसाद तिवारी का मार्गदर्शन तथा विभागाध्यक्ष प्रोफेसर शिव नन्दन मिश्र एवं विभागीय सहकर्मियों का विशेष सहयोग तथा स्नेह न प्राप्त होता तो यह अकिञ्चन अनुसंधाता ज्ञान के विशाल सागर में गोता लगाने की परिकल्पना से ही प्रकम्पित हो उठता। यदि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में हम सागर से कुछ सीपियाँ बटोर पाये हैं तो उसका श्रेय वास्तव में हमारे अध्यापक प्रोफेसर शैलेन्द्र नाथ कपूर, डॉ. अशोक कुमार कालिया, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष प्रोफेसर बीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव तथा प्रोफेसर किरन कुमार थपल्याल जैसे मनीषियों के आशीर्वाद का ही प्रतिफल है, परन्तु जो सहयोग हमें माननीय कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय का प्राप्त हुआ है वह मानवीय भावना की संवेदना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। हम राज्य सरकार के विकलांग कल्याण विभाग सचिव के सहयोग के प्रति भी ऋणी हैं।

अन्त में विनम्र रूप से हम डायरेक्टर, रॉयल कामन वेल्थ सोसायटी फॉर दि ब्लाइंड, लंदन तथा प्रेसीडेन्ट, ऐबिलिटी एड्ज़ इण्डिया इन्टरनेशनल, त्रिवेन्द्रम तथा महानिदेशक प्रोफेसर नाकाचीमा, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं और नमन करते हैं प्रोफेसर इन्दुप्रभा पाराशर जी के प्रति, जिन्होंने इस शोध–प्रबन्ध के प्रारम्भिक अध्याय के अंग्रेजी भाषा का हिन्दी में अनुवाद कर हमें मातृभाषा के प्रति भक्ति की प्रेरणा देते हुए हमारी व्यक्तिगत सीम्गओं को समझकर उचित मार्गदर्शन प्रदान किया।

यह शोध–प्रबन्ध हमारे शुभचिन्तक स्वर्गीय मनीषी प्रोफेसर बी. एन. पुरी, डॉ. अविनाश चन्द्र, डॉ. नरेश प्रसाद रस्तोगी, प्रोफेसर अवध बिहारीलाल अवस्थी, प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, डॉ. हर्ष नारायण, श्री जीत सिंह जरधारी तथा श्री सूरज नारायण सिन्हा आदि के प्रति श्रद्धा–सुमन है तथा अपनी पूज्य माँ के असीम वात्सल्य के प्रति वन्दना है। साथ ही यह शोध–प्रबन्ध अपने पिता–समान स्वर्गीय सर्वश्री महेन्द्र नाथ कौल की जीवन–यात्रा की अन्तिम इच्छा की पूर्ति है तथा परिवार–जनों की शुभेच्छा का प्रतिफल है। अन्त में मैं डॉ. प्रयाग नारायण मिश्र के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना परम धर्म समझता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ की प्रेस–कापी तैयार करके तथा प्रूफ रीडिंग करके अहैतुकी कृपा मेरे ऊपर की है।

मंगल्यं मंगलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम्।

(महाभारत, आदिपर्व, १.२४)

–उदय नारायण सिन्हा

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

(अ) ग्रन्थ का संक्षिप्त विवरण

प्राचीन भारतीय वाङ्मय धर्मशास्त्र–ग्रंथों से आपूरित है। वेदचतुष्टय संसार के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं। इनके विषय में ऐसा विश्वास है कि ये अपौरुषेय हैं। मनुष्य को भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश प्रदान करने वाला प्राचीन भारतीय वाङ्मय असद् वृत्तियों का शमन कर कुकर्म एवं कुमार्ग से विरत कर उसमें आत्मिक क्षमता का विकास करता है और आत्मिक शान्ति प्राप्ति करने के मार्ग को प्रशस्त करता है।

समय व्यतीत होने के साथ प्राचीन पवित्र संहिताओं का विकास विभिन्न साहित्य रूप में हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, आरण्यक, सूत्र–ग्रन्थ, महाकाव्य, पुराण–ग्रन्थ, स्मृतियाँ, बौद्ध एवं जैन ग्रन्थ तथा बहुत से दूसरे साहित्य और दर्शन के ग्रन्थ मूल विचार सरणि का मंथन और भाष्य करते रहे हैं। इस विचार–मंथन से विचारों का विकास हुआ, नयी विचार शृंखला के जुड़ने का क्रम निरन्तर बना रहा, बदलती हुई परिस्थितियों और सन्दर्भों के अनुसार नये विश्वास समाहित होते रहे। परिणामस्वरूप शैवमत, वैष्णवमत, जैनमत, बौद्धमत तथा अन्य अनेक पन्थ,तथा सम्प्रदाय इस विशाल महाद्वीप के धार्मिक क्षितिज पर उदय हुए। इन धर्मों, पन्थों और सम्प्रदायों के ग्रन्थ मूल रूप से धर्मग्रन्थ होते हुए भी अपने वस्तुविषय में कभी मात्र धार्मिक पक्ष तक सीमित नहीं रहे। वे वास्तव में सम्पूर्ण मानवीय गति–विधि को समाहित किये हुए हैं, मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक सभी पक्षों का अंकन उनमें प्राप्त होता है। सामयिक भौगोलिक स्थितियों का अंकन भी इस वाङ्मय से अछूता नहीं रहा।

'योगवासिष्ठ महारामायण' जिसे 'वासिष्ठ रामायण', 'आर्ष–रामायण', 'योगवासिष्ठ' आदि नामों से भी जाना जाता है, एक इसी प्रकार की साहित्यिक रचना है। यह ग्रन्थ अद्वैतवादी (ब्रह्मवाद, वेदान्त, एकेश्वरवाद) विचारधारा का संवहन करता है।

उक्त ग्रन्थ के कई संस्करण उपलब्ध हैं जो भिन्न–भिन्न प्रकाशन केन्द्रों से प्रकाशित हैं। प्रस्तुत अध्ययन के आधार–रूप में निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई से मुद्रित संस्करण का उपयोग किया गया है। यह संस्करण संस्कृत में दो जिल्दों में है, जिसकी संस्कृत में टीका श्री आनन्दबोधेन्द्र ने की है तथा अंग्रेजी में पनसीकर की टीकाएं हैं।[1]

---

1. आलोच्य ग्रन्थ के भाषा टीका सहित दो हिन्दी अनुवाद प्राप्त होते हैं। प्रथम ज्ञान सागर यंत्रालय, मुम्बई से प्रकाशित हुआ है तथा दूसरा अच्युत ग्रन्थालय, वाराणसी से। प्रथम का प्रकाशन–काल शक संवत् 1825 है। दोनों ही ग्रन्थों पर "योगवासिष्ठ" शीर्षक दिया हुआ है।

अंग्रेजी में अनुवाद बिहारीलाल मित्र द्वारा किया गया है जिसे भारतीय पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी ने सन् 1976 ई० में प्रकाशित किया था। इससे पूर्व कलकत्ता से सन् 1891 में भी इसका प्रकाशन हो चुका था। इस ग्रन्थ का फ़ारसी भाषा में अनुवाद मुगल प्रिंस दारा ने किया था (भट्टाचार्य, सच्चिदानन्द–A Dictionary on Indian History पृ० 860, 1967) आनन्द बोधेन्द्र की संस्कृत टीका वाला "योगवासिष्ठ" नामक ग्रन्थ वाराणसी से भी सं. 2033 में प्रकाशित हुआ है।

हिन्दी में "श्री योगवासिष्ठ भाषा टीका" शीर्षक से दो खण्डों में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसी प्रेस से उर्दू रूपान्तर भी प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त, योगवासिष्ठ नाम से तारापुर, वाराणसी से इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्पूर्ण रूप में पाँच खण्डों में वर्तमान में हुआ है तथा दो खण्डों में छोटी–छोटी पुस्तकों के रूप में बरेली संस्कृत संस्थान द्वारा भी इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है।

योगवासिष्ठ महारामायण विचारधारा में वेदान्त से बहुत भिन्न नहीं है यह रामायण का एक प्रकार से परिशिष्ट है। कीथ के मतानुसार इसका वस्तु विषय धार्मिक और रहस्यवादी चिन्तन है [2]। मुनि वसिष्ठ और उनके शिष्य राम जो राजा दशरथ के पुत्र और रामायण के नायक हैं, के मध्य संवाद के रूप में वेदान्त दर्शन और योग मत का प्रतिपादन किया गया है।

"जो व्यक्ति इस शास्त्र का श्रवण करता है उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है"[3]। ऐसी फलश्रुति ग्रन्थ में पायी जाती है तथा यह भी कहा गया है कि इस शास्त्र के बार–बार पढ़ने से और इसमें प्रतिपादित सिद्धान्त व्यवहार में लाने से मनुष्य में महान् गुणों वाली नागरिकता का उदय होता है।[4] इससे अनुमान होता है कि महाभारत और पुराण ग्रन्थों की भाँति इसमें भी परवर्ती निवेशन (insertion) अवश्य हुए हैं।

ग्रन्थ में शासन, नियन्त्रण, आधिपत्य और शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा प्रणालियों का विवेचन राम और मुनि वसिष्ठ के मध्य संवाद के रूप में हुआ है [5]। इसलिए प्राचीन विश्वास के अनुसार हम इस ग्रन्थ को शास्त्र की कोटि में रख सकते हैं [6]।

आलोच्य ग्रन्थ 'योगवासिष्ठ महारामायण' संस्कृत का महत्त्वपूर्ण दर्शन ग्रन्थ है। इसमें उन नैतिक मूल्यों की स्थापना की गई है जिन पर यदि जीवन में आचरण किया जाय तो समस्त मानव जाति निरुद्वेग, मानसिक सुख–शान्ति से भरपूर एक संतुष्ट जीवन को प्राप्त कर सकती है जिससे आधुनिक संसार की खोखली भौतिक प्रगति ने हमें वंचित कर रखा है। ग्रन्थ अपने युगीन विचारों और अनुभूतियों की भी अभिव्यंजना करता है।

योगवासिष्ठ महारामायण की भाषा संस्कृत है। भाषा अलंकृत होते हुए भी बोधगम्य है। अलंकार–बाहुल्य, कथाओं का संयोजन और आकर्षक भाषण उक्त ग्रन्थ की शैली की विशेषताएं हैं। भाषा और शैली की विशेषताएं लेखक की प्रतिभा की द्योतक हैं। लेखक के अनुसार ग्रन्थ में छह प्रकरण और बत्तीस हजार श्लोक हैं।[7]

---

2. Keith, A.B., "A History of Sanskrit Literature", 1976, Delhi, pp. 479-80 Gonda, J.N., " A History of Indian Literature", Delhi, 1977, P. 11-37.
3. यो. महा. 2.17.4
4. वही, 5 एवं आगे
5. वही, मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण, उत्पत्ति प्रकरण, स्थिति प्रकरण, उपशम प्रकरण, निर्वाण प्रकरण।
6. पाण्डेय, आर.बी., हिन्दू धर्मकोश, देखिये "शास्त्र"।
7. उपलब्ध प्रकाशित संस्करणों में लगभग अट्ठाइस हज़ार श्लोक प्राप्त होते हैं। ग्रन्थकार फिर भी उक्त विषय में जो विवरण देता है वह इस प्रकार है :–

पुण्यकल्पद्रुमो यस्य फलभारानतः स्थिताः।
मुक्तये जायते जन्तोरतस्येदं श्रोतुमुद्यमः।।
पावनानामुदाराणां परबोधैकदायिनाम्।
वचसां भाजनं भूत्यै भव्यो भवति नाधमः।।
मोक्षोपायाभिधानेयं संहिता साररंमिता।
त्रिंशद्द्वे च सहस्त्राणि ज्ञाता निर्वाणदायिनी।।
दीपे यथा विनिद्रिस्य ज्वलिते संप्रवर्तते।
आलोकोऽनिच्छतोऽप्येवं निर्वाणमनया भवेत्।।
स्वयं ज्ञाता श्रुता वापि भ्रान्तिशान्त्यैकसौख्यदा।
आप्रेक्ष्य वर्णिता सद्यो यथा स्वर्गतरङ्गिणी।।
यथा रज्ज्वामहिभ्रान्तिर्विनश्यत्यवलोकनात्।
तथैतत्प्रेक्षणाच्छान्तिमेति संसारदुःखिता।।

प्रथम वैराग्य प्रकरण है जिसमें पन्द्रह हज़ार श्लोक हैं। द्वितीय मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण है जिसमें एक हज़ार श्लोक हैं, तृतीय उत्पत्ति प्रकरण है जिसमें सात हज़ार श्लोक हैं। चतुर्थ स्थिति प्रकरण है जिसमें तीन हज़ार श्लोक हैं। पञ्चम उपशम प्रकरण है, जिसमें पाँच हज़ार श्लोक हैं। षष्ठ और अन्तिम प्रकरण निर्वाण प्रकरण है जिसमें शेष श्लोक हैं।

योगवासिष्ठ महारामायण अपनी प्रकृति में बौद्ध है, यद्यपि वैष्णव धर्म से यह प्रभावित है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थ के नायक राम में किशोरावस्था में गौतम बुद्ध के समान अनेक प्रकार के दुःखों से चिन्तित एवं विचलित होकर वैराग्य जागता है। राम के मन में उत्पन्न अनेक शंकाओं का समाधान, गुरु वसिष्ठ अपनी वाणी से करते हैं। वसिष्ठ मनुष्य के अन्तिम प्राप्य "निर्वाण" की प्राप्ति का उपाय भी बताते हैं। इसी से ग्रन्थ के अन्तिम प्रकरण का शीर्षक निर्वाण प्रकरण है। इसकी तुलना संस्कृत के एक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ "लंकावतार सूत्र" से की जा सकती है। उक्त ग्रन्थ का रचनाकाल पाँचवीं

युक्तियुक्तार्थवाक्यानि कल्पितानि पृथक्पृथक्।
दृष्टान्तसारसूक्तानि चास्यां प्रकरणानि षट्।।
वैराग्याख्यं प्रकरणं प्रथमं परिकीर्तिकम्।
विरागो वर्धते येन सेकेनेव मरौ तरुः।।
अनुबन्धेन सहितं दिष्टतत्त्वनिरूपणम्।
सार्धं सहस्रं ग्रन्थस्य यस्मिन्हृदि विचारिते। (यो. महा. 2.17.4-11)
प्रकाशाच्छुद्ध तोदेति मणाविव सुमार्जिते।।
मुमुक्षुव्यवहाराख्यं ततः प्रकरणं कृतम्।
सहस्रमात्रं ग्रन्थस्य युक्तिग्रन्थेन सुन्दरम्।।
स्वभावो हि मुमुक्षूणां नाराणं यत्र वर्ण्यते।
अथोत्पत्तिप्रकरणं दृष्टान्ताख्यायिकामयम्।।
सप्तग्रन्थसहस्राणि विज्ञानप्रतिपादकम्।
जागती द्रष्टदृश्यश्रीरहंत्वमितिरूपिणी।।
अनुत्पन्नैवोत्थितेव यत्रेति परिवर्ण्यते।
यस्मिन्श्रुते जगदिदं श्रोतान्तर्बुध्यतेऽखिलम्।।
सास्मद्युष्मत्सविस्तारं सलोकाकाशपर्वतम्।
पिण्डग्रहविनिर्मुक्तं निर्भित्तिकमपर्वतम्।।
पृथ्व्यादिभूतरहितं सङ्कल्प इव पत्तनम्।
स्वप्नोपलम्भभवाभं मनोराज्यवदाततम्।।
गन्धर्वनगरप्रख्यमर्थशून्योपलम्भनात्।
द्विचन्द्रविभ्रमाभासं मृगतृष्णाम्बुवर्तनम्।।
नौयानलोलशैलाभं सत्यलाभविवर्जितम्।
चित्तभ्रमपिशाचाभं निर्बीजमपि भासुरम्।।
कथार्थप्रतिभासाभं व्योयमुक्तावर्लीनिभम्।
कटकत्वं यथा हेम्नि तरङ्गत्वं यथाम्भसि।।
यथा नभसि नीलत्वमसदेवोस्थितं सदा।
अभित्तिरङ्गरहितमुपलब्धिमनोहरम्।।
स्वप्ने वा व्योम्नि वा चित्रकर्तृचिरभासुरम्।
अपह्निरेव वह्नित्वं धत्ते चित्रानलो यथा।।
दधात्येवं जगच्छब्दरूपार्थमसदात्मकम्।
तरङ्गोत्पलमालाभं दृष्टनृत्यमिवोत्थितम्।। (यो. महा. 2.17.11-24)
चक्रचीत्कारपूर्णस्य जलराशिमिवोद्यतम्।
शीर्णपत्रं भ्रष्टनष्टं ग्रीष्मे वनमिवारसम्।।
मरणव्यग्रचित्ताभं शिलागृहगुहास्पदम्।

शताब्दी ई. का पूर्वार्द्ध (443 ईस्वी) बताया जाता है [8]। "लंकावतार सूत्र" में प्रश्नकर्ता रावण है तथा शंकाओं का समाधान भगवान् बुद्ध के द्वारा किया गया है।

"योगवासिष्ठ महारामायण" न तो परम्परागत दर्शन ग्रन्थों की भाँति तर्क–वितर्क की शैली में लिखा गया है और न ही यह पूर्णतया काव्य ग्रन्थ है, जिसमें शृंगार रस या वीर रस अंगी रस के रूप में होता है। भारतीय विद्या के योरोपीय विद्वानों का अधिक ध्यान इसकी ओर अभी तक नहीं गया है। धर्म और रहस्य की प्रधानता होने के कारण अन्य सभी वस्तु विषय गौण मान लिये गये हैं जबकि ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्धारण करने के लिए उन विषयों से बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन किया जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ में इतस्ततः बिखरे हुए गद्यांश भी पाये जाते हैं। इस समय ग्रन्थ का जो प्रामाणिक संस्करण प्राप्त

अन्धकारगुहैकैकनृत्तमुन्मत्तचेष्टितम्।।
प्रशान्ताज्ञाननीहारं विज्ञानशरदम्बरम्।
समुत्कीर्णमिव स्तम्भे चित्रं भित्ताविवेदितम्।।
पङ्ककादिवाभिरचितं सचेतनमचेतनम्।
ततः स्थितिप्रकरणं चतुर्थ परिकल्पितम्।।
त्रीणि ग्रन्थसहस्त्राणि व्याख्यानाख्यायिकामयम्।
इत्थं जगदहंभावरूपस्थितिमुपागतम्।।
द्रष्टदृश्यक्रमं प्रौढमित्यत्र परिकीर्तितम्।
दशदिङ्मण्डलाभागभासुरोऽयं जगदभ्रमः।।
इत्थमभ्यागतो वृद्धिमिति तत्रोच्यते चिरम्।
उपशान्तिप्रकरणं ततः पञ्सहस्रकम्।।
पञ्चमं पावनं प्रोक्तं युक्तिसंततिसुन्दरम्।
इदं जगदहं त्वं च स इति भ्रान्तिरुत्थिता।।
इत्थं संशाम्यतीत्यस्मिन्कथ्यते श्लोकसङ्ग्रहैः।
उपशान्तिप्रकरणे श्रुते शाम्यति संसृतिः।। (यो. महा. 2.17. 25-33)
प्रभ्रष्टचित्रसेनेव किञ्चिल्लभ्योपलम्भना।
शतांशशिष्टा भवति संशान्तभ्रान्तरूपिणी।।
अन्यसङ्कल्पचित्तस्था नगरश्रीरिवासती।
अलभ्यवस्तुपार्श्वस्थस्वप्न युद्धचिरारवा।।
शान्तसङ्ल्पमत्ताभ्रभीषणशनिशब्दवत्।
विस्मृतस्वप्नसङ्निर्माणनगरोपमा।।
भविष्यन्नगरोद्यान प्रसूवन्ध्यामलाङ्गिाका।
तस्या जिह्वोच्यमानोग्रकथार्थानुभवोपमा।।
अनुल्लिखितचित्रस्य चित्रव्याप्तेव भित्तिभूः।
परिविस्मर्यमाणार्थकल्पनानगरीनिभा।।
सर्वर्तुमदनुत्पन्नवनस्पन्दा स्फुटाकृतिः।
भाविपुष्पवनाकारवसन्तरसरञ्जना।।
अन्तर्लीनतरङ्गौघसौम्यवारिसरित्समा।
निर्वाणाख्यं प्रकरणं ततः षष्ठमुदाहृतम्।।
शिष्टो ग्रन्थः परीमाणं तस्य ज्ञानमहार्थदः।
बुद्धे तस्मिन्भवेच्छ्रेयो निर्वाणं शान्तकल्पनम्।। (यो. महा. 2.17. 34-41)

8. Keith, A.B. "A History of Sanskrit Literature", 1976, p.p. 476, 494. Majumdar and Pusalker, "The History and Culture of the Indian People", Bombay 1988, p.p. 376, 389, 393, 578.

है उसमें उनतीस हजार दो सौ नवासी स्तवक / छन्द (Stanza) हैं [9]। इनमें गद्यांश भी उपलब्ध हैं परन्तु वस्तुतः प्राप्त संस्करण में, जो निर्णय सागर प्रेस बम्बई से सन् 1918 में प्रकाशित हुआ था, केवल सत्ताइस हज़ार छह सौ सात श्लोक ही मिलते हैं। सम्पूर्ण कृति छह प्रकरणों में विभाजित है–

1. वैराग्य प्रकरण	:	एक हज़ार एक सौ छियालीस छन्द।
2. मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण	:	आठ सौ सात छन्द।
3. उत्पत्ति प्रकरण	:	छह हज़ार तीन सौ चार छन्द।
4. स्थिति प्रकरण	:	दो हज़ार चार सौ चौदह छन्द।
5. उपशम प्रकरण	:	चार हज़ार तीन सौ बाईस छन्द।
6. निर्वाण प्रकरण	:	चौदह हज़ार दो सौ छियान्नबे छन्द।
(क) पूर्वार्द्ध	:	पाँच हज़ार तीन सौ इकतीस छन्द।
(ख) उत्तरार्द्ध	:	आठ हज़ार नौ सौ पैंसठ छन्द।

ग्रन्थ का उक्त छह प्रकरणों में इस प्रकार विभाजन पर्याप्त असन्तुलित सा है, इसलिए अवैज्ञानिक प्रतीत होता है। एक अन्य देवी सरस्वती और एक अन्य लीला का भी इसमें समावेश दिखायी देता है। चतुर्थ प्रकरण में कश्मीर के राजा यशस्कर की कहानी का भी समावेश है। इस प्रकार की सामग्री को देखकर प्रतीत होता है कि प्रक्षिप्त अंशों का प्रवेश मूल ग्रन्थ में होता गया है। उदाहरणार्थ, तृतीय अध्याय के लीला कथानक (Episode) को लिया जा सकता है, इस अंश को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे लेखक में तारतम्य के औचित्यबोध का पूर्ण अभाव सा है। जिस लेखक ने अत्यन्त सुन्दर, दार्शनिक विचारयुक्त अंशों की अवतारण की है, जिस लेखक में गहरी अन्तर्दृष्टि और मानवीय संवेदना पायी जाती है, जिसमें चराचर सृष्टि के प्रति सूक्ष्म अन्वीक्षण शक्ति है और जिस कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है, उसी कवि ने उक्त लीला वाला अंश लिखा होगा, इसे मानने में संकोच होता है। अतः ऐसी दशा में केवल यह तो स्वीकार किया ही जा सकता है कि इस प्रकार के कथानकों की ठूँस–ठाँस ग्रन्थ में द्रष्टव्य है, वह धीरे–धीरे कालक्रम के विकास के साथ ग्रन्थ में आयी होगी जैसा कि महाभारत जैसे प्राच्य ग्रन्थों में द्रष्टव्य है। सम्भवतः यह ग्रन्थ उसी प्राचीन कड़ी का एक भाग है, जिसमें कालक्रम के प्रवाह के साथ विभिन्न माणिकों को माला में ऐसे पिरोया गया हो, जिससे कि बाह्य दृष्टि में वे एक ही माला के अंग हों परन्तु अन्तर्द्दष्टि में गहनता से विचार किया जाय तो उनकी पृथक्ता द्रष्ट्व्य हो।

इससे प्रतीत होता है कि उत्पत्ति प्रकरण के बाद के अध्याय परवर्ती हैं, जिन्हें बाद में जोड़ दिया गया है। स्पष्टतः ग्रन्थ के सम्पूर्ण पाठ को वर्तमान रूप प्राप्त करने में बहुत लम्बा समय लगा है और उसमें बहुत से प्रक्षिप्त अंश परवर्ती काल में जुड़ गये हैं। इस स्थिति में यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि अवधान पूर्वक उस सामग्री का संधान किया जाय, जिससे ग्रन्थ के रचना काल का निर्धारण करने का आधार अनुसंधाता को प्राप्त होता है।

इसके पूर्व कि इस सन्दर्भ में ग्रन्थ की सामग्री का अनुसंधान विश्लेषण एवं संशलेषण द्वारा किया जाए, यह स्पष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा कि 'योगवासिष्ठ महारामायण हिन्दुओं का धार्मिक ग्रन्थ है'', संकीर्ण है, क्योंकि इस ग्रन्थ में उन नैतिक मूल्यों का संचरण है, जिसकी संसार के सभी व्यक्तियों के लिए उतनी ही उपादेयता आज भी है जितनी तब थी, जब इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ होगा। अपने मत को बल प्रदान करने के लिए प्रश्नगत ग्रन्थ के कुछ आदर्श विचारों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :–

---

9. Dasgupta, S.N., History of Indian Philosophy, 1965, Cambridge University, Vol. II, p. 228 f.

"जैसे पक्षी आकाश में दोनों पंखों से ही उड़ते हैं ऐसे ही ज्ञान और कर्म दोनों के योग से ही परमपद (=जीवन के चरम लक्ष्य) की प्राप्ति होती है। प्रत्येक मनुष्य के मन की स्थिति नट के समान है। वह क्षण भर में आनन्दी बन जाता है, क्षण भर में विषादी, और क्षणभर में सौम्य बन जाता है। पूर्वजन्म का पुरुषार्थ (अर्थात् भाग्य) और इस जन्म का पुरुषार्थ, कभी सम–शक्ति होकर और कभी असम–शक्ति होकर, दो मेढ़ो की तरह परस्पर युद्ध करते हैं। उनमें से जो अल्प शक्ति वाला होता है वह पराजित हो जाता है। मनुष्य को चाहिए कि पूर्वजन्म के अशुभ पौरुष (अर्थात् दुर्भाग्य) के फलोन्मुख होने पर, दाँतों से दाँतों को पीसते हुए, परम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर शुभ कर्मों के द्वारा उसको जीत ले। दैव भाग्य की कल्पना मूढ लोग ही करते हैं और दैव पर आश्रित होकर वे अपना नाश कर लेते हैं। बुद्धिमान् लोग तो पुरुषार्थ द्वारा ही उत्कृष्ट पद को प्राप्त करते हैं। सामान्य पुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी, यदि वह युक्तियुक्त बात को बतलाता है तो, ग्रहण करने योग्य है। इसके विरुद्ध जो शास्त्र है, वह ऋषि-प्रोक्त हो तो भी, त्याग करने योग्य है। मनुष्य को न्याययुक्त तर्क को ही स्वीकार करना चाहिए। युक्तियुक्त वचन को बालक से भी ले लेना चाहिए। ब्रह्मा द्वारा भी कहा हुआ युक्तिहीन वचन तृण की तरह त्याज्य है। जो भी दुष्प्राप्य वस्तु है वह कठिन तप से ही प्राप्त की जा सकती है। व्यक्ति अपने संकल्पों के कारण ही छोटा अथवा बड़ा बन जाता है। अवध्य के वध करने से जो पाप होता है, वही पाप वध्य के छोड़ देने से होता है। जो दीर्घसूत्री (= देर से काम करने वाले) होते हैं उनका, अपने नाश को छोड़कर, कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। अद्विग्न न होना समृद्धि का मूल है। पृथ्वी लोक में, द्युलोक में अथवा देवलोक में, कहीं भी, ऐसी वस्तु नहीं है जिसे गुणवान् मनुष्य अपने प्रयत्न से प्राप्त नहीं कर लेता है। महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देने वाली उत्कृष्टतर पद पर पहुँचाने वाली और अनर्थ-मूल मोह को दूर करने वाली होती हैं। महान् पुरुष अपने कार्यों में कालातिक्रम नहीं होने देते हैं। वे (= जनकराजा) भविष्य का अनुसंधान नहीं करते, न अतीत की चिन्ता करते हैं। वे हँसते हुए वर्तमान काल का ही अनुसरण करते हैं। ईंधन से जैसे अग्नि बढ़ती है ऐसे ही सोचने से चिन्ता बढ़ती है। न सोचने से चिन्ता वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे ईंधन के बिना अग्नि नष्ट हो जाती है। अपने धैर्य के बिना कोई और संकट से मनुष्य का उद्धार नहीं करता। जिनका अन्तःकरण तृष्णा से तप्त है उनको यह जगत् दावानल (जंगल की आग) स्वरूप प्रतीत होता है। सब प्राणियों के अन्दर मन में जो होता है वही बाहर जगत् में दिखायी देता है। सज्जनों के सम्पर्क से आधी अविद्या नष्ट हो जाती है, उसका चतुर्थांश शास्त्र के विचार से नष्ट हो जाता है, और शेष चतुर्थांश अपने यत्न से नष्ट होता है जो एक शिल्पकार के समान केवल आजीविका के लिए शास्त्र को पढ़ता है और उसका व्याख्यान करता है, परन्तु तदनुकूल आचरण करने का यत्न नहीं करता, वह केवल ज्ञानवन्धु नाममात्र का ज्ञानी कहलाता है। अभ्यास का माहात्म्य देखो, अभ्यास से मूर्ख विद्वान् बन जाता है, धीरे–धीरे पर्वत भी चूर्ण हो जाता है, और बाण भी अपने महान् लक्ष्य को प्राप्त हो जाता है। बार–बार मिलने के सम्बन्ध से अबन्धु बन्धु बन जाता है। दूरी के कारण परस्पर मिलने का अभ्यास छूट जाने से बन्धुओं में भी स्नेह की कमी हो जाती है। प्रबुद्ध हो या अप्रबुद्ध, जो जैसा क्लेश उठाने को समर्थ है, वह वैसा ही फल अवश्य पा लेता है। मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय होकर जैसी भावना करता है, और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है, अन्यथा नहीं। जो अपने कल्याण की बात है उसे आज ही कर। वृद्ध होकर क्या करेगा? क्योंकि वृद्धावस्था में अपना शरीर भी भारभूत हो जाता है। "यह कुआँ हमारे पिता का है" ऐसा कहते हुए निकम्मे पुरुष खारी जल को पीते हैं। आयु का एक क्षण भी संसार के सब रत्नों से नहीं पाया जा सकता। उस आयु को यदि कोई व्यर्थ में खोता है, तो बड़ा भारी प्रमाद है।"[10]

10 यो. महा. 1.1.7, 1.28.38, 2.5.5, 2.5.9, 2.8.16, 2.18.2, 2.18.3, 3.68.14, 3.70.30, 3.90.3, 3.78.8, 3.111.22, 4.62.19, 6.4.5, 5.10.9, 5.12.14, 5.21.6, 5.29.10, 5.56.34, 6पू.12.37, 6पू.21.3, 6पू.67.26, 6पू.67.29, 6पू.102.33, 6पू.157.31, 6पू.163.56, 6पू.175.78.

विषयवस्तु–सारांश

'योगवासिष्ठ महारामायण' की रचना अयोध्यापति दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र को उद्‌बोधन देने के लिए की गई थी। पूर्ण यौवन को प्राप्त श्री रामचन्द्र में भौतिक जगत् के प्रति तीव्र वैराग्य के भाव का उदय हुआ, उनके मन में भौतिक वस्तुओं की निरर्थकता तथा जागतिक इच्छाओं और आसक्तियों की व्यर्थता की तीव्र अनुभूति ने जन्म लिया। इस अवसर पर महर्षि वसिष्ठ ने जो शिक्षा और ज्ञान उन्हें दिया उससे अन्त में उनकी शंकाओं का समाधान और उनके मस्तिष्क में होने वाले आलोडन–विलोडन का शमन हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ महर्षि वसिष्ठ की उसी शिक्षा का अभिलेख है। सम्पूर्ण ग्रन्थ छह प्रकरणों में विभक्त है जिसका संक्षिप्त पर्यवेक्षण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. वैराग्य प्रकरण :

इस प्रकरण में बताया गया है कि साधक को अपने आध्यात्मिक उन्नयन के लिए किन–किन मानसिक उपकरणों की आवश्यकता है। सृष्टि में दो प्रकार की शक्तियाँ कार्य करती दिखायी देती हैं– अपकेन्द्रीय (centrifugal) और अभिकेन्द्रीय (Centripetal)। इसी प्रकार सृष्टि के उपादान मनुष्य के अन्तर्मन में भी ये दो प्रकार की शक्तियाँ निरन्तर परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया करती रहती हैं। एक को 'प्रवृत्ति' तथा दूसरी को 'निवृत्ति' कहा जा सकता है। प्रवृत्ति के प्रभाव से जागतिक पदार्थों के प्रति आसक्ति का उदय होता है और मनुष्य सांसारिक सुखों के पीछे भागने लगता है इस प्रकार ब्रह्मन् से दूर होता हुआ हर प्रकार के दुःखों को भोगता है। निवृत्ति (renunciation) का मार्ग सच्चे सुख और धृति स्थिरचित्तता (equanimity) का मार्ग है जिससे आत्मसाक्षात्कार होता है– 'आत्म' जो ब्रह्म है उस ब्रह्म का साक्षात्कार पूर्ण सत्य का साक्षात्कार है।

प्रस्तुत प्रकरण का प्रारम्भ श्री राम की मनोदशा के वर्णन से प्रारम्भ होता है जो उनके मन में चलने वाले विचारों की शृङ्खला के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। महर्षि के राम की उदासीनता और संसार से विमुखता का कारण पूछने पर राम निःसंकोच उन बातों का उल्लेख करते हैं जो उनके चित्त को विक्षुब्ध और अशान्त कर रही हैं। राम की बातों से उनके वैराग्य भाव का पता चलता है। तथापि वे विनयी भाव से तर्क को स्वीकार करते हैं और महर्षि वसिष्ठ की वाणी को अवधानपूर्वक सुनते हैं।

इस प्रकरण में महर्षि वाल्मीकि, कण्व, अग्निवेश, विश्वामित्र, शुचि, राजा अरिष्टनेमि, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण के आख्यानों का भी समावेश है तथा राम की तीर्थयात्रा का वर्णन है जो अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद उन्होंने की थी।

2. मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण :

इस प्रकरण में बताया गया है कि सत्यान्वेषी को वैराग्य का उदय होने पर मानसिक श्रेष्ठता और नैतिक प्रकर्ष को प्राप्त करना चाहिए जिसके बिना आध्यात्मिक उत्कर्ष को उपलब्ध नहीं किया जा सकता। महर्षि वसिष्ठ यहाँ पर नैतिक अनुशासन की बात पर बल देते हैं और उन कर्मों का परामर्श देते हैं, जो सत्य के ज्ञान की अनिवार्य आधारभूमि हैं। विचार अथवा आत्म–परीक्षण और आत्मालोचन पर विशेष बल दिया गया है, पग–पग पर होने वाले अनुभवों का विशलेषण करते चलना होता है। इस दिशा में पहला कदम अपने मन पर विजय प्राप्त करना है, जो क्रमबद्ध सतत और कठिन नैतिक अनुशासन से प्राप्त की जा सकती है। निरन्तर पुण्य कार्यों के सम्पादन, निरन्तर ध्यान एवं श्रेष्ठ विचारों पर विशेष बल दिया गया है। साधक को पूर्ण सत्य के साक्षात्कार के लिए पूरी तरह प्रयास करना चाहिए। उसे अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत्संग का लाभ उठाना चाहिए और शास्त्रों का अनुशीलन करना चाहिए। इस अनुशीलन से आत्मज्ञान का उदय होता है। जब तक पूर्ण सत्य का साक्षात्कार नहीं होता तब तक अथक भाव से उन कर्मों को करना चाहिए, जो गुरु के द्वारा निर्दिष्ट हैं तथा शास्त्रों में बताये गए हैं। इस मार्ग में आने वाले सुख–दुःखों से अप्रभावित रहकर ब्रह्म से साक्षात्कार की दिशा में प्रवृत्त होना चाहिए।

3. उत्पत्ति प्रकरण :

इस प्रकरण में सृष्टि की उत्पत्ति और विकास पर विचार किया गया है। सृष्टि की रचना की अवधारणा यद्यपि अद्वैत दर्शन के अनुरूप नहीं है, जिसका प्रतिपादन इस ग्रन्थ में किया गया है।

उक्त प्रकरण में बताया गया है कि जैसे समुद्र में लहर उठती है, सतह पर तरंगित होती है और पुनः उसका अस्तित्व जल में ही विलीन हो जाता है ठीक उसी प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति "ब्रह्म" से है। पुरुष और प्रकृति का योग उसका कारण है। ब्रह्म शुद्ध चैतन्य, शाश्वत और अक्षुण्ण है जो हिरण्यगर्भ (the Absolute Mind) में रूपान्तरित होता है वह ब्रह्म का अंश ही है, ब्रह्म का यही अंश पूर्व कल्पों के पूर्व कर्मों के अनुसार जीव अथवा प्राणी का रूप धारण करता है। पूर्व जन्मों के संस्कारों के प्रभाव से जीव पंचभूतों से निर्मित शरीर धारण करता है। सार रूप में सृष्टि का ब्रह्म से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है। मनोबुद्धि (Agency of Mind) के द्वारा दोनों में पार्थक्य भासित होता है। तर्क–बुद्धि के द्वारा द्वन्द्वात्मक दृश्य जगत् ही सत्य जैसा भासित होता है। जो व्यक्ति अखिल सृष्टि को विराट ब्रह्म के भीतर ही देखता है और अपने ध्यान को ब्रह्म से साक्षात्कार हेतु केन्द्रित करता है वही भौतिक जगत्, अविद्या एवं माया से उत्पन्न भ्रमों को दूर करने में समर्थ होता है।

साधक किस प्रकार ब्रह्म को कण–कण में व्याप्त देखता है वह उसकी प्राप्ति-हेतु तपःपूर्ण पुरुषार्थ, सांख्य, विवेक एवं भक्ति द्वारा अपनी चित्त वृत्तियों के निरोध द्वारा उसकी शुद्धि करता है। जब हृदय शुद्ध होता है, मन के सभी क्षोभ समस्त लिप्साओं और संकीर्णताओं के साथ लुप्त हो जाते हैं। यह जीवन्मुक्त की स्थिति को प्राप्त करता है और मृत्यु के पश्चात् विदेह–मुक्ति पा जाता है।

उक्त रहस्य को स्पष्ट करने के लिए लेखक लीला और देवी सरस्वती का आख्यान सम्मिलित करता है। सरस्वती लीला को युद्ध की कहानी सुनाती है।

4. स्थिति प्रकरण :

इस प्रकरण में सृष्टि की संरचना और व्यवस्था के बीच आत्मा की स्थिति पर विचार किया गया है। इसमें बताया गया है कि "अहं" ब्रह्म ही है। अहंकार के प्राबल्य के कारण प्राणी निरुद्देश्य भटकते हैं और दण्ड स्वरूप दुःखों को प्राप्त करते हैं, अहंकार ही ब्रह्म की प्राप्ति में सबसे बड़ा अवरोध है। इस प्रकरण में जिस अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य पर बल दिया गया है वह यह है कि मनुष्य जिस वस्तु से चुम्बकीय रूप से आकर्षित (attached) है, वह उसकी आत्मा ही है। इसलिए हृदय को शुद्ध करने का सर्वोत्तम साधन यह है कि प्रत्येक पदार्थ को आत्मन् के रूप में स्वीकार करने का प्रयास किया जाय। जब तक मनुष्य कर्मों का कर्त्ता स्वयं को समझता है तब तक वह कायिक बोध से परे आत्मा के धरातल पर प्रवेश नहीं कर पाता। जब साधक यह अनुभव करता है कि कहीं पर भी आत्मा की सत्ता के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं है तभी वह अनासक्त भाव से सुख–दुःख से अप्रभावित रहकर व्यवहार कर सकता है।

उपर्युक्त दर्शन की व्याख्या करते समय लेखक ने शुचि के आख्यान का वर्णन किया है। शुचि का यह आख्यान साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता है। इस प्रकार के आख्यानों का वर्णन करते समय लेखक ने देश के तत्कालीन भौगोलिक विवरण अत्यन्त विशद रूप में प्रस्तुत किये हैं।

5. उपशम प्रकरण :

इस प्रकरण में यह वर्णन किया गया है कि सांसारिक सुख–दुःखों का अनुभव करते हुए जिस सबसे बड़ी समस्या का समाधान अपेक्षित है वह यह है कि किस प्रकार आत्मबोध और देहात्मबोध के मध्य विचार के द्वारा अन्तर किया जाय। अतः प्रस्तुत प्रकरण में उन स्तरों को उद्घाटित किया गया है, जिनको प्राप्त कर साधक अपने को कायिक बन्धन

के पास से क्रमशः मुक्त करता हुआ शुद्ध चैतन्य में प्रवेश करता है। भौतिक वस्तुओं की लिप्सा के मूल में रहने वाला अहंकार साधक के इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।

उक्त प्रकरण में अहंकार को दूर करने सम्बन्धी निर्देश दिये गये हैं, जिससे व्यक्ति समदर्शन (सभी में ब्रह्म का दर्शन) को प्राप्त कर सके तथा स्वयं को शुद्ध चैतन्य स्वरूप मानते हुए असंग भाव (निष्काम कर्म=असंग भाव से किया गया कर्म) से अपने कर्तव्यों को कर सके। जब साधक पूर्णतया निस्संग (अर्थात् हानि–लाभ, हर्ष–विषाद के भावों से परे), हो जाता है तब वह पूर्ण निर्भय हो जाता है अर्थात् पूर्ण रूप से भयातीत हो जाता है। उस समय वह समाधि की अवस्था में जा सकता है, परमानन्दस्वरूप ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है, जहाँ से वापस संसार में आना नहीं होता।

उक्त दार्शनिक तथ्यों का प्रतिपादन करते हुए लेखक फ़ारस के राजा परिघ और भारत के राजा सुरघु के आख्यानों का वर्णन करता है। किन्तु उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उक्त आख्यान साहित्य में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हैं अतः ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में इसीलिए वे हमारी सहायता नहीं करते हैं। इस प्रकरण में उल्लिखित कश्मीर के राजा यशस्कर की कथा अवश्य कुछ ऐतिहासिक संकेत प्रस्तुत करती है।

6. निर्वाण प्रकरण :

इस प्रकरण में बताया गया है कि साधक किस प्रकार दैहिक लिप्साओं से दूर होता हुआ निवृत्ति के मार्ग से परमानन्द स्वरूप ब्रह्मन्पद को प्राप्त करता है।

उक्त प्रकरण दो वर्गों में विभाजित है– पूर्वभाग तथा उत्तर भाग। पूर्व भाग के प्रथमांश में साधक के लिए यह शिक्षा दी गई है कि वह स्वयं को शुद्ध चैतन्यस्वरूप समझे– वह, स्वयं, सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है। इस स्थल पर महर्षि वसिष्ठ उस शिक्षा का उल्लेख करते हैं, जो स्वयं उन्हें महेश्वर के द्वारा दी गई थी।

उत्तर भाग में बताया गया है कि वास्तविक वैराग्य आत्मज्ञान से प्राप्त होता है, जिसके फलस्वरूप कर्म स्वयमेव विराम (cessation = समाप्ति, विरमन, विश्राम) पा जाते हैं। अहंकार का नाश और भौतिक आकर्षणों की समाप्ति हो जाने पर साधक असीम चैतन्य से एकाकार हो जाता है और उसे महापरिनिर्वाण की प्राप्ति होती है। ऋषि अपने निज के समाधि के अनुभवों को बताते हैं, चिदाकाशमय हो जाने पर प्रत्येक वस्तु का ज्ञान हो जाता है, कण–कण में "आत्म" (ब्रह्म) के स्थित होने की अनुभूति होती है और आवागमन के चक्र से मुक्ति की अवस्था की प्राप्ति होती है। चर्मचक्षुओं के बिना मात्र ज्ञानचक्षु से प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दिखायी देती है।

प्रवचन की समाप्ति पर राम का चित्त निर्विकार हो जाता है और उन्हें संसार अर्थपूर्ण दिखायी पड़ने लगता है। अन्त में महर्षि राम को बताते हैं कि ब्रह्म अनुभूति का विषय है। इस प्रकार ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करके रामचन्द्र को ब्रह्मबोध होता है। प्रवचन की समाप्ति के समय वे प्रसन्नता और विस्मय से पुकार उठते हैं, "ओह ! मुझे निर्वाण की अद्भुत स्थिति की प्राप्ति हो गई है, जो जीवन का सार (Sumum bonum) हैं।" इस पर वसिष्ठ, राम को परामर्श देते हैं कि ऋषियों की भाँति, जो समाधि में स्थित रहते हैं साथ ही जगत् में भी रहते हैं, उन्हें भी जीवन्मुक्त अवस्था में रहकर देहधर्म का निर्वाह करना है।

पूरा ग्रन्थ रुचिकर आख्यानों तथा पौराणिक कथाओं से पूर्ण है। पौराणिक कथाओं में निम्नलिखित कथाएं हैं– शुकदेव, जनक, अग्निवेश, कारुण्य, आकशज ब्रह्मण, राजा पद्म और लीला, कर्कटी राक्षसी, इन्द्र और अहिल्या, भृगु और शुक्र, शम्बर, दासुर, बलि, प्रह्लाद, गाधि ऋषि, उद्दालक, सुरघु, भास एवं बिलास, वीताहव्य, भुशुण्डि, जिबाता, बेताल, भगीरथ, चुड़ाल, कछ, विद्याधर, मानकी शैल, विपश्चित, कुन्ददन्त, किरात आदि।[11]

---

11. Bose, D.N., Yogavasistha- Ramayana, Calcutta, 1958, p. 1 ff.

ऊपर दिये गये विवरण से यह ज्ञात होता है कि 'योगवासिष्ठ महारामायण' दर्शन का ग्रन्थ है किन्तु दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए लेखक ने बहुत से ऐसे आख्यानों को सम्मिलित किया है जिन का ऐतिहासिक महत्त्व है।

इस प्रकार पुराणों और महाकाव्यों की तरह उक्त ग्रन्थ को भी ऐतिहासिक ग्रन्थों की श्रेणी में माना गया है। इसी क्रम की निरन्तरता में, लेखक स्वयं ही अपने ग्रन्थ को श्रेष्ठ इतिहासों में परिगणित करता है, जो महाभारतकार के कथन से कुछ भिन्नता रखता है।[12] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लेखक अपने ग्रन्थ को ऐतिहासिक तथ्यों और दार्शनिक सिद्धान्तों दोनों से युक्त मानता है।

(आ) रचनाकार का निर्धारण

विद्वानों में 'योगवासिष्ठ महारामायण' के रचनाकर के सम्बन्ध में मतभेद है। इसका मूल कारण यह है कि लेखक ने अपने विषय में तथा ग्रन्थ के रचनाकाल और रचना–स्थान के विषय में कुछ नहीं कहा है। इस प्रकार की रचनाओं के विषय में एक अन्धविश्वास चला आता है कि उनका अस्तित्व अनादि–काल से है और वे ईश्वरीय हैं किन्तु प्राचीन ऋषियों के लिए वे रहस्यात्मक नहीं थीं।[13] उक्त ग्रन्थ के मूल से ऐसा आभासित होता है कि ग्रन्थ के रचयिता महर्षि वाल्मीकि थे, जिन्होंने रामायण महाकाव्य की रचना की।[14] उक्त ग्रन्थ के शीर्षक में महर्षि वसिष्ठ जी का नाम आने से यह संकेत मिलता है कि उन्हें ही उसका रचयिता होना चाहिए।[15] विहारी लाल मिश्र के अनुसार वशिष्ठ किसी व्यक्ति का नाम न होकर पदवी का नाम है। अतः यह वसिष्ठ कौन थे? जिन्होंने अपने शिष्य राम के लिए योग, सांख्य और

---

12 इतिहासोत्तमादस्माच्छताद्बोधः प्रवर्तते।
सर्वेषामितिहासानमयं सार उदाहृतः।। (यो. महा. 389)
इतिहासात्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा।
स्वरव्यञ्जनयोः कृत्स्ना लोकवेदाश्रयेव वाक्।।
भारतस्येतिहासस्य श्रूयतां पर्वसंग्रहः।
पर्वानुक्रमणी पूर्वे द्वितीयः पर्वसंग्रहः।। (महा. आदि. 2.39.41)
इतिहासोत्तमादस्यज्जायन्ते कवि बुद्धयः।
इदं सर्वै कविवरैराख्यानमुपजीव्यन्ते।। (महा. आदि. 2.237.241)
द्वैपायनेव यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्।।
तस्याख्यानवसिष्ठस्य विचित्र पदपर्वणा।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थे भूषितस्य च।।
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुतताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपवृंहिताम्।। (महा. आदि. 1.17-19)
सुकथांकर सम्पादन : "Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona." विस्तार के लिए देखें– अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत सावित्री, नई दिल्ली, शत साहस्त्री संहिता, 1957.

13. Atreya, B.L., The Philosophy of Yoga Vaisistha, 1936, Varanasi, p. 26 ff.

14. Ibid.
वाल्मीकिरुवाच –
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामायणमखंडितम्।
श्रुत्वावधार्य यत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि।। (यो. महा. 1.1.52)

15. ॐ नमो ब्रह्मणे ब्रह्म विदमो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो
वसिष्ठविश्वामित्रव्यासवाल्मीकिशुक्रादिभ्यः श्रीरामभद्राय च।
अजमजरमनाद्यऽनन्तमन्तर्निजसुखबोधरसद्द्वितीयपूर्णम्।
शिवमखिलं हृदि स्फुर तव माया विव्याति विश्व–विलास मानताः स्मः।।
(यो. महा. खण्ड। (तृतीय, 1937), मुम्बई सम्पा. वासुदेव शास्त्री. पनसीकर, 1.1.1. टिप्पणी)

अद्वैत के सिद्धान्तों की व्याख्या की, यह हमारे लिए अज्ञात है।[16]

ग्रन्थ के चतुर्थ प्रकरण में दिये गए राजा यशस्कर के वर्णन और भौगोलिक प्रस्तुतियों के आधार पर जी.सी. दीवान ने यह निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है कि उक्त राजा के मन्त्री नरसिंह इस ग्रन्थ के रचयिता हैं।[17] प्रो. अत्रेय के मतानुसार उक्त ग्रन्थ पर विज्ञानवाद दर्शन का प्रभाव है।[18] यदि यह सही है तो दीवान जी का रचनाकार के विषय में किया गया अनुमान अधिक उपयुक्त है क्योंकि विज्ञानवाद का प्रादुर्भाव कश्मीर में हुआ था।[19] ग्रन्थ की पाण्डुलिपि[20] एवं कश्मीरी राजा यशस्कर की कथा की तुलना यदि आलोच्य ग्रन्थ के मुद्रित संस्करण तथा तत्सम्बन्धी उक्त पाण्डुलिप के साथ की जाय, तो निष्कर्षतः ऐसा माना जा सकता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ में यह कथा सम्भवतः उसके

आत्मज्ञानप्रधानानामिदमेव महामते।
शास्त्राणा परम शास्त्र महारामायणं शुभम्।।
यदिहास्ति यदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।
इमं समस्तविज्ञानशास्त्रकोशं विदुर्बुधाः।। (वही 3.8.8 एवं 12)
शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालङ्कारविभूषितम्।
काव्य रसमयं चारु दृष्टान्तैः प्रतिपादितम्।। (वही 2.18.33)
वसिष्ठरामसवाद मोक्षोपाय कथां शुभाम्।
जात स्वभावो राजेन्द्र वदामि श्रूयतां बुधा।। (वही 1.1.52–53)

16. मित्र वी.एल., यो. महा., अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द 1 भूमिका, 1976 दिल्ली

17. Diwanji, P.C., Seventh Oriental Conference, Barauda (Jalgaon) "The Date and Place of Origin of Yoga-Vaisistha", p.p. 22-23.
तस्मिन्नेव तदा काले तत्र राजा भविष्यति।
श्रीयस्यकरदेवाख्यः शक्रः स्वर्ग इवापरः।। (यो. महा. 4.32.16)
अधिष्ठानाभिधे तस्मिन्नेवान्तर्नगरे तदा।
रत्नावली विहाराख्यो विहारोऽपि भविष्यति।। (वही 4.32.18)
तस्मिंस्तदभूमिपामात्यो नरसिंह इति श्रुतः।
करामलकवद्दृष्टबन्धमोक्षो निवत्स्यति।। (वही 4.32.19)
स नृसिंहो नृपामात्यश्लोकैर्विरचितामिमाम्।
दामव्याकटादीना कथयिष्यति सत्कथाम्।। (वही4.32.21)

18. Atreya, B.L., Seventh Oriental Conference, Benaras, 1932, pp. 55-59.

19. Diwanji, P.C., op. cit.

20. पाण्डुलिपि, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, पुस्तकालय
प्राप्ति सं. – 773
ग्रन्थ – योगवासिष्ठ (सटीक)
टीका – वासष्ठि चंद्रिका
टीकाकार – आत्मसुख (परिव्राजकाचार्य उत्तमसुख शिष्य)
विषय – ब्रह्मज्ञान (वेदांत)
भाषा – संस्कृत लिपि–देवनागरी
आकार – लम्बाई 32 से.मी. चौड़ाई 12.9 से.मी.
पत्र सं. – 57 (प. सं. 1–57 तक)
पंक्ति – प्रति पृष्ठ–11
अक्षर – 44, आधार–कागज़
अपूर्ण
प्राचीन – (जीर्णशीर्ण एवं किनारे फटे हुए)

शारदालिपि में लिखे जाने के समय प्रक्षिप्त रूप से जोड दी गई होगी, क्योंकि संस्कृत की जो अपूर्ण पाण्डुलिपि यहाँ उल्लिखित की गई है, वह आलोच्य ग्रन्थ का नामोल्लेख मोक्षोपाय करती है, जो सम्भवतः उक्त ग्रन्थ का वर्तमान से पूर्ववर्ती नाम रहा होगा परन्तु वास्तविकता यह है कि इस विषय पर किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है। अधिकतर पाण्डुलिपियाँ यशस्कर की कथा से अनभिज्ञ सी प्रतीत होती हैं। सम्भवतः इसीलिए प्रहलाद चन्द्र दीवान आलोच्य ग्रन्थ में यशस्कर के कथानक को एक प्रक्षिप्त अंश मानते हैं। चतुर्थ प्रकरण में मन्त्री नरसिंह के लिए क्रिया के भविष्यकाल के प्रयोग के कारण उसे कृति का रचयिता मानने का पी.सी. दीवान का तर्क [21] प्रामाणिक आधार से युक्त नहीं प्रतीत होता। प्रथम प्रकरण में प्रस्तुत ग्रन्थ को स्पष्ट रूप से ब्रह्मा के द्वारा वाल्मीकि के प्रति प्रोक्त बताया गया है और इसी बात का संकेत अन्य लोगों कण्व, अग्निवेश आदि को भी दिया गया है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि योगवासिष्ठ महारामायण के रचयिता के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक निष्कर्ष नहीं प्राप्त होता है।

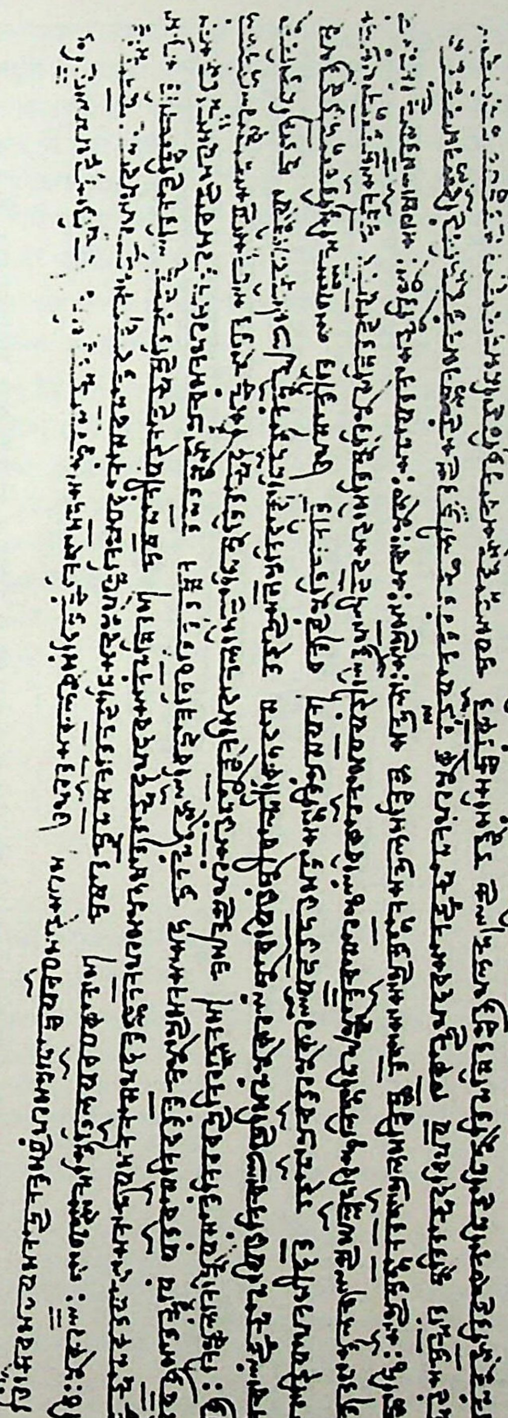
(इ) रचना के स्थान का निर्धारण

"योगवासिष्ठ महारामायण" की रचना किस स्थान पर हुई यह भी एक विवादास्पद विषय है। ग्रन्थ का रचयिता बौद्धमत से सुपरिचित है। प्रोफेसर अत्रेय के मतानुसार ग्रन्थ में विज्ञानवाद के सिद्धान्त उपलब्ध हैं। विज्ञानवाद महायान शाखा का दर्शन है।[22] महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि बौद्ध मत की महायान शाखा ने कश्मीर के दार्शनिक विश्वासों और संस्कृति को प्रभावित किया और फिर वह क्रमशः भारत के पूर्वी भागों की ओर बढा।[23] इसी प्रकार का अनुमान पी.सी. दीवानजी ने किया है।[24] इसी आधार पर प्रो. भट्टाचार्य[25] और वी. राघवन्[26] जैसे विद्वानों ने कश्मीर को ग्रन्थ की रचना

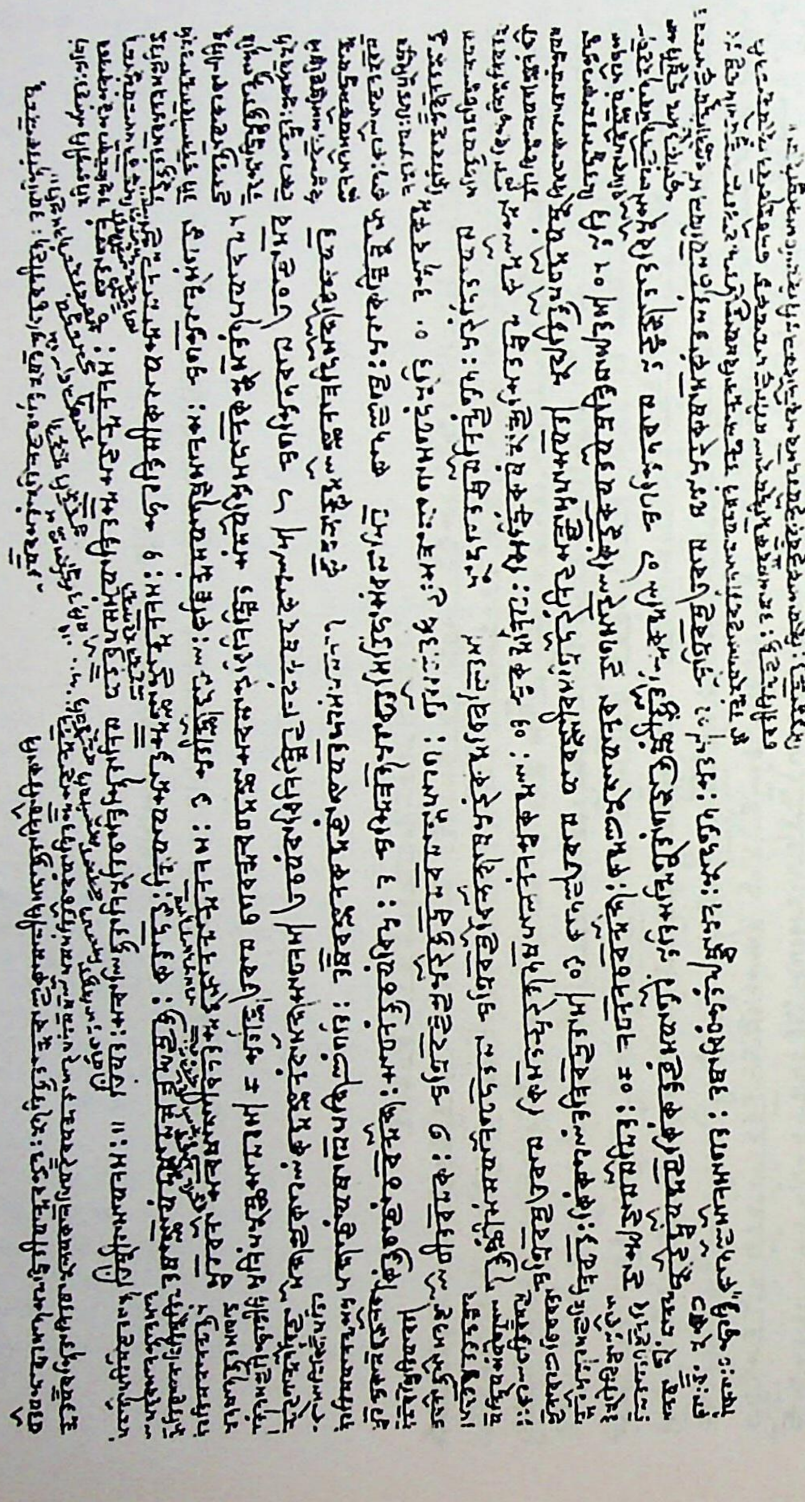
आदि – श्री गणेशाय नमः ।।अथात्माख्ये प्रकरणेन चाख्यान . . . पुष्पिका।
पत्र सं. (। अ)
मध्य – इति श्री वाल्मीकीये मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे मंडपोपाख्यानं नाम षष्ठः सर्गः।
अन्तिम –
परमात्मा सृष्टिकाले पूर्वं सामान्यतो दृश्यत्वा ब्रह्मामाप्नोति।
न तश्चिताब्रह्ममाप्नोति ततोऽहंकारा . . . . . भविष्यति। पत्र सं. 28

इसके अतिरिक्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय में इसी ग्रन्थ की एक शारदा लिपि में लिखित सम्पूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसकी तिथि ज्ञात नहीं है परन्तु सुगठित रूप में ग्रन्थ है, जिसके कुछ प्रारम्भिक एवं अन्त के भावों का छायांकन यहां किया गया है (छायाकृति संलग्न)। राजकिशोर सिंह के अनुसार ब्राह्मीलिपि की उत्तरी शाखा के अन्तर्गत कुटिल लिपि एवं शारदालिपि का विकास हुआ, जिसकी दक्षिणी शाखा के अन्तर्गत उत्तर भारत में कुटिल लिपि के साहचर्य में शारदा लिपि भी विकसित होती रही। कुटिल लिपि से शारदा लिपि का विकास हुआ। कश्मीर और पंजाब में लगभग आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शारदा लिपि का प्रयोग मान्य रूप में ही द्रष्टव्य होता है। (देखिये– सिंह, राजकिशोर, संस्कृत भाषा विज्ञान, पंचम संस्करण 1981, आगरा) ईश्वर चन्द राही के अनुसार इस लिपि का विकास दसवीं शताब्दी तक हो चुका था और कश्मीर में इसी लिपि में एक अभिलेख की प्राप्ति दसवीं शताब्दी में होती है। (राही, ईश्वर चन्द, लेखन कला का इतिहास खण्ड–1, लखनऊ, 1983, पृ. 157) अब यदि राजा यशस्कर का शारदा लिपि वाली पाण्डुलिपि में उल्लेख है तो यह माना जा सकता है कि आठवीं शताब्दी तक योगवासिष्ठ महारामायण अपनी प्रचलित अवस्था में पहुंच चुका था और सम्भवतः इसका लेखन कश्मीर में ही हुआ और इसी के बाद साहित्य में उद्भूत हुई यह शारदा लिपि दसवीं शताब्दी के अभिलेख में दृष्टिगत होती है।

21. Diwanji, P.C., op. cit.
22. Atreya, B.L., The Philosophy of Yoga-vasisth', p. 26 ff.
23. Bhattacharjee, Arun, Hisotry of Ancient India, 1979, p. 239.
24. Diwanji, P.C., Seventh Oriental Conference, Baroda. Majumdar, R.C. & Pusalkar, A.D., "History and Culture of Indian People" (The Classical Age), 1988, Bombay, 1988, pp. 14,300, 341, 383, 384, 385, 389, 390, 391.
25. Bhattacharya, S.P., Proceedings of the Third Oriental Conference, Madras, 1924, pp. 549 ff.
26. Raghvan, V., Journal of Oriental Research, Vol. XIII, 1939



बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय में संरक्षित योगवासिष्ठ महारामायण के प्रारम्भिक पृष्ठ की छाया–प्रति



बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय में संरक्षित योगवासिष्ठ महारामायण के अन्तिम पृष्ठ की छाया-प्रति

का स्थान होने की सम्भावना व्यक्त की है। उक्त विद्वानों के मतानुसार इसमें न केवल स्थानों, भवनों आदि के ब्योरे पाये जाते हैं बल्कि बहुत से पहाड़ों और पहाड़ी स्थानों का वर्णन किया गया है, जिससे यही अनुमान होता है कि ग्रन्थ के लेखन का प्रारम्भ अवश्य ही कश्मीर में हुआ होगा।[27] इसके विपरीत ग्रन्थ के उत्पत्ति प्रकरण में पहाड़ों तथा जन–जातियों के बहुत से ऐसे नाम दिये गये हैं जो कश्मीर में नहीं हैं, जैसे अंग, दंग, कलिंग, चीन, गुर्जर, तंगण, अंजमगिरि, सुमेरु और अन्य बहुसंख्य।[28] टी.जी. मयंकर के अनुसार ग्रन्थ में ऐसे बहुत से उल्लेख हैं जिनसे ग्रन्थ का रचना स्थल कश्मीर नहीं प्रतीत होता।[29] इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में बौद्धमत के विज्ञानवाद के साथ–साथ जैनमत और वैष्णव मत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है,[30] जो ग्रन्थ के कश्मीर में लिखे जाने के मत का खण्डन करता है।

निष्कर्षतः ग्रन्थ की रचना के स्थान के विषय में उपर्युक्त उपक्रमों (inception) के आधार पर कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं व्यक्त किया जा सकता।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण इस ओर संकेत करता है कि स्पष्टतः योगवासिष्ठ महारामायण संस्कृत-ग्रन्थ है। इसका महत्त्व केवल दर्शन–ग्रन्थ होने के कारण ही नहीं है अपितु इसमें प्राप्त भौगोलिक और सांस्कृतिक विवरणों के कारण भी है। ऐसे ग्रन्थ के रचनाकाल के संदर्भ में उसका विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयत्न होगा। पूर्ववर्ती अध्येताओं ने ग्रन्थ का दार्शनिक पक्ष लेकर इसका अध्ययन किया है, कुछ अध्येताओं ने कतिपय भौगोलिक और ऐतिहासिक ब्योरों को भी लिया है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य ग्रन्थ के काल–निर्धारण के लिए उसमें प्राप्त विवरणों का विश्लेषण है।

❑ ❑ ❑

---

27. Raghvan, V., Journal of Oriental Research, Vol. XIII.
28. यो. महा. 3.36. 19 और आगे तथा सर्ग 37.
29. Mainkar, T.G., "Vasistha Ramayana- A Study", 1977, Delhi, pp. 177 ff.
30. "Rama desired to have the peace of mind and remain as the self satisfied old sage Jina "Book I, XV, p. 53, line 8, English Translation by Mitra, V.L., Vol. XXI.
"The fruit of high abode of reason was even, unobstructed, interminable and independent happiness called, "Kaivalya". Book II, XIV, p. 186, line 28.
"Saintly, sage having lived as long as they like abondon the world at last and gain their Kaivalya, eternal unity" Ibid., p. 187, line 36.
"When the observer came to know the unreality of the phenomena of the three worlds, as well as of his own entity, it was then that this pure soul attained to the knowledge of 'Kaivalya" of society of divine existence." Ibid. Book III, IV, Section III, p. 240, line 56. "Valmiki told Arishtanemi about the causes of Lord Vishnu's incarnation as Rama in the form of a human being of little understanding." Ibid. Book I, Section 6, p. 6, line 55.
"Rama said, tell me sir, (Vasistha), when will this Arjuna, the son of Pandey, will come to be born on earth, and who is this Hari of his, that is to deliver this lession of indifference to the world to him".
Mitra, V.L. "The Yogavasistha-Maharamayana", English Translation, Vol. III, Section II, Book VI, p. I. pt. I, III, p. 300, line 10.

द्वितीय अध्याय

योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्याय में योगवासिष्ठ महारामयण के रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। उक्त ग्रन्थ के रचना काल के निर्धारण के विषय में विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से अपने–अपने मत प्रतिपादित किये हैं। इस ग्रन्थ के विषय में प्रस्तुत किये गये विचार, इसे उस कोटि के संस्कृत-ग्रन्थों में रखने पर बाध्य करते हैं, जिनके रचनाकाल के निर्धारण में अनेक विरोधाभास के रूप में विद्वानों के विचार प्राप्त होते हैं। आलोच्य ग्रन्थ के सन्दर्भ में इस क्रम के अनेक प्रयास दार्शनिक आधारों पर ही आधारित हैं परन्तु रचना काल के निर्धारण की समस्या आज भी एक बड़े प्रश्न के रूप में हमारे सामने उपस्थित है।

विद्वानों का एक वर्ग ऐसा है जो प्रश्नगत ग्रन्थ को सातवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी में रखता है और दूसरा वर्ग इसे पांचवीं से सातवीं शताब्दी के मध्य का मानता है। उपर्युक्त दोनों ही प्रकार के सिद्धान्तों को इस अध्याय में विश्लेषित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

सातवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के मध्य योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल की अवधारणाएँ:

मयंकर, फर्कुहर, फादर कामिल बुल्के, राघवन्, दीवान जी, शिव प्रसाद भट्टाचार्य और दास गुप्ता ऐसे मुख्य विद्वान् हैं, जिन्होंने योगवासिष्ठ महारामायण का प्रणयन सातवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य माना है। उनके विचारों को समीक्षित रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

योगवासिष्ठ महारामायण को फर्कुहर महोदय के अनुसार तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी के मध्य अर्थात् अध्यात्म रामायण के समकालीन माना जाना चाहिए क्योंकि इसमें वेदान्त के सिद्धान्तों को बताने के लिए राम के कथानक को एक नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके द्वारा अद्वैत वेदान्त दर्शन की प्रमुख रूप में शिक्षा दी गयी है।[1]

यह उस प्रकार की शिक्षा है जिसका दिग्दर्शन विचारों के रूप में सोलहवीं शताब्दी के दार्शनिक मध्व एवं विज्ञानभिक्षु के ग्रन्थों में विशेष रूप से होता है। इसी समय इस प्रकार के विचारों को न केवल प्रस्तुत किया गया बल्कि उन्हें प्रतिकृति के रूप में प्रयोग भी किया गया, जिसका दिग्दर्शन भरत–तीर्थ पंचदशी तथा ज्ञानवसिष्ठमान में किया गया और इसी शताब्दी में तमिल लेखक अलवन्तर माधवप्–पत्तर (Alavntar Madhap-Pattar) ने इन्हीं विचारों को अपने ग्रन्थों में प्रयुक्त किया।[2–3] यह इस बात का दिग्दर्शन कराता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी के

1. Farquhar, J.N., An Outline of Indian Religious Literature, Oxford, 1966, pp. 228 & ff.
2. Raghvan, V., Journal of Oriental Research, 1939, Vol., 13, pp. 73 & ff.
3. Atreya, B.L., The philosophy of Yogavasistha, 1936, Varanasi, pp. 26 & ff.

मध्य लिखा गया होना चाहिए क्योंकि लगभग सोलहवीं शताब्दी के इस ग्रन्थ के उद्धरण बाद के अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि यह ग्रन्थ काव्यात्मक रूप में रचा गया, तथापि यदि वह पहले रचा गया होता तो पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी तक इसे किसी भी प्रमुख अलंकार ग्रन्थ एवं लेखों में उद्धरित क्यों नहीं किया गया और इसे किसी परम्परागत लोक-साहित्यक में अथवा व्याकरण की दृष्टि से माने जाने वाले काव्यों में परिगणित क्यों नहीं किया गया इसके अतिरिक्त आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे प्रमुख ग्रन्थ को न ही राजतरंगिणी में और न ही तत्कालीन प्रचलित पुराणों में उद्धरण के रूप में प्रयोग किया गया परन्तु इतना होते हुए भी प्रश्नगत ग्रन्थ को वह सम्मान प्राप्त है, जो कि एक काव्य अथवा गद्यकाव्य को (Anthology) को प्राप्त है, यह पर्याप्त तर्क है कि ग्रन्थ का सर्जन एवं अध्ययन परवर्ती काल में ही हुआ होगा। इसके अतिरिक्त वर्णित ग्रन्थ एक विशेष प्रकार के वातावरण एवं युग का दिग्दर्शन कराता है। अपने मूल में तथा दर्शन में यह योग, सांख्य एवं अद्वैत दर्शन के साथ–साथ अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों का भी संश्लेषित स्वरूप प्रस्तुत करता है, जिसकी सम्भावना सात सौ सत्तर से नौ सौ ईसवी के मध्य पाल शासकों के काल में ही बंगाल में पायी जा सकती है।[4]

इन आधारों के अतिरिक्त प्रश्नगत ग्रन्थ के उत्पत्ति प्रकरण में सिन्धु राज तथा विदूरथ के बीच हुए एक युद्ध का वर्णन है, जिसमें अनेक जन–जातियों एवं देशों के विषय में बताया गया है। इनमें मुख्य रूप से पारसीक ताम्रयवन, दशपुर, शान्तिक, मार्ग, दरदर, चीन, शक आदि ऐसे उद्धरण हैं, जो ग्रन्थ को परवर्ती काल का अर्थात् नवीं–दसवीं शताब्दी के मध्य मानने के लिए बाध्य करते हैं।[5] प्रश्नगत ग्रन्थ में पुराणों को बहुपाठीय बताया गया है। इनके अतिरिक्त अनेक व्यासों और वाल्मीकियों का जीवों के रूप में वर्णन प्राप्त है, जो विभिन्न मानवों के रूप में जन्म लेते रहे हैं, जो एक सुरुचिपूर्ण वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। वास्तव में उक्त विवरण यह प्रदर्शित करता है कि वाल्मीकि एवं व्यास कई हुए होंगे अर्थात् वाल्मीकि एवं व्यास एक उपाधि रही होगी। इस प्रकार की अवधारणा का संकेत ग्यारहवीं शताब्दी के सेनवंशीय शासक बल्लाल–सेन के ग्रन्थ 'दान सागर' में भी प्राप्त होता है, जिसमें वह लघु व्यासवृहत्तर व्यास का दर्शन कराता है। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि इस काल के किसी भी निबन्धकार ने यह वर्णित नहीं किया है कि पुराणकार, धर्मसूत्रकार एवं योगसूत्रकार व्यास एक ही थे। सबसे प्रमुख बात यह है कि योगवासिष्ठ महारामायण इस विषय में अधिक आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत करता है और मानता है कि पुराणों के भी रचयिता विभिन्न व्यास थे और वाल्मीकि भी अनेक थे जिनका नाम ग्रन्थकार ने व्यास से कुछ कम लिया है, पर उन्हें भी कई बताया है। इस प्रकार से शिव प्रसाद भट्टाचार्य के अनुसार आलोच्य ग्रन्थ निरपेक्ष रूप में यह इंगित करता है कि योगवासिष्ठ महारामायण भागवतपुराण से सम्बद्ध एवं प्रभावित था। यह एक सीमा तक अंशकालिक एवं भगवत्व अर्थात् सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु को ग्रन्थ के रचनाकार के रूप में निर्धारित करता है। यह एक ऐसा तर्क है, जो इसे भागवत पुराण से प्रभावित मानता है और इस प्रकार इस आधार पर इसे दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी का होना चाहिए। यहीं नहीं, इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि बंगाल में भागवत पुराण तथा महाभारत की तरह ही प्रचलित है।[6] इसके अतिरिक्त अभिनन्द तर्क वागीश द्वारा लघु योगवासिष्ठ अथवा मोक्षोपायसार नामक बान्नबे (92) पंक्तियों में लिखा गया एक ग्रन्थ माना जाता है। इसे बाद का माना गया है। इसके आधार पर भी प्रश्नगत ग्रन्थ को दसवीं शताब्दी के बाद ही होने की मान्यता प्रस्तुत की जाती है।[7]

---

4. Bhattacharya, S.P., Proceedings of the third Oriental Conference, Madras, 1924, pp. 554 and ff.

5. Ibid.

6. Bhattacharya, S.P., Proceedings of the third Oriental Conference, Madras, 1924, pp. 549 ff.

7. Raghvan, V., Journal of Oriental Research, pt. 13.
थामस, एफ.डब्ल्यू. द्वारा इस अभिनन्द को कथासार का रचयिता माना गया और उन्हें गौड अभिनन्द से भी समीकृत किया गया है परन्तु तत्सम्बन्धी प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं। देखें– बुहिलर, जी. इण्डियन एन्टीक्वयरी, भाग 2. पृ. 102 से 106 तक, पीटर्सन की चौथी रिपोर्ट, भाग सातवां। यह दोनों ही अभिनन्द एक दूसरे से पृथक् माने जा सकते हैं। जब हम यह मानें कि एक अभिनन्द इनमें से रामचरित्र का रचयिता था, जो अपने को शतानन्द का पुत्र बताता है और सम्भवतः उसका सम्बन्ध अभिनव पण्डित से था और गौड़ अभिनन्द से भी उसका सम्बन्ध था, जिसने योगवासिष्ठ-संक्षेप 6 प्रकरणों में तथा 46 सर्गों में लिखा,

इसी प्रकार फादर कामिल बुल्के वायुपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के मुख्य कथानक का तादात्म्य उक्त पुराणों से स्थापित करते हैं, जो उनके मन्तव्य से आलोच्य ग्रन्थ को बाद के काल का इंगित किया गया स्वीकार करने पर बाध्य करता है।[8]

शिवप्रसाद भट्टाचार्य, फर्कुहर, कामिल बुल्के तथा राघवन् महोदय के उपर्युक्त तर्कों को न मानते हुए मौरिस विन्टरनित्ज महोदय योगवासिष्ठ महारामायण को एक ऐसा ग्रन्थ मानते हैं, जिसकी रचना का कार्य शंकराचार्य (788–820)[9] के समकालीन हुआ होगा[10] उनके अनुसार ग्रन्थकार ने दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना करते हुए शंकराचार्य के ग्रन्थ विवेकचूड़ामणि तथा अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों को अपने तर्क की पुष्टि में प्रस्तुत किया है।[11] राघवन् महोदय के अनुसार योगवासिष्ठ महारामायण में दूसरे ग्रन्थों के समानान्तर एवं समानार्थी विचारों अथवा पंक्तियों को दृष्टान्त रूप में अंकित किया गया है, जो प्रश्नगत ग्रन्थ ने अन्य ग्रन्थों से लिया है।[12] वहीं पर अत्रेय महोदय के अनुसार यह मानना होगा कि योगवासिष्ठ महारामायण की प्रतिकृति अन्य ग्रन्थकार करते हैं।[13]

योगवासिष्ठ महारामायण में कश्मीर के राजा यशस्कर देव (1939–948 ई.)[14] का विवरण प्राप्त होता है।[15] ऐतिहासिक आधारों पर इस राजा के विषय में ज्ञात होता है कि यशस्कर नाम के राजा ने सूर्यवर्मन् द्वितीय की कमलवर्धन द्वारा हत्या के पश्चात् राज्य–भार ग्रहण किया था और अपनी राजधानी अधिष्ठान में स्थापित की थी।[16] प्रश्नगत ग्रन्थ में नवनूतन अधिष्ठान का भी वर्णन है[17], जिसे प्रवरपुर से समीकृत किया जाता है।[18] साथ ही एक पर्वत प्रद्युम्न शेखर का भी वर्णन है[19], जिस पर दो मन्दिर एवं एक मठ की स्थापना पाशुपत साधकों के लिए की गई बताई गई है।[20] इसी

जो वेबर महोदय को प्राप्त हुआ। देखें बरलिन कैटालॉग नं. 643 और जिसे प्राचीन एशिया के ग्रन्थों में तर्क वागीशवर, साहित्याचार्य, गौडमंडलाकार की उपाधियों से विभूषित किया गया। परन्तु अभिनन्द की पहचान मजूमदार महोदय के अनुसार सुनिश्चित नहीं की जा सकी है क्योंकि रामचरित का सम्पादक उस ग्रन्थ के रचयिता को गौड देश का मानता है परन्तु उसके संरक्षक युवराज, जो कि विक्रमशिला का पुत्र था, की पहचान धर्मपाल के पुत्र देवपाल से किया जाना प्रमाणित आधारों पर आधारित नहीं है अतः अत्यन्त अग्राह्य है। (देखें– Majundar, R.C., "History of Bengal", p. 311, note 1-3)

8. बुल्के, कामिल, ''रामकथा – उत्पत्ति एवं विकास'', 1950, अनुच्छेद– 185, 287, 322, 195, 323, 345, 346, 611, 612
9. Keith, A.B., "A History of Sanskrit Literature", (See:- Index, "Sankar"), pp. 19, 184, 216, 217, 218, 236, 406, 413, 470, 476, 478, 479, 480, 482.
10. Winternitz, M., "History of Indian Literature,", (BUddhist Literature), Delhi 1987, volume 2, Pt. I, 1987, p. 146.
11. Ibid. Mainkar, T.G., "The Vasistharamayana. A Study", pp. 118-129. Raghvan, V. op cit pp. 118-129.
12. Raghvan, V., op.cit., pp. 111-112.
13. Atreya, B.L., The Philosophy of Yogavasistha", Varanasi, 1936, pp.26.
14. Saxena, K.S., Political of Kashmir, New Delhi, 1974, p.34.
15. यो. महा., 4 32 12 एवं आगे।
16. Stein, M.A., Kalhan's Rajatarangini, Delhi, 1961, Vol. 1. Book 5, Line. 445-483, Book 6, Line. 1-117.
17. यो. महा., 4 32 12 एवं आगे।
18. Cunningham, A.A., Ancient Geography of India, Assam, 1971, p. 93.
19. यो. महा., 4 32 10–12 एवं 23. 24
20. कल्हण की राजतरंगिणी, तृतीय तरंग, पंक्ति 460 तुलनीय यो. महा. 4. 32. 10–12 एवं 23. 24 तथा राजतरंगिणी, तृतीय तरंग, पंक्ति 460 (शब्द प्रद्युम्न शेखर एवं प्रद्युम्न पर्वत), स्टीन, एम.ए. का राजतंगिणी का अंग्रेजी अनुवाद, बुक 7, प्वाइंट 1616 टिप्पणी। ''स्टीन महोदय के अनुसार संभवतः प्रद्युम्न शिखर का ही नाम है, जिसे श्रीनगर स्थित ''सारिका'' या ''हरपर्वत'' के नाम से पुकारा जाता है। पुराने श्री नगर का भाग एक नदी एवं इसी पर्वत से मिला हुआ था और ऐसा लगता है कि हर्षवर्धन (606-647) ने इस पर्वत तक के क्षेत्र तक अपनी यात्रा की थी जबकि वह अपने विभिन्न मंत्रियों के घरों में गया था।''

प्रकार के अन्य भवनों के विषय में भी ग्रन्थकार का ज्ञान परिलक्षित होता है।[21], जिसे सम्भवत रत्नावली विहार की सूचना के रूप में भी स्वीकृत किया जा सकता है।[22] यह विवरण इस बात की पुष्टि करता है कि ग्रन्थ की रचना यशस्कर, जिसका मंत्री नरसिंह था, उसके अनन्तर होनी चाहिए। इस प्रकार के तर्क को अस्वीकार करने का कारण यह है कि सम्पूर्ण योगवासिष्ठ महारामायण की संक्षिप्ति नवीं शताब्दी के मध्य हो गयी थी[23] और इसी आधार पर पी.सी. दीवान जी यह मानते हैं कि यशस्कर का कथानक ग्रन्थ में बाद की घटना है।[24] इसीलिए ग्रन्थ के संक्षिप्तीकरण की प्रस्तुति में इस कथानक का उल्लेख नहीं हैं।

योगवासिष्ठ महारामायण को पुराण ग्रन्थों में रखा जा सकता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि पुराणों की जो सामान्य विशेषताएं हैं, वह इस ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में वेदान्त–दर्शन के महत्त्वपूर्ण तत्त्वचिन्तन के साथ ही एकेश्वरवाद के विषय में तर्क–वितर्क पूर्ण विचार प्रस्तुत किये गये हैं। यह वास्तव में वेदान्त–सिद्धान्तो का एक ऐसा दार्शनिक मुकुर है, जिसे शंकराचार्य एवं विज्ञानवादी बौद्धदर्शन से सम्बद्ध अथवा छायांकित माना जा सकता है। एस.एन. दास गुप्ता के अनुसार यह अवधाराणा इस ग्रन्थ को शंकराचार्य के पश्चाद्वर्ती मानने के लिए उपयुक्त है। अपने मत की पुष्टि में वह पुनः कहते हैं कि जाने–माने साहित्य के रूप में प्रश्नगत ग्रन्थ में राजनैतिक परिकल्पना तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के पुनः–पुनः एक ही प्रकार के स्वरूप दृष्टिगत होते हैं जो यह कहने के लिए पर्याप्त तर्क है कि प्रश्नगत ग्रन्थ के रचयिता को काव्यात्मक विद्या का विशेष ज्ञान एवं शक्ति ईशपुरस्कार के रूप में प्राप्त है और इस प्रकार यह कहने में संकोच नहीं होता है कि ग्रन्थ की लगभग प्रत्येक पंक्ति एक सौष्ठवपूर्ण राजनैतिक परिकल्पना से अभिमण्डित है और साथ ही शब्द विन्यास का संयोजन एवं प्रयोजन इतना गौरवशाली, सौन्दर्यपूर्ण एवं मांगलिक है कि पाठक राजनैतिक धारा के प्रवाह में प्रवाहित होते हुए भी समानान्तर दार्शनिक विचारों से अभिमंडित हो जाता है, जो वास्तव में रचयिता के आदर्श के अनुरूप ही है, जिसकी अवधारणा की पूर्व प्रस्तुति उसने श्रीराम तथा मुनि वसिष्ठ के विचारानुमान एवं उपदेशों में की है और जिसका प्रतिदर्शन प्रश्नगत ग्रन्थ के अनेक आख्यानों एवं आख्यायिकाओं में कराया जाता है।[26] इसी क्रम में यह भी विचारणीय है कि प्रश्नगत ग्रन्थ में शंकराचार्य के स्वयं विचार

---

21. यो. महा. 4.32. 10 एवं आगे।

22. यो. महा. 4.32. 18 तुलनीय राजतरंगिणी (कल्हण) 1840. तृतीय तरंग, पंक्ति 476. राजतरंगिणी में रत्नावली विहार का वर्णन जिस रूप में प्राप्त होता है, उससे स्पष्ट होता है कि किसी ब्राह्मण द्वारा ब्रह्ममठ की स्थापना की गई और गल्लुन, जिसने कि दुष्ट प्रकृति के लोगों का नाश किया था, उसने अपनी पत्नी रत्नावली के नाम पर एक विहार का निर्माण कराया था।

23. Stein, Kono, Critical Edition and Notes in Prakrit Language in Original Rajshekher's 'Karpurmanjari' English Transalation of Laneman Charlese Rockwell, Edn. Horvert Oriental Series Ed. Ii, 1963, p. 197 N.
राजशेखर सात कवियों के विषय में वर्णन करते हैं। सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर को अभिनन्द और वसुकल्प के साथ वर्णित किया गया है। अभिनन्द नामक दो कवि थे। पहले शतानन्द के पुत्र एवं "रामचरित" के रचयिता थे। दूसरे गौड अभिनन्द थे जो जयन्त वृत्तिकार के पुत्र थे, इन्हीं के पूर्वज प्रपितामह कश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीड के दरबार में थे। इस राजा की तिथि बुहलर महोदय लगभग 724 ई. के आसपास मानते हैं और ये ही कादम्बरी कथासार और योगवासिष्ठ सार के रचयिता थे।
Buhiler G. 'Abhinanda Gauda", Indian Antiquiry, April 1873, II, pp.102-106.
इसी क्रम में एक पाण्डुलिपि, (संख्या–48167, ग्रन्थ का नाम – वासिष्ठ रामायण ग्रन्थकार – वाल्मीकि, विषय – रामायणगत दर्शन, भाषा– संस्कृत, आकार – '14x4.5', विशेष विवरण "वाशिष्ट चन्द्रिका विवृत्ति" आत्मसुख कृत "वाशिष्ट विवरणौ" भी, पुराने कागज में लगभग संवत् 1632 = सन् 1575 ई.) की अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी, लखनऊ वेष्टन – 222, वाल्मी / वा में देखी गई जिसका विवरण प्रतिकृति रूप में प्रस्तुत तथा छायांकित है, यथा– (*) और जो देवनागरी लिपि संस्कृत–प्राकृत मिश्र भाषा में लिखी गयी है। यह मुम्मडिदेव द्वारा फरकनगर में लिपिबद्ध की गई है और कश्मीर के अभिनन्द पण्डित द्वारा रचित सम्भवतः योगवासिष्ठसार के चार हजार शलोक इसमें संग्रहीत हैं। ग्रन्थ का आरम्भ जैन तीर्थकर की प्रार्थना से होता है तथा इस ग्रन्थ यत्र–तत्र में वाल्मीकि महर्षि द्वारा प्रणीत किये जाने तथा वसिष्ठ चन्द्रिका विवृति का उल्लेख प्राप्त होता है।

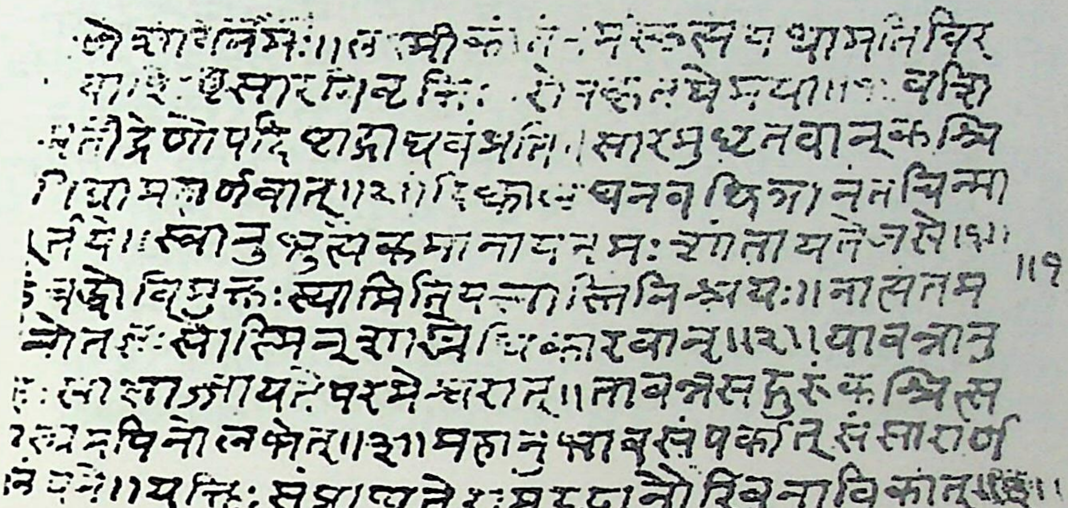
24. Diwanji P.C. Proceedings of The Seventh Oriental Conference, Barauda, 1933, P. 15ff.

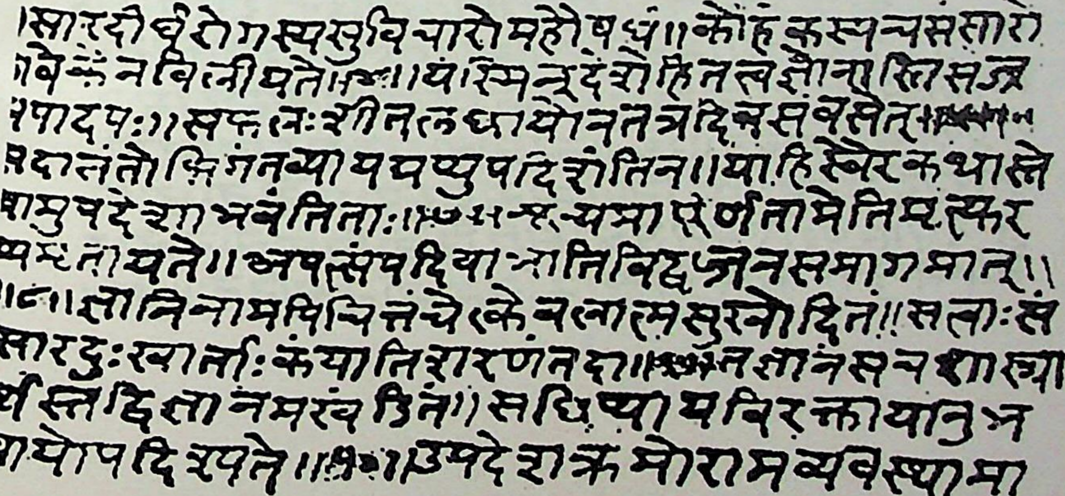
25. Dasgupta, S.N., History of Indian Philosophy, 1965, Cambridge University, Vol. II, p. 228 f.

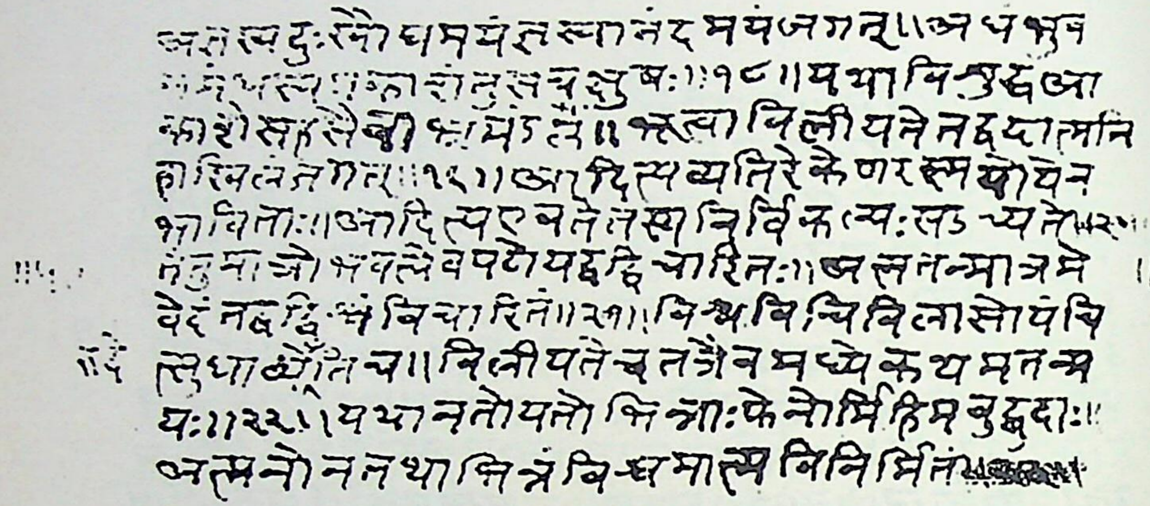
26. Ibid.

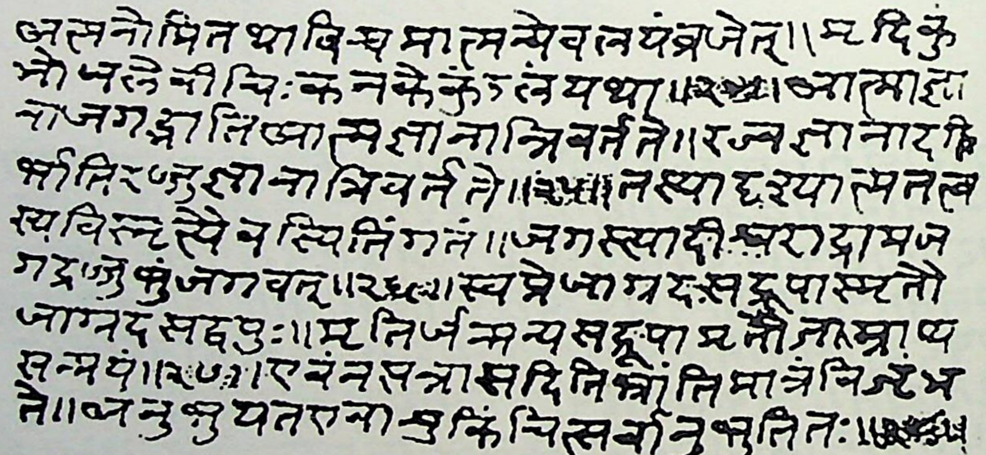
अमीरुद्दौला पब्लिक लायब्रेरी में संरक्षित योगवासिष्ठ रामायण का विवरण तथा कुछ पृष्ठ

...e	Mss.	Author.	Subject.	Remarks.
	...sistha-Ramayana	Abhinandana.	also called Yogavasishtha, a work ascribed to Abhinanda, treating of the way of obtaining final happiness	Fol. 17. complete Lines: 12
	ग्रन्थ	ग्रंथकार	विषय	48167
	RSC 181.43 V..R	Script: fair. (but changed different). Cond.: Old.	Yoga. Philosophy, Hindu	









[illegible]

पूर्णानंदघनामृतां ॥२७॥ मनोदृश्यमिदं सर्वं यत्किं ॥
चित्सचराचरं ॥ मनसोह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपल
भ्यते ॥२८॥ यदस्पंदं शिवं शांतं यस्यां तल्लीनतः स्थितिः
॥ स्पंदास्पंदविनिर्मासा स्मासएकोत्र चिदाकृतिः ॥२९॥ अ
हिनिर्त्वयनीमहीरात्मतया जगद्देहपरिमोक्षणतस्तु
॥२९॥ पुरा ॥ परिमुच्य मनुतां मुरगः स्वबिले न निरीक्षते च तम्
तया तु पुनः ॥३०॥ दोषबुद्ध्या भयातीतो निषेधात्र निव
र्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥३१॥
अनुत्कीर्णा यथा स्तंभे संस्थिता शालभंजिका ॥ तथा
विश्वं स्थितं तत्र तेन शून्यं न तत्सदा ॥ [illegible] ॥ यथानुपुत्रिका

कीर्णेस्तंभे नाकीर्णपत्रिका ॥ तथा ख्यातं जगद्वृत्तं तेन शू
न्यं पदं गतं ॥३३॥ सोम्या भासि यथा वीचिर्न चास्ति न
च नास्ति च ॥ तथा जगद्वृत्तिरिदं शून्याशून्यपदं गतं ॥
॥३४॥ ~ तत्सदति योगवासीष्टसारे जीवन्मुक्तिप्रकर
णं ॥ दशमं ॥ समाप्तं ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ [illegible]
एवं श्लोकसंख्या २२५ ॥ २० [illegible] ॥ [illegible]

[illegible]: टिप्पणी १–

[illegible]; — *)

<u>पाण्डुलिपि</u>

संख्या – ४८१६७
ग्रन्थ का नाम – वाशिष्ठ रामायण
ग्रन्थकार – वाल्मीकि
विषय – रामायणगत दर्शन
भाषा – संस्कृत
ग्रन्थस्थिति – पूर्ण
आकार – १४' x ४.५'
विशेष विवरण – 'वाशिष्ठ-चन्द्रिका' [illegible] 'आत्मसुखकृत 'वाशिष्ठ [illegible]' [illegible]
वेष्टन संख्या – 222 वाल्मी[illegible] / [illegible]
लिपि – देवनागरी
कागज – पुराना
पृष्ठ – १७८

(<u>प्रारम्भ</u>)

प्र: वा. टी. १ ॥ श्रीपार्श्वनाथायनमः ॥ दिविभूमौतथाकाशेबहिरन्तश्चविभुः । यो[illegible]
भातस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ १ ॥

(<u>मध्यान्तः</u>)

इतिश्रीमद्वल्लालसूरिसूनुनापदवाक्यप्रमाणपारावारपारदृश्वनाश्रीगङ्गाधर[illegible] [illegible]
रचितेसंसारतरणिनाम्निवाशिष्ठविवरणेस्थितिप्रकरणेदाशूरोपाख्यानं नाम [illegible]: सर्गः

(<u>उत्पत्तिप्रकरण का पंचम सर्गान्त</u>)

इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमनुस्वामिपूज्यपादशिष्यश्रीमदात्मसुखकृतौ वासिष्ठ[illegible]
उत्पत्तिप्रकरणआकाशजाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

(<u>अन्त</u>)

इति श्रीवाल्मीकीये वाशिष्ठरामायणे निर्वाणनिर्वाणप्रकरणे सप्तभूमिकोपाख्यानं नाम [illegible]
सर्गः संपूर्णः फरकनगरमध्ये लिपीकृतः ।

कांतिशिखा, संस्कृत विभाग लखनऊ
विश्वविद्यालय, लखनऊ ।

"इहामुत्रफलभोगविराग और मुमुक्षुत्व–सम–सन्तोष।[27] का प्रतिपादन भी किया है। ग्रन्थ के द्वितीय प्रकरण में उपर्युक्त विचारों का निवेशन बिना किसी दार्शनिक समविधा के साथ किया गया है।[28]

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त इस पर आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रन्थ का प्रभाव भी देखा जा सकता है। आनन्दवर्धन कश्मीरी शासक अवन्ति वर्मन् (855–884 ई.) के काल में हुआ था।[29] दूसरी ओर स्थिति यह है कि प्रश्नगत ग्रन्थ को उद्धरण के रूप में विद्यारण्य (चौदहवीं शताब्दी ई.) ने अपने ग्रन्थ सूक्तिमुक्तावली तथा जल्हण ने 1258 ई. में अपने ग्रन्थ में उद्धरित किया है।[30] दासगुप्ता के अनुसार ये तथ्य विशेष रूप से ऐसे उपयुक्त संसाधन प्रस्तुत करते हैं, जिसके आधार पर ग्रन्थ को सातवीं–आठवीं शताब्दी का मानने के लिए तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जो रचनाकाल के विषय में एक प्रबल स्वीकारोक्ति हो सकती है।[31]

योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल की पाँचवीं से सातवीं शताब्दी से सम्बन्धित अवधारणाएं :

भारतीय साहित्य में कथा–कहानी लिखने की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन रही है। पुराने ग्रन्थों को पढ़ने से विदित होता है कि इनमें छोटी–छोटी जातक कथाएं अत्यन्त रोचक ढंग से समाहित की गई हैं। योगवासिष्ठ महारामायण भी इस परम्परा से पृथक् नहीं है, क्योंकि योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित कहानियाँ भी मार्मिक तथा प्रेरक हैं। इन कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये कहीं भी सामाजिक जीवन और उसकी व्यवस्था का परित्याग नहीं करतीं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि लेखक ने ग्रन्थ की रचना से भारतीय समाज का कल्याण किया है। ऐसे विशद ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में एक निश्चित धारणा न होना कोई असामान्य बात नहीं है।

इसी क्रम में जो विद्वान् इस महान् ग्रन्थ के रचनाकाल को सातवीं से चौदहवीं शताब्दी तक रखते हैं, उनके तर्क का विश्लेषित स्वरूप पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है। अतः यहाँ पर केवल उन्हीं विद्वानों की अवधारणाओं को उसी क्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को पाँचवीं से सातवीं शताब्दी तक मानते हैं। इस अवधारणा का समर्थन करने वाले प्रख्यात विद्वानों में बी.एल. अत्रेय, बी.एन. श्रीवास्तव, एन.के. देवराज आदि विद्वान् प्रमुख हैं। इस तथ्य में उक्त विद्वानों ने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, उनके विचारों का संक्षिप्तीकरण यहाँ इस प्रकार किया जा रहा है।

योगवासिष्ठ महारामायण एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के उद्धरण प्राप्त होते हैं इस प्रकार

---

27. यो. महा. मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण, विस्तार के लिए देखें– राघवन्, वी. पूर्वोक्त, पृ. 121.

28. Raghvan, V., op. cit.

29. Stein, M.A., op.cit., Book IV. 715, 719, V.18, 32, 43, 48, 64, 72, 121, 126, VIII. 1961, 3429, I. 97, 98 and Saxena, K.S., "Political History of Kashmir, pp. 109, 110, 112, 113, 114, 115, 116, 133, 134 and 314.

    Stein, M.A., op. cit. Book V. verse - 34 and note.

    Raghvan, V., op.cit, pp. 121-122.

    Mainkar, T.G., op.cit., p.p. 58, 59, 74, 75, 181. इसी क्रम में कश्मीर में अभिवर्धित एवं प्रसरित आनन्दवर्धन की भगवद्गीता पर की गई टीका के वे सिद्धान्त जिन्हें ज्ञान, कर्म, समुच्चयवाद के नाम से जाना जाता हैं, उसकी छाप योगवासिष्ठ महारामायण में देखी जा सकती है। पुनः देखिए मयंकर, टी.जी. पूर्वोवत, पृ. 106 एवं 246

30. Atreya, B.L., op.cit. Raghvan. V., op.cit., Pt. 12.I.

31 गौड अभिनन्द के योगवासिष्ठ सार के अतिरिक्त एक अन्य योगवासिष्ठ नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि टंकित रूप में प्राप्त हुई है जिसका रचयिता महर्षि वाल्मीकि को बताया गया है। देखिए– एम.एस.एस. "योगवाशिष्ठ सार" प्रस्तुति कारक त्रिपाठी, एस.पी. 1953 आयुमान सम्वत् 1915, टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, कैटालाग नं. 464495/सं. 191. 402. 18 और तुलना करें हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज, कोनो, राजशेखर-कृत कर्पूरमंजरी, पृ. 197 टिप्पणी।

यह एक प्रक्षिप्त ग्रन्थ है।[32] प्रश्नगत ग्रन्थ निश्चित रूप से नवीं शताब्दी के मध्य संक्षिप्त किया गया होगा और ऐसा तभी सम्भव है, जब उससे पूर्व यह ग्रन्थ जनमानस के सञ्ज्ञान का विषय बन् चुका हो।[33], अर्थात् उसका संचरण संक्षिप्तीकरण के पूर्व जन–मानस में हो चुका होना चाहिए। अतः ग्रन्थ की आवृत्ति इस तिथि के पूर्व ही होनी चाहिए।

शंकराचार्य के अध्यारा एवं अद्वैत के दार्शनिक विचार उनके द्वारा की गई अभिव्यक्ति से पूर्व ही प्रचलित थे। साथ ही साथ शंकराचार्य के सिद्धान्तवादी विचार जैसे अध्यास, साधना-चतुष्टय, जिसमें विवेक, विराग, सत्–सम्पत् अर्थात् मुमुक्षुत्व, सगुण एवं निर्गुण, ब्रह्मन्, उपाधि, प्रारब्ध–कर्म, कर्म–मुक्ति, बध्य, पंचकोश (The Sterrio Typed Conception of Maya and Avidya) अर्थात् पुनरावृत्ति एवं सम्विलीयन् विचार माया एवं अविद्या के सम्बन्ध में, कर्म, सांख्य विचारधारा से मतैक्य न रखता हुआ विकास का सिद्धान्त (विकास एवं उत्पत्ति का सिद्धान्त) कुछ ऐसे वैचारिक एवं दार्शनिक तत्त्व हैं, जिनके विषय में भीखम लाल अत्रेय महोदय का यह मानना है कि ये तथ्य योगवासिष्ठ महारामायण के रचयिता की जानकारी में नहीं थे।[34] आगे भी उक्त विद्वान् श्वेताश्वतर–उपनिषद तथा योगवासिष्ठ महारामायण के तुलनात्मक अध्ययन का आधार लेते हुए 'ऐसा ही वसिष्ठ मुनि ने कहा था' तथा 'ऐसा वसिष्ठ मुनि ने अपने योगशास्त्र में कहा था, इत्यादि के उद्धरणों की सारगर्भितता के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण को शंकराचार्य से पूर्ववर्ती ग्रन्थ मानते हैं।[35] इसी क्रम में वे कहते हैं कि जबकि गौडपाद, जिन्होंने कारिकाओं की रचना की थी; अद्वैत दर्शन के उत्तर भाग को अपने ग्रन्थ में वर्णित करते हैं जबकि वे समसामयिक दर्शन की समालोचना प्रस्तुत करते हैं। इसके विपरीत प्रश्नगत ग्रन्थ अर्थात् योगवासिष्ठ महारामायण पूर्व–कालिक अद्वैत दर्शन की प्रस्तुति करता है क्योंकि इसमें वर्णित विचारधारा सभी अन्य सम–समानार्थी दार्शनिक विचारधाराओं से सर्वोपरि है और ऐसा लगता है कि इस विचारधारा का कार्य सभी सम–सामयिक विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापित करना एवं शाश्वतता बनाये रखना है, जिससे कि आने वाले सभी विरोध समाप्त हो जायें।[36] इस प्रकार अपने तर्क को सशक्तता प्रदान करते हुए वे विभिन्न ग्रन्थों के यथास्थित उद्धरणों का प्रयोग योगवासिष्ठ महारामायण में दिखाते हैं और इस आधार पर यह मानते हैं कि आलोच्य ग्रन्थ का रचनाकाल सातवीं–आठवीं शताब्दी ई. के पूर्व का होगा। इसी विचार की सम्पुष्टि वे भर्तृहरि के ग्रन्थों के आधार को लेते हुए भी करते हैं।[37]

बाणभट्ट के विचारों का योगवासिष्ठ महारामायण में समाहित होना भी भीखन लाल अत्रेय को एक विशेष आधार देता है, जिसके द्वारा वे प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को बाणभट्ट से पूर्व मानते हैं।[38]

कालिदास को भाषा शैली एवं अन्य आधारों पर शास्त्रीय संस्कृत ग्रन्थों के संस्थापना का प्रथम नायक माना जाता है, जिनके ग्रन्थों का यथास्थित उद्धरणों के रूप में या प्रस्तरों के रूप में प्रश्नगत ग्रन्थ के रचयिता ने प्रयोग किया है।[39] और इस आधार पर भी अत्रेय एवं अन्य विद्वान् योगवासिष्ठ महारामायण को कालिदास के बाद की रचना

---

32. Raghvan, V., op.cit., pp. 111-128 & 74-82. Atreya, B.L., "Philosophy of Vasistha, as Presented in Yogavasistha", D. Litt., Thesis, Department of Philosophy, Banaras Hindu Vishvavidyalaya, Varanasi, 1928, pp. 703 & ff. Mainkar, T.G., op.cit. pp. 1, 2, 1, 22-156, 57-84, 45, 148.

33. Atreya, B.L., The Philosophy of Yogavasistha, pp. 27 ff.

34. Ibid.

35. Ibid.

36. Atreya, B.L., The Philosophy of Yogavasistha, pp. 26 ff.

37. Ibid.

38. Ibid

39. राघवन्, वी. पूर्वोक्त, पृ. 111–112 इतस्ततः कालिदास, मेघदूत का सक्षेप देखिए
अस्याः प्राग्भवसत्पतिः स मुनिना शापेन वृक्षीकृतो
वर्षद्वादशक तदेव गणयनत्यैपैव सात्र स्थिता (यो. महा. 6ब, 116 32)

मानते हैं।[40] ऐसा माना जाता है कि कालिदास चन्द्रगुप्त "विक्रमादित्य" (चौथी–पाँचवीं शताब्दी) के समकालीन थे।[41] स्पष्टतः पाँचवीं शताब्दी के पश्चात् ही योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को निर्धारित किया गया।

प्रश्नगत ग्रन्थ की विचारधारा विज्ञानवादी बौद्ध दर्शन एवं गौडपाद के दर्शन से प्रभावित है, जिसका कारण उस शैव सिद्धान्त के विकास का परिणाम माना गया, जिसमें स्पन्द अर्थात् ब्रह्मन् की निरन्तर एवं चिरन्तन चलने वाली कार्यशैली सम्पूर्ण रूप में विद्यमान है:– जहां पर प्रश्नगत ग्रन्थ में रुद्र के नाशवान् विभिन्न प्रकारों का वर्णन है, जो इस ग्रन्थ को पाँचवीं–छठी शताब्दी ई. के सन्धि प्रकाश काल में रखने के लिए बाध्य करता है।[42] उक्त तर्क को और अधिक बल तब मिलता है, जब यह बताया जाता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ में हूणों तथा गुर्जरों का वर्णन है।[43] गुर्जरों का तंगडों

कथयत्यग्र पथिकः पश्य मन्दारगुल्मके।
प्रियायाश्चिरलब्धाया वृत्तां विरहसंकथाम्।।
दातुं त्वन्निकटे दूतमहं चिन्तान्वितोऽवदम्। (6ब. 119.26)
अस्मिन्महाप्रलयकालसमे वियोगे।
या मा तथहः मम याति गृहं स कः स्यात्।
नैवास्त्यसौ जगति यः परदुःखशान्त्यै
प्रीत्या निरन्तरतर सरल यतेत।। (6ब. 119.3)
आ एष शिखरे मेघः स्मराश्च इव संयुतः।
विद्युल्लताविलासिन्या वलितो रसिकः स्थितः।। (6ब. 119.4)
भ्रातर्मेघमहेन्द्रचापमुचितं व्यालम्ब्य कण्ठेगुणं
नीचैर्गज मुहूर्तकं दयां सा वाष्पपूर्णेक्षण।
बाला बालमृणालकामलतनुस्तन्वी न सोढुं क्षमा
तां गत्वा सुगते गलज्जललवैराश्वासयात्मानिलैः।। (6ब. 119.5)
चित्तूलिकया व्योम्नि लिखित्वालिडिगता सती।
न जाने क्वाधुनैवेतः पयोद दयिता गता।। (6ब. 119.6)
तुलनीय– कालिदास, मेघदूतम् 1.1, 2, 4, 7 और 2.38.45, 55 तथा यो. महा. 3.16.50 तुलनीय– कालिदास, कुमारसंभव, 4.4, 39 (कालिदास के उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थों के सन्दर्भ में देखिए– Joshi, U.P., Ed., The Complete Works of Kalidas, 1976, Bombay).

40. Atreya, B.L., op.cit., pp. 26 & ff. त्रिपाठी, केदारनाथ, "योगवासिष्ठ", वाराणसी, भूमिका, पृ. 1 एवं आगे। देवराज, एन.के. भारतीय दर्शन, पृ. 492-500, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992 अत्रेय, बी.एल. लेख– "योगवासिष्ठ", हिन्दी विश्वकोश, वाराणसी, खण्ड 9 वाराणसी, 1967 पृ. 500

41. Majundar and Pusalker, The History and Culture of The Indian People, III, Bombay, 1988, pp. 19, 182-3, 191-2, 272, 302-7, 601-2. पाण्डेय, राजबली, विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला, संख्या 25 पृ. 9 चौखम्बा, वाराणसी। Smith, V.A., Early History of India, fourth edition Oxford, 1924, p. 221 &n, 322 ff. Keith A.B., A History of Sanskrit Literature, p. 52. Winternitz, M., A History of Indian Literature, Reprinted & English Translation by, "Bhasker Jha", Bhartiyavidya Prakashan Delhi, pp. 23-43 & ff. Macdonell, A.A., History of Sanskrit Literature, London, 1919, p. 325 Karmaker, R.D. "The Chronological order of Kalidasa's Works Proceedings of Second Oriental Conference, p. 238. Joshi, U.P., "The Complete Works of Kalidas", 1976, Bombay Introduction, pp. 1 & ff. Cunningham, A.A., "Transection of Ninth Congress:- Orienta The Indian Antiquary, 1896, pp. 103 ff.

42. Atreya, B.L., op.cit.

43. त्रिपाठी, केदारनाथ, पूर्वोक्त। Atreya, B.L., op.cit. Srivastava, B.N., "Harsha and His Times", Varanasi, 1976, pp. 219-220.

द्वारा विनाश तथा गुर्जर स्त्रियों द्वारा केश–लुंचन कराना इतिहासविद् बीरेश्वरनाथ श्रीवास्तव को यह मानने के लिए बाध्य करता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के तिथिक्रम को पाँचवीं शताब्दी के पश्चात् नहीं मानना चाहिए।[44]

इस प्रकार इस अध्याय में योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के सन्दर्भ में विचारधाराओं को दो भागों में प्रस्तुत किया गया है। पहले भाग में उन विद्वानों की विचारधारा को इसी क्रम में सन्निविष्ट किया गया, जिन्होंने प्रश्नगत ग्रन्थ को सातवीं से चौदहवीं शताब्दी तक माना तथा दूसरे भाग में ऐसे विचारशील मनस्वियों के विचारों को समाहित किया गया, जो उक्त ग्रन्थ के रचनाकाल को पाँचवीं से सातवीं शताब्दी के मध्य मानते हैं। इन्हीं विचारों को अपने शोध–प्रबन्ध का मूलभूत आधार स्वीकार करते हुए अगले अध्यायों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार संश्लेषण एवं गम्भीर विश्लेषण के द्वारा पुनः इस अभूतपूर्व ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण हेतु विचार प्रस्तुत किए गये हैं और यह प्रयास किया गया है इस प्रश्न का यथासम्भव निष्कर्ष निकल सके।

❑ ❑ ❑

---

44. Ibid.

तृतीय अध्याय

योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल–निर्धारण के धार्मिक तथा दार्शनिक आधार

(क) रचनाकाल के निर्धारण में समस्याएं

योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में पूर्व किये गये अध्ययन पर विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात, यह आवश्यक हो जाता है कि उक्त ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में पूर्ववर्ती दार्शनिक आधारों के अतिरिक्त जो अन्य आधार उपलब्ध हैं, उनका इस तथ्य के निर्धारण में कितना योगदान है, इस विषय पर गम्भीरता से चिन्तन किया जाय। इस सन्दर्भ में जब हम ऐतिहासिक पक्षों का निरीक्षण एवं परीक्षण करते हैं, तो हमारे समक्ष विभिन्न कठिनाइयाँ आती हैं। सर्वप्रथम तो यह कि ग्रन्थकार कौन था? क्योंकि यह विषय अभी तक निर्धारित नहीं किया जा सका है। मान्यता यही है कि इस ग्रन्थ के प्रणयनकर्ता स्वयं ऋषि वाल्मीकि थे, जिन्होंने महाकाव्य रामायण की रचना की थी। इसके अतिरिक्त भारतीय धारणा में यह अन्धविश्वास व्याप्त है कि योगवासिष्ठ महारामायण जैसे पवित्र ग्रन्थ देवी एवं देवताओं की कृपा के कारण उद्भूत हुए। स्वयं उक्त ग्रन्थ में यह तथ्य विद्यमान है कि ग्रन्थ का सर्वप्रथम श्रवण ब्रह्मा द्वारा कराया गया था।[1] इस ग्रन्थ में जिस मुख्य घटना का वर्णन है, उसे त्रेता युग की घटना माना जाता है[2] (अर्थात् वह धारणा, जिसमें रामचन्द्र को वसष्ठि मुनि द्वारा उपदेश दिया गया था)। त्रेता युग का निर्धारण अपने में एक समस्या है जैसा कि पार्जिटर महोदय का कहना है कि उक्त अवधारणा एक हिन्दू पौराणिक धार्मिक धारणा है, जिसका ऐतिहासिक मानदण्ड में कोई भी महत्त्व नहीं है[3], जो एक जटिल समस्या के रूप में ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण में सामने आती है। साथ ही साथ ग्रन्थ में अनेक प्रक्षिप्त अंश अर्थात् दूसरे ग्रन्थों के अंश हैं, जिन्हें ग्रन्थकार ने यथास्थिति अर्थात् प्रतिकृति के रूप में तथा पुनरावृत्ति के स्वरूप में प्रयुक्त किया है, जो प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण में एक समस्या उत्पन्न करते हैं।[4]

विभिन्न समानान्तर पंक्तियों के आधार पर यह कहना उचित नहीं है कि प्रस्तुत अंश अमुक ग्रन्थ से उद्धृत किया, अतः इस आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के तिथिक्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए। साथ ही कई लेखकों ने अभिनन्द के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण का प्रयास किया है, जो स्वयं अपने में अन्यान्य संस्कृत लेखकों की भाँति कालक्रम की दृष्टि से एक समस्या है।[5]

(ख) कालिदास के ग्रन्थों के आधार पर काल–निर्धारण :

संस्कृत ग्रन्थों का रचनाकाल–निर्धारण वास्तव में एक दुरूह विषय रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह माना जा

---

1. यो. महा. 1.1.1.
2. Atreya, B.L., "The Philosophy of Yogavasistha", Varanasi, 1936, pp. 26 ff.
3. Pargiter, F.E., "Ancient Indian Historical Traditions", Delhi, 1962, pp. 1, 177, 241, 313, 315.
4. Bhattacharya, S.P., Proceedings of the Third Oriental Conference, Madras, 1924, pp. 554 ff.
5. Mainkar, T.G., "The Vasistha Ramayana : A Study", Delhi, 1977, pp. 58, 80-84, 164, 174, 181.

सकता है कि मैक्समूलर (Max-Muller) का समय वह समय रहा होगा जबकि संस्कृत ग्रन्थों के तिथिक्रम का निर्धारण होना प्रारम्भ हो गया होगा। इसी क्रम में परवर्ती विद्वानों ने भी प्रयास किये। अब प्रश्न यह उठता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अर्थात् योगवाशिष्ठ महारामायण, जिसका प्रकाशन निर्णय सागर प्रेस बम्बई द्वारा दो खण्डों में पांसीकर महोदय की अंग्रेजी टिप्पणी के साथ किया गया वह एक ही समय में रचा गया, अथवा उसका वर्तमान स्वरूप काल–क्रम के प्रवाह में धीरे–धीरे सामने आया? इसी प्रश्न को उत्तरित करने का प्रयास आगे के वर्णन में ऐतिहासिक दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में किया गया है, क्योंकि ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में अब तक उपलब्ध सामग्री अधिकांशतः दार्शनिक आधारों पर ही है, जबकि वास्तविकता यह है कि ग्रन्थ की विषय–वस्तु यद्यपि अद्वैत वेदान्त दर्शन है, तथापि ग्रन्थ में ऐसे अनेक पक्ष हैं, जो तत्कालीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि को भी प्रकाशित करते हैं। यहाँ इन्हीं ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को विशेष रूप से आधार मानकर ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में एक सारांश तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। बी. एल. अत्रेय जैसे महानुभावों ने ग्रन्थ को पाँचवीं–छठी शताब्दी के मध्य रखा है और अपने आधार में उन्होंने यह कहा है कि योगवाशिष्ठ महारामायण को कालिदास के अनन्तर ही रखा जा सकता है, क्योंकि ग्रन्थ में कालिदास के अनेक ग्रन्थों को मूलरूप में उद्धरित किया गया है।[6] कालिदास का तिथिक्रम–निर्धारण अपने में एक समस्या है।[7] आधुनिक विद्वान् उन्हें पाँचवीं शताब्दी ई. का मानते हैं, क्योंकि कालिदास को हूणों के विषय में परिज्ञान तभी से था जबकि वे वांकुश नदी की घाटी में ही थे,[8] जो ग्राह्य एवं समीचीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में भीखन लाल अत्रेय का यह मत है कि योगवाशिष्ठ महारामायण में कालिदास के ग्रन्थों के उद्धरण मूल रूप में उनकी प्रतिकृति-स्वरूप प्रयुक्त हुए हैं, अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का रचनाकाल कालिदास के पूर्ववर्ती समय का नहीं हो सकता[9], जो कई अन्य विद्वानों द्वारा समर्थित मत है।[10] यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कालिदास के ग्रन्थ की मूल प्रतिकृति आभिलेखिक आधार पर वत्स भट्टी के अभिलेख 473–74 ई. में मंदसौर–स्थित सूर्य मन्दिर में प्राप्त होती है[11] और इसी कारण प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को एकाएक इसके पूर्व मानना तर्कसंगत नहीं लगता है। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार, कालिदास की शैली एवं गुप्तकालीन अभिलेखों की शैली में एक निरन्तर साम्य है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनकाल की आरम्भिक स्थिति को गुप्तकालीन स्वीकार किया जाना चाहिए।[12]

अब यह स्पष्ट होता है कि इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ को उसके रचनाकाल की आरम्भिक स्थिति के निर्धारण

---

6 Atreya, B.L., 'The Philosophy of Yoga-Vasistha', pp. 26 ff.

7. Kieth, A.B., 'A History of Sanskrit Literature', Delhi, 1973, p.101. Raghvan, V., 'Journal of Oriental Research', Vol. 13, pt. 2, 1939, 'The Date of the Yogavasisth'. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Bombay, 1988, Vol. III, pp.19, 182-183, 271-272, 309-312, 321, 326, 341, 553, 573, 592, 602.

8. Stein, M.A., 'White Huns and Kindred Tribes in the History of the Indian North-West Frontier', The Indian Antiquary, April, 1905, and, Cunningham, A.A., 'Kalidasa and the Hunas of the Oxus Valley'; Ibid, 1912, pp. 265-267. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. III, pp. 389-91. Joshi, U.P., 'The Complete Works of Kalidasa', 1976, Delhi, Introduction.

9. Atreya, B.L., 'The Philosophy of Yogavasistha', pp. 26 ff.

10. देवराज, एन.के. 'भारतीय दर्शन', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992. त्रिपाठी, केदारनाथ, 'योगवासिष्ठ', चौखम्बा, वाराणसी, सं 2033 देखें– भूमिका. Raghvan, V., 'Journal of Oriental Research', Vol. 13, pt. 2.

11. Keith, A.B., 'A History of Sanskrit Literature', pp. 66 ff.

12. Upadhyaya B.S., 'India in Kalidasa', Allahabad, 1947, Introduction, p. 7.

में गुप्तकालीन कृति माना जा सकता है[13] जिसकी ऐतिहासिक तिथि लगभग तीसरी से छठी शताब्दी विद्वानों द्वारा स्वीकृत की गई है।[14] इस प्रकार कालिदास के ग्रन्थों के साहित्यिक आधार को लेकर तथा उनकी प्रतिकृति के उद्धरण के रूप में प्रयोग एवं गुप्तकालीन अभिलेखों और कालिदास के ग्रन्थों के साम्य को आधार रूप में ग्रहण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सम्पूर्ण योगवासिष्ठ महारामायण अपने वर्तमान रूप में कभी भी प्रतिष्ठित हुआ हो, परन्तु उसकी मूल रचना 473–74 ई. से छठी शताब्दी के आरम्भिक काल तक में स्वीकार की जानी चाहिए। वास्तव में यह तथ्य केवल प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में एक बहुत ही गौण पक्ष प्रस्तुत करता है, जबकि बहुत से तथ्य विचारणीय हैं, जो उसमें आये हैं और जिनके आधार पर उसके रचनाकाल के विषय में कुछ और प्रकाश पड सकता है। इसी तथ्य पर संश्लिष्ट दृष्टिपात आगे किया जा रहा है।

(ग) धार्मिक पक्ष

धार्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर योगवाशिष्ठ के रचना काल के विषय में विचार किया जा सकता है।

(अ) बौद्ध दर्शनः

योगवासिष्ठ महारामायण मे प्रतिविम्यित बौद्ध दर्शन के जिन सिद्धान्तों के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ के काल–निर्धारण के विषय में चिन्तन किया जा सकता है वे इस प्रकार हैं–

(1) आलयविज्ञानवाद

योगवासिष्ठ महारामायण में राम के बचपन की उस घटना का उल्लेख हुआ है, जिसमें उन्हें वैराग्य की भावना का उदय हुआ था। उनके बचपन में इस वैराग्य की भावना का मूल कारण मानवीय भावना का मूलभूत आधार, जैसे–संसार दुःखमय है, जिसमें नाशवान रूप से विद्यमान सीढ़ियां, जैसे– जाति, जरा, व्याधि, भोग– पंचक, मरण विप्रयोग अर्थात् (प्रिय तथा अप्रिय का वियोग एवं संयोग) हैं। ग्रन्थ में श्रीराम इनके कारण एवं इनसे मुक्ति प्राप्त करने के विषय में सोचते हैं, जो वैसा ही विवरण है जैसा कि भगवान् बुद्ध के जीवनकाल की किशोरावस्था में घटित हुआ था और इस विवरण की एक प्राचीन विज्ञानवादी ग्रन्थ लंकावतार सूत्र से भी तुलना की जा सकती है, जिसमें रावण के 108 प्रश्नों का उत्तर भगवान् बुद्ध द्वारा रावण को दिया गया था।[15]

योगवासष्ठि महारामायण की प्रकृति और उसके बृहत् स्वरूप को देखते हुए उसमें जो आख्यायिकाएं हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। प्राचीनकाल के नैतिक एवं आत्मिक आचरणों को बताने के लिए इसमें आख्यानों का होना, जिनमें आलंकारिक एवं सांकेतिक प्रवृत्ति है और पुनर्जन्म के चक्र का उसी प्रकार वर्णन है, जैसा कि बौद्ध जातकों में पाया जाता है, एक विशिष्टता परिलक्षित करता है।[16] ऐसा विवरण बौद्ध ग्रन्थ दशरथ जातक में भी प्राप्त होता है, जिसमें दिये गये धटना क्रम में भरत के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर राम द्वारा दिया गया, अतः उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की पारस्परिक तुलना की जा सकती है।[17]

---

13. Bhattacharya, S.P., op.cit., pp. 549 ff. Atreya, B.L., "The Philosophy of Yogavasistha", pp. 26 ff.

14. Mookerji, R.K., "The Gupta Empirre", Delhi, 1973. Majumdar and Pusalker, op.cit., Vol. 3, pp. 1-59.

15. यो. महा., 1.10. 31–4.61.11.12. तुलनीय–लंकावतार सूत्र, अंग्रेजी अनुवाद (Suzuki, D.T.). 1932. "..........अनित्य एवं क्षणिकता के दर्शन के 108 कठिन प्रश्नों के उत्तर भगवान् बुद्ध ने रावण को दिये जिसकी तुलना स्थिति की पहचान किये जाने और वसिष्ठ के द्वारा राम को दिये गए उत्तरों से योगवासिष्ठ महारामायण में की जा सकती है।

16. यो. महा. 6 अ. 62. 81. 33. 14. 17.। तथा सर्ग 52–59

17. "Dasharatha-Jatak", Pali Text Society, Vol. 4, p. 127.

ग्रन्थ में ऐसे अनेक अनुच्छेद हैं जिनमें प्रायः बुद्ध, सक्षत्र, सिद्धार्थ और असंग शब्दों को प्रयुक्त किया गया है। इन्हें व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में न माना जाय ऐसा कोई भी आधार प्राप्त नहीं होता है।[18] बुद्ध शब्द को भगवान् बुद्ध के नामोल्लेख के रूप में स्वीकार कर सकते हैं और जहाँ तक असंग का प्रश्न है, वे योगाचार विषय के उपदेशक और आलय विज्ञानवाद के प्रवर्तक थे, जिसका प्रारम्भ उत्तरपूर्वी भारत में हुआ था।[19] इस प्रकार इस आलय विज्ञान की ही छाया का अंकन योगवासिष्ठ महारामायण में माना जाता है।[20] वही तथागत धर्म अथवा आलय विज्ञान है, जिससे परिकल्पित आवरण के द्वारा संसार की प्रवृत्ति होती है। सब कुछ चिन्मात्र है और आलय से ही संसार की उत्पत्ति होती है। यद्यपि उसमें क्लिष्टाक्लिष्ट बीज विद्यमान हैं, तथापि वह आत्मा नहीं है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि लंकावतार सूत्र में अनेक स्थलों पर शून्यवाद का प्रतिपादन किया गया है अतएव उसे विशुद्ध विज्ञानवाद का सूत्रग्रन्थ नहीं मानना चाहिए। जन्मजन्मान्तर तक आलय–विज्ञान का प्रवाह अविच्छिन्न रहता है, ऐसा त्रिंशिका एवं स्थिरमति द्वारा उद्धृत अभिधर्मसूत्र में माना गया है।[21] वास्तव में आलय विज्ञान का तारतम्य चित्त से है, जबकि योगवासिष्ठ महारामायण में आत्मसत्ता ब्रह्म एवं माया के साथ–साथ चित्त की प्रवृत्ति निरोध पर प्रकाश डाला गया है और उसका निरोध कर्म की प्राप्ति अनुभवशील तत्त्व के आधार पर माना गया है और इस प्रकार ऐसे तपः पूर्ण जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् व्यक्ति के निर्वाण–प्राप्ति की बात कही गयी है।[22] अब यह स्पष्ट हो जाता है कि योगवासिष्ठ महारामायण में आलय विज्ञानवाद की छाया मात्र है अथवा उसका सम्मिश्रित स्वरूप विद्यमान है और यह घटना निश्चित रूप से उसके रचनाकाल को पाँचवीं शताब्दी के बाद विचार करने के लिए पर्याप्त है।[23]

प्रथमतः लंकावतार–सूत्र के तिथिक्रम को 443 ई. का माना जाता है, जो आलय विज्ञानवाद का प्रारम्भिक ग्रन्थ है।[24] इसीलिए प्रश्नगत ग्रन्थ को इसके पूर्व का नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर असंग के तिथिक्रम का निर्धारण तीन सौ दस से तीन सौ नब्बे ई. माना जाता है, जो कि अयोध्या में रहता था।[25] अब असंग का नामोल्लेख यदि प्रश्नगत ग्रन्थ में प्राप्त है तो इससे ग्रन्थ की तिथि निश्चित रूप से इसके उत्तर काल में ही मानी जा सकती है अर्थात् लगभग छठी शताब्दी ई. में।[26] जहाँ तक दशरथ जातक का प्रश्न है उसकी तिथि बहुत पहले की है और दशरथ जातक ग्रन्थ की तुलना तथा लंकावतार–सूत्र के वर्णनों की तुलना के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ की तिथि का निर्धारण इन ग्रन्थों के बाद ही संभव है।

(2) शून्यवाद :

योगवासिष्ठ महारामायण में शून्यवाद का भी दिग्दर्शन है।[27] भीखन लाल अत्रेय उक्त आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ को नागार्जुन, वसुबन्ध तथा असंग से प्रभावित मानते हैं।[28] इसी आधार को लेते हुए वे आलोच्य ग्रन्थ को शंकराचार्य

18. यो. महा. 6अ. 7.37, 44.10, 3.6.13, 26.44, 2.18.25–27, 6ब.44.10. Bhattacharya, S.P., op. cit., pp. 549 ff.
19. पाण्डेय, जी.सी. "बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास", उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1983. पृ. 420. Bhattacharya, S.P., op. cit., pp. 549 ff.
20. Ibid.
21. पाण्डेय, जी.सी., पूर्वोक्त, पृ. 443.
22. यो. महा. देखिये– वैराग्य, उत्पत्ति एवं निर्वाण प्रकरण।
23. Atreya, B.L., op. cit., pp. 26 ff.
24. Keith, A.B., op. cit., p. 77.
25. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 389-91.
26. Mainkar, T.G., "The Vasisth Ramayana : A Study", Delhi, 1977, pp. 175, 180.
27. यो. महा. 3.5, 6ब.38, 5.72, 6ब.72.22.26.19, 1.12–12, 9.45, 46, 12.42, 43.
28. Atreya, B.L., op. cit., Chapter 2.

के पूर्व की रचना मानते हैं।[29] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की यह अवधि उसका प्रथम चरण रही होगी और सम्पूर्ण ग्रन्थ कई चरणों में पूर्ण हुआ होगा।

(3) त्रिकाय दर्शन :

योगवासिष्ठ महारामायण में त्रिकाय दर्शन का भी प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होना एक महत्त्वपूर्ण बात है।[30] अब इस आधार पर यदि ग्रन्थ के रचनाकाल के संदर्भ में विचार किया जाय तो आवश्यक है कि इस दर्शन की उद्भूति का समय, अर्थ एवं इतिहास के विषय में विहंगम दृष्टि डाली जाए।

इस दर्शन का प्रतिपादन बौद्ध धर्म के महायान दर्शन की पाठशाला में हुआ अर्थात् यह दर्शन महायान बौद्ध दर्शन की देन है। हीनयान धर्म के अनुसार, बुद्ध एक महामानव थे, जो जीवन के सामान्य अनुभवों को व्यतीत करते हुए निर्वाण की प्राप्ति अपनी तपश्चर्या द्वारा कर सके। इसके विपरीत महायान धर्म में बुद्ध को भगवत्व प्रदान किया गया है और उनकी पहचान सत्य अथवा वास्तविकता से की गई है। इसी में यह बताया गया है कि उन्होंने सिद्धार्थ के रूप में जन्म लेकर एक दिखावा किया क्योंकि बुद्ध को शून्यता तथा अशरीरता से समीकृत किया जाता है अर्थात् इस दर्शन के अनुसार बुद्ध ने सिद्धार्थ रूप में अवतार लिया था परन्तु वास्तव में वे निराकार हैं। यदि उनका कोई आकार है, तो उसे धर्मकाय या शाश्वत तत्त्व जो कि अपने में सत्य है, माना गया है। यही वास्तविकता न केवल ज्ञान है अपितु करुणा है, जिसके द्वारा जन–जन को धर्मोपदेश देने के लिए वे विभिन्न आकार धारण करते हैं। इन्हीं आकारों में से एक गौतम बुद्ध का आकार था, परन्तु जो समस्त आकार समरूप होते हुए भी वास्तविकता से परे नहीं थे, और इस आधार पर इन्हें कल्पनामात्र की देन समझा जाना चाहिए। वास्तव में जीवन और मृत्यु का क्रम एक भावात्मकता है। इस प्रकार वे ऐतिहासिक बुद्ध अर्थात् गौतम बुद्ध विभिन्न बोधिसत्वों एवं प्रत्येक बुद्धों के अवतार स्वरूप थे। जातक कथाओं में इस सम्बन्ध में अनेकानेक कथानक प्राप्त होते हैं। इस काल्पनिक सत्यता में अन्तरंगता एवं अन्तर्निहितता प्राप्त करते हुए ही महायान धर्म ने त्रिकाय दर्शन का प्रतिपादन किया, जिसके अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के तीन शरीरों का वर्णन किया गया। इनके अन्तर्गत धर्मकाय, निर्माणकाय और सम्भोगकाय नाम आते हैं। धर्मकाय के अन्तर्गत वैधानिक शरीर अर्थात् वह शरीर–स्थिति, जिसके द्वारा उन्होंने अपने सिद्धान्तों का उपदेश किया और जो नाशवान् शरीर से भिन्न है, यह प्रज्ञान है। इस मत के प्रति सर्वप्रथम आस्थावानों में वसुबन्ध का नाम उल्लेखनीय है। निर्माणकाय के अन्तर्गत मायावी शरीर है, जिसके द्वारा बुद्ध विभिन्न आकार ग्रहण करते हैं तथा अपने सिद्धान्तों का उपदेश देकर पुनः अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। इसे ही मानुषी बुद्धा या ध्यानीबुद्धा कहा गया है। सम्भोगकाय के अन्तर्गत स्वर्गिक सुख के शरीर की परिकल्पना विद्यमान है। इसी के अन्तर्गत बुद्ध बोधिसत्त्व के गुणों का आनन्द लेते हैं। इसमें स्वसम्भोग, जिसमें बुद्ध के द्वारा बुद्ध का प्रत्यक्षीकरण किया जाना तथा परासम्भोग अर्थात् वह आकार जिसे बोधिसत्त्व द्वारा प्रत्यक्षीकृत किया गया, का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार त्रिकाय दर्शन महायान बौद्ध धर्म का एक अंग है जिसकी आरम्भिक स्थिति वसुबन्ध के समय से मानी जाती है।[31] इस बिन्दु के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि आलोच्य ग्रन्थ में त्रिकाय दर्शन का प्रतिबिम्बन है, तो उसे उसके रचनाकाल के सन्दर्भ में वसुबन्ध के पश्चात् ही परिगणित किया जा सकता है।

---

29. Ibid.

30. Mitra, V.L., "Yagavasistha-Maharamayana", English Translation, Delhi, 1976, Vol. 2a, Book 3, Chapter 20, p. 101, Line 13-26.

31. Singh, B.N., "Dictionary of Indian Philosophical Concepts", 1988, p. 306 & ff. यहाँ योगवासिष्ठ महारामायण में लीला के पति की मृत्यु को मृत्यु न मानकर उसके मायावी शरीर का अन्त तथा सभी तरह के शरीरों की अन्तर्निष्ठता एवं प्रकाट्य उसी परब्रह्म में मानकर मृत्यु को भावात्मक माना गया है और इसके साथ त्रिकाय दर्शन का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

(आ) ब्राह्मण धर्मः

प्रस्तुत ग्रन्थ में भागवत, शैव एवं वैष्णव तत्त्वों का पाया जाना भी इसके तिथिक्रम के निर्धारण में कितना सहायक हो सकता है, यह भी एक विशेष विचारणीय पक्ष है। इस दृष्टि से योगवासिष्ठ महारामायण न केवल बौद्ध दर्शन से प्रभावित है, अपितु इसमें ब्राह्मण धर्म के विश्वास भी साहित्यिक माला में सुन्दर पुष्पों की भाँति पिरोए गए हैं। आश्चर्यजनक रूप से प्रश्नगत ग्रन्थ में पौराणिक देवी–देवताओं का अस्तित्व उनकी उँचाइयों तक विद्यमान है और उन्हें वेदान्त दर्शन का उपदेश कराते हुए दर्शाया गया है।[32]

वैष्णव दर्शन के दर्शन प्रश्नगत ग्रन्थ में प्रह्लाद एवं अर्जुन के आख्यानों में प्राप्त होते हैं।[33] इनका वर्णन ग्रन्थ में नारायण के उल्लेख में प्रह्लाद को विष्णु की तरह माना जाना और स्पष्टतः दूसरी ओर भगवान् कृष्ण के द्वारा सांसारिक कष्टों को बताते हुए वेदान्त दर्शन का दिग्दर्शन कराया जाना ग्रन्थ में भागवत दर्शन की विशेषता पर प्रकाश डालता है। ग्रन्थ में देवासुरसंग्राम जिसमें असुरों का नेता शम्बर था, का भी विवरण प्राप्त होता है।[34] ग्रन्थ में इतर देवताओं जैसे– शुक्र, बृहस्पति, तुम्बुरु, यम, भैरव, स्कन्ध, कुबेर एवं गणदेवता आदि का विवरण है।[35] साथ ही देवराज इन्द्र या शक्र, अग्नि, मरुत्, सूर्य, विष्णु के रामावतार, यम, चन्द्रमौलि, शिव, अनन्त, चित्रगुप्त एवं हरि–हर आदि देवताओं का विवरण भी प्राप्त होता है[36] और "ॐ" को स्वयं में सत्य कहा गया है।[37] ग्रन्थ में ब्रह्मा को किसी वन में सुमेरु तथा निषध पर्वत पर बैठे बताया गया है तथा उन्हें भूत और भविष्य का ज्ञाता एवं ग्रन्थ के वक्ता के रूप में प्रदर्शित किया गया है।[38] इन्द्र के पुत्र जयन्त, किन्नारों एवं किन्नरियों के विवरण भी ग्रन्थ में प्राप्त हैं[39] ग्रन्थ में काल की महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है।[40] और भाग्य के लेखक के रूप में चित्रगुप्त को प्रदर्शित किया गया है।[41] प्रलय में सभी कुछ नष्ट हो जाने का विवरण भी ग्रन्थ में प्राप्त होता है।[42] ब्रह्मा के काल में बहत्तर त्रेता युग के चक्रों का विवरण दिया गया है जिसमें बताया गया है कि त्रेता युग के कुछ चक्र बीत चुके हैं तथा कुछ को अभी बीतना शेष है, यह सभी ब्रह्मा के एक कल्प में विद्यमान बताए गए हैं।[43] प्रश्नगत ग्रन्थ में गुह को देवताओं एवं गौरी को देवी के रूप में वर्णित किया

---

32. यो. महा. 5.32–33, 33.1–38, 6अ. 60–62.

33. वही, 5.32–43, 52–61

34. यो. महा. 5.30–42, 4.25.6 एवं आगे, 26.57. राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार पहाड़ों में रहने वाले किरात आर्यों के मुख्य शत्रु थे। वे आगे कहते हैं कि शंबर बृहत् पर्वत के भीतर रहता था और किरातों का नेता था और उसने आर्यों से संघर्ष किया। बृहत् पर्वत उस समय हिमालय को कहा जाता था अर्थात् उसके पुर सिवालिक के पीछे बने थे। 19वीं शताब्दी के आरम्भ तक अजेय माना जाने वाला किला–कांगड़ा उसी में पड़ता है। यह संभव है कि यही उसने आर्यों से लोहा लिया हो। राहुल जी की कल्पना में शंबर पहले मोहेञ्जोदडों में रहता था किला–कांगड़ा वह बाद में पहुंचा। (वोल्गा से गंगा तक", उपन्यास, इलाहाबाद, 1993, पृ. 62–64) राहुल जी की यह ऐतिहासिक परिकल्पना ब्राह्मण धर्म के उस वैदिक चिन्तन पर आधारित है, जिसका प्रतिबिम्बित दिग्दर्शन हम वर्णित योगवासिष्ठ महारामायण के आख्यान में उल्लिखित कर चुके हैं।

35. वही, 1.30.16, 3.2.48, 49, 34.49, 61.20, 101, 4.6.8, 10.17, 18, 24–28, 11.68 (1–4), 4.15, 15.2–3, 30.8, 5.15, 27.13, 34. 23, 7.2, 5.26.1–2, 31.43, 28.4, 6अ. 14.2, 18.16, 25, 6ब. 159. 1–2.

36. वही, 1.1.28, 25. 14. 3.73.49, 50, 67, 64.13, 85.37, 4.6, 5.8, 5.30, 21–22 एव आगे, 31.56, 64, 6.5.8 6ब 108. 10. 109. 10, 3.16.9

37. वही, 1.1.

38. वही, 1.2.6–9 एवं 11, 13–16, 2.2 16, 27.

39. यो. महा. 1.3.42, 4.26.57, 6.181.36.

40. वही, 1.23.19, 24, 25.7.

41. वही, 14–17.

42. वही, 26.21, 28, 29, 3.2.

43. वही, 1.1, 3.1.25, 3.2. 45–49.

गया है।[44] ग्रन्थ में वन देवता तथा उनसे इतर देवताओं के विषय में अंकन है।[45] इन्द्र के अधीन मरुत् देवता का अंकन भी ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।[46] ग्रन्थ में कामदेव का भी विवरण प्राप्त होता है।[47] ग्रन्थ में स्वर्ग के नन्दन वन का भी वर्णन है।[48] स्वयं प्रत्येक वस्तु नाशवान् है, इस बात को सिद्ध करते हुए ग्रन्थकार इन्द्र, उपेन्द्र, शिव आदि सभी को नाशवान् बताता है[49] और वह कुबेर को भी देवताओं की श्रेणी में रखता है।[50] ग्रन्थकार स्वर्ग के इन्द्र का उल्लेख शचीपति के रूप में भी करता है[51] और वैदिक हर[52] एवं रुद्र[53] का भी उल्लेख करता है। विष्णु को लक्ष्मी का पति बताया गया है।[54]

ग्रन्थकार विचित्र रूप से परशुराम के छह बार अवतार लिये जाने और उनके द्वारा क्षत्रियों का विनाश किये जाने का उल्लेख करता है और साथ ही साथ उन्हें विष्णु का अवतार स्वीकार करता है।[55] विष्णु के कच्छप तथा कृष्णावतार का भी ग्रन्थ में उल्लेख है।[56] विष्णु का बुद्ध के रूप में अवतार लिया जाना भी ग्रन्थ में उल्लिखित है।[57] विष्णु के माधवी स्वरूप का भी ग्रन्थ में अंकन द्रष्टव्य है।[58] अवतार की परिकल्पना में वे पौराणिक कथाएँ, जिनके माध्यम से भगवान् विष्णु को पृथ्वी पर अवतार लेना पड़ा, उनका भी अंकन प्रश्नगत ग्रन्थ में द्रष्टय है।[59] फादर कामिल बुल्के के अनुसार योगवासिष्ठ महारामायण में उक्त घटनाक्रम के सन्दर्भ में जिन शापों का उल्लेख है और जिन्हें विष्णु के अवतार का कारण माना गया है, वह रामायण में प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत् आलोच्य ग्रन्थ में यह विवरण अपने में पहली घटना है।[60] वास्तव में वैष्णव एवं भागवत धर्म में अवतारवाद का होना उन्हें एक नवीन आयाम प्रदान करता है। यद्यपि विद्वान् अवतार की परिकल्पना का भारतीय दर्शन में होना ऋग्वेदकाल से मानते हैं तथापि इसका पुष्ट रूप में अंकन महाकाव्यों एवं दार्शनिक ग्रन्थों विशेषकर भगवद्गीता में देखने को मिलता है। इस प्रकार इस विषय में यह मानक निर्धारित किया जा सकता है कि इस परिकल्पना की देन उत्तरमहाकाव्यकालीन रही होगी। इस सिद्धान्त का अधिक महत्त्व उत्तरमहाकाव्यकाल में तो था ही, साथ ही भागवत पुराण में भी इसका विशेष महत्त्व द्रष्टव्य है वास्तविक स्थिति यह है कि यद्यपि योगवासिष्ठ महारामायण में अवतार से सम्बन्धित विभिन्न आख्यानों का वर्णन है परन्तु इतना होते हुए भी यह ग्रन्थ अवतारवाद को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं करता और अपने वर्णन में यह प्रदर्शित करता है कि अमंगल एवं

---

44. वही, 3.41.20.
45. वही, 3.72. 17–18.
46. वही, 3.73.49. 50. 67. 74.
47. वही, 3. 120. 17.
48. वही, 4.8.6 एवं आगे।
49. वही, 4.52. 10 एवं आगे।
50. वही, 5. 28.4.
51. वही, 4.7.2.
52. वही, 4.52.10.
53. वही, 4.14. 10.27. 11.68.
54. वही, 5.29.26.
55. यो. महा.; 6अ. 22.15.
56. वही, 12. 3.17.24.
57. वही, 6अ.22.16.
58. वही, 3. 106. 40, 53.
59. वही, 5.32–43. 52–61. 1.1.59–64. 5.14.26. 6ब.76.44. 48. 5.30.43.
60. बुल्के, कामिल, "रामकथा – उत्पत्ति एवं विकास", प्रयाग, 1950. अनुच्छेद 173 एवं आगे।

तृष्णा के कारण ही ईश्वर को भी अवतरित होना पडता है।[61] इसी क्रम में हास्यास्पद रूप में वामन एवं भगवान् शब्द का प्रयोग किया जाना एक विशेष बात स्पष्ट करता है। भागवत पुराण में इसके विपरीत ईश्वर के लिए किसी तृष्णा अथवा अमंगल का प्रयोग नहीं किया गया है यही नहीं, प्रश्नगत ग्रन्थ शाक्य मुनि अर्थात् भगवान् बुद्ध को सर्वश्रेष्ठ मानता है। इन्हें अवतार से भी महान् प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है, क्योंकि वे स्वयं रामावतार के आदर्श मात्र है।[62]. जो स्पष्ट रूप में भगवान् बुद्ध के प्रति ग्रन्थकार के आदरभाव का सूचक है। पुराणों में भगवान् बुद्ध को अवतार माना गया है।[63] इसके विपरीत कालिदास विष्णु को संदर्भित करते हुए बुद्ध को उन्हीं का अवतार मानते हैं।[64] मयंकर महोदय के अनुसार जो "शान्तात्मन्" शब्द पाञ्चरात्रों की अहिर्बुध्न्य संहिता में प्रयुक्त है वह भगवान् बुद्ध के अवतारों की ओर संकेत करता है।[65] तांगीबडी स्थापत्य शिल्प में विष्णु के जो अवतार प्रदर्शित किये गये हैं, उसमें बुद्ध को भी अवतार रूप में दिखाया गया है। यह स्थापत्य शिल्प पूर्वी बंगाल में प्राप्त हुआ तथा इसे चौथी–पाँचवीं शताब्दी का माना जाता है और इसी आधार पर कमला रॉय का ऐसा मानना है कि लगभग तीन सौ बीस से चार सौ पचपन ई. का काल वह काल था जब पुरातात्त्विक आधार पर भगवान् बुद्ध को अवतार माने जाने की कल्पना अथवा विश्वास स्वीकार्य होना चाहिए।[66] उपर्युक्त मत से स्पष्ट है कि योगवासिष्ठ महारामायण अवतारवाद से परिचित है, परन्तु बौद्ध धर्म के उत्तम आदर्शों एवं सिद्धान्तों से अभिमंडित होने के कारण इस ग्रन्थ ने अवतारवाद की परिकल्पना को ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पुराणों की भाँति स्वीकृति प्रदान नहीं की है। इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रश्नगत ग्रन्थ भारतीय पौराणिक एवं ब्राह्मण दर्शन के घेरे में होते हुए भी अपना पार्थक्य स्पष्ट करता है और इसके स्पष्टीकरण में यह इतना आगे चला जाता है कि पुराणों के बहुत से पाठों की ओर स्पष्ट संकेत करता है।[67] इसका अर्थ यह हुआ कि योगवासिष्ठ

61. एतामनुसरन् राम चित्तसत्तामपावनीम्।
संसारबीजकणिकां जीवबन्धनवागुराम।। (यो. महा. 5.15. ।) तथा
तृष्णयाशयकौशिक्या हृद्यमङ्गलभूतया।
रूढया भगवानेष विष्णुर्वामनतां गतः।। (वहीं, 19)

62. नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु न च मे मनः।
शान्त आसितुमिच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा।। (वही, 1. 15. 8)
सर्वत्यागवशादेव हतकाले कालवपि।
शाक्येन विगताशङ्कं मुनिना मेरुवत् स्थितम्।।
सर्वत्यागो महाराज सर्वसम्पत्समाश्रयः।
न गृहणाति हि यत्किञ्चत्सर्वं तस्मै प्रदीयते।। (वही, 6अ. 93.61, 62.)
बुद्धः पृथ्व्यादिबोधेन येन पृथ्व्यादिसङ्घकः।
तस्य पिण्डात्मतां धत्ते व्योमैवान्यस्य केवलम्।। (वही, 3.26.44.)
परोपकारकारिण्या परार्तिपरितप्तया।
बुद्ध एव सुखी मन्ये स्वात्मशीतलया धिया।। (वही, 1.26.39)
यंयमाभोगिनिःसारा संसाराम्भचक्रिका।
विज्ञेय वासनैषा सा चेतसो मोहदायिनी।। (वही, 3.113.12)
चारुवंशलतेवान्तः शून्या निस्सारकोटरा।
सरित्तरङ्गमालेव न व्युच्छिन्नापि नश्वरी।। (वही, 13)

63. गोरे, एन.जी., "केसरी", पुणे। भागवत पुराण, 1.3.6–25. 1.9.4.3. हरिवंश पुराण, 2.69 मार्कण्डेय पुराण, 15.46. Mainkar, T.G., op. cit., p. 55. पाण्डे, राजबलि, "हिन्दू धर्म कोष", लखनऊ, 1988, पृ. 444–45.

64. कालिदास, "मालविकाग्निमित्रम्" 5.2 कालिदास, "रघुवंश", 3.27. 6.49. 7.13, 35, 10.9, 18, 6–35, 11.86, 28.8. कालिदास, "कुमारसम्भवम्", 3.13. Upadhyaya, B.S., "India in Kalidas", 1967, p. 297.

65. Mainkar, T.G., op. cit., 1977, p. 55.

66. Ray, Kamala, "The Ten Incarnations of Vishnu in Bengal", The Indian Historical Quarterly, Calcutta, 1941, Vol. 17, pp. 370-85.

67. एकार्थानि समग्राणि बहुपाठानि मेऽनथ।
पुराणानि प्रवर्तन्ते प्रसृतानि युगं प्रति।। (यो. महा. 6अ. 22.20)

महारामायण के रचनाकाल को हम ब्राह्मण, महाकाव्य एवं पौराणिक युग के अनन्तर रख सकते हैं। महाभारत एवं पुराणों का लोक–प्रचलन गुप्तकाल में हो चुका था।[68] इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की आरम्भिक स्थिति छठी–सातवीं शताब्दी में स्वीकार करने में संकोच नहीं हो सकता।

कर्म की प्रधानता दिखाते हुए ग्रन्थकार ने अन्य सभी दार्शनिक भावनाओं को इतर मानते हुए भगवान् के अस्तित्व को भी कर्म (पुरुषार्थ) के आधार पर ही माना है।[69] इस प्रकार वह भागवत दर्शन विशिष्टता को परिलक्षित करते हुए ग्रन्थ में परवर्ती कल्प में एक ब्रह्म की सत्ता तथा मोक्ष की प्राप्ति को उसी सत्ता में निहित होने की परिकल्पना प्रस्तुत करता है तथा साथ ही सृष्टा द्वारा सृष्टि करते हुए जम्बुद्वीप के कोने भारतवर्ष में समस्त व्याधियों से परिपूर्ण व्यक्तियों को उत्पन्न करने का वर्णन करता है[70] परन्तु यह विवरण भागवत धर्म एवं सनातन वैदिक धर्म से प्रभावित प्रतीत होता है। विभिन्न कथानकों के माध्यम से ग्रन्थकार वैष्णव धर्म की विशिष्टता के दर्शन योगवासिष्ठ महारामायण में कराता है, जिनका उल्लेख गौण रूप में ऊपर किया जा चुका है। विष्णु के माधवी स्वरूप का वर्णन करने के साथ जिस सर्वोपरि उदाहरणीय कथा का वह वर्णन करता है, उसमें मन्दराचल पर्वत द्वारा क्षीर सागर का मंथन[71] और देवासुर संग्राम, जिसमें असुरों का नेता शम्बर था, का विवरण प्राप्त होता है[72], वह ग्रन्थकार के वैष्णव धर्म के प्रति रुझान की ओर दृष्टिपात कराता है।

स्पष्ट है कि आलोच्य ग्रन्थ वैष्णव सम्प्रदाय से प्रभावित है। जहाँ तक इस सम्प्रदाय के ऐतिहासिक दृष्टि से विकास का प्रश्न उठता है, तो यह माना जाता है कि इस सम्प्रदाय के विकास का मूल वैदिक ऋचाओं में सन्निहित है और इसकी पराकाष्ठा भारतवर्ष में दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में देखी जा सकती है।[73] यद्यपि आलोच्य ग्रन्थ में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव द्रष्टव्य है, तथापि यह विशेष बात है कि विष्णु की परिकल्पना में भी ग्रन्थकार तपः पूर्ण अनुभव का दार्शनिक सिद्धान्त छोड नहीं पाता और इस प्रकार इस सम्प्रदाय की भक्ति भावना में प्रवाहित होने के साथ ही साथ ज्ञान–दर्शन को भी ग्रन्थकार स्थान देता है।[74] अब इस आधार पर यदि वर्णित ग्रन्थ के रचनाकाल का आकलन किया जाय तो हम पाएंगे कि वैष्णव सम्प्रदाय में सांख्य एवं भक्ति–भाव का साम्य लगभग नवीं से तेरहवीं शताब्दी के मध्य प्रस्फुटित था।[75] ऐसी दशा में आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के क्रम को शंकराचार्योत्तर युगीन विचार करना उचित होगा।

योगवासिष्ठ महारामायण के निर्वाण प्रकरण में अर्जुन को भगवान् कृष्ण द्वारा वेदान्त दर्शन के उच्च आदर्शों का उपदेश कराते हुए प्रदर्शित किया गया है।[76] यह कृष्ण वास्तव में यादव वृष्णियों के नेता थे एवं सात्त्वत–भागवत

पुनस्तानेव तानेवमन्यानपि युगे युगे।
वेदादिवित्प्रचितानितिहासान् स्मराम्यहम्।। (वहीं, 21)
इतिहासं महाश्चर्यमन्यं रामायणाभिधम्।
ग्रन्थलक्षप्रमाणं च ज्ञानशास्त्रं स्मराम्यहम्।। (वहीं, 22)

68. Srivastava, B.N., "Harsh and His Times", pp. 219 and ff.

69. यो. महा., 2.7.7, 31.

70. वही, 2.10.9, 11–15.

71. वही, 4.8.6.

72. वही, 5.30–42, 4.25.16, 26–57.

73. मिश्र, जयशंकर, "प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास", 15 अगस्त सन् 1980, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पृ. 668 एवं आगे।

74. यो. महा. 1.1.55, 6अ. 52 10 वही, 5 32–33, 30.1. 38, 6अ. 60–65.

75. Majumdar and Pusalkar, "The Struggle for Empire, Bombay, 1989, p. 442. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोक्त, पृ. 737.

76. यो. महा., 6अ.55.41–45

दर्शन के प्रवर्तक थे। ऊपर हम कह चुके हैं कि योगवासिष्ठ महारामायण में कहीं न कहीं भागवत दर्शन का प्रभाव परिलक्षित है। भागवत धर्म का प्रारम्भ प्रामाणिक आधारों पर ईसा की छठी शताब्दी पूर्व ही रखा जा सकता है। उत्तरोत्तर विकास के सोपानों पर अधिष्ठित होता हुआ यह दर्शन, जो अद्वैतवाद पर आधारित है, गुप्तकाल में अत्यन्त प्रचलित एवं लोकप्रिय था और इसके बाद उसका प्रभाव लगभग नवीं–दसवीं शती तक बंगाल के क्षेत्र में रहा। ऐसी स्थिति में हमारे सामने प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में इस आधार पर जो तथ्य सामने आते हैं, वे उसके रचना काल को गुप्तकाल के बाद से लेकर लगभग नवीं–दसवीं शताब्दी तक निर्धारित करने में सहायक सिद्ध होते हैं।[77]

जहाँ तक ग्रन्थ में शैव सम्प्रदाय का प्रतिदर्शन परिलक्षित है[78] वहाँ यह बात स्मरणीय है कि शैव धर्म एवं दर्शन की प्राचीनता प्रामाणिक आधारों पर सिन्धु सभ्यता से लगाई जाती है।[79] जिस प्रकार से शैव दर्शन का दिग्दर्शन योगवासिष्ठ महारामायण में कराया गया है उसमें अन्य दर्शनों के प्रति उसके साम्य की भावना है। ग्रन्थ में इस प्रकार की भावना का होना इस दर्शन के अत्यन्त विकसित स्वरूप को प्रदर्शित करता है। दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में नाथ पंथ के सहयोग से शैव–दर्शन अत्यन्त विकसित स्थिति में पहुँच चुका था।[80]

इस आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण में जिस शैव दर्शन का प्रतिपादन द्रष्टव्य है, उसके अनुसार प्रश्नगत ग्रन्थ के रचना काल की अन्तिम सीमा को शैव दर्शन के विकसित चरण के रूप में लगभग दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी ई. के आसपास निर्धारित करना उचित प्रतीत होता है।[81]

आलोच्य ग्रन्थ में पराशक्तियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इन पराशक्तियों में अप्सराओं, किन्नरों, गन्धर्वों, सिद्धों, यक्षों, राक्षसों, विद्याधरों एवं विद्याधारियों, दानवों, असुरों, गुह्यकों, डाकिनियों, भूतों, योगिनियों, मातृकाओं, भैरवों, कबन्धों, कूष्माण्डों, रूपिकाओं, सुतलों, उतलों, वेतालों, पिशाचों एवं पिशाचिनियों का वर्णन विशेष रूप से प्राप्त होता है।[82], जिनका अधिकतर विवरण युद्ध भूमि के वर्णन में देखने को मिलता है, परन्तु मुख्यतः यक्ष, किन्नरों, विद्याधरों का उल्लेख जो ग्रन्थ में प्राप्त होता है, उनमें यक्षों की उपासना ऐतिहासिक दृष्टि से मौर्यकाल से गुप्तकाल तक इस देश में विद्यमान थी।[83] किन्नरों का प्रामाणिक विवरण कुषाणकाल से गुप्तकाल तक प्राप्त होता है[84] और विद्याधरों का उल्लेख अधिकतर साहित्यिक प्रमाणों पर ही आधारित है तथा हर्ष के काल (600–647 ई.) तक उनका उल्लेख मिलता है।[85]

---

77. गोस्वामी, श्रीरूप, 'लघुभागवतामृतम्', वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई तथा भागतव पुराण. Bhandarkar, D.R., 'Vaisnavism and Minor Sects', Poona, 1918. उपाध्याय, बलदेव, 'भागवत सम्प्रदाय', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2010. उपाध्याय, बलदेव, 'भारतीय साहित्य में श्री राधा', विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2020. Bhattacharya, S.P., op. cit., pp. 549 ff.

78. यो. महा. 5.30.42, 3.122.51, 6अ. 14–27, 4.52. 10, 14, 10.27, 11.68, 3.9, 46, 3.38.52, 29.43.

79. Mackay, Aernest, "Early Indus Civilisation", New Delhi, 1976, p. 53. Thapliyal, K.K., "Studies in Ancient Indian Seals", Akhil Bhartiya Sanskrit Parishad, Lucknow, 1972, pp. 142, 143, 154, 262.

80. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोक्त पृ. 712. Awasthi, A.B.L., "Studies in Skanda Purana", pt. 2, Lucknow, 1978, pp. 126-140.

81. Raghvan, V., Journal of Oriental Research, Vol. 13. Mainkar, T.G., op. cit., pp. 140, 145.147, 242-44, 247.

82. यो. महा., 1.3.25, 4.19–20, 5.32.38, 7. 4–9, 32.10.11, 22–24, 33.3–4, 18–20, 2.1.28–29, 7.7, 8.22, 13.46.66, 3.4.24, 9. 45–46, 24.5, 16–18, 20–22, 24–26, 37, 39, 51, 55, 56, 26. 38, 27.36, 29.51, 57, 29.42, 30.34, 31.13–17, 21, 32.1, 34. 32, 36. 2, 61, 67, 37.11, 34, 52, 58, 38.24, 29, 41, 55, 39.3, 11, 14–16, 17–21–23, 25–27, 40.2, 44.4, 47.20, 23, 48. 24, 49.17, 21, 23, 29, 35–37, 39–41, 53.31, 59.5, 59.5, 77.5, 14–18, 104.3, 10–11, 16, 4.5.14, 6.12, 10.54, 66, 72, 13. 2, 25.7–10, 34–38, 26.10, 29.1, 4, 32.1, 34.9, 18, 5.28. 4–6, 6अ. 14.23.18. 10–11, 16–23, 30, 31, 19.2, 9, 43, 64–18. 6ब. 70.4, 110.21, 112.6, 115.1, 45, 123.5, 15, 124.17, 19.

83. Upadhyaya, B.S., 'India in Kalidas', 1947, p. 319.

84. Ibid. p. 318.

85. Upadhyaya, B.S., op. cit. p. 318.

ग्रन्थ के तृतीय प्रकरण से एक नवीनता के दर्शन होते हैं। इसी प्रकरण से लीला (मानवी) तथा सरस्वती (देवी) के संवादों का आरम्भ होता है, जो एक घटनाक्रम को कई घटनाओं से जोड़ता है। इस विवरण में सरस्वती देवी जीवन के पुनः लौटाए जाने के विषय में यह कह कर मना करती है कि दैवीय नियमों को स्वयं देवता भी अतिक्रमित नहीं करते, क्योंकि इससे प्राकृतिक चक्र में बाधा पड़ती है।[86] गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती, माया, गायत्री, मातृदेवी, जया, विजया, अपराजिता, जयन्ती, सिद्धा, उत्पला एवं अलम्बुसा[87] आदि मातृदेवियों के द्वारा उमा को प्रभावित कर शक्ति रूप के निर्गमन का उल्लेख[88] ग्रन्थ में शाक्त सम्प्रदाय का प्रभाव परिलक्षित करता है। अष्टमातृकाओं का उल्लेख भी ग्रन्थ में है[89], परन्तु कालिदास के कुमार–सम्भवम् ग्रन्थ में मातृकाओं के लिए मातृवम् शब्द का प्रयोग किया गया है।[90] इन मातृकाओं की व्याख्या संस्कृत के अमरकोष ग्रन्थ में इस प्रकार की गई है–

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेंद्राणी चामुण्डा सप्त मातरः।।
विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा।।[91]

कुषाणकाल के मुत्तरा प्रस्तर खण्ड पर तथा एलोरा के कैलाश मन्दिर गुहा संख्या चौदह में इनका उल्लेख प्राप्त है इनका सन्दर्भ स्कन्द देवता के साथ गुप्त कालीन अभिलेख में भी द्रष्टव्य है।[92] अष्टमातृकाओं का उल्लेख वराह पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड पुराण, देवीभागवत पुराण एवं लिंग पुराणों में मिलता है। इनमें सप्तमातृकाओं का क्रम अग्निपुराणवत् है। आठवीं मातृका का नाम वराह एवं मत्स्य पुराणों में 'योगीश्वरी', गरुड पुराण में 'चण्डिका', देवीभागवत पुराण में 'नारसिंही' और लिंग पुराण में 'आग्नेयिका' प्राप्त होता है। इसी प्रकार विश्वकर्म शास्त्र (चतुर्वर्ग चिन्तामणि) वृत्तखंड, प्रथम अध्याय, पृष्ठ बयासी से चौरासी तक, शिल्परत्न के चौबीसवें अध्याय के छिहत्तर से बयासी पंक्ति में पृष्ठ एक सौ छियालीस से सैंतालीस, देवतामूर्तिप्रकरण (8.61–75) में भी अष्टमातृकाओं का उल्लेख मिलता है।[93] भागवत पुराण में इन्हें भूत–प्रेतादि से सम्बद्ध माना गया है तथा इन्हें काम क्रोधादि आठ विकारों की अधिष्ठात्री कहा गया है।[94] मथुरा कला की देवी की मूर्तियों में लक्ष्मी, महिषमर्दिनी दुर्गा व मातृकाओं की मुख्यतः गणना की जा सकती है। मातृकाओं का कुषाणकाल में पर्याप्त बोलबाला रहा। कुषाण कालीन जो मातृकापट्ट हमें मिला है, उस पर अंकित देवियां मानव मुखों से नहीं अपितु पशुपक्षियों के मुखों से युक्त हैं और प्रत्येक की गोद में एक शिशु है। उनकी संख्या भी अनिवार्यतः सात नहीं है।[95] स्कन्द पुराण में सर्वप्रथम छह मातृकाओं– ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा या कृत्तिका

---

86. यो. महा.–उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग 50 से 67. 20. 10–14.

87. वही, 3. 16.29. 41. 50. 17.7. 10. 15. 17. 18. 24. 20. 38. 25.6. 29. 24.35. 50. 41.20. 57.7. 5.31. 45–48. 61. 33.24. 75. 18. 6.18. 1–3. 6अ. 18. 25.29–31. 19.8. 9. 22.3. 6ब 106.6. 181.30–39. 3.86.6. 4.5. 15. 7.19. 6अ 18.20.

88. वही, 6अ. 18

89. वही, 6अ. 18.20–24.

90. कालिदास, 'कुमारसम्भवम्', 7.38.

91. सिंह, अमर, 'अमरकोश' बेइल संस्करण (हस्तलिखित) द्वारा डा० तेज सिंह
दिसम्बर 3. 1973 वाराणसी, स्वर्ग वर्गः, पंक्ति 71 तथा देवनागरी संस्करण ग्रन्थ माला– 198 व्याकरण साहित्याचार्य साहित्यरत्नेन, श्री पंडित हरगोविन्द शास्त्रिणा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी–1.1970. वि. संवत् 2026 एवं विद् कमेन्ट्री ऑफ मलाया, डिपार्टमेंट ऑफ इण्डियन स्टडीज़, 1972.

92. बिहार प्रस्तर स्तम्भ, स्कन्दगुप्त अभिलेख संख्या 1.9 Upadhyaya, B.S., op. cit., p. 316.

93. उपाध्याय, श्यामानन्द, 'हिन्दू प्रतिमा विज्ञान में मातृकाएं', पृ. 52–53. अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध, 1994. (प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

94. भागवत पुराण, 10.6.28

95. जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, 'मथुरा की मूर्तिकला', मथुरा, 1965. पृ. 25

का तदनन्तर सप्त मातृकाओं, नव मातृकाओं और यहाँ तक कि चौंसठ मातृकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके विषय में यह बताया गया है कि प्रारम्भिक मध्य युग में आते–आते तान्त्रिक प्रभाव के कारण इनकी संख्या में उत्तरोत्तर अभिवर्द्धन हो गया।[96]

इस प्रकार गुप्तकाल तक जिन मातृकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है उनकी संख्या सात है परन्तु आलोच्य ग्रन्थ का रचयिता इससे कहीं आगे जाता है और इस प्रकार से वह अष्टमातृकाओं का उल्लेख करता है। इन अष्टमातृकाओं का वर्णन अन्य ग्रन्थों में प्राप्त वर्णन से भिन्न है। यह निदर्शन ग्रन्थ में तान्त्रिक प्रभावों से प्रभावित प्रतीत होता है और इस प्रकार से यह विवरण प्रश्नगत ग्रन्थ को उसकी रचनाकाल के सन्दर्भ में गुप्तकाल के पश्चात् विचार करने को बाध्य करता है। यह पहले ही दर्शाया जा चुका है कि आलोच्य ग्रन्थ शाक्त सम्प्रदाय से प्रभावित है। वस्तुतः आर्य धर्म में विष्णु और शिव के अतिरिक्त अगर किसी देवता की महिमा एवं गरिमा चरम सीमा पर पहुँची है, तो वह केवल शक्ति की। देवीभागवत पुराण के मतानुसार देवी को वेदान्त प्रतिपाद्य से अभिन्न अथवा तद्रूप निर्दिष्ट किया गया है, वे अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जो पराशक्ति का, जिसको ब्रह्म कहते हैं, जो परमात्मा रूप है, उसको नित्य और सनातन मानकर सदा मन से ध्यान करते हैं। इस प्रकार देवी ही ब्रह्मरूपिणी, परमात्मा और शक्ति–सम्पन्ना मानी गई है।[97] योगवासिष्ठ महारामायण में जिस प्रकार शाक्त सम्प्रदाय का उपरिनिर्दिष्ट रूप में विवरण दिया जा चुका है, उसमें मातृकाओं को सर्वोत्कृष्ट शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है और इस प्रकार से देवी भगवती को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। निर्वाण प्रकरण के आलोच्य ग्रन्थ के उपरिनिर्दिष्ट विवरण की तुलना शाक्त सम्प्रदाय के अद्वैतवादी उपनिषदों से की जा सकती है। ऐसी दशा में इस शाक्त सम्प्रदाय के समन्वित स्वरूप का वर्णन जिस प्रकार ग्रन्थ में किया गया है, वह प्रश्नगत ग्रन्थ को उसके रचनाकाल के सन्दर्भ में नवीं–दसवीं शताब्दी में रखने के लिए धारणा निर्धारित करने सम्बन्धी विचारों को बल प्रदान करता है, क्योंकि इसी समय अर्थात् मध्य पूर्वयुगीन काल में अनेक देवियों की प्रामाणिक मूर्ति निर्मित करने के विषय में हमें जानकारी प्राप्त होती है।[98]

(इ) प्राचीन पारलौकिक कल्पना

योगवासिष्ठ महारामायण में उपर्युक्त दार्शनिक भावों के अतिरिक्त स्वर्ग एवं नर्क की परिकल्पना भी विद्यमान है।[99] इसमें यह परिकल्पना की गई कि इस शारीरिक जीवन के अनन्तर भी जीवन है। कालिदास–कृत रघुवंशम् एवं कुमारसंभवम् में लोकान्तर एवं परलोक का वर्णन आता है।[100] स्वर्ग एवं नर्क का सम्प्रत्यय, कर्म के परिणामों, जिसमें गुणों एवं दोषों का समावेश हो, उस पर आधारित दर्शन था, जिनकी परिकल्पना प्राचीन है, परन्तु जिसको नये आयाम बाद में मिले। अच्छे कर्म के द्वारा मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर सकता था। इसी प्रकार से कालिदास ने अपने ग्रन्थ में इस दार्शनिक परिकल्पना का समावेश किया है।[101] लोकों के विषय में वेदों के जो विवरण हैं वे बड़ी ही सरल अवधारणाओं पर आधारित हैं। इस विवरण के अुनसार पृथ्वी के ऊपर स्वर्ग की मान्यता की गई, जिसके विषय में आगे आने वाले समय में धार्मिक जटिलताएं दृष्टिगोचर होती हैं। पृथ्वी के नीचे पाताल लोक एवं उसके नीचे नर्क की परिकल्पना प्राप्त होती है।[102] पौराणिक मान्यताओं में पाताल लोक के नीचे इक्कीस नर्क होते हैं।[103] नर्क की परिकल्पना में यह धारणा

96 Awasthi, A.B.L., op. cit., pp. 165-169 and 165-178.

97 देवी भागवत, क्षेमराज, कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालयाध्यक्ष, मुंबई, 18.47 एवं 3.7.15

98 मिश्र, जयशंकर, 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास', पृ. 314 एवं आगे। Epigraphia Indica, Vol. 14, pp. 177-184.

99 यो. महा. 1.1.31, 1.25.32, 36–39, 3.31.20, 24–26, 53.29, 5.22 13, 14, 6अ. 107.26

100 कालिदास, रघुवंशम्, 1. 69, 8.49, 85 कालिदास, कुमारसंभवम्, 4.10, 38

101 Upadhyaya, B.S., op. cit., p. 339.

102 Basam, AL., 'The Wonder That was India', New Delhi, 1967, p. 490.

103 मनुस्मृति, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, 1925, 4.88–90, विष्णु पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2014, 2.6

विद्यमान थी कि वे पापी व्यक्तियों के लिए बने हैं परन्तु सतत रूप से ऐसे व्यक्तियों के लिए वहाँ दंड निर्धारित रहे, ऐसी भावना भी इस दर्शन में विद्यमान न थी। ये ऐसे स्थान हैं, जहाँ दुष्ट व्यक्तियों को उनके द्वारा प्राप्त दण्डों के आधार पर शुद्धता प्राप्त होती है। गायत्री मंत्र में विद्यमान 'स्वः' ही स्वर्ग माना गया है।[104] पुराणों के अनुसार, जिस स्थान अथवा लोक का गान या प्रशंसा की जाय, वह स्वर्ग है।[105] देवताओं के निवास–स्थान के विषय में स्वर्ग का उल्लेख किया गया है। पद्मपुराण में स्वर्ग के गुण-दोषों की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि वहाँ पर नन्दन आदि शुभ कामों को पूर्ण करने वाले रमणीय दिव्य एवं पुण्य विविध उद्यान हैं। वहाँ पर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्ष सुशोभित हैं तथा सुन्दर अप्सराओं से युक्त दिव्य विमान हैं, और चारों ओर सभी प्रकार के कामरस विद्यमान हैं, तरुण सूर्य के वर्ण वाले मुक्ताजाल हैं। शुभ्रमण्डल जो कि हेमशय्या पर आसीन है, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला, सुख–दुःख से विवर्जित है। वहाँ पर सुख से वे ही नर विचरण करते हैं जिनके कृत्य उत्तम हैं तथा न वहाँ पर नास्तिक हैं, न चोर हैं, अपितु जितेन्द्रिय हैं। न वहाँ पर नृशंस हैं, न अहंवादी और न ही कृतघ्न लोग हैं। दयावान्, सत्यनिष्ठ, तपस्वी, शूर, क्षमा–शील तथा परहित में लगे हुए लोग वहाँ रहते हैं। जो लोग दानशील एवं याज्ञिक कर्मकाण्ड करने वाले हैं, ऐसे ही लोग वहाँ हैं। वहाँ न रोग हैं, न वृद्धावस्था है, न मृत्यु है, न शोक है, न ही वहाँ पर अहंकार की भावना विद्यमान है, न ही वहाँ पर बुभुक्षा है और न ही पिपासा है, न ही किसी को किसी भी प्रकार की ईर्ष्या एवं पश्चाताप है। इस प्रकार से स्वर्ग में अन्य बहुत से गुण हैं परन्तु स्वर्ग के कुछ दोष भी हैं, वे लोग ही स्वर्ग का भोग कर सकते हैं, जिनके शुभ कर्म हैं। इन शुभकर्मों का संचयन मनुष्य भूमि पर ही करता है तथा जब यह संचयन समाप्त हो जाता है, तो मनुष्य को पुनः इसी धरा पर जन्म धारण करना पड़ता है और इस प्रकार जन्म धारण करने के लिए उसे स्वर्ग से गिरना पड़ता है।[106] इस प्रकार से इस दर्शन के अनुसार यह धरा कर्म भूमि तथा स्वर्ग कर्मभूमि में संचित पुण्यों की व्यय भूमि है। जहाँ स्वर्ग को सुख का साधान माना गया है, वहीं नर्क को मार्कण्डेय पुराण में दुखों का आगार वर्णित किया गया है।[107] योगवासिष्ठ महारामायण भी स्वर्ग के गुण एवं दोषों पर प्रकाश डालता है।[108] इसके अतिरिक्त वीरों को स्वर्ग–प्राप्ति की परिकल्पना का भाव भी बड़ी सुन्दरता से इसमें चित्रित किया गया है।[109] वे व्यक्ति जो अधर्म के लिए युद्धरत रहकर शरीरान्त करते हैं, उन्हें नर्कगामी बताया गया है।[110] ग्रन्थकार के इस विवरण में एक नवीनता का दर्शन तब होता है, जब वह शिखिध्वज के माध्यम से सर्वत्र स्वर्ग की बात कहता है।[111] ऐसा कथन वास्तव में साहित्य में किसी समृद्धशाली

---

104 Williams, M.M., "Religious Life in Ancient India", Delhi, 190, p. 105 and n.

105. पाण्डेय, राजबलि, पूर्वोक्त, पृ. 695

106. पद्मपुराण भूखण्ड, आनन्दाश्रम, पुणे, 1894, अध्याय 90.

107. Pargiter, F.E., "The Markaandeya- Purana", English Translatic Faridabad, 1969, pp. 47-50, 54, 57-61, 69-72, 158, 247, 250, 36-41, 75-78, 88-90, 147, 152, 168,169, 279, 280, 283, 284, 310, 409, 443, 460, 462, 473, 513, 530, 652, 687, 688.

108. दूत उवाच–
स्वर्गे पुण्यस्य् सामग्र्या भुज्यते परमं सुखम्।
उत्तमेन तु पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गमुत्तमम्।।
मध्यमेन तथा मध्यः स्वर्गो भवति नान्यथा।
कनिष्ठेन तु पुण्येन स्वर्गो भवति तादृशः।।
परोत्कर्षासहिष्णुत्वं स्पर्धाचैवसमैश्रृवतैः।
कनिष्ठेषु च संतोषो यावत् पुण्यक्षयो भवेत।।
क्षीणे पुण्ये विशंत्येतं मर्त्यलोकं च मानवाः।
इत्यादिगुणदोषाश्रव स्वर्गे ,राजन्नवस्थिताः।।
(यो. महा. 1 1.36–38)

109. यो. महा. 3.31.20, 24, 28

110. वही, 25. 26

111. वही, 6अ. 107.26.

समाज के होने पर ही सम्भव है। इसी प्रकार अरिष्टनेमि की कथा में स्वर्ग की मनोकामना न करना एवं तप द्वारा शरीर शुद्ध करके शरीर को छोड़ना अर्थात् इसी मृत्युलोक में रहकर कठोर तपः पूर्ण कर्म के माध्यम से शरीर की शुद्धता की प्रप्ति की बात कहना एवं इन्द्र के दूत को अरिष्टनेमि द्वारा लौटा देना[112] आदि कुछ ऐसे भाव हैं, जो स्वर्ग–नर्क के पौराणिक दर्शन के दर्पण में अल्पदर्शनीय से हैं। वास्तव में मनुष्य में ऐसी भावना तभी संभव है जबकि समृद्धशाली स्थिति तत्कालीन समाज में हो। इतिहास की दृष्टि से इस देश में समृद्धशाली युग गुप्त–युग था।[113] अतः इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्धारण करने का प्रयासपूर्ण मनन किया जाए तो उसे उसकी प्रारम्भिक सीमा के आधार पर निष्कर्षतः गुप्तकाल के बाद ही परिकल्पित किया जा सकेगा।

योगवासिष्ठ महारामायण में पुनर्जन्म के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता है। इसके अनुसार देवों एवं प्राणियों का भी जन्म एवं पुनर्जन्म होता है।[114] इसी क्रम में ग्रन्थकार द्वारा अनेक वाल्मीकि, अनेक व्यास एवं अनेक भृगु के होने की परिकल्पना के साथ अन्य राम एवं वसिष्ठ की भी कल्पना का प्रस्तुतीकरण किया गया है।[115] इसी क्रम में ग्रन्थकार ऐसे व्यासों का उल्लेख भी करता है जिनकी स्थिति लघु व्यास की है[116] और इसी आधार को लेते हुए शिव प्रसाद भट्टाचार्य प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी का मानते हैं।[117] परन्तु यह मान्यता असंदिग्ध इसलिए नहीं है क्योंकि यदि बल्लाल सेन के "दान–सागर" में वैसा ही वर्णन है, जैसा कि योगवासिष्ठ महारामायण में है और ऐसा वर्णन इसके पहले नहीं प्राप्त होता है, तो यह भी सम्भव है कि दानसागर ग्रन्थ के लेखक द्वारा यह भावना अथवा भागवत पुराण में यह धारणा योगवासिष्ठ महारामायण से ली गई हो। इसी कारण आलोच्य ग्रन्थ का रचनाकाल दसवीं शताब्दी न होकर उसके पूर्व हो।

आगे प्रश्नगत ग्रन्थकार कहता है कि जैसे देश के किसी एक क्षेत्र में स्थित मनुष्य दूर देश में अपने गडे हुए धन को मन से निरन्तर देखा करता है, उसी प्रकार यह जीव सैकडों जाति से पूर्ण और भ्रम प्राप्त होते हुए भी अपनी वासना के अन्तः स्थित अभीष्ट पदार्थ को भली–भाँति देखता है और जो जीव हैं, उनके जन्म एवं मरण प्रयोजक सृष्टियों में जो स्मृति कारण है, वह मोक्ष के अभाव से पूर्व जन्म के मिथ्या पदार्थों के अनुभव की वासना से अवश्य उत्पन्न है।[118] जीवात्मा के जन्म की निरंतरता उसे ज्ञान–आधारित अथवा वैराग्य–आधारित शास्त्रों को अपनाने से समाप्ति की ओर बढ़ जाती है अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर समाप्त हो जाती है।[119] आगे इन्द्र और अहल्या वृतान्त में भी पुनर्जन्म के दर्शन का प्रतिपादन इन्द्र की वासनामय भावना के आधार पर वर्णित किया गया है।[120] इसी प्रकार आगे भी बताया गया है कि ब्रह्म से पृथक् होकर आत्मा विभिन्न जन्म धारण करती है। यह घटनाचक्र व्यक्ति के पूर्व के कर्मों पर आधारित होता है और यही कारण है कि मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप आत्मा का उत्थान एवं पतनोन्मुख जन्म धारण करने की प्रक्रिया अपनाना निश्चित होता है।[121] इस प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण का पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्मों पर आधारित है।

---

112. वही, 1.1. 40–41.

113. Mookerji, R.K. "The Gupta Empire", Delhi, 1973, pp. 129-155.

114. यो. महा. 2.3. 19, 20, 3.27. 35–58, 29.5, 26.21, 4. 10. 58–66, 70–72, 5.20. 14.22, 25–27, 29, 45.2

115. वही 2.3. 22–27, 29.

116. वहीं

117. Bhattacharya, S.P., op. cit., pp, 549 and ff.

118. यो. महा. 3.40.37, 56. 25, 32

119. वही, 3.67.11

120. वही, 90.10.11.

121. वही 6अ. 124.3

सभी आर्य दार्शनिक एवं धार्मिक सम्प्रदायों में इस सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त है कि मनुष्य अपने वर्तमान जीवन के अच्छे एवं बुरे कर्मों के फलभोग के लिए पुनर्जन्म ग्रहण करता है। यह कारण–कार्य श्रृंखला के अनुसार होता है। योनियों का निर्धारण भी कर्म के ही आधार पर होता है। इसी को संसार चक्र (जन्म–मरण चक्र) भी कहते हैं। इसीलिए पुनर्जन्म से मुक्ति पाने के उपाय विविध आचार्यों ने अपने–अपने ढंग से बताये हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म सिद्धान्त (कार्य–कारण–सम्बन्ध) पर अवलम्बित है। पुनर्जन्म का चक्र उस समय तक चलता रहता है, जब तक आत्मा विमुक्त नहीं होती। बौद्ध अथवा जैन सभी ने कहीं न कहीं पर सूक्ष्म रूप में इस विषय का स्पर्श किया है।[122] कालिदास के समय में इसी क्रम में लोक–परलोक के प्रति व्यक्तियों में भावना काफी विकसित हो चुकी थी[123] परन्तु इस विषय को लेते हुए पुनर्जन्म के सन्दर्भ में योगवासिष्ठ महारामायण में जो भाव विद्यमान हैं, वे कालिदास कालीन इस दर्शन से अधिक विकसित प्रतीत होते हैं।[124] पुनर्जन्म की अवधारणा न केवल भारतीय दर्शन अपितु यूनानी एवं मिस्र दर्शन में भी द्रष्टव्य है।[125] अतः इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की निश्चित अवधारणा की प्रस्तुति नहीं की जा सकती है।

(ई) अन्य दार्शनिक तत्त्व :

ग्रन्थकार अपने कथानक में अन्य विषयों के साथ जैन दर्शन के भी कुछ पक्षों को भी रखता है।[126] इस प्रकार वह संचित दर्शन–राशि को राम–वशिष्ठोपाख्यान में जिस प्रकार नदी अपने जल का संचयन नहीं करती है, उसी प्रकार उन्हें प्रवाहित कर देता है। जहाँ पर जैन दर्शन के अंश ग्रन्थ में द्रष्टव्य हैं, वहाँ पर उसमें दो प्रमुख आधार सामने आते हैं– 1. जिन[127], 2. कैवल्य एवं स्थितिप्रज्ञता[128]। वास्तव में जिन शब्द जैन तीर्थङ्कर स्वामी महावीर के लिए प्रयुक्त हुआ, जो उनकी इन्द्रियनिग्रहता का परिचायक एवं एक उपाधि की तरह का शब्द है और जिसका परिवर्तित रूप जैन धर्म के रूप में जाना जाता है।[129] जहाँ तक कैवल्य शब्द का प्रश्न है, इसका प्रयोग सर्वप्रथम पातञ्जलयोगसूत्र में देखने को मिलता है।[130] उसके अनुसार "जब सभी गुणों – सत्त्व, रज और तम का पुरुषार्थ (कार्य) समाप्त हो जाता है और उससे जो स्थिति उत्पन्न होती है, वही सभी विकारों से रहित स्थिति कैवल्य है अथवा अपने स्वरूप (शुद्ध ज्ञान रूप) में प्रतिष्ठा (सम्यक स्थिति) कैवल्य है। स्वामी महावीर ने इसी कैवल्य (ज्ञान) की प्राप्ति की थी।[131] इस प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ में जैन धर्म के लक्षणों की छाया विद्यमान है, जो धारणा ग्रन्थ के रचनाकाल का इस धर्म के विकास के पश्चात् मानने के लिए उत्प्रेरित करती है।

ग्रन्थ में अविद्या के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि इसी अविद्या के कारण संसार की सर्जना है और जो

---

122. पाण्डेय, रामचन्द्र, 'पुनर्जन्मवाद', हिन्दी विश्वकोष, खण्ड 7, पृ. 238–39

123. Upadhyaya, B.S., op. cit., pp. 338-39.

124. यो. महा. 1.1.31, 36–39, 3.31.20, 24–26, 28, 53.29, 6अ. 107.26, 2.3. 19–20, 3.27. 35–58, 29.5, 26.21, 4.10. 58–66, 70–72, 5.20, 14–22, 25–27, 29, 45.21, 2.3.22–27, 29. Upadhyaya, B.S., op. cit., pp. 338-39.

125. शर्मा, शिवानन्द, 'पुनर्जन्मवाद–इतिहास और विकास', हिन्दी विश्वकोष, खण्ड 7, पृ. 239–40.

126. यो. महा. 1.15.8, 2.14.28. 35–36, 3.4.56

127. वही, 1.15.8

128. वही, 2. 14.28, 35–36, 3.4.56.

129. Basham, A.L., op. cit., pp. 289-290. वेदालंकार, हरिदत्त, 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास', 1992, दिल्ली, पृ. 66

130. 'पुरुषार्थशून्यानाम् गुणानाम प्रतिप्रसवः।
कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा चितिशक्तिरिति।।'
(पतंजलि, "पातञ्जल योगसूत्राणि", कैवल्यपाद, सूत्र 33, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, 1932.)

131. मिश्र, जयशंकर, "प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास", पृ. 748

भी कुछ दृश्यमान है एक प्रकार का भ्रम है। विद्या के माध्यम से इसी भ्रमजाल को काटकर यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार ये समस्त चक्र एक परम शान्तमय ब्रह्म में सन्नद्ध है।[132] इस प्रकार जो कुछ भी दृश्यमान है चाहे वह वेदशास्त्र ही क्यों न हो, सभी अविद्या के कारण है। यह अविद्या (समस्त, जो इस संसार में विद्यमान स्थावर एवं जंगम) अपने में सत्त्व गुण लिये हुए भी तमोगुण से परिपूर्ण है। अविद्या से बचने का साधन भी ग्रन्थकार स्पष्ट करता है।[133] मयंकर के अनुसार अविद्या की अवधारणा औपनिषदिक धारा से सम्मोहित है और इसमें शंकर के वेदान्त जैसे उनके ब्रह्मसूत्र पर किये गए भाष्य और गौणपाद के ग्रन्थों का प्रभाव भी द्रष्टव्य है। यही नहीं, इसमें भागवत पुराण के सांख्य दर्शन, जिसका विकास भगवद्गीता के साथ हुआ, उसका भी प्रभाव द्रष्टव्य है।[134] इस प्रकार यहाँ पर वर्णित अविद्या बौद्ध दर्शन से भिन्न है। बौद्ध दर्शन में कारणवाद के सिद्धान्त को निरूपित करते हुए अर्थात् प्रतीत्यसमुत्पाद के क्रम में अविद्या को मुख्य एवं पूर्ण कारण माना गया है इसी के फलस्वरूप मनुष्य संसार में जन्म लेता है, जो मृत्यु के पश्चात् भी समाप्त नहीं होता और संसार के समस्त क्रम का चक्र इसी अविद्या के कारण चलता रहता है। यही अविद्या दुःखों का मूल कारण है और इसी दर्शन को सांख्य दर्शन के प्रत्यय दर्शन से सम्बद्ध बताया गया है[135] वास्तविकता यह है कि वेदान्तियों के दर्शन से प्रभावित होते हुए भी बौद्ध दर्शन इस विषय में भिन्नता रखता है और ब्रह्मसत्ता पर विश्वास नहीं करता।[136] इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ में जो भी अविद्या का वर्णन है, वह वेदान्त दर्शन, भगवद्गीता तथा भागवत पुराण से प्रभावित है। अब यदि उक्त ग्रन्थों के रचनाकाल को देखा जाय तो इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्धारण करने में जो तथ्य सामने आता है, वह स्पष्ट करता है कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल गुप्तोत्तरयुगीन होना चाहिए।

आलोच्य ग्रन्थ में त्रिक–दर्शन का होना एक महत्त्वपूर्ण बात है। इस दर्शन के आधार पर बहुत कुछ यह निर्धारित किया जा सकता है कि आलोच्य ग्रन्थ की रचना कश्मीर में हुई होगी, यद्यपि इस धारणा पर भी अपवादों की कमी नहीं है, तथापि विरोधाभासपूर्ण तर्कों के होते हुए भी प्रश्नगत ग्रन्थ में त्रिक–दर्शन का होना उसके कश्मीरी प्रभाव की ओर इंगित तो करता ही है। शिव प्रसाद भट्टाचार्य एवं मयंकर महोदय के अनुसार प्रश्नगत ग्रन्थ त्रिक–दर्शन से प्रभावित है।[137] इस प्रकार यह ग्रन्थ जिस वातावरण की ओर दृष्टिपात करता है वह कश्मीर में नागार्जुन से शंकराचार्य के समय तक प्रभावित है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हो रही होगी उसी समय कश्मीर में बौद्ध सम्प्रदाय के साथ अन्य सम्प्रदाय भी फलीभूत हो रहे होंगे और यही कारण है कि सभी मान्यताओं ने एक दूसरे को प्रभावित

---

132 यो. महा., 6व. 32 3. 117– 14–43. 6अ. 7–8.

133 वही. 6अ. 9–10

134 Mainkar, T.G., op. cit., pp. 139. 141. 142

135 पातञ्जल दर्शनम् (योग–सांख्य), कलकत्ता. 1874. 2 4. 14 शंकराचार्य भाष्य वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), टीका गोविन्दनन्द. बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1863 पृ. 549

136. Kern, H., "Manual of Indian Budhism", Delhi, 1974, p. 49.

137. Bhattacharya, S.P., op. cit., pp. 549 and ff. Mainker, T.G., op. cit., pp. 139, 141, 142. तथा
सर्वशक्तिर्हि तद् ब्रह्म सदेकं विद्यते यदा।
तदा निर्मल एवाऽयं द्वित्वैकत्वकलोदयः।।
सति द्वित्वे किलैकं स्यात् सत्येकत्वे द्विरूपता।
कले द्वे अपि चिद्रूपे चिद्रूपत्वात्तदप्यसत्।।
एकाभावाद् भावोऽत्र एकत्वद्वित्वयोर्द्वयोः।
एकं विना न द्वितीयं न द्वितीयं विनैकता।। (यो. महा. 6अ. 33. 3–5)
षट्त्रिंशत्पदकोटिस्यमुन्मन्यन्तदशातिगम्।
कुर्वन्तमन्तः शब्दादीश्चोदयन्तं मनः खगम्।। (वही, 6अ. 39 15)
तथा 5. 72. 21. 33–34. 36–37

किया होगा। फलतः एक ऐसा सम्प्रदाय विकसित हुआ, जो संकीर्ण नहीं था, जिसमें न ही वास्तविक बौद्ध दर्शन और न ही शैव दर्शन द्रष्टव्य था इसी दार्शनिक विकास के क्रम में जो दर्शन फलीभूत हुआ, वह वास्तव में एक का दार्शनिक सामंजस्य तथा दूसरे की कर्मकाण्डीय व्यवस्था अपने में समाहित किये हुआ था; किन्तु इसी क्रम में कुछ ही समयपूर्व नव सौ पचास ईसवी में अभिनवगुप्त आदि के नेतृत्व में कश्मीर में त्रिक–दर्शन या प्रत्ययभिज्ञान का प्रसार हुआ। इसे ही कश्मीर में प्रत्ययभिज्ञान (प्रत्ययभिज्ञ), स्पन्द दर्शन तथा (त्रिकमत) नाम से सम्बोधित किया जाता था, क्योंकि इसमें नरशिव और शक्ति अथवा पाशु और पति तीन वस्तुओं और उपर्युक्त तीन भेदों का प्रतिपादन किया गया है, इसीलिए इसे त्रिक–दर्शन कहा गया है। सम्पूर्ण संसार का उदगम शिवशक्ति जो स्पन्दरूपा है, उससे हुआ, इसका एक नाम स्पन्द भी पड़ा। इसे ''प्रत्यभिज्ञा दर्शन'' इसलिए कहते हैं क्योंकि यह मानता है कि जीव अद्वैत ही है। वह अपने स्वरूप को भूलकर देश–प्राण–बुद्धि से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अपने सच्चे स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा से वह परिच्छिन्न, कृत्रिम से मुक्त होकर अद्वैत लाभ करता है। इस दर्शन की विचारधारा को स्वातन्त्र्यवाद, रहस्यशास्त्र, अद्वैत शैवागम, शिवशास्त्र, शिवशासन, ईश्वराद्वयवाद, शिवाद्वय–दर्शन, षडर्धशास्त्र, षडर्थ–क्रमविज्ञान और त्र्यंबकशास्त्र भी कहते हैं। इसका आविर्भाव ऋषि दुर्वासा द्वारा माना जाता है। इसका आदि प्रचारक त्र्यंबक को माना जाता है इसीलिए इसे त्र्यंबक दर्शन भी कहते हैं। इसके प्रथम लिपिबद्धकर्ता आचार्य वसुगुप्त थे। इन्होंने अपनी स्पन्दकारिका नामक ग्रन्थ में शिवसूत्रों को सन्निहित कर इस दर्शन पर प्रकाश डाला जो इस दर्शन के मूलाधार हैं। इनका काल लगभग आठ सौ ईसवी है।[138] जयन्त भट्ट ने अपनी न्याय–मञ्जरी में इस दर्शन का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि लक्ष्य की पहचान भूत तथा वर्तमान के आधार पर अलग–अलग होते हुए भी साम्य इसलिए रखती है, क्योंकि वर्तमान का आधार भूतकालीन अनुभवों पर ही निर्भर रहता है और वास्तविकता यह है कि अवचेतन में भूतकालीन स्मृतियाँ विस्मृत नहीं होती हैं।[139] माधवाचार्य के ''सर्वदर्शनसंग्रह'' में भी इस दर्शन का उल्लेख मिलता है। यह दर्शन ''ईश्वराद्वयवाद'' इसीलिए कहलाता है क्योंकि परमेश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अज्ञान या माया इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। यह उसी का स्वेच्छा परिग्रहीत रूप है। वह अपने स्वातंत्र्य से, अपनी ही इच्छा से अपने को ढक भी लेता है और अपनी इच्छा से अपने को प्रकट भी करता है। शंकर वेदान्त या ब्रह्मवाद भी अद्वैतवादी है किन्तु ब्रह्मवाद और ईश्वराद्वयवाद में पर्याप्त अंतर है। ब्रह्मवाद ब्रह्म को निर्गुण तथा निर्विकार चैतन्य मात्र मानता है। उसके अनुसार ब्रह्म में कर्तव्य नहीं है, किन्तु ईश्वराद्वयवाद के अनुसार परमशिव में स्वातंत्र्य या कर्तृत्व हैं, जिसके द्वारा वह सदा सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह और विलय इन पंचकृत्यों को करता रहता है। इस दर्शन में छत्तीस तत्त्व माने गए हैं। इनको तीन मुख्य भागों द्वारा समझ सकते हैं– शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्व। विद्यातत्त्व में तीन तत्त्वों का अन्तर्भाव है और आत्मतत्त्व में इकत्तीस तत्त्वों का।[140] अब यह स्पष्ट है कि योगवासिष्ठ महारामायण त्रिक–दर्शन से प्रभावित है। इस दर्शन के इतिहास एवं विकास के क्रम पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला जा चुका है। इसी आधार पर मयंकर महोदय ने प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की अन्तिम सीमा दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी मानी है।[141] फिर भी उपर्युक्त विषय में थोड़ी और गम्भीरता से चिन्तन इस तर्क को मानने के लिए सन्देहास्पद स्थिति उत्पन्न करता है, क्योंकि वास्तव में त्रिक–दर्शन के प्रणेता एवं प्रचारक वसुगुप्त तथा जयन्त भट्ट को माना गया है, जिनकी तिथि नवीं शताब्दी ई. से आगे नहीं है।[142] इस स्थिति में जबकि यह बात स्पष्ट है कि प्रश्नगत ग्रन्थ का संक्षिप्तीकरण नवीं शताब्दी के मध्य में हो चुका था, तब यह समस्या सामने आती है कि ग्रन्थ के

---

138. Keith, A.B., "History of Sanskrit Literature", p. 481..

139 . Singh, B.N., "Dictionary of Indian Philosophical Concepts", Varanasi, 1988, pp. 226-27. सिंह, जयदेव, संगीत–प्रोड्यूसर, आकाशवाणी, दिल्ली का लेख ''प्रत्यभिज्ञ–इतिहास एवं विकास'', हिन्दी विश्वकोष, जिल्द 7, पृ. 450 एवं आगे।

140. Singh, B.N. "Dictionary of Indian Philosophical Concepts", pp. 226-27. Mainkar, T.G., op. cit. pp. 184-85.

141. Mainkar, T.G., op. cit., pp. 184-85.

142. Keith, A.B., op. cit., pp. 221, 484, 481.

रचनाकाल की अंतिम सीमा इसके अनन्तर किस प्रकार से मानी जा सकती है?. समीक्षात्मक दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि ऐतिहासिक दृष्टि से त्रिक–दर्शन का काल नवीं शताब्दी से बहुत पहले निर्धारित किया जा सकात है। वेदों के समान शैवागमों का उद्‌भव भी शैव अनादिकाल से ही मानते हैं, क्योंकि ये भगवान् शिव द्वारा रचित किये गए हैं। इस कथन में दैविकता अधिक एवं मानवीय तथ्यपूर्ण विचारधारा कम है। फिर भी यदि इस परम्परा पर विश्वास किया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि कलियुग में शिव द्वारा दुर्वासा ऋषि को रहस्यशास्त्र के प्रचार हेतु आदेशित किया गया। इसके पश्चात् ऋषि दुर्वासा द्वारा यह कार्य त्रयंबक के ऊपर डाला गया तथा उनकी सन्तति एवं पुत्र–पौत्रों द्वारा इसे कश्मीर में प्रचारित एवं प्रसारित किया गया। अन्य स्वर्गीय सम्प्रदायों से अपनी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय में अपनी अति प्राचीनता दिखाने की एक परम्परागत प्रवृत्ति होती है। उसी परम्परा–पोषित विश्वास के कारण शैव आचार्यो ने काश्मीर शैवागम के प्रादुर्भाव को कलियुग के प्रारम्भ के उल्लेख द्वारा प्राचीन बताने की चेष्टा की है किन्तु इस परम्परागत विवरण में थोड़ी बहुत ऐतिह्यस्पर्श की गवेषण भी की जा सकती है। शिवदृष्टि में आचार्य सोमानन्द ने अपने आपको त्र्यम्बकादित्य की बीसवीं पीढ़ी में बताया है। उसके पूर्वज ने ब्राह्मण कन्या से विवाह किया था और उससे उत्पन्न सोलहवाँ पूर्व पुरुष संगमादित्य कश्मीर में आकर बसा था। संगमादित्य के बाद वर्षादित्य, अरुणादित्य और आनन्द की तीन पीढियां और बीतने पर बीसवीं पीढी में सोमानन्द उत्पन्न हुआ।

भगवद्‌गीता–विवरण के अन्त में स्पन्दकारिका के विवृत्तिकार राजानक रामकण्ठ ने अपने आपको मुक्ताकण का अनुज बताया है–

यो नारायण इत्यभूच्छ्रुतनिधिः श्रीकान्यकुब्जे द्विज–
स्तद्वंशे स्वगुणप्रकर्षखचितो मुक्ताकणोऽन्योऽभवत्।
तस्यैषा सदृशानुजेन रचितो रामेण विद्वज्जन–
श्लाघ्यत्वात्सफलश्रमेण भगवद्‌गीतापदार्थ–प्रथा।।

राजतरंगिणी से यह भी ज्ञात होता है कि मुक्ताकण कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा (855–883 ई.) का समकालीन था।[143] रामकण्ठ भी अवन्ति वर्मा का समसामयिक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त स्पन्दविवृत्ति में रामकण्ठ ने अपने आपको आचार्य उत्पलदेव का शिष्य बताया है। उत्पलदेव स्वयं आचार्य सोमानन्द के शिष्य थे। परम्परागत रीति से प्रत्येक पीढी के लिए पच्चीस वर्षो की अवधि मान लें तो इस प्रकार रामकण्ठ के प्रगुरु आचार्य सोमानन्द का आविर्भाव आठवीं शती ई. की समाप्ति के आस–पास हुआ होगा और सोमानन्द का चतुर्थ पूर्व पुरुष संगमादित्य उससे सौ वर्ष पूर्व कश्मीर में बस गया होगा। संगमादित्य का सोलहवाँ पूर्वज त्र्यम्बकादित्य इस प्रकार उससे चार सौ वर्ष पूर्व हुआ होगा। इस तरह यह कहा जा सकता है कि त्र्यम्बकादित्य के लगभग पाँच सौ वर्षो के पश्चात् सोमानन्द उत्पन्न हुआ होगा। एतदनुसार श्री सोमानन्द के बीसवें पूर्वपुरुष त्र्यम्बकादित्य को महामुनि दुर्वासा से शैवशास्त्र की प्राप्ति लगभग तीसरी शती ईसवी के बाद किसी समय हुई होगी। ऐसा ज्ञात होता है कि कन्नौज-नरेश यशोवर्मन् पर अपनी विजय के पश्चात् कश्मीर–नृपति ललितादित्य (735–761 ई.) आचार्य अभिनवगुप्त के पूर्वपुरुष अत्रिगुप्त की विद्वता से अत्यधिक प्रभावित होकर उसे अपने राज्य कश्मीर में ले आया था। इससे यह भी संकेत मिलता है कि उस समय कश्मीर का राजपरिवार शैवधर्म का अनुयायी था अथवा उसके प्रति श्रद्धालु था और कश्मीर में तांत्रिक शैवमत के विकास के अनुकूल

143. मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।। (कल्हण पण्डित, राजतरंगिणी 1840 ईसवी, पेरिस, पंचम तरंग, पंक्ति–34. Muktakana, Sivasvamin, the poet Anandvardhana and Ratnakara obtained fame during the reign of Avantivarman and Ratnakara Stein, M.A., Rajatarangini, अंग्रेजी अनुवाद, बुक 5, पंक्ति 34. स्टीन महोदय उक्त पंक्ति की टिप्पणी में मुक्ताकण के उद्धरण की प्राप्ति ग्यारहवीं शताब्दी के क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में बताते हैं। (देखिए– वही, टिप्पणी)

वातावरण भी था। श्री सोमानन्द के चतुर्थ पूर्वपुरुष संगमादित्य का घूमते हुए सातवीं ईसवी की समाप्ति के लगभग कश्मीर में जा पहुँचना और वहीं बस जाना भी इसी बात का प्रमाण है कि उस समय तांत्रिक शैव धर्म को राज्य की ओर से संरक्षण प्राप्त था। इन दोनों (अत्रिगुप्त और संगमादित्य के) प्रवासी ब्राह्मण–परिवारों के कश्मीर में आगमन से पूर्व कश्मीर का जनसामान्य जिस धर्म का पालन कर रहा था, उसका स्वरूप शास्त्रानुमोदित निश्चित्त न होकर शैवधर्म–सम्बन्धी सामान्य विश्वासों का एक मिश्रित रूप था। अतएव संभव है, जनप्रचलित शैवधर्म को शास्त्रों का आधार देकर दृढमूल करने के लिए कश्मीरस्थ शैव–मतावलम्बी दोनों प्रवासी परिवार धार्मिक–साहित्य की रचना प्रारम्भ करके श्री सोमानन्द और वसुगुप्त के आविर्भाव तक–अपने लगभग सौ वर्षों के प्रभाव–काल में–जनरुचि की अपने सिद्धान्तों के उपदेशों अथवा शास्त्रार्थों से काफी प्रभावित कर चुके होंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि काश्मीर शैवागम के उपलब्ध मुख्य आगमों का निर्माण लगभग सात सौ ई. और आठ सौ ईसवी के मध्य में हुआ होगा और तदनन्तर उस आगम–साहित्य के सिद्धान्तों के आधार पर श्री सोमानन्द ने अपने शिवदृष्टि प्रकरण से काश्मीर शैवागम के दार्शनिक पक्ष का प्रवर्तन किया होगा। दर्शन–शास्त्र की शैली में अपेक्षित परपक्ष का खण्डन तथा तर्कों के आधार पर स्वपक्ष का मण्डन काश्मीर शैव–साहित्य में आचार्य सोमानन्द से पहले दृष्टिगत नहीं होता। इसीलिए तंत्रालोक में "तर्को योगांगमुत्तमम्" कहकर आचार्य सोमानन्द को तर्क का कर्त्ता कहा गया है अतएव काश्मीर शैवदर्शन का आविर्भाव–काल सोमानन्द के काल अर्थात् आठ सौ ईसवी लगभग से ही मानना तर्कसम्मत है।[144]

यह उल्लेखनीय है कि चतुर्थ शताब्दी ई. के आरम्भिक काल से लेकर आठवीं शताब्दी ई. अर्थात् सोमानन्द के काल तक इस त्रिक–दर्शन का क्या स्वरूप रहा? इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि इस समय तक शैव दर्शन बौद्ध दर्शन से साम्य लिए हुए था तथा इसमें तंत्रादि का प्रभाव भी था। हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि अपने वर्तमान स्वरूप में आने में योगवासिष्ठ महारामायण को कालक्रम के कई चरणों से गुज़रना पड़ा था और जिस प्रकार का मन्तव्य इस आलोच्य ग्रन्थ में त्रिक–दर्शन के प्रति प्रस्तुत किया गया है, वह विचारधारा बौद्ध दर्शन से भी प्रभावित है। अब इस स्थिति में हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं कि प्रश्नगत ग्रन्थ में त्रिक–दर्शन का होना उसके रचनाकाल को सोमानन्द के काल के पूर्व की स्थिति में अर्थात् आठवीं शताब्दी के पूर्व होने की संभावना की ओर स्वीकार्य दृष्टि डालने के लिए उत्प्रेरित करता है।

कुछ विद्वान् प्रश्नगत ग्रन्थ को अद्वैत एवं योगदर्शन के आधार पर तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी ई. का मानते हैं।[145] जहाँ तक अद्वैत दर्शन का प्रश्न है, उसके सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसका आविर्भाव अति प्राचीन है।[146] और योग दर्शन भारतवर्ष में ऐतिहासिक दृष्टि से सिन्धु सभ्यता के काल से देखा जा सकता है, जिसका स्पष्टीकरण हड़प्पा एवं मुअन्जोदड़ो से प्राप्त उत्खनन सामग्री जैसे– योगेश्वर की आकृति से होता है।[147]

---

144. जोशी, भैवरलाल, "काश्मीर शैव दर्शन और कामायनी", पृ. 8–12, वि.सं. 2025 अर्थात् सन् 1968, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी।

145. Farquher, J.N., An Outline of Indian Religious Literature" Oxford, 1966, pp. 222, 250, 296, and Religious Literature of India.

146. Ralph, T.H., Griffith, "The Hymns of the Ṛgveda", English Translation, Delhi, 1991, 1.164.46, 8.129.2. Kuppuswami, S. Mahamahopadhyaya, "History of Advait", S. Kuppuswami Research Institute, Madras, 1946, pp. 1 ff and "Compromises in History of Advaitik Thought", Ibid., pp. 3ff. Basam, A.L., "A Cultural History of India", 1983, New Delhi, pp. 81, 119, 194. Williams, M.M., "Religious Life in Ancient India", Delhi, 1990, pp. 11ff and 53.

147. मुकर्जी, आर. के., "हिन्दू सभ्यता" प्रथम संस्करण, अनु. वासुदेव शरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, देखें– सिन्धु सभ्यता। Thaplyal, K.K., op. cit., pp. 142, 143, 154, 262. Mackey, Aernest, "Earrly Indus Civilisation", Delhi, 1976. Basam, A.L., op. cit., pp. 116, 148, 114, 115-117, 122, 123, 295, 436, 480, 484, 497, 1, 3, 73-4, 92, 94, 95, 117, 202, 274, 371, 378, 497.

प्राचीनकालीन मुख्य देवता ब्रह्मा एवं शिव तथा मुनि वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास एवं याज्ञवल्क्य को योगदर्शन के सिद्धान्त के प्रवर्तक उन्नायकों में स्वीकार किया जाता है।[148] यद्यपि वैदिक साहित्य का अनुशीलन यह स्पष्ट नहीं करता कि योग की क्रिया वैदिक संहिता काल से इस देश में किस रूप में विद्यमान रही होगी, तथापि ध्यान की परम्परा में द्रष्टव्य है।[149] इस प्रकार योग एवं अद्वैत दर्शन के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की परिकल्पना करना उचित नहीं है, क्योंकि हम पहले ही कह चुके हैं कि ये दोनों दार्शनिक पद्धतियाँ भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से विद्यमान रही हैं और जहाँ तक योगवासिष्ठ महारामायण का प्रश्न है, उसमें ये दोनों ही दार्शनिक तत्त्व बौद्ध दर्शन के विज्ञानवाद से प्रभावित माने गये हैं तथा इसी आधार को लेते हुए अत्रेय महोदय ने माना है कि विज्ञानवाद पाँचवीं–छठी शताब्दी में अत्यन्त प्रचलित था, अतः इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्णय लगभग इसी काल में शंकराचार्य के पूर्ववर्ती एवं कालिदास के परवर्ती समय में रखा जा सकता है।[150]

1. औपनिषदिक आधार :

जो विशेषताएं प्रश्नगत ग्रन्थ में प्राप्त होती हैं, जैसे–ग्रन्थ की काव्यात्मक शैली, विस्तृत विवरण, विचार, कल्पनाएं, सांकेतिक एवं आलंकारिक अर्थों वाले विवरण, एकाकी रूप से घटनाक्रम को दोहराना (monotonus repitition) अलंकारों का प्रयोग, सार का आनुप्रासिक शैली में प्रस्तुत किया जाना, चूर्णिका गद्य शैली का प्रयोग आदि ऐसी बातें हैं, जो प्रश्नगत ग्रन्थ को गुप्तकाल के अनन्तर रखने के लिए सहायक तर्क प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार इसमें वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, जिससे वर्णन की शक्तिमयता सिद्ध होती है, इसके अतिरिक्त इसमें भावना एवं सौन्दर्य का प्राकट्य होता है। अनुप्रास शैली का प्रयोग और इन सबके साथ काव्य के परिमाण को बढाना, जोकि अलंकार सहित अन्य शैलियों से परिपूर्ण हो, जो सौन्दर्य और भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति करती हो एवं उसे अभिवर्धित करती हो– ये कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो प्रश्नगत ग्रन्थ को रामायण, महाभारत एवं कालिदास के बाद ही उसके रचनाकाल के सन्दर्भ में स्वीकृत तर्क की प्रस्तुति में सहायक है।[151] इसी प्रकार विभिन्न दार्शनिक मन्तव्य योगवासिष्ठ महारामायण में दृष्टिगत होते हैं, जिनका वर्णन छान्दोग्य, मुण्डक, माण्डूक्य, श्वेताश्वतर एवं महा उपनिषद् आदि में मिलता है। यही नहीं, उक्त उपनिषदों की पंक्तियों का यथास्थित प्रयोग प्रश्नगत ग्रन्थ में यत्र–तत्र द्रष्टव्य होता है।

परन्तु ऐसा करते हुए भी ग्रन्थकार अपनी मूल दार्शनिक अभिव्यक्ति को विस्मृत नहीं करता।[152] महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शंकराचार्य ने श्वेताश्वतर उपनिषद् के भाष्य में जो वर्णन किया है, उसके आधार पर भीखन लाल अत्रेय जैसे विद्वान् योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को कभी भी शंकराचार्य के पश्चात् स्वीकार नहीं करते।[153]

2. सत्संगति एवं शास्त्र :

पहले ही अभिव्यक्त किया जा चुका कि योगवासिष्ठ महारामायण उन ग्रन्थों में से एक है, जो नैतिक मूल्यों पर प्रकाश डालता है। ऐसे ग्रन्थ के भाष्यकार के रूप में दक्षिण भारत–निवासी अपने उदगार "अनन्यपूर्वव्याख्यातं ग्रन्थं मे व्यवकीर्तिताः... ।" के रूप में व्यक्त करते हैं। वे सत्रहवीं शताब्दी के थे। इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ की महत्ता सर्वथा

148. Mitra, V.L., "The Yogavasistha Maharamayana" English Translation, Delhi, 1976, Vol. 1, "The Yoga Philosophy", pp. 1-2.

149. "सतो वन्धुमसति निरविदन् हृति प्रतोष्य कवयोर्मनीषा"। ऋग्वेद, 1.129.4

150. Atreya, B.L., "The Philosophy of Yogavasistha", pp. 26 ff.

151. Bhattacharya, S.P., op. cit., pp. 549 ff. Upadhyaya, B.S., op. cit., Ibid. Introduction, p. 7. यो. महा., 7ब 41. 6, 3.110. 19 और 49, 3.102.35, 6ब.117.11. Mainkar, T.G., op. cit., pp. 117 ff.

152. Ibid., pp. 48, 87 and f.

153. श्वेताश्वतर उपनिषद्, शांकरभाष्य–सहित, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1.8. तथा Atreya, B.L., op. cit., pp. 26 ff.

स्पष्ट है। इस ग्रन्थ में विभिन्न तथ्यों एवं कथ्यों का सामंजस्य प्राप्त होता है। इसी श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए ग्रन्थ की महिमा और अभिवर्धित करते हुए ग्रन्थकार कहता है कि सत्संगति और शास्त्र मनुष्य को योग की पराकाष्ठा पर पहुँचाते हैं। शास्त्र से ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है। शास्त्रों और उपनिषदों के महावाक्यों के अर्थ को समझने वाला आत्मज्ञान की प्राप्ति करता है। शास्त्र सदैव आत्मा और ज्ञान की पहचान के लिए होते हैं और इस अर्थ में प्रश्नगत ग्रन्थ को सर्वोत्तम मानते हुए उसे विद्यार्थियों के लिए जीवन्मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय बताया गया है। जिस प्रकार से औषधि सुस्वास्थ्यदात्री होती है उसी प्रकार से शास्त्र मनुष्य को उचित अन्तरात्मिक दृष्टि एवं उचित ज्ञान प्राप्त कराता है।[154] सामान्य रूप से अध्यात्म शास्त्र किन्तु विशेष रूप से योगवासिष्ठ महारामायण उस प्रकार का शास्त्र है, जो मुक्ति प्राप्ति–हेतु विवेकपूर्ण अभिवृत्ति का अध्यापन करता है और उचित अनुगमनीय मार्ग बताकर मनुष्य को मुक्ति प्राप्त कराता है।[155] शास्त्र को जंगल की संज्ञा देकर मनुष्य को किरात मानते हुए ग्रन्थकार यह स्पष्ट करना चाहता है कि इस शास्त्र रूप वन में जो व्यक्ति जितना खोजता है उसे उतना ही प्राप्त होता है। चिन्तामणि को प्राप्त करने वाला सर्वश्रेष्ठ मोक्ष प्राप्त करने वाला व्यक्ति होता है परन्तु जो शास्त्र के अध्ययन में थोड़ा ही रत रहता है, उसे उथले ज्ञान की प्राप्ति होती है।[156] शास्त्रों में धर्म, अर्थ और काम के विषय में बताया जाता है परन्तु ब्रह्म–प्राप्ति कराना शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ गुण होता है। श्रुतियों का श्रवण और इसी प्रकार शास्त्रों के ज्ञान से व्यक्ति मुमुक्षु हो जाता है।[157] पौरुष की दो स्थितियाँ ग्रन्थकार वर्णित करता है, एक वह, जो शास्त्र सम्मत (शास्त्रिका) है, दूसरी, वह, जो उच्चस्थ (उच्छास्त्र) है, परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रथम स्थित का पौरूष ही मनुष्य को निर्वाण की प्राप्ति कराता है। इस आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण को प्राचीन वेदान्त दर्शन ग्रन्थों की कोटि में रखा जा सकता है।[158]

3. तीर्थ यात्रा :

अनेक भावों की अभिव्यंजना करते हुए जब हम आलोच्य ग्रन्थ के वैराग्य प्रकरण के राम की तीर्थ यात्रा के वर्णन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं तो स्वतः ही यह स्पष्ट हो जाता है कि योगवासिष्ठ महारामायण पौराणिक धारा में प्रवाहित ग्रन्थ है। प्रश्नगत ग्रन्थ में तीर्थों का विवरण राम की तीर्थयात्रा के कथानक मे आता है इसमें जिन तीर्थों का विवरण मिलता है उनके नाम इस प्रकार हैं– प्रयाग, नैमिष, धर्मारण्य, गया, काशी, केदार, पुष्कर, हयग्रीव, अग्नितीर्थ, महातीर्थ, कार्तिकस्वामी, भगवान् शालिग्राम तथा विष्णु और महादेव के चौसंठ स्थान।[159] प्राचीन काल से भारतवर्ष में तीर्थ यात्रा का महत्त्व रहा है। यह विश्वास किया जाता रहा है कि पवित्र स्थलों का भ्रमण करना चाहिए। प्राचीन काल में तीर्थ धर्म एवं विद्या के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थल हुआ करते थे। विभिन्न सभ्यताओं का विकास या तो नदियों के किनारे हुआ अथवा घने जंगलों के किनारे हुआ और भारत में विशेष रूप से हमें इस बात के दर्शन होते हैं। सम्भवतः विकास के इसी क्रम के कारण तीर्थों का महत्त्व बढ़ा। यह पवित्र स्थान संस्कृति, शिक्षा एवं अध्ययन के केन्द्र उन व्यक्तियों के लिए होते थे, जो इनमें भ्रमण करते थे। यदि हम पौराणिक ग्रन्थों, जैसे– महाभारत, रामायण, पुराण एवं योगवासिष्ठ महारामायण का इस विषय में अनुशीलन करें तो हमें ज्ञात होगा कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए षड्ऋतुओं से विरत व्यक्ति तीर्थ यात्रा करते थे तथा अपवित्र हृदय वाले व्यक्ति इसके लिए सर्वथा अयोग्य माने जाते थे। यदि इस सन्दर्भ में गहनता से भारत की पुरा स्थापत्य कला का भी अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि जहाँ भी तीर्थों का विवरण है, वह और कुछ भी नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत भूमि के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का विवरण है। तीर्थों के द्वारा मनुष्य चतुर्दिक भ्रमण कर जीवन

154 यो. महा. 3.87–14.

155 वही, निर्वाण उत्तरार्द्ध, 163

156 वहीं

157 वही, 196.7

158 पाण्डेय, राजबलि, हिन्दू धर्म कोश (शास्त्र) पृ. 539, 540. cf. Mainkar, T.G., op. cit., op. 232, 233, 236, 242.

159 यो. महा., 1.3. 1–42.

के सम्पूर्ण अनुभवों के द्वारा देश–काल की स्थिति प्राप्त करने में सक्षम होता था। वास्तव में तीर्थ संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है पाप से तारने अर्थात् पाप से उतारने वाला। जैनियों के अनुसार जिन शासन (धर्म) ही वास्तविक तीर्थ है। जैसा कि ऊपर कहा ही जा चुका है, स्पष्ट रूप में यह माना जा सकता है कि सामान्य रूप से किसी जल या जल खण्ड के किनारे स्थित पुण्य स्थान को तीर्थ समझा जाता है। इसीलिए योगवासिष्ठ महारामायण में राम की तीर्थ यात्रा के विवरण के साथ में अनेक नदी–नदों के उल्लेख भी प्राप्त हैं। स्कन्द पुराण में ऐसे तीर्थों को स्थावर तीर्थ के नाम से पुकारा गया है।[160] इस प्रकार से विभिन्न पुराणों में विभिन्न तीर्थो का उल्लेख मिलता है। यही नहीं, बौद्ध ग्रन्थ महापरिनिब्बान सुत्तंत में भी तीर्थों की महिमा पर प्रकाश डाला गया है।[161] इसी प्रकार जैन ग्रन्थ श्री कुंटकुंटाचार्य–कृत प्राकृत निर्वाण खण्ड में तीर्थों का उल्लेख सर्वप्रथम प्राप्त होता है।[162] भगवत्प्राप्ति के लिए तीर्थ यात्रा करनी चाहिए क्योंकि तीर्थों में साधु–सन्त मिलते हैं। भगवान् का ज्ञान काम, लोभ–वर्जित साधु–संग से प्राप्त होता है। यही पुराणों की धारणा है[163] परन्तु इस प्रकार का विवरण योगवासिष्ठ महारामायण में तीर्थयात्रा के सन्दर्भ में प्राप्त नहीं होता। रामायणकार ने भी राम के बाल्यकाल में की गई किसी तीर्थयात्रा का विवरण लगभग कुछ वैसा ही प्राप्त होता है, जैसा कि योगवासिष्ठ महारामायण में द्रष्टव्य है। यद्यपि दोनों के वर्णन साम्य एवं कथानक में अन्तराल अवश्य दृष्टि–गोचर होता है।[164] तथापि तीर्थ स्थानों के विवरण में कुछ साम्य है। इस आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के संदर्भ पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह विवरण योगवासिष्ठ महारामायण को पुराण की कोटि में लाने के लिए रखा गया होगा, क्योंकि अधिकतर पुराणों में तीर्थयात्रा पर प्रकाश डाला गया है। केवल पद्मपुराण ही में साढे तीन करोड तीर्थों का वर्णन है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मविद्या, योग एवं अद्वैत का गहनपाठ संसार के सामने ग्रन्थकार द्वारा प्रस्तुत करने के लिए रोचकता–अभिवर्द्धन हेतु तीर्थयात्रा पर भी प्रकाश डाला गया तो कोई विचित्र बात नहीं है। अनुमान किया जा सकता है कि ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दियों में शांकर वेदान्त पर अनेकानेक दूसरे ग्रन्थों से सामग्री लेकर ग्रन्थों का प्रणयन किया गया।[165] सम्भवतः यह स्थिति पहले से ही चल रही हो और योगवासिष्ठ महारामायण इसका एक उदाहरण हो परन्तु निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। वास्तविकता तो यह है कि तीर्थयात्रा विवरण के आधार पर हम योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के निर्धारण के सन्दर्भ में कोई विशेष तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकते।

इस प्रकार धार्मिक एवं दार्शनिक मन्तव्यों के आधार पर सारांश रूप में समालोचनात्मक प्रक्रिया से योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के सन्दर्भ में जो समीक्षा सामने आती है वह इस प्रकार है:–

1. आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण में लोगों के अन्धविश्वास, ग्रन्थ के रचनाकार के विषय में जानकारी प्राप्त न होना, ग्रन्थ में ऐसे विभिन्न संसाधनों का अभाव; जो इसके निश्चित तिथिक्रम पर प्रकार डालें, ग्रन्थ में प्रक्षिप्त अंशों के विषय में कालक्रम के आधार पर विद्वानों द्वारा कोई निश्चित एवं निराकरणपूर्ण तथा क्रम से अध्ययन का अभाव आदि कुछ ऐसी समस्याएं हैं, जिनका वर्णन किया गया है।

---

160 यो. महा. 1.3 1–42 स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, कलकत्ता, सन् 1959 ई. Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skanda Purana, Part - IV, 'Brahmanical Art and Iconography', Lucknow, 1976, p. 32.

161 विद्यालंकार, सत्यदेव (स्वर्गीय) पत्रकार, लेख 'हिन्दू तीर्थ', हिन्दी विश्वकोश (जिल्द 5) भट्टाचार्य रामशंकर, व्याकरणाचार्य, अनुसंधान सहायक, वाराणसेय संस्कत विश्वविद्यालय, वाराणसी, लेख 'बौद्ध तीर्थ', हिन्दी विश्वकोश (जिल्द 5)

162 गोरावाला, खुशहालचन्द्र, पुस्तकालयाध्यक्ष, काशी विद्यापीठ वाराणसी, लेख 'जैन तीर्थ', हिन्दी विश्वकोश (जिल्द 5)

163 पद्मपुराण, 19. 10–17. आनन्दाश्रम, पूणे।

164 यो. महा. 1.3. 1–42 आनन्द रामायण, द्वितीय संस्करण, 1926, मुबंई, 2.6.37–38. 4.98. 8.10.

165 हिन्दी विश्वकोश, उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, प्रवक्ता हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, लेख 'आनन्द बोध'।

2. स्पष्ट रूप से ग्रन्थ के मूल रचनाकाल को किसी भी प्रकार से कालिदास के पूर्व नहीं रखा जा सकता है।

3. धार्मिक पक्ष का निरूपण करते समय बौद्ध दर्शन आलय विज्ञानवाद के आधार पर ग्रन्थ को कालिदासोत्तर, शून्यवाद के आधार पर वसुबन्ध एवं असंगोत्तर और त्रिकायदर्शन के आधार पर यही क्रम स्वीकार करते हुए आलोच्य ग्रन्थ के मूल रचनाकाल के प्रथम चरण का निर्धारण करने की मान्यता प्रस्तुत की गई है।

4. ब्राह्मण धर्म के समालोचनात्मक अध्ययन के द्वारा भावगत दर्शन के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ का रचनाकाल गुप्तकालीन, पराशक्तियों के विवरण के आधार पर गुप्तोत्तरकालीन, अवतारवाद के आधार पर छठी–सातवीं शताब्दी भगवद्गीता के विशेष सिद्धान्त की स्वीकृति के आधार पर गुप्तोत्तर कालीन तथा शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों के वर्णन के आधार पर लगभग नवीं–दसवीं शताब्दी ईसवी की मान्यता प्रस्तुत की गई है।

5. इसी प्रकार पारलौकिक कल्पना के आधार पर स्वर्ग–नर्क की परिकल्पना को दृष्टि में रखते हुए ग्रन्थ के रचनाकाल को गुप्तकालीन तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए नवीं–दसवीं शताब्दी ई. के पूर्ववर्ती काल में रखने के लिए मान्यता प्रस्तुत की गयी है।

6. इसी प्रकार जैन दर्शन के पक्षों– 'कैवल्य' एवं 'जिन' के आधार पर ग्रन्थ में जैन धर्म के प्रभाव को दिखाते हुए इसे भगवान् महावीर के उत्तरकालीन चरणों में कभी रचे जाने का पक्ष रखा गया है।

7. इसी क्रम में 'अविद्या' के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ को गुप्तोत्तर युगीन मानने की अवधारणा प्रस्तुत की गई है।

8. आलोच्य ग्रन्थ में त्रिक–दर्शन के होने के कारण भी उसके रचनाकाल के सन्दर्भ में लगभग सातवीं शताब्दी ई. या उसके कुछ पश्चात् होने के सन्दर्भ में मान्यता प्रस्तुत की गई, जिसमें विशेष उल्लेखनीय रूप में यह तथ्य सामने लाया गया कि कश्मीर में इस दर्शन को राज्याश्रय लगभग ललितादित्यमुक्तापीड के समय मिल चुका था और क्योंकि इसकी तत्कालीन स्थिति ऐतिहासिक दृष्टि से अन्धकारमय है, अतः इस सन्दर्भ में अन्धकारशमनकर्ता ज्योतिपुञ्ज के रूप में आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित बौद्ध–धर्म से त्रिक–दर्शन का प्रभावित होना प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को लगभग सातवीं शताब्दी ई. में निर्धारित करने में सहायक बन जाता है।

9. इसके अतिरिक्त योगवासिष्ठ महारामायण में जो साहित्यिक सौष्ठव तथा विभिन्न साहित्यिक आयामों का प्रदर्शन है, उसके आधार पर उसे कालिदास के पश्चात् के समय में तथा उपनिषदों के आधार पर उसे वेदान्त दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों में रखे जाने के लिए विचार प्रकट किये गये हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के सन्दर्भ में संश्लेषित विचार प्रस्तुत किये गए। इस आधार पर जो निष्कर्ष सामने आता है, वह इस ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में दो मुख्य पक्ष रखता है– पहला वह, जिसके आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को कभी भी वत्सभट्टी के मन्दसौर अभिलेख (473–74ई.) के पूर्व रखने की स्वीकृति नहीं मिलती और इसी प्रकार दूसरी धारणा के अन्तर्गत उक्त ग्रन्थ को नवीं–दसवीं शताब्दी ईसवी के आस–पास की रचना माना जा सकता है। इसी अध्याय में विभिन्न विद्वानों का यह मत कि प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रक्षिप्त अंश हैं, मूल रूप में स्वीकार किया गया और इसी आधार पर यह भी माना गया कि प्रश्नगत ग्रन्थ का रचनाकाल कई चरणों की देन है, जिसका आदि उपर्युक्त मन्दसौर अभिलेख की तिथि के पश्चात् से तथा अन्त नवीं शताब्दी तक मानने से सम्बन्धित कुछ विचार प्रस्तुत किये गये। अब प्रश्न उठता है कि क्या केवल इन्हीं आधारों पर प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकाल की परिकल्पना को निर्णीत आधार रूप में स्वीकार किया जा सकता है? इसी प्रश्न को उत्तरित करने का प्रयास करते हुए ग्रन्थ में वर्णित कुछ अन्य तथ्यों और दृष्टिकोणों को समीक्षित स्वरूप में रखते हुए अगले अध्याय में समालोचनात्मक गहनता पर निष्कर्ष निकालने के लिए ध्यान केन्द्रित करते हुए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तत्सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

□ □ □

चतुर्थ अध्याय

विभिन्न देशों तथा जातियों के नामोल्लेख के आधार पर रचनाकाल–चिन्तन

कथा–कहानी कहना एवं लिखना प्राचीन भारतीय परम्परा है। इन कथाओं के माध्यम से विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों का भी दर्शन कराया जाता था और इनकी सरलता में गहन दार्शनिक एवं धार्मिक चिन्तन देखने को मिलता है। योगवासिष्ठ महारामायण भी इसी श्रृङ्खला का एक ग्रन्थ है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। जिस काल में जो साहित्य रचा जाता है, वह अपने समय की घटनाओं का प्रतिबिम्बन कराता है। पूर्व अध्याय में यह दर्शाया जा चुका है कि किस प्रकार धर्म, दर्शन एवं साहित्यिक उल्लेख के तुलनात्मक अध्ययन के स्वरूप को लेते हुए आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की एक परिकल्पना प्रस्तुत की जा सकती है। यहाँ पर इसी क्रम में एक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए प्रश्नगत ग्रन्थ में आए अन्य वर्णनों का आधार लिया गया है।

इस ग्रन्थ में यत्र–तत्र बिखरे हुए रूप में जातियों, देशों, पहाड़ों, नदियों एवं द्वीपों के नामोल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनकी ऐतिहासिक क्रम में पहचान विद्वानों के लिए चिन्तन का एक विषय हो सकता है। कुछ ऐसे भी तथ्य हो सकते हैं, जिनके आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्धारण किया जा सके और इसके विपरीत कुछ ऐसे भी तथ्य मिल सकते हैं, जो केवल वर्णन की उपादेयता ही प्रस्तुत करते हैं, परन्तु उनसे अनुसंधानात्मक विषय में कुछ भी ज्ञान न प्राप्त होता हो। इन्हीं आधारों को लेते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल से सम्बन्धित विश्लेषणात्मक तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

जातियों तथा देशों के नामोल्लेख

हूण, हैहय, ताजिक, किरात तथा चीन :

जैसा कि पूर्वोक्त है कि भीखनलाल अत्रेय एवं केदार नाथ त्रिपाठी हूणों का आधार लेकर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को पाँचवी–छठी शताब्दी ईसवी[1] मानते हैं। ग्रन्थ में हूणों के विषय में जो वर्णन प्राप्त होता है, उसके अनुसार हैहय, हूण और ताजिक भी युद्ध में आये।[2] निर्वाण प्रकरण में हूण, चीन एवं किरातों का सन्दर्भ एक साथ प्राप्त होता है।[3] ग्रन्थ का यह विवरण उत्पत्ति प्रकरण में दो कल्पित राजाओं (विदूरथ एवं सिन्धुराज) के युद्ध वर्णन में प्राप्त होता है। इस वर्णन के पूर्व वसिष्ठ मुनि पश्चिम दिशा से प्रतिपक्ष की ओर से आये हुए जनपदों का वर्णन करने के पहले

---

1. Atreya, B.L., "The Philosophy of Yogavasistha", Varanasi, 1936, pp. 26 ff. त्रिपाठी, केदारनाथ, "योगवसिष्ठ", वाराणसी, संवत् 2033, भूमिका।

2. शैव्यरमरकायाच्छा गुहुत्वा नियमारत्तथा।
हैहयाः सुहमगायाश्च ताजिका हूणकास्तथा।। (यो. महा. 3.36.47)

3. हूणचीनकिराताां मुक्तैस्तैश्चक्रवर्षणैः।
कमलानीव लूनानि शिरांस्यभिमुखानिलैः।। (यो. महा., निर्वाण उत्तरार्ध, 112.17)

विभिन्न पहाड़ों का वर्णन करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रन्थ में हूणों का वर्णन उन्हें पश्चिम दिशा से आया हुआ बताता है। इसी क्रम में निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्ध खण्ड में ग्रन्थकार उन्हें उत्तर दिशा की ओर पराजित हुआ वर्णित करता है।[4]

इस प्रकार महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ग्रन्थ में हूण, हैहय, किरात, ताजिक एवं चीनों का उल्लेख एक साथ प्राप्त होता है जबकि कालिदास ने हूण तथा पारसीकों का एक साथ उल्लेख किया है।[5] बृहत्कथामञ्जरी में कम्बोजों, हूणों, बर्बरों, तुषारों, म्लेच्छों, यवनों आदि का एक साथ वर्णन प्राप्त होता है।[6] इसी क्रम में महाभारतकार भीष्मपर्व में हूणों का जिन जातियों के साथ वर्णन करता है, उस वर्णन के क्रम के आगे के श्लोकों में किरातों एवं कश्मीरियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[7] इसी प्रकार चीनों के समुद्रतट पर परास्त होने का विवरण योगवासिष्ठ महारामाण में मिलता है।[8] प्रश्नगत ग्रन्थ के समान महाभारत चीनों को कम्बोजों से सम्बद्ध करता है तथा उन्हें पूर्व के प्राग्ज्योतिष राजा के अगरक्षकों में परिगणित करता है।[9] पुनः महाभारत में ही चीनों तथा हूणों को उत्तर दिशा से आया हुआ बाह्य कहा गया है एवं भारत से इनके व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन बताये गये हैं।[10] किरातों के विषय में प्रश्नगत ग्रन्थ का वर्णन उन्हें अंग जन से पराजित, वायव्य तथा मध्य–पूर्व का बताता है।[11] साथ ही अंग देश द्वारा उन पर आक्रमण किये जाने के प्रति लोभ

---

4 हूणा आमस्तकं मग्ना उत्तरार्णवसैकते।
क्लिन्नारतत्रैय पड़्कान्तः पूरणा विलशूलवत्।। (यो. महा. निर्वाण उत्तरार्ध. 112.27)
एते पतन्त्यतुलतालकराललोत–वेताल बालवलिता निशि गुह्यकौघाः।
हूणेश्वरस्य नगराणि निरस्त शान्ति स्वस्ति श्रवादिविकला निवलेन भोक्तुम्।। (वही. निर्वाण उत्तरार्ध. सर्ग 115. श्लो. 45)

5 कालिदास. रघुवंश. 4.65

6. अथ श्रीविक्रमादित्यो हेलया निर्जिताखिलः।
म्लेच्छान्कम्बोजयवनान्नीयान्हूणान्सबर्बरान्।।
तुषारान्पारसीकांश्च व्यक्ताचारान्विशृंखलान्।
हत्वा भू भंगमात्रेण भुवो भारमवारयत्।। (क्षेमेन्द्र. बृहत्कथामञ्जरी. 1931. मुम्बई. 10.1.285-286)

7. यवनाश्च सकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः।
सक्षद्द्रह कुन्तलाश्च हूणाः पारसकैः सह।।
तथैव मरधाश्चीनारतथैव दयमालिकाः।
क्षत्रियोपनिवेशाश्चा वैश्यशूद्रकुलानि च।।
शूद्राभीराथ दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह।
खशिकाश्च सुखाराश्च पल्लवा गिरिगह्वराः।।
आत्रेयाः सभरद्वाजारतथैव स्तनयोपिकाः।
औपकाश्च कलिड़्गाश्च किरातानां च जातयः।।
तामरा हँसमार्गाश्च तथैव करभञ्जकाः।
उद्देशमात्रेण मया देशाः संकीर्तिताः प्रभो।।
(महाभारत सुक्थांकर एवं बेलवाल्कर द्वारा सम्पादित, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीटॅयूट, पुणे, 1947. 6.10.64 से 68)

8. यो. महा. 3.37.14

9 महाभारत, 6.9.66. 5.19.15

10 महाभारत, वनपर्व, 51.1991, भीष्मपर्व, 9.373, शान्तिपर्व, 327.12229, (कलकत्ता संस्करण), सभापर्व 51.23. 26. 6.9.65-66 (गोरखपुर संस्करण सं. 2046). कालिदास, 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', आक्सफोर्ड, 1876. 1.32 Ray, H.C., 'Studies in Antiquities', Calcutta, 1932, pp. 63, 72, 75, 80 वाल्मीकि रामायण, बम्बई, सं. 2020 किष्किन्धाकाण्ड, 44. 12 (1). वायु पुराण (बुक 1. कलकत्ता, 1880-88, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पुणे, 1905), 19. 118. रायचौधरी, हेमचन्द्र 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', इलाहाबाद, 1971, पृ. 11, 242

11 यो. महा. 3.36.24. 66. 37.30

का भी विवरण प्राप्त होता है[12] और उन्हें निचले पहाड़ी क्षेत्रों का निवासी वर्णित किया गया है।[13] इन्हीं के एक राजा विक्रम का उल्लेख भी ग्रन्थ में प्राप्त होता है[14], जिसका ऐतिहासिक समीकरण दुष्कर है। इनके देश को कैकट कहा गया है तथा इन्हें विन्ध्य पर्वत क्षेत्र का बताया गया है।[15] जिसका ऐतिहासिक समीकरण दुरूह है। इन्हीं किरातों की एक शाखा हेमजात बतायी गई है।[18] एक अन्य स्थान पर इन्हें छोटे से ग्राम में बसा हुआ बताया गया है।[19]

यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय–ब्राह्मण, वाजसनेयिसंहिता एवं महाभारत स्पष्ट करता है कि किरात दास रूप में उस समय विख्यात थे।[20] पुराण इन्हें पूर्व दिशा का तथा कतिपय पुराण इन्हें उत्तर दिशा का बताते हैं।[21] मिलिन्दपञ्ओ में भी इनका वर्णन प्राप्त होता है।[22] मनुस्मृति में इन्हें अनार्य कहा गया है।[23] वराहमिहिर, कालिदास तथा भारवि किरातों के विषय में अलग–अलग प्रकार से वर्णन प्रस्तुत करते हैं।[24]

ताजिकों का उल्लेख संस्कृत भाषा के ज्योतिष ग्रन्थ "रोमक सिद्धान्त" में प्राप्त होता है, जिसकी तिथि का आकलन तीन सौ से पाँच सौ ईसवी में किया जाता है।[25] पन्द्रह सौ सत्तासी ईसवी का नीलकण्ठ ताजिक नामक ज्योतिष का एक ग्रन्थ ताजिकों को ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में विशेष ज्ञान रखने वाला वर्णित करता है।[26]

इसी प्रकार हैहयों का उल्लेख रामायण, महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त होता है। इनके प्राचीन राजशक्ति का प्रथम प्रतापी शासक सहस्त्राजित को माना जाता है। ये यदु की सन्तान थे और इनके प्रथम शासक का नाम हैहय था। इसी क्रम में अर्जुन कार्त्तवीर्य का भी उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन काल में इनका महत्त्व विद्यमान था और तत्कालीन इतिहास में इनका विशेष स्थानोल्लेख द्रष्टव्य है और साथही इन्हें 1. वीतिहोत्र, 2. शार्यात, 3. भोज 4. अवन्ति तथा 5. टुण्डिकेर पाँच भागों में विभक्त बताया गया है। इनकी राजधानी तत्कालीन माहिष्मती नगरी थी, जिसे महिष्मत ने

---

12. वही, 37.29 एवं 31
13. वही, 76.15. 1 और 16.
14. वही, 77.16–17. 1. 14–16.
15. वही, 4.10. 62–63, 6.83.16.
16. वही, 4.30.12.
17. वही, 5.58.1.
18. वही, 9
19. यो. महा, 6.23.12.
20. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Bombay, 1988, Vol. 1 p. 252. महाभारत, द्रोणपर्व, 4.7, कर्णपर्व 73. 19–20, सभापर्व अध्याय 269, उपायनपर्व 52.9–12, 14.20.
21. विष्णु पुराण, मुम्बई, 1889, 2.3.8 Law, B.C., 'Ancient India Tribes', Calcutta, 1934, p. 48. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medical India', Calcutta, 1971, pp. 29, 31, 35n, 46n, 70n-71n, 162-164. Misra, S.N., 'Ancient Indian Republics', Lucknow, 1976, pp. 105, 116. मत्स्य पुराण, पूणे, 1907. 150. 56. Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skand Puran'. I, Lucknow, 1976, p. 66, 155, 221.
22. Milindpanha, Oxford, 1890-94, p. 331.
23. मनुस्मृति, 10. 43–44
24. Varahamihir, Brihatsamhita, English Translation, Calcutta, 1865, Journal of Royal Asiatic Society, 1870-75. कालिदास, 'रघुवंशम', 4.76, 'कुमारसंभव', 1.6.15. भारवि, 'किरातार्जुनीयम्', कतकत्ता, 1815, 5.1.39
25. William, M.M., 'A Sanskrit English Dictionary', p. 441. Dash, Narendrakumar, 'An Encyclopaedic Dictionary of Indian Culture', Delhi, 1992, p. 346. Keith, A.B., 'History of Sanskrit Literrature', Delhi, 1973, p. 5
26. भट्टाचार्य, तारानाथ, 'वाचस्पत्यम्', 1962, वाराणसी, खण्ड 4, पृ. 3265.

बनवाया था और जो आधुनिक काल में नर्मदा नदी की घाटी से समीकृत की जाती है।[27] ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में इनके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत सम्पूर्ण यमुना तथा अरावली पहाड़ी का कुछ भाग था। इसमें ताप्ती नदी की दूरस्थ घाटियाँ आती थीं तथा गुजरात एवं मध्य प्रदेश का छत्तीसगढ तथा नर्मदा तटीय क्षेत्र इसी में सम्मिलित थे।[28]

यदि अयंगर के ऐतरेय ब्राह्मण पर आधारित मत पर ध्यान केन्द्रित किया जाय, जिसमें उत्तर कुरु नामक हिमालय के उस पार की जाति को हूणों का समीकरण माना गया है तो विश्वास करना होगा कि भारतीयों को साहित्यिक आधार पर इनकी जानकारी बहुत प्राचीनकाल से थी।[29] विद्वानों के एक वर्ग का यह मानना कि हूण किदार नामक जनजाति की एक शाखा हुन्निस, हस्युंग–नुस (Hunnish, Hsuing0nus) का परवर्ती स्वरूप हैं, यह स्पष्ट करता है कि ऐतिहासिक दृष्टि में चार सौ पचपन ईसवी[30] में भारत पर उनका दूसरा आक्रमण था क्योंकि प्रथम आक्रमण तीन सौ अठ्ठासी ईसवी (चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के काल) में ही हो चुका था।[31] एच.सी. रे के अनुसार आर्जुनायन नामक प्राचीन जाति, जिसने गुप्त सम्राटों का चौथी–पाँचवीं शताब्दी में स्वागत किया था, हैहयों की ही एक उपशाखा थी[32] और जिस अहिहय का उल्लेख आरम्भिक अभिलेखों में किया गया है, उसका समीकरण हैहय से ही है[33], जो एक बड़ी शाखा के रूप में लगभग छठी शताब्दी ईसवी में कलचुरि नाम से आगे आने वाले वर्षों तक अर्थात् लगभग सौ ईसवी तक विख्यात रहे।[34] इनके परवर्ती स्वरूप कल्चुरि नाम के सिक्कों की प्राप्ति लगभग छठी से सातवीं शताब्दी तक हो जाती है[35], अतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लगभग पाँचवी–छठी शताब्दी के सन्धि–प्रकाश काल में

---

27. Pargitar, F.E., 'Ancient Historical Traditions', Delhi, 1962, (1) k. 87-8, 144, (2) Tribe, 41, 68, 70, 87-8, 98, 101-2, 144, 146, 151, 153-6, 176-7, 180-1, 198-9, 206, 260, 263, 265-72, 280, 286, 292, 294, 304, 309-16. वाल्मीकि रामायण, मुंबई, 1964, उत्तरकाण्ड, 22.8. वेदव्यास, महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, अनुशासन पर्व अध्याय 30, पंक्ति 1949–62, वनपर्व, अध्याय 116, पंक्ति 10189, 117. पंक्ति 10204 और शान्पिर्व 49. पंक्ति 1750–70. भागवत पुराण, गोरखपुर, सं. 2008. 9. 15. 21–22. 27–36. मत्स्य पुराण, पूणे, 1907. 43. 37–40 एवं 4–8. 46–49. हरिवंश पुराण, गोरखपुर, 1959. 5.33. 1843–4. 5.30. 1604, 1618. 13.760. 14.783. 34.1892–6. मार्कण्डेय पुराण मुम्बई 1867. 17. 8–9 19. 20–21 58–34

28. Pargiter, F.E. 'Markandeya Purana', English Translation, Calcutta, 1904, pp. 333, 335, 340, 342, 344, 351, 352, 368. Cunningham, A.A. 'Archaeological Survey Reports', Vol. 9, pp. 54-57.

29. Ayangar, Indian Antiquery', Vol. 158 (1919), pp. 774-775. Haug, M., 'Aitreya- Brahman', English Translation, Delhi, 1977, Vol.2, 7.14-29.

30. Fleet, J.F., 'Gupta Inscriptions' No. 12, 'Sayyidpur Bhitari Stone Piller Inscription'.

31. Indian Antiquary, 1896, pp. 103f. विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला, बम्बई, खण्ड–25, पृ. 60 Rapson, E.J., 'Indian Antiquary', Vol. I, pt. 2, p. 16n. Ibid., 1893, p. 20. Epigraphia Indica, 20, pp. 50-53 (Nalanda Plates). Majumdar and Pusalker, The History and Culture of the Indian People, Vol. 3, Bombay, 1988, pp. 18 ff. Fleet, J.F., 'Corpus Inscriptionum Indicarum', pt. 3, Varanasi. (भीतरी प्रस्तर लेख, संख्या 13, प्लेट 7, पृ. 56). Rapson, E.J., 'The Cambridge History of India', 1, Cambridge University Press, 1955, p. 271. Ludvich, B., 'Chandra-Vijakaran', Indian Antiquary, 1886, p. 105. Pathak, K.B., Journal of Bombay Branch of the Asiatic Society, 19, pp. 33, 37. Chakravarti, M., Journal of Royal Asiatic Society, 1903, pp. 183-83. Biswas, Atryai, The Political History of the Hunas in India, New Delhi, 1973, pp. 15, 45-48.

32. Ray, H.C. 'The Dynastic History of Northern India', Delhi, 1973, p. 738.

33. Epigraphia Indica, Vol. 12, pp. 268 ff (अहिहय महामण्डलेश्वर रेवाड़ महिष्मती–पुरवरेश्वर) येवार अभिलेख शोरापुर ताल्लुक, जिला गुलबर्ग से प्राप्त।

34. Ray, H.C., op. cit., pp. 738 and ff. Mahtab, Sri Harekrushna, 'The History of Orissa', Lucknow University, Lucknow, 1947, p. 80.

35. रॉय, एस.एन. 'भारत की प्राचीन मुद्राएं', इलाहाबाद, 1995, पृ. 159–160.

ये हैहय के विशेषोल्लेख में इतिहास में जाने जाते थे। परवर्ती समय में इन्हें कल्चुरि नाम से ही इतिहास में अधिकांशतः वर्णित किया गया है, जिसके विषय में एक विहंगम दृष्टि हम पहले ही डाल चुके हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से ताजिकों के समीकरण पर प्रकाश डालते हुए लाथम कहता है कि फारस देश के कस्बों के मिश्रित रक्त द्वारा उत्पन्न निवासी एवं भाषाभाषी ही पारसीक कहलाये। वे अपने व्यवहार एवं शारीरिक संरचना में भी सामान्य रूप से पारसीक ही जाने जाते थे। इनके अधिकांश रूप भारतीय तुर्क, मंगोल, अरब तथा डायसकुरियन (Dioscurian) रक्त सम्बन्धों से प्रकट हुए। इन्हीं पारसीकों के ग्रामीण स्वरूप को ताजिक कहा जाता है। बोखारा भाषा में ताजिक उज़बक (Uzbk) का विपरीत शब्द है। पारसीक देश में ताजिक ग्राम में रहने वाला होता था और कस्बों में रहने वालों का विपरीत स्वरूप माना जाता था। इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि हर ग्रामीण ताजिक है। वास्तव में ताजिक होने के लिए आवश्यक था कि वह उसी ग्रामीण भूमि की धूलि में पला बढा हो न कि वह केवल पशु चराने वाला तथा महत्त्वाकांक्षी, निश्चित स्थान पर रहने वाला, एक किसान तथा एक बंजारा एवं घुसपैठिया हो। ऐसा होने अर्थात् ताजिक होने के लिए अधिक अनुमान इस बात का लगाना पड़ता है कि उसे जन्म से शिया (Shiite) के लक्षण प्राप्त हैं अथवा वह शिया है एवं पारसीक भाषा–भाषी हैं। उल्लेखनीय है कि ताजिकों का विपरीत शब्द ईलियात (Iilyat) है। एक ताजिक इस प्रकार से पारसीक शिया किसान हुआ, जबकि एक ईलियात पशु चराने वाला अरब, तुर्क एवं कुर्द सुन्नी (Sunnite) हो सकता है।[36] भारतीय सीथिया (Indo-Scythian) यू–ए–ची (Yuechi) परवर्ती समय में तोखारी नाम से विख्यात हुए, ये ही जब पूर्वी तुर्किस्तान में दक्षिण थियान–शान (Tianshan) पर्वत श्रृंखला के समीप तक आ बसे, तब लगभग दो सौ एक ईसा पूर्व से दो सौ पैंसठ ईसा पूर्व में ह्युंग–नुर (Hiung-Nur) अर्थात् हूणों द्वारा पराजित होने पर उन्हें पश्चिम की ओर भागना पड़ा तथा पर्वतों को पार कर उन्होंने ताजिकों के निवास स्थान बक्त्रियाना (Bactriana) पर अधिकार कर लिया।[37] नौसारी दान–पत्र लेख यह स्पष्ट करता है कि पुलकेशिन द्वितीय (लगभग सातवीं शताब्दी) चालुक्य द्वारा ताजिकों के आक्रमण को विफल कर दिया गया था।[38]

पुनः टॉलमी (Ptolmey) नामक यूनानी भूगोलवेत्ता तत्कालीन किरातों के फैलाव को गंगा के क्षेत्र एवं पूर्व के ऊपरी क्षेत्र तक बताते हुए उनके स्थान को किरहादई (Kirrrhadia) और अइरहडोई (Airrhadoi) उल्लिखित करता है।[39] मेगस्थनीज़ तथा प्लीनी के विवरणों में इन्हें सीरेटस (Syrites) नाम से उल्लिखित करते हुए जंगली कहा गया है।[40] इस प्रकार आगे आने वाले समय से अरबयात्री अल–बरुनी अपने ग्रन्थ में किरातों का भी वर्णन करते हैं।[41] पार्जिटर महोदय चीनों और किरातों के देश को प्राग्ज्योतिष की सीमा से अनुबन्धित करते हुए पूर्वी समुद्र पर स्थित हुआ वर्णित करते हैं।[42] वास्तव में छत्तीसगढ का क्षेत्र इसी प्रकार की जन–जातियों से स्वशासित था और इतिहास के पन्नों में उत्तर–ऐतिहासिक युग में वहाँ पशुपालक एवं पहाड़ी जातियाँ अपने–अपने राज्य स्थापित कर चुकी थीं। निमिखों के साम्राज्य के पतन के पश्चात् सूर्य एवं चन्द्रवंशियों से किरातों का उद्‌भव हुआ और उनकी पश्चिम में बढती हुई

---

36. Latham, R.G., 'Tribes and Racces- A Descriptive Ethonology of Asia, Africa and Europe', II, 1983, Delhi, pp. 190-191.
37. Risley, Herbert, 'The People of India', 2nd, 1969, Delhi, p.59.
38. Ray, H.C., op. cit., (1), p. 9.
39. Mc-Crindle, J.W., 'Ancient India as Described in Classical Literature', New Delhi, 1901, p. 277. Schoff, Wilfred H., 'The Periplus of the Erythraean Sea', New Delhi, 243, 253-4.
40. Law, B.C., 'Historical Geography off Ancient India' Calcutta, 1954, p. 98.
41. Sachau Edward C., 'Alberuni's India, Delhi, 1989, 1m pp. 303-3, 262.
42. Pargitar, F.E., 'Markandeya Purana', p. 316, 335-8.

सैन्य–क्षमता को गुप्त काल में लिच्छवियों द्वारा बाधित किया गया।[43] बाशम महोदय के अनुसार किरातों को हिन्द–चीनी कहा जाता है, उनका इतिहास तीन हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है[44] और चूंकि उनका सम्बन्ध नेपाल से माना जाता है, अतः यदि नेपाल के इतिहास का अवलोकन किया जाय तो उसके स्वतन्त्र इतिहास का आरम्भ एक हजार ईसा पूर्व से आरम्भ होता है और इनकी राजधानी लेवी महोदय के अनुसार पशुपति मन्दिर के उत्तर–पूर्व में गोकरण के वनक्षेत्र में स्थित थी। नेपाल का नामकरण "नी" (Ne) नामक साधु से माना जाता है, जिसने अल्पवर्षों तक नेपाल पर राज्य किया और उसके बाद पशु–पालकों द्वारा तथा तदनन्तर आठ राजवंशों द्वारा एवं इसके पश्चात् आरि (Ahir) तथा ब्रा–सिंह (Bara-Sinha) द्वारा स्वशासित होने के पश्चात् सम्पूर्ण देश किराती राजाओं द्वारा शासित किया गया, जिनके शासनकाल में भगवान् बुद्ध तथा सम्राट् अशोक महान् द्वारा नेपाल का भ्रमण किया गया और परवर्ती युग में ये ही किरात विन्ध्य के मैदानी क्षेत्र में जा बसे। इसीलिए भारतीय साहित्य में इन्हें जंगली अथवा पाशविक या अनार्य कहा गया है।[45] रे महोदय के अनुसार जो काल गोपाल एवं अभीरों के लिए निर्धारित किया गया है, उसे जंगली जनजातियों द्वारा अपनी शक्ति से आच्छादित किया गया प्रतीत होता है, जिनके परवर्ती स्वरूप किरात थे, जिन्हें वर्मी–तिब्बती जाति से समीकृत किया जाता है, जो हिमालय के उच्च श्रृंगों के पठारी क्षेत्रों में, जहाँ गंगा का गोमुख है तथा समुद्र के समीपस्थ तटवर्ती क्षेत्रों पर निवास करते थे। आज भी दुध–कोसी (Dudh-Kosi) एवं अरुण (Arun) के मध्य के नेपाली क्षेत्र में किरात शब्द का प्रयोग किया जाता है, जबकि वास्तव में किरातों द्वारा एक समय इससे बड़ा क्षेत्र नेपाल में अधिकृत किया गया था। नेपालियों का सम्वत् एक सौ दस ईसवी से आरम्भ होता है और इसी समय लिच्छवियों ने भी प्रभुत्व संवर्धन किया था तथा यही वह समय प्रतीत होता है जब किरातों का नेपाल से बहिर्गमन हुआ एवं सूर्यवंशी लिच्छवियों द्वारा उनकी शक्ति को अवरोधित किया गया[46] गुर्जर भोज के ग्वालियर प्रस्तर स्तम्भ लेख (लगभग आठ सौ छत्तीस से आठ सौ पचासी ईसवी) एवं ललितासूर के ताम्रपत्र लेखों (आठ सौ चौवन ईसवी) में किरातों के पराभव का उल्लेख दृष्टिगत होता है।[47] पुनः दृष्टि–निक्षेप यह स्पष्ट करता है कि चीन के पारस्परिक सम्बन्ध में प्रगाढता वहाँ बौद्ध धर्म के प्रसार को काश्यप मातंग एवं धर्मरक्ष द्वारा सरसठ ईसवी में किये जाने के साथ हुई। चौथी

---

43. Majumdar & Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 81 & 83. Tripathi, R.S., 'History of Kannouj to the Moslim Conquest' Delhi, 1959, p. 235.

44. Basham, A.L., 'A Cultural History of India', New Delhi, 1983, p. 303.

45. Indian Culture, No. 4, p. 266. Sanwal, B.D., 'Nepal and the East India Company', Lucknow, 1965, pp. 31-32, 78n.2, 80, n1. 80n, 3. 81.n.8.

46. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India' Early Mediaeval Period), Vol. I, Delhi, 1973, p. 188. Indian Antiquary, 13, p. 417.

47 दुर्व्वार – वैर – वर – वारण – वाजि – वार – याणौध – संघट – न – घोर – घनान्धकारं (रम)।
निज्जित्य वङ्गपतिमाविरभूद्विवस्वा –
निघान्निव त्रिजगदेक – विकासिको यः।।
आनर्त्त – मालव – किरात – तुरुष्क – वत्स –
मत्स्यादि – राज – गिरिदुर्ग्ग – हठापहारैः।
यस्यात्म – वैभवतमतीन्द्रियमाकुमार –
माविर्व्व (र्ब्भ) भूव भुवि विश्वजनीन – वृत्तेः।। गुर्जर भोज का ग्वालियर प्रस्तर स्तम्भ लेख, I, पंक्ति 10–11
पाल – कि (शोर – व) डवा – गोमहिष्यधिकृत (त – भट्टमहत्त)
माभीर – वणिक् श्रेष्ठि–पुरोगान्साष्टादश – प्रकृत्या (त्य) धि
(ष्ठा) नीयान्खष (श) – किरात–द्रविड–कलिङ्ग – गौ – ललितासूर का ताम्रपत्र लेख, पंक्ति – 15
Journal of Royal Asiatic Society, 1909, pp. 257-8.

शताब्दी इसवी में प्रथम बौद्ध पगोडा का निर्माण हुआ, जिसका निर्माण हियान–वू (Hian-Wu) नामक चीनी सम्राट द्वारा नानकिंग (Nanking) में कराया गया।[48] भारत में कैसिया (Cassia) अथवा चिनमन (Cinnemon) का आयात दो हजार सात सौ ई. पूर्व में, जैसा कि पारसीक लेखों से ज्ञात होता है, चीन से किया जाता था। इसी मसाले अर्थात् दाल–चीनी का भारत में आयात सामुद्रिक मार्गों से तृतीय से छठी शताब्दी तक बहुतायत में विद्यमान था।[49] कैनेडी महोदय सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में तत्संदर्भित सामुद्रिक व्यापार के आरम्भ के विषय में संदेह व्यक्त करते हैं।[50] बेबीलोनिया के अन्तिम शासक नेबोनीडस (Nabonidus), 1556–539 ईसा पूर्व के काल में भारत तथा चीन के जलयानों का बेबीलोनिया में आवागमन विद्यमान था।[51] भूमध्यसागरीय देशों में जब रेशम की मांग बढ़ी तब पार्थिया शासनतंत्र ने और अधिक प्रतिबन्ध लगाये। फलस्वरूप रोम तथा पार्थिया के मध्य कई बार युद्ध हुए एवं परवर्ती युग में लगभग चार सौ छिहत्तर ईसवी में पूर्वी रोम में स्थित वाइज़नटाइन (Byzantine) तथा पर्शिया के सैसेनियन (Sassanion, दो सौ छब्बीस ईसवी) साम्राज्यों के मध्य युद्ध हुए। इस संदर्भ में लोगों के यह प्रयास कि इन्हें मेसोपोटामिया से सम्बन्ध न रखना पड़े, के फलस्वरूप अबीसिनिया एवं तुर्कों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए गए और कैस्पियन सागर के उत्तरी क्षेत्र से तत्सम्बन्धित व्यापारिक मार्ग प्रयोग में लाये गए। तदनन्तर पाँच सौ सत्ताइस ईसवी में जस्टीनियन (Justinian) के नेतृत्व में एक नव–दम्पती ने चीनी रेशम के कीड़ों एवं अण्डों का आयात यूनान होते हुए पश्चिम में पुनः आरम्भ किया। इस प्रकार से रेशम का पूर्व से होने वाला व्यापार आघातित हो समाप्त हो गया।[52] जैसा कि इतिहास के पृष्ठों से परिज्ञान प्राप्त होता है, दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व में बर्बर–हूण चीन की सीमाओं पर रहते थे।[53] इतिहास में कुषाणवंशीय कनिष्क वह पहला शासक था, जिसने चीनों के विरुद्ध प्रथम शताब्दी के समापन के लगभग अभियान किये थे।[54] चौथी शतब्दी के प्रारम्भ में फू–नान (Fu-nan) नामक देश में राजनैतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई थी। इससे लाभ उठाकर चान–तान (Chan-Tan) अथवा चंदन या चन्द्र नामक हिन्दू द्वारा नरेशत्व ग्रहण करने के पश्चात् तीन सौ छप्पन ईसवी में कम्बोडिया के इस क्षेत्र से एक दूत–मण्डल चीन भेजा गया। इसी क्रम में पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ के लगभग भारतीय ब्राह्मण कौन्डिन्य (Kaundinya) फू–नान का शासक हुआ।[55] वीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव के अनुसार तिब्बती–चीन जातियाँ एवं वंश (Tibeto-Sinoraces) अपने सम्पूर्ण रूप में साहित्य में चीन एवं किरातों के नाम से जाने जाते थे।[56] यद्यपि कश्मीरी पंडित कल्हण एवं अरब यात्री अल्बरुनी चीनों का वर्णन करते हैं परन्तु उस वर्णन में उनके सन्दर्भ में कोई महत्त्वपूर्ण युद्धक घटना का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।[57] प्राचीनकाल में राजनैतिक रूप से चीन से नेपाल, भारत से अधिक सम्बद्ध था और इसी कारण से नागार्जुनीकोंड नामक वीरपुरुषदत्त के अभिलेख, जिसकी लिपि ब्राह्मी जैसी है,

---

48. Dey, N.L., 'The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, Delhi, 1971, pp. 48, 75. विद्यालंकार, सत्यकेतु, 'मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति', मसूरी, 1977, पृ. 161 एवं आगे। वेदालंकार, हरिदत्त, 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास', दिल्ली, 1992, पृ. 131 एवं आगे।
49. Schoff, Wilfred, op. cit., pp. 83, 84, 227.
50. 'Journal of the Royal Asiatic Society', 1898, pp. 248, 287.
51. Schoff, Wilfred, op. cit., pp. 83, 84, 227.
52. Bombay Gazzeteer, Vol. II, p. 547.
53. Sir Stein Aurel, 'The White Huns and the Kindred Tribes in thee History of the Indian North Western Frontier', Indian Antiquary, 1905, pp. 73 ff.
54. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 142 ff.
55. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 643 ff.
56. Srivastava, B.N., 'Harsh and His Times', Chaukhamba, Varanasi, 1976, p. 187.
57. Stein, M.A., 'Kalhan's Raajatarangini', English Translation 1.4.126 note. Sachau, E.C., op. cit., 1, p. 303.

जोकि लगभग तीसरी शताब्दी में प्रचलित थी, स्पष्ट करता है कि चीनों एवं किरातों का प्रसार हिमालय तक के अपरान्त क्षेत्र में था।[58] भारत तथा चीन के सम्बन्ध स्थानेश्वर के पुष्यभूतिवंशीय हर्षवर्धन के काल में प्रगाढतर हुए और छह सौ इकतालीस ई. में भारत का एक दूत–मण्डल चीन भेजा गया। परिणामस्वरूप छह सौ पचास ई. में चीनी सम्राट द्वारा वैंग–ह्वेन–सी (Wang0Heuen-Tse) नामक एक दूत भारत भेजा गया, जिसके समय तक सम्राट हर्ष की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसके मंत्री अर्जुन द्वारा तीरभुक्ति में अपना राज्य स्थापित कर इस चीनी दूत का विरोध किया गया। बाद में नेपाल तथा तिब्बती सेना की सहायता से वैंग–ह्वेन–सी ने सहस्त्रों भारतीय वीरों को हताहत कर अर्जुन को पराजित किया एवं हत्या कर दी। भारतीय इतिहास के इस अंधकारमय युग पर केवल चीनी अनुवृत्त ही प्रकाश डालते हैं।[59]

इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ विवरण को ऐतिहासिक परिदृश्य में देखने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कालिदास, वराहमिहिर एवं महाभारतकार आरम्भ में हूणों को हारहूण एवं श्वेतहूण के नाम से जानते थे।[69] कालक्रम के प्रवाह के साथ जब हूण भारतीय इतिहास में अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए तथा भारतीयता में रम–बस गये, तब यहाँ के लेख कला एवं साहित्य में इनके लिए ''हूण'' शब्द का प्रचलित प्रयोग किया गया, जिसकी सम्भावना गुप्तकाल के अनन्तर ही व्यक्त की जा सकती है[61], क्योंकि हम जानते हैं कि गुप्तकालीन लेख एवं मन्दसौर के अभिलेख में कालिदास के ग्रन्थों तथा उनकी भाषा–शैली का प्रयोग किया गया है। चीनी यात्री सुंग–युन (Sung-Yun) ने अपने यात्रा अनुवृत्त में लगभग पाँच सौ बीस ईसवी में हूणों की राजनैतिक शक्ति का प्रसार गांधार प्रदेश में बताया है।[62] इसी प्रकार हैहयों की उनके इसी नाम से जानी वाली राजनैतिक स्थिति का मूल्यांकन हम उनके उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कर सकते हैं और इस आधार पर उनका प्रश्नगत ग्रन्थ में जो बीभत्स वर्णन प्राप्त होता है, वह पाँचवी–छठी शताब्दी के सन्धि प्रकाश काल में सम्भाव्य हो सकता है। इसी प्रकार चीनों का जिस प्रकार का उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ में प्राप्त होता है, उसे राजनैतिक रूप में सातवीं शताब्दी में समीकृत किया जा सकता है, क्योंकि यही वह समय था, जब भारतीय इतिहास में एक नवीन आयाम की प्रस्तुति के पूर्व विदेशी आक्रमण एवं युद्धक घटनाओं का बोलबाला था। प्रश्न उठ सकता है कि यदि ऐसा था तो समुद्रतट पर चीनों के मारे जाने का उल्लेख ग्रन्थ में क्यों किया गया है, उत्तर में कहा जा सकता है कि यद्यपि इस समय तक पश्चिम में यूनान के चीन से स्थल मार्ग द्वारा व्यापार आरम्भ हो गये थे तथापि इस सन्दर्भ में सामुद्रिक मार्ग अभी भी प्रचलित थे। जहाँ तक प्रश्नगत ग्रन्थ में किरातों का वर्णन है, उस प्रसंग से केवल इतना ही सारांश निकाला जा सकता है कि चौथी शताब्दी तक आते–आते इनकी राजनैतिक शक्ति को लिच्छवियों द्वारा अवरोधित कर दिया गया था। किरातों के एक मुख्य ''विक्रम'' का उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ में किस प्रकार से आया है और उसकी ऐतिहासिक स्थिति क्या है? हम पहले ही इस सन्दर्भ में अपनी

---

58. ''– – – र मा (ढ) रि–पु (त) (स) (संवछर) चोदं (10) (+) 4 हेमंत–नखं छढं 6 दिवसं तेरं 10 (+) 3 (1) (1) (अ) (च) त–(रा) जचरीयानं कस्मीर–गंधार–चीन–चिलात–तोसलि–अवरंत–वगं– वनवासी–यवन (– (दमिल)– (प) लूर–तंबपंणिदीप–पसदकानं थेरियनं तंबपंणकानं सुपरिगहे– – –।

    नागार्जुनी कोंड अभिलेख, वीपुरुषदत्त, शासनकाल का चौदहवाँ वर्ष (डी.सी. सरकार के अनुसार दक्षिणात्य ब्राह्मी लिपि, लगभग तृतीय शताब्दी के द्वितीय चरण की), पंक्ति 1, मूलसूत्र–2.

59. Journal of Asiatic Society of Bengal (6), 1837 , p. 69 f. Journal of the Royal Asiatic Society, 1869-70 (n,4), p. 85 f. Smith, V.A., 'Early History of India', Oxford, 1924, pp. 366-7. Indian Antiquery, 9, p. 20.

60. Biswas, Atreyi, op. cit., p. 26-28, 36.

61. Thaplyal, K.K., 'Studies in Ancient Indian Seals', Lucknow, 1972, pp. 22n, 61, 64, 74, 88, 96, 169, 211, 274, 275, 90, 171, 61-62, 262, 61-63, 210, 275.

62. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 36. Beal, S., 'Buddhist Recrods of the Western World Introduction' Delhi, 1981, p. 15.

असमर्थता स्पष्ट कर चुके हैं। फिर भी यदि तथ्यों का आलोडन–विलोडन किया जाय तो कहा जा सकता है कि इस नाम का उल्लेख साधारण रूप में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के लिए किया जाता है। उदयनारायण राय महोदय के अनुसार भास के नाटकों के भरत–वाक्यों में उल्लिखित राजसिंह नामक राजा का समीकरण चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के साथ किया जाता है। उसका साम्राज्य हिमालय के क्षेत्रों तक विस्तृत था। प्रश्नगत ग्रन्थ के किरात जाति के मुख्य विक्रम का राज्य भी हिमालय में बताया गया है।[63] अब यदि आलोच्य ग्रन्थ के किरातविक्रम को चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य से समीकृत करने का प्रयास किया जाय तो एक नया आयाम होगा परन्तु ऐसा मानने के लिए हमारे पास कोई स्वस्थ ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, क्योंकि हम यह जानते हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य शुभ लक्षणों से परिपूर्ण था, जबकि किरातों के लिए स्वयं प्रश्नगत ग्रन्थ "बर्बर" शब्द का प्रयोग करता है। दूसरी ओर कश्मीर के इतिहास में हर्ष नाम के विक्रमादित्य की उपाधि को धारण करने वाले एक शासक का उल्लेख मिलता है। भाऊदाजी तथा स्टीन महोदय ने ह्वेने–त्सांग (Hiuen-Tesang) नामक चीनी यात्री के विवरण के आधार पर इसे हर्षवर्धन का पूर्वगामी पूर्वज बताया है, जिसने मिहिरकुल के पश्चात् शासन की बागडोर सम्भली थी।[64] चट्टोपाध्याय महोदय के अनुसार यही यशस्वी हर्षगुप्त था, जिसकी भगिनी का विवाह मौखरि कुल में हुआ था ऐसा सम्भव है कि इसी हर्षगुप्त ने अपने पुत्र जीवन्तगुप्त द्वारा हिमक्षेत्रों की विजय के पश्चात् विक्रमादित्य की उपाधि धारण की।[65] यदि इस प्रसंग को आलोच्य ग्रन्थ के प्रसंग से मिलाने का प्रयास किया जाय तब भी इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथिक्रम के विषय में सातवीं शताब्दी से पूर्व विचार करना संभव नहीं है। ताजिकों अर्थात् अरबों के सर्वप्रथम आक्रमण को दक्षिण के चालुक्य राजा पुलकेशन द्वितीय द्वारा सातवीं शताब्दी में ही विफल किया गया था। अब आलोच्य ग्रन्थ में उपर्युक्त जति नामोल्लेखों के विवरण के आधार पर समसामयिक ऐतिहासिक घटनाक्रम से एक तादात्म्य स्थापित करने पर हम उसके रचनाकाल की तिथि का निर्धारण कभी भी छठी–सातवीं शताब्दी ई. के सन्धि प्रकाश–काल से पूर्व नहीं कर सकते। चौदह सौ पचास ई. में लिखे गए "सम्मोहतन्त्र" के शतपंचाशद्‌देशविभाग में जिन देशों की सूची दी गई है, उसमें किरात और कैकट नाम के दो अलग–अलग देशों का उल्लेख मिलता है।[66] यह उल्लेख किसी तीर्थयात्री के शिव और पार्वती के प्रति किया गया पवित्र देशों का वर्णन है। इसके विपरीत आलोच्य–ग्रन्थ में किरातों के गुल्मवंशियों को विन्ध्य की भूमि तथा चीन के जंगलों में कैकट देश के सुन्दर नदी तालों में स्थित बताया गया है।[67] अब यह माना जा सकता है कि आलोच्य ग्रन्थ उस समय रचा गया होगा, जब कैकट (कर्कट) देश, जिसका वर्णन सम्मोहतन्त्र में किया गया है, किरातों के अधीनस्थ रहा होगा। काल के प्रवाह में चौदह सौ पचास ईस्वी तक आते–आते कैकट देश किरातों से भिन्न अपनी स्वायत्तता स्थापित कर चुका होगा। इस प्रकार सारांश रूप में उल्लिखित विवरण के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण

---

63 राय, उदयनारायण, 'गुप्त सम्राट और उनका काल', इलाहाबाद, 1971, पृ. 200 अत्रेयी, विश्वास, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास', दिल्ली, 1982, पृ. 34. यो. महा. 3 77 16–17

64. Stein, M.A., op. cit., 1.3.125 note.

65. Chattopadhyay, S., 'Early History of North India', Calcutta, 1968, pp. 261-265. Fleet, J.F., Corpus Inscriptionum Indicerum 3 (Apshad Stone Inscription, 660-75 A.D.). No. 42, 28.1&4. Saxena, K.S., 'Political History of Kshmir', Delhi, 1974, p. 33.

66 चौ (चो) लयां (पां) चालकांबोज (जाः) वैराद्र (द्र) पाभ्यां (ण्ड्यौ) विदेहभूः। वाह्लीकश्च किरातश्च कैकटा (कर्यटा) वन्तकौ (9) तथा।।

(Sircar, D.C., "Studies in the Geography of Ancient and Medieval India", Delhi, 1971, p. 78)

67 अभूद्विन्ध्यनगे भूयः किरातः कैकटेपु च।
सौवीष्वथ सामन्तस्त्रिगर्तेपु च गर्दभः।।
वंशगुल्मः किरातेषु हरिणश्चीनजङ्गले।
सरीसृपस्तालवृक्षे तमाले वनकुक्कुटः।। (यो. महा. 4 10 62, 63)

के रचनाकाल की तिथि को छठी–सातवीं शताब्दी के सन्धि प्रकाश काल में निर्धारित करने हेतु विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

गौड

गौडो के विषय में प्रश्नगत ग्रन्थ का वर्णन यह सूचना प्रदान करता है कि ताम्र–यवनों की सेना को इनके द्वारा उच्छेदित किया गया[68] तथा ये गुड–गुड भाषा अर्थात् अस्पष्ट शब्दों को बोलते थे।[69] इस प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ गौडों की शक्तिमयता का परिचय देते हुए उनके द्वारा पराजित ताम्रयवनों की सेना की ओर जहाँ इंगित करता है वहीं उनकी अस्पष्ट भाषा और शक्ति से आक्रान्त गान्धारों का वर्णन भी करता है। इसके पूर्व कि कुछ तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित कर हम कोई निष्कर्ष निकालने का प्रयास करें, आवश्यक हो जाता कि उक्त विवरण को ऐतिहासिक पटल पर रखकर तोलने का प्रयास किया जाय।

पाँच सौ तिरपन–चौवन ईसवी के ईशानवर्मन् का हडहा अभिलेख वह प्रथम उपलब्ध प्रमाण है, जिसमें गौडों को "समुद्रसार्य" शब्द के प्रभाव के अन्तर्गत माना गया है।[70] इस प्रकार ईशानवर्मन् मौखरि द्वारा गौडो की शक्ति को अवरोधित कर उन्हें समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में ही रहने के लिए विवश कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि ऐसा वर्णन जिसमें कि किसी के हाथों पराजित होने के पश्चात् किसी जाति के कार्यक्षेत्र की राष्ट्रीय विशेषता प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया हो, जिसके अनुसार गौड समुद्र में व्यापार करने वाले लोग होते थे, उसको आधार मानते हुए रमेशचन्द्र मजूमदार यह मत प्रतिपादित करते हैं कि "समुद्रसार्य" भाव जो हडहा अभिलेख में प्रयुक्त हुआ है, उससे यह तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है, कि पूर्वी समुद्रतट पर रहने वाले लोग गौड नाम से विख्यात थे।[71]

संस्कृत साहित्य में पाणिनि की अष्टाध्यायी वह पहला ग्रन्थ है, जिसमें स्पष्ट रूप से गौडों का उल्लेख है।[72] बाणभट्ट ने हर्षवर्धन द्वारा गौडों के विनाश हेतु सैन्य–शक्ति का गठन किये जाने का उल्लेख किया है[73] तथा डी.सी. सरकार महोदय के अनुसार अन्य लोगों के साथ गौड भी पाल शासकों की जल सेना के सैनिक सदस्य थे।[74] इतिहास के पृष्ठों में यह स्पष्ट है कि गौड़ छह सौ से छह सौ पैंसठ ई. तक जल सैन्य शक्ति के कारण विख्यात थे। शशांक की मृत्यु के पश्चात् गौड देश का विभाजन स्थानेश्वर एवं कामरूप राज्यों के मध्य हो गया था।[75] सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कश्मीरी शासक ललितादित्य के हाथों पराजय प्राप्त करने के पश्चात् इन्हें कन्नौज के शासक यशोवर्मा के हाथों पराजय का मुख देखना पड़ा।[76]

---

68 कान्तकाचन् कान्तासीत्ताम्रसंग्रामवाहिनी।
भुक्ता गौडभटेनाङ्गनखकेशनिर्षणैः।। (यो महा. .37.22)

69. लगुडालोडनोड्डीनं गौडंगुडुगुडारवम्।
श्रुत्वा गान्धारभावोग्र दुद्रुवुर्द्रविडा इव।। (वहीं, 24)

70. कृत्वा चायाति–मौ (मो) चित–स्थलभुवो गौडन्समुद्राश्रयानध्यासिष्ट नत–क्षितीश–चरणः सिंहासनं यो जिती।।
(हड़हा प्रस्तर अभिलेख, पंक्ति – 13)

71. Epigraphia Indica, 14, p. 120. Majumdar, R.C., "History of Bengal", Patna, 1971, p. 37n.

72 'अरिष्ट–गौड–पूर्वे च', पाणिनि, अष्टाध्यायी, परिष्कर्ता शास्त्री, गोपाल, चौखम्बा, वाराणसी, 1981, 6.2.124

73. Mookerji, R.K., 'Ancient India', Calcutta, 1956, p. 350.

74. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Delhi, 1982, Vol. 2, p. 72.

75. Majumdar, R.C., 'History of Bengal', p. 37 f. Jackson, A.M.T., Journal of Royal Asiatic Society, 1906, pp. 163-4. Majumdar, R.C., Journal of Royal Asiatic Society, 1906, p. 442.

76. Ray, H.C., op. cit., 1, p. 277. वाक्पतिराज, गौडवहो, पूना, 1927, श्लोक 416.

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक वर्षों में गौडों का राजनैतिक क्षेत्र बंगाल के निचले सामुद्रिक प्रदेशों में था और बाद में शशांक के काल तक आते–आते इनका अधिकार सम्पूर्ण बंगाल एवं उड़ीसा के क्षेत्र पर हो गया।

इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ में गौड शब्दोल्लेख के आधार पर हम प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथिक्रम को उस समय मान सकते है, जबकि गौडों द्वारा गांधारों को आक्रान्त किया गया और इसी घटना को यदि कश्मीरी शासक ललितादित्य के आक्रमण के समय या उससे थोड़ा परवर्ती काल से जोड़ा जाय तो प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के तिथिक्रम को नवीं शताब्दी ईसवी अथवा उससे कुछ पूर्व निर्धारित करने हेतु विचार किया जा सकता है।[77]

ताम्र, गांधार, भासक, तंगण, गुर्जर एवं आभीर

प्रश्नगत ग्रन्थ का रचयिता सुन्दर आलंकारिक भाषा का प्रयोग करते हुए उपमा अलंकार के माध्यम से ताम्रों की सेना का विच्छेदन गौडों द्वारा किये जाने का वर्णन करता है।[78] इसी विवरण को शिवप्रसाद भट्टाचार्य महोदय ताम्रयवन शब्द से सम्बद्ध करते हैं और इसे एक आधार मानते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी का बताते हैं।[79] वास्तव में आलोच्य ग्रन्थ के जिस संस्करण का आधार यहाँ लिया गया है, उसके उत्पत्ति प्रकरण के सैंतीसवें सर्ग के बाइसवें श्लोक में 'ताम्रयवन' शब्द का प्रयोग न करते हुए मात्र 'ताम्र' शब्द का प्रयोग किया गया है।[80]

अब यह स्पष्ट है कि गौडों द्वारा परास्त ताम्र थे न कि ताम्रयवन। इस दृष्टि से ताम्रजाति को दो प्रकार से समीकृत किया जा सकता है। प्रथम के अनुसार हम ताम्रों को बिहार प्रान्त के पुरनिया जिले में ताम्र नदी से सिंचित तीर्थ–स्थान क्षेत्र में रहने वालों से समबद्ध कर सकते हैं।[81] दूसरे के लिए डी.सी. सरकार का मत दृष्टि में लाना होगा, जिसमें वे कहते हैं कि यह ध्यान देना कि ताम्रराष्ट्र जिसमें ताँज (Tanja) स्थित था, जम्बूद्वीप का एक स्थान या भारत से कुछ बाहर लंका के समीप स्थित था। दुर्भाग्य से भौगोलिक दृष्टि में दक्षिण भारत में इस नाम का स्थान ताम्रपर्णी नदी के क्षेत्र से समीकृत करने के अतिरिक्त और कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं होता। यह क्षेत्र ग्यारहवीं शताब्दी में दक्षिण के चोल शासकों के आधिपत्य में था।[82] तिब्बती लामा तारानाथ का वृत्तान्त ताम्रों के क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रसार का उल्लेख करता है।[83] दसवीं शताब्दी में दीपांकर श्रीज्ञान ने इसी क्षेत्र में बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था।[84] इतिहास में हमें कोई ऐसा उदाहरण प्राप्त नहीं होता जब गौडौ द्वारा लंका के समीपस्थ किसी ऐसे क्षेत्र की विजय की गई हो, जहाँ के निवासियों का वर्ण स्वर्णिम हो। इसीलिए इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई भी मत प्रतिपादन करना तब तक उचित नहीं होगा, जब तक इतिहास के पृष्ठों पर इस सन्दर्भ में कोई प्रमाणिक आधार प्राप्त न हो।

इसी प्रकार भासक देश के निवासियों द्वारा तंगणों की पराजय के विषय में[85] ऐतिहासिक दृष्टि से कोई जानकारी

---

77. विचार के लिए तुलना करें– Stein, M.A., op. cit. p. 4. 148, 233, 324, 334, 335, 421, 468, 7.564, 8.2052. खालिमपुर ताम्रपत्र लेख (775 से 812) संख्या 15, पंक्ति 12.
78. यो. महा. 3.37.22
79. Bhattacharya, S.P., 'Proceedings of the Third Oriental Conerence', Madras, 1974, pp. 549 ff.
80. देखिये– योगवासिष्ठ महारामायण, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, संस्करण, खण्ड–1, 3.37.22.
81. Dey, N.L., 'The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India', Delhi, 1922, p. 259.
82. Sircar, D.C., 'Geography of Ancient and Medieval India', Delhi, 1971, p. 317.
83. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Mumbai, 1984, p. 274.
84. Majumdar, R.C., op. cit., p. 674.
85. यो. महा., 3.37. 33.

प्राप्त न होने के कारण इस सन्दर्भ में भी प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई मत प्रतिपादित नहीं किया जा सकता परन्तु ग्रन्थ में अन्यत्र तंगणों के गुर्जरों के सन्दर्भ में दिये गये विवरण का आधार लेकर यहाँ कुछ प्रयास किये गये हैं।

आलोच्य ग्रन्थ में तंगणों द्वारा चेदि और गुर्जरों की पराजय का उल्लेख आता है।[86] बीरेश्वरनाथ श्रीवास्तव महोदय इस आधार को लेते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ को पाँचवीं शताब्दी ई. का मानते हैं।[87] वे आगे कहते हैं कि अग्निपुराण में उत्तरापथ को गुर्जर भूमि की सीमा प्रदर्शित की गई है तथा महाकाव्यों एवं अन्य महापुराणों में भी उनके सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।[88] यह स्पष्ट है कि बाणभट्ट के काल आते–आते रामायण, महाभारत तथा पुराण जन–जन के हृदय का केन्द्र बन गये थे, जिनमें गुर्जरों को एक लडाकू जाति तथा जन–जाति के रूप में वर्णित किया गया है।[89]

वास्तव में आलोच्य ग्रन्थ का यह विवरण जिसमें गुर्जरी विधवाओं के केशलुञ्चन का उल्लेख प्राप्त है, एक विशेष संस्कार को इंगति करता है, साथ ही साथ यह उल्लेख तंगणों की तत्कालीन शक्ति को भी प्रदर्शित करता है।

पुराणों एवं महाभारत के उल्लेख तंगणों के देश को उत्तर के हिम क्षेत्रों में स्थित बताते हैं।[90] डी.सी. सरकार महोदय के अनुसार उनका मुख्य स्थल तंगणपुर गढ़वाल में जोशीमठ के निकट स्थित था।[91] वासुदवेशरण अग्रवाल कुल्लू–कांगड़ा के भूटा क्षेत्र में इनकी स्थित स्पष्ट करते हैं।[92] इसी प्रकार डे महोदय रामगंगा और ऊपरी सरयू के हाटक और लाडक क्षेत्र में इन्हें समीकृत करते हैं तथा जैन–ग्रन्थों के आधार पर वे इन्हें म्लेच्छ बताते हैं।[93] रामायण में इन्हें तंकण कहा गया है[94] तथा अरब यात्री अल्बरूनी इन्हें उत्तरी क्षेत्र में तंगण तथा दक्षिण में तंकण नाम से उल्लिखित करता है।[95] पार्जिटर महोदय तंगण और परतंगण नाम से इनकी दो शाखाओं का उल्लेख करते हैं। ये किरातों, पुलिन्दों तथा अम्बष्ठों से सम्बद्ध होने के साथ ही साथ युद्ध में पत्थर फेंकने में योग्य होते थे तथा इनका राजनैतिक क्षेत्र हिमालय के मध्य में स्थित था।[96] राजशेखर उत्तर के तुषारों (तुखारों) के साथ इनका नामोल्लेख करता है।[97] आर.के. चौधरी महोदय के अनुसार हूणों तथा तंगणों के राज्य की सीमाओं से स्त्रीराज्य की सीमा सन्नद्ध थी।[98] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन राजनैतिक परिवेश में जिस तंगण जाति का उल्लेख तत्कालीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है; वह एक पर्वतीय जाति थी।

---

86 यो. महा., 3. 37 19. 42

87. Srivastava, B.N., 'Harsh and His Times', Varanasi, 1976, p. 219.

88. Ibid, p. 220.

89. Ibid.

90. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medival India', pp. 35n, 45n, 68n, 70n, महाभारत, सभापर्व 52.3, द्रोणपर्व 121.14, वनपर्व 140. 24–25, भीष्मपर्व 9.64,50.51

91. Epigraphia Indica, Vol.31, p. 286. Sircar, D.C., op. cit., p. 35.

92. कादम्बिनी, दिल्ली, अक्टूबर, 1962

93. Dey, N.L., op. cit., p. 212. Pande, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharat', Varanasi, 1980, p. 126.

94. वाल्मीकि रामायण 4.44.20

95. Sachau, E.C., op. cit., pp. 301 & 303.

96. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 323.

97. Rajshekharr, 'Karpurmanjari', E.Tr. Konow edn. Horvert Oriental Series, Delhi, 1962, Ch. 17, p. 281.

98. Chaudhary, R.K., 'The Huna Invasion of India', Journal of the Bihar Research Society, Alteker Memorial, Vol. 1959, p. 116.

इस विवरण से दो विशेष तथ्य सामने आते हैं– प्रथम, आलोच्य ग्रन्थ का विवरण गुर्जरों की तंगण नामक पर्वतीय जाति द्वारा पराजय का उल्लेख करता है। द्वितीय, गुर्जर–विधवा स्त्रियों में प्रचलित केशलुञ्चन प्रथा का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इन तथ्यों की समीक्षा में हम विचार करें तो सर्वप्रथम इस ओर दृष्टि जाती है कि विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि गुर्जर विदेशी थे और उन्होंने हूणों के पश्चात् ही इस देश में प्रवेश किया था।[99] इतिहास के पृष्ठों पर गुर्जरों को गुप्तों के साम्राज्य के पतन के पश्चात् उनकी ही एक उपशाखा माना जाता है इनका आविर्भाव लगभग छठी शताब्दी ई. में एक राजनैतिक शक्ति के रूप में हो चुका था। इनके प्रथम राजनैतिक स्थल आधुनिक जोधपुर तथा तत्कालीन युद्धप्रिय गुर्जरात्रा के नाम से विख्यात थे। अठ्ठारहवीं शताब्दी में सहारनपुर भी गुजरात नाम से जाना जाता था। ग्वालियर के समीपस्थ क्षेत्र आज भी गूजरगढ़ के नाम से जाना जाता है। यह विवरण स्पष्ट करता है कि गुर्जरों के अनेकानेक बार विभिन्न क्षेत्रों में विस्थापन हुए। उसके बाद से ये पश्चिमी हिमालय क्षेत्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी राजपूताना क्षेत्र में तथा सिन्धु के पार स्थित पर्वतीय क्षेत्रों में समय–समय पर कालक्रम के प्रवाह में बिखरी हुई राजनैतिक शक्ति के रूप में आविर्भूत होते रहे। यद्यपि इनके प्रभाव क्षेत्र में गुजरात का क्षेत्र विद्यमान था परन्तु दक्षिण की सतपुड़ा पहाड़ियों पर इनका आरम्भिक प्रभाव नहीं था। हम पहले ही कह चुके हैं कि विद्वानों का एक बड़ा वर्ग गुर्जरों को अभारतीय मानता है परन्तु जो इन्हें भारतीय मानते हैं उनका यह मत है कि जो लोग गुर्जर देश में रहते थे वही आगे चलकार गुर्जर कहलाये।[100] प्रस्तुत ग्रन्थ के वर्णित प्रकरण से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि गुर्जर युद्धप्रिय जाति थी।[101] इस प्रकार इस आधार पर गुर्जरों को विदेशी मानना उचित नहीं होगा। सम्भवतः ईसा की प्रथम शताब्दी में भारतीय राजनैतिक पटल पर स्थित विभिन्न लड़ाकू जातियों में गुर्जर भी एक थे।[102] जब गुप्तकाल की गोधूलि वेला में भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग का आदित्य अस्ताचल की ओर बढा तभी सम्भवतः राज्य एवं भूमि की लिप्सा में गुर्जरों ने भी रणमत्त हो प्रयाण किया, जिनके इस प्रयाण के तंगणों द्वारा पर्वतीय क्षेत्र में अवरोधित किया गया तथा जैसा कि आलोच्य ग्रन्थ का विवरण स्पष्ट करता है, गुर्जरों को आहत कर तंगण सैनिकों ने उनकी स्त्रियों के केशलुञ्चन किये।[103] इससे यह स्पष्ट होता है कि उक्त घटना अवश्य ही पाँचवी–छठी शताब्दी के सन्धिप्रकाश काल में हुई होगी, क्योंकि तदनन्तर गुर्जर प्रतिहारों के विशाल साम्राज्य का उल्लेख इतिहास के पृष्ठों पर प्राप्त होता है और इसके पहले ये एक सामान्य जाति के रूप में ही उल्लिखित थे।

इसी प्रकार यह भी उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में विधवा स्त्रियों का मुण्डन किया जाता था, जिसका प्रतिदर्शन योगवासिष्ठ महारामायण के दिये गये घटनाक्रम में कराके, प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के तुलनात्मक अध्ययन से[104] यह धारणा निर्धारित करने का प्रयास किया जा सकता है कि विधवाओं के केशलुञ्चन के प्रति तंगणों द्वारा गुर्जर स्त्रियों हेतु शक्ति प्रयोग किया जाना इस प्रथा के प्रति गुर्जरों में अनभिज्ञता दर्शाता है। इसके आधार पर यह विचार किया जा सकता है। कि इस प्रथा का ज्ञान गुर्जरों को बाद में हुआ, जबकि वे एक छोटी सी जनजाति के रूप में सम्भवतः बाहरी होने के कारण अपनी शक्ति के प्रसार का प्रयास कर रहे थे।

---

99. Mookerrji, R.K., 'Ancient India', p. 370. Smith, V.A., 'Early History of India', p. 322. Bhandarkar, D.R., Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society', 1903, p. 413.

100. Majumdar and Pusalker, op.cit., Vol. 3, pp. 63ff. Srivastava, B.N., op. cit., p. 219.

101. Ibid., p. 220.

102. Ibid.

103. यो. महा. 3.37.19

104. तिवारी, देवीप्रसाद, 'प्राचीन भारत में विधवाएं', लखनऊ, 1994, पृष्ठ 127, 219, 220, 221, 231, 256.

गौडों द्वारा गांधारों की पराजय का उल्लेख खालिमपुर ताम्रपत्र लेख में प्राप्त होता है, जो योगवासिष्ठ महारामायण के विवरण से सामंजस्य स्थापित करता है।[105]

प्रश्नगत ग्रन्थ में वर्णित आभीरों[106] का भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम उल्लेख पतञ्जलि के महाभाष्य (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) में प्राप्त होता है[107] तथा रामायण एवं महाभारत में भी इनका स्पष्ट उल्लेख है[108] पुराणों में भी इनका उल्लेख मिलता है।[109] इनके विषय में प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। सम्भवतः महाकाव्यकाल में इनकी स्थिति सुदृढ थी इसीलिए उस समय से इनके विशेष उल्लेख प्राप्त होते हैं। तदनन्तर इन्होंने भारत के विभिन्न क्षेत्रों नें राजनैतिक केन्द्र स्थापित कर अपनी स्वायत्त सत्ता बनाई। इन्हें आज भी आहिर जाति में माना जाता है, जो संस्कृत शब्द "आभीर" का प्राकृत भाषा में रूपान्तरण है। आरम्भिक चरणों में ये दक्षिण में कोंकण के समीपवर्ती प्रदेशों में जनजाति के रूप में निवास करते थे और बाद में उत्तर–प्रदेश, बिहार, नेपाल एवं राजपूताना के कुछ क्षेत्रों में इनका विस्तार हुआ। ये पशुपालक, शारीरिक रूप से शक्तिशाली एवं कृषि–प्रधान थे। इनकी स्त्रियाँ घूंघट में नहीं रहती थीं तथा प्राचीन जनजातियों की भाँति सामूहिक नृत्य में भाग लेती थीं। मूल रूप में ये भी बाहर से आये थे और भारतीयता ग्रहण करने के अनन्तर बढ़ई, सुनार, दूध बेचने वाले एवं ब्राह्मण जातियों में विभाजित हो, पवित्र धागे या यज्ञोपवीत धारण करने लगे। भारत में इनका स्वरूप एकेडियन (Accadian) तथा द्रविड़ों (Dravidian) का मिश्रित रूप होने के कारण विभिन्न नामों के आधार पर (Abira, Apir, Ophir) एक ही भाषा–भाषी वैभिन्य होते हुए भी निरूपित होता है। नेपाल में लगभग दूसरी शताब्दी में इनके प्रभुत्व को एंटियोकोस (Antiochus) या अन्तलिकित तृतीय द्वारा रोका गया था। परम्परागत इतिहास के अनुसार किरातों और गोपालों के अनन्तर भारत से आये आभीरों का नेपाल में प्रभुत्व हुआ, जिन्हें दूसरी शताब्दी के मध्य में बक्त्रियाना के यूनानियों के हाथ पराजय का मुख देखना पड़ा[110] परवर्ती युग में इन्हें शक–पश्चिमी क्षत्रपों द्वारा पराजित होना पड़ा था।[111] लगभग दो सौ छत्तीस ई. तक इन्हें त्रैकूटों से समीकृत किया जाने लगा, जिन्होंने सातवाहनों को पराजित किया था।[112] गुप्त सम्राटों के अधीनस्थ एक जनजाति के रूप में इनका उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रस्तर स्तम्भ लेख में लगभग तीन सौ चौबीस से तीन सौ अस्सी ई. के मध्य प्राप्त होता है[113] (लगभग 335–376 ई.)[114]। पैकुली अभिलेख (लगभग तीसरी शताब्दी ई.) इन्हें सैसेनियों (Sassanians) के

---

105. यो. महा. 3.37.24. तथा
भाजैर्मत्स्यैः स–मद्रैः कुरु–युद्ध–यवनावन्ति–गान्धार–कीरै–
भूपैर्व्यालोल–मौलि–प्रणति–परिणतैः
साधु सङ्गीर्यमाणः।
हृष्यत्य चाल–वृद्धोद्धृत–कनकमय–स्वाभिषकोदकुम्भो
दत्तः श्री–कान्यकुब्ज (ब्ज) स्स–ललित–च–
लित–भ्रलता–लक्ष्म येन। (खलिमपुर ताम्रपत्र लेख (लगभग 775 से 813) पक्ष–1, संख्या 15, पंक्ति 12)

106. भुशुंडोमंडंलोद्योतश्यामार्कोत्पातभीरुषु।
आभीरेष्वरयः पेतुर्गोगणाहरितेष्विव।। (यो. महा. 3.37.21)

107. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', II, London, 1934, p. 51.

108. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धकाण्ड 43.5–19. महाभारत, सभापर्व 31. 1192, आरण्यपर्व 186. 20–30, मुसलपर्व 7. 46–47. 63

109. Wilson, H.H., 'Visnupuran', II, pp. 168n4, 132-135. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', pp. 35-36. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 30n, 32, 39n, 46 & N. 69 & N.

110. Rai Chaudhary, H.C. 'Political History of Ancient India' edn. II, Allahabad, p. 242. Law, B.C., op. cit., pp. 52-53.

112. रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख = इपिग्राफिया इण्डिका, भाग 8, पृ. 36 एवं आगे।

113. Fleet, J.F., Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. 3 (Allahabbad Posthumous Stone Pillar Inscripition, verse 22, pl. 1, Inscription No. 1), p. 8.

114. Sircar, D.C., 'Select Inscription', Delhi, 1991, Vol. 1, pp. 262 & 265/22.

अधीन मानता है।[115] ऐसा प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी के समाप्त होते–होते आभीरों द्वारा लिच्छवियों पर आक्रमण किया गया और शिवदेव के काल में आते–आते आभीरों को पराजय का मुंह देखना पड़ा तथा नेपाल से भागना पड़ा।[116] लगभग चार सौ पचपन ई. से लेकर बारहवीं शताब्दी तक विभिन्न भारतीय शासकों तथा बाहय मुसलमान आक्रमकों के हाथों इन्हें समय–समय पर पराभव का मुंह देखना पड़ा।[117] उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में चौथी से आठवीं शताब्दी तक विचार किया जा सकता है।

दक्षिण–पूर्व दिशा के मध्य में स्थित विविध स्थल

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण–पूर्व दिशा के मध्य में निम्नलिखित स्थलों का वर्णन प्राप्त होता है।[118]

चेदि, वत्स, दाशार्ण, अंग, वंग, उपवंग, कलिंग, पुण्ड्र, जठर, विदर्भ, मेखल, शबराननवर्ण, कर्णात्रिपुरपूरक, कंटकस्थल, पृथग्दीपक, कोमल, कर्णाध्र, चौलिक, चार्मण्वत, काकका, हेमकुड्य, श्मश्रुधर, बलिग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्ध तथा नालिकेरि चेदियों का सन्दर्भ ऋग्वेद, पुराण, महाभारत, मानसोल्लास, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मुद्राराक्षस एवं राजशेखर के ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जिनके आरम्भिक अधिकतर क्षेत्र में गंगा–यमुना का भूभाग था तथा मध्यकाल तक इनका विस्तार नर्मदा नदी की घाटियों तक होने लगा था।[119] छठी शताब्दी ई. पूर्व में एक महाजनपद की स्थिति प्राप्त कर चेदियों ने उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था तथा परवर्ती युग में उनका अधिकार क्षेत्र नेपाल और बुन्देलखण्ड तक विस्तृत हो गया था।[120] ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम शताब्दी ई. में महामेघ–वाहन के काल में इनका आधिपत्य उड़ीसा तक के क्षेत्र में फैल गया था।[121] ऐसा प्रतीत होता है कि राजनैतिक विप्लवता के कारण चेदियों ने परवत्री युग में अपना राज्य दक्षिण भारत में स्थापित कर लिया और धीरे–धीरे ये वहाँ एक राजनैतिक

---

115. Majumdar and Pusalker, Vol. 2, p. 152.

116. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 136.

117. Ibid; Vol. 2, pp. 152, 160, 221, 223, vol.3, pp.9, 136, 186, 193, vol. 5, pp. 76-78, 172, 177, 189, 192, Vol 4, pp. 91, 104 Mirashi, V.V., "Annuals of the Bhandarkar Oriental Research", Poona, 27, p. Iff, 26. p. 159. Indian Historical Quarterly, 21, p. 79 f. Ray, H.C., op. cit., Vol. 2, p. 941.

118. अथप्राग्दक्षिणायां तु इमे विंध्यादिवारिनः।
चेदयोवत्सदाशार्णाअंगवंगोपवंगकाः।।
कलिंगपुंड्रजठराविदर्भामेखलास्तथा।
शबराननवर्णाश्चकर्णात्रिपुरकाः।।
कंटकस्थलनामानः पृथग्दीपककोमलाः।
कर्णाधाश्चौलिकाश्चैव तथा चार्मण्वता अपि।।
काककाहेमकुड्याश्चतथाश्मश्रुधरा अपि।
बलिग्रीवमहाग्रीवाः किष्किन्धानालिकेरिणः।।
(यो. महा., 3.36 26, 27, 28, 29)

119. ऋग्वेद, 8.5 37–39, महाभारत, उद्योगपर्व, 19.7, 28, 11, 6.9 40, आदिपर्व, 63.2, 95.79, 2 45 36, विराटपर्व 1.12, कर्णपर्व 45 14–16, सभापर्व 29. 11–12. माथुर, वी.के., 'ऐतिहासिक स्थानावली', जयपुर, 1990, पृ. 342–43.

Kono, S., 'Rajshekher Karpur-manjari', Delhi, 1963, p. 142. Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skanda Purana', 1, pp 53, 61, 194. भागवत पुराण 9.24 2, 7 1, 13, 9, 22 6, 24 39. विष्णु पुराण 4 10 12 एवं 39. वायु पुराण 95 36-38 93 26, 99.114 Shamsastri, R., Arthasastra of Kautilya, Mysore, 1919, See 'chedi'. विशाखदत्त, 'मुद्राराक्षस', लखनऊ, 1973, 5 11 Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancident and Medieval India', pp. 333, 335, 338. Anguttarnikay. edn. Pali Text Society, 1. pp. 3-213, 3. p. 355, 4. pp. 252, 256 & 260.

120. Misra, S.N., op. cit., p. 70. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 4, पृ. 284 Raichaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', p. 211.

121. लल्लनजी, गोपाल, हिन्दी विश्वकोश, 4, पृ. 284 Raichaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', p. 211.

शक्ति के रूप में उभरे। इस घटना का आविर्भाव प्राचीन पूर्व मध्यकालीन युग की सांध्यकालीन वेला (188 ई.) में हो गया था।[122] परवर्तीकाल में सम्भवतः इन्हीं की एक शाखा ने ही एक राज्य की स्थापना की, जिसे पुराणों के सहस्रार्जुन कार्त्तवीर्य हैहय से सम्बद्ध मान कलचुरि नाम से जाना जाने लगा, जिनके राज्य प्रसार के कारण सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र को दाहलमण्डल के नाम से अभिहित किया गया। उनका राज्य जैजाकभुक्ति के चंदेलों के दक्षिण में स्थित था। इसे ही चेदिक्षेत्र के नाम से जाना जाता था और यही कारण है कि कलचुरि चेदि नाम से विख्यात हुए, जिनका राजनैतिक केन्द्र मध्य–प्रदेश के जबलपुर क्षेत्र में था तथा इतिहास में जिनको यत्र–तत्र रूप में हम पन्द्रह सौ ईस्वी तक पाते हैं।[123] हम जानते हैं कि प्राचीन चेदि राष्ट्र की स्थिति दक्षिण–पश्चिम में थी।[124] इस दृष्टि में उक्त विषय का आलोच्य ग्रन्थ का विवरण उस चेदि राज्य का वर्णन करता है,[125] सम्भवतः जिसके संस्थापक महामेघवाहन थे, पर शोध–विषय पर इससे कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

वत्स का उल्लेख भी दक्षिण–पूर्व के मध्य में किया गया है।[126] इनका सर्वप्रथम उल्लेख ओल्डेनबर्ग महोदय ऐतरेयब्राह्मण में मानते हैं।[127] रामायण, महाभारत एवं पुराणों में इसका विवरण प्राप्त होता है और वाल्मीकि रामायण में इसे गंगा के क्षेत्र में स्थित हुआ वर्णित किया गया है।[128]

शतानीक के समय में इस राज्य की सीमाएं अंग को आलिंगित करती थीं तथा दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन एवं उसके पुत्र वत्स द्वारा कौशाम्बी–तट के क्षेत्र को विजित किया गया और तबसे वह सम्पूर्ण देश वत्स राज्य कहलाया, जो छठी शताब्दी ईसा पूर्व में उदयन के अधीन एक महाजनपद के स्वरूप में प्रकट हुआ तथा जिसकी राजनैतिक प्रभुसत्ता काशी से उत्पन्न मानी जाती है और रायचौधरी महोदय गंगा के दक्षिण में इलाहाबाद तक का क्षेत्र, जिसे यमुना नदी के दक्षिण–पश्चिम का समीपवर्ती क्षेत्र चुम्बित करते हुए सुन्मसुमारगिरि के भर्गों, जिसमें विन्ध्य, यमुना और सोन नदी के क्षेत्र समाहित थे, उन्हें अपने में निमज्जित किये हुए विस्तीर्ण मानते हैं।[129] यह राजनैतिक रूप से एक महत्त्वपूर्ण

---

122. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 211 Inscription of the Arya Mahameghavahana -Cedis of Kalinga, No. 91. Hathigumpha Cave Inscription of Kharvel Udaigiri hills, near Bhubaneshvar, Puri, Orissain Prakrit & Brahmi Script, v.1. No.9 गोयल, श्री राम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, 1982, पृ. 366, 372 Mahtab, Sri Harekrushna, 'The History of Orissa', Lucknow, 1949, pp. 17-22.

123. हिन्दी विश्वकोश, 4. 285–286. Majumdar and Pusalker, 'op. cit., Vol. 4, pp. 84, 87ff. Vol. 2, p. 216. Khajuraho Stone Inscription, verse. 45; Epigraphia Indica Vol.1, pp. 92, 129 & 134. Epigraphia Indica, Vol. 4, pp. 278 ff. Ray, H.C., op. cit., Vol. 2, pp. 689-90, 696-97, 725n-1, 756. Mau Inscription, verse 15; Epigraphia Indica, 1, p. 198. Mahtab, Harejrushna, op. cit. pp. 13 ff, 24.

124. Illustrated Historical map of India ..... Ancient and Aryan Period 5000 B.C. to 600 B.C., Delhi (Govt. of India Pub.).

125. यो. महा. 3.36.26. 37.41

126. वही.

127. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', इलाहाबाद, 1971, पृ. 119

128. Ali, S.M., 'The Geography of the Puranas', Delhi, 1983, p. 119. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1.52, अयोध्याकाण्ड 53. 101. Dey, N.L., op. cit., p. 28. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', I, pp. 104-105. हिन्दी विश्वकोश 10, पृ. 375–76

129. हिन्दी विश्वकोश, 10, पृ. 375–76. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', 1, pp. 104-105. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 119, 120, 179, 192–93. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1914, p. 321. Essay on the Gunadhya and the Brihadkatha by Lakota, F., Tr. by Tabard Rev. S.M., Annals of the Bhandarkar Institute, Poona, 1920-21. Mallalsekhar Dictionary of Pali Proper Names, 1.pp. 379-80, 2.pp. 316-859. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1. pp. 289-90, 294, 440, Vol.2, p. 25. Cunningham, A.A., Archaeological Survey Report, 1.pp. 301-310.

बात है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भगवान् बुद्ध के समय हरयंकवंशीय मगध शासकों ने विभिन्न महाजनपदों की भाँति वत्स को भी अपने राज्य क्षेत्र का अंग बना लिया और इस सन्दर्भ में शक्ति–लिप्सा का यह नर्तन परवर्ती शताब्दियों में भी अन्य राजवंशों द्वारा बनाये रखा गया।[130] नागभट्ट द्वितीय गुर्जर (८०५–८३३ ई.) द्वारा विभिन्न अन्य छोटे–छोटे राज्यों की पराजय के साथ–साथ वत्स राज्य को भी पराजित किया गया[131] तथा ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक वत्सगोत्र का उल्लेख मिलता है।[132] नागभट्ट गुर्जर राजा के विजय अभियान में वत्स को पश्चिम में बताया गया।[133] जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है मगध के प्रभाव में अपनी स्वायत्तता होने के बाद वत्स राज्य की भी सामन्त की स्थिति से ऊपर न उठ सका और उसकी यह स्थिति गुप्तकाल के आने तक बनी रही।[134] कालिदास के मेघदूतम् ग्रन्थ में वत्स राज्य की विजयश्री का वर्णन प्राप्त होता है।[135] चीनी यात्री युवान–च्वांग तथा अल्बरूती नामक अरब यात्री के अनुवृत्तों में वत्स राज्य की महिमा का गान किया ही गया है तथा उसकी विभिन्न भौगोलिक स्थिति का भी वर्णन प्राप्त होता है।[136] वराहमिहिर, जिसकी मृत्यु पाँच सौ सत्तासी ई. में हुई थी, उसके ग्रन्थ बृहत्संहिता के सन्दर्भ का उद्धरण अल्बरूती ने वत्स राज्य की स्थिति के लिए दिया है और लगभग आलोच्य ग्रन्थ से मिलता–जुलता विवरण इस उद्धरण में प्राप्त होता है। जहाँ आलोच्य ग्रन्थ दक्षिण–पूर्व के मध्य में विभिन्न नामोल्लेखों में वत्स का उल्लेख करता है वहीं बृहत्संहिता का उक्त उद्धरण भी उसकी भौगोलिक स्थिति पूर्व–दक्षिण में वर्णित करता है। इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को कभी भी वराहमिहिर के पश्चात् विचार किया जा सकता है।

वत्स की ही भाँति दशार्ण (दाशार्ण) का उल्लेख भी आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्त होता है।[137] आधुनिक बुंदेलखण्ड (मध्य प्रदेश) का धसान नदी से सिंचित प्रदेश दशार्ण कहलाना है। दशार्ण का अर्थ दस (या अनेक) नदियों वाला क्षेत्र है। धसान, दशार्ण का ही अपभ्रंश है। महाभारत में दशार्ण को भीमसेन द्वारा विजित किये जाने का तथा हिरण्यवर्मा और सुधर्मा राजाओं का उल्लेख है।[138] महाभारत के पश्चात् दर्शाण का उल्लेख बौद्ध–ग्रन्थों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में

---

130. Ibid, pp. 1-2 & 30.

131. Journal of Royal Asiatic Society 1909, pp. 257-258. Gwalior Stone Inscription No. 10, verse 8.

132. Majumdar and Pusalker, opcit., Vol. 4, pp. 334-335.

133. Ibid, Vol. 4, p. 25.

134. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', p. 25. Sircar, D.C., 'Select Inscription', 1, pp. 70n, 70n.1, 365. Kaushambi Pillar Edict, No. 34. Epigraphia Indica, 34. pp. 14 ff, 18. pp. 159 ff, 23. pp. 245 ff, 24. 146-148, 253 ff. गोयल, एस.आर., पूर्वोक्त, पृ. 171, 216, 231, 271–273 तथा टिप्पणी 3. Basham, A.L., 'Bulletin of the School of Oriental and African Studies', London, 15, pp. 80&97. Kosam Image Inscription of the Time of the Kanishka I. No. 36 A, 78-102 A.D. Kosam Stone Inscription, No. 10a. Kosam Stone Slab Inscription of Bhadramagha, No. 57a. Indian Culture, Ed. by Bhandarkar, D.R., Barua, B.M. and Law, B.C., Calcutta, Oct., 1934; Kumar, Saraswati, S.K., 'A Gold Coin of Budhagupta', Vol. 1, p. 692; Ghosh, Amalananda, 'Kosam Stone Image Inscription of Maharaj Bhimavarman. The Year 130 (A.D. 378)', Vol. 3, pp. 179-183. Archaeological Survey of India Report 1911-12, pp. 50-53.

135. कालिदास, मेघदूतम्, 1.31.

136. Sachau Edward C., Alberuni's India', pp. 299-301. Watters, Thomas'. On Yuan-Chwang's Travels in India', Delhi, 1973, 1, p. 368.

137. यो. महा. 3.36.26.

138 ततः स गंडकाञ्छूरो विदेहान् भरतर्षभः।
विजित्याल्पेन कालेन दशार्णानजयत प्रभुः।।
तत्र दशार्णको राजा सुधर्मालोमहर्षणम्।
कृतवान् भीमसेनेन मइद् युद्धं निरायुधम्।। (महाभारत, सभापर्व 29. 4–5)
तथा
हिरण्यवर्मेति नृपोऽसौदाशार्णिकः स्मृतः।
स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखंडिने।। (वही, उद्योगपर्व 199.10)

प्राप्त होता है।[139] उस समय विदिशा यहाँ की राजधानी थी। कालिदास ने मेघदूतम् में दशार्ण का सुन्दर वर्णन करते हुए इस देश में फूलने–फलने वाले जामुन के कुंजों तथा इस ऋतु में कुछ दिन यहाँ ठहर जाने वाले यायवार हंसों का वर्णन किया है।[140] महाभारत में वर्णित दशार्ण देश की पूर्व की स्थिति को भीमसेन द्वारा विजित किया गया तथा पश्चिम के दशार्ण को नकुल द्वारा[141] विष्णु पुराण मे भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[142] महाभारत में इसका वर्णन अन्य स्थलों पर भी प्राप्त होता है[143] पुराणों में इसके विषय में वर्णन करते हुए इसे विन्ध्य क्षेत्र के देशों में परिगणित किया है[144] डी.सी. सरकार महोदय के अनुसार जहाँ मानसोल्लास में दशार्ण देश के लिए कोई स्पष्ट एवं सापेक्ष वर्णन प्राप्त नहीं होता वहीं लगभग चौथी से दसवीं शताब्दी के एक अन्य ग्रन्थ विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है[145] तथा वाल्मीकि रामायण में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है।[146] पेरिप्लस, नोन्नोस और टॉलमी लगभग प्रथम से पाँचवीं शताब्दी तक अपने–अपने विवरणों में दशार्ण देश का वर्णन करते हैं।[147] लक्ष्मीधर (लगभग 1114 ई. से 1154 तक) द्वारा रचित "कल्पतरु" में भी दशार्ण का उल्लेख प्राप्त होता है।[148] सरकार महोदय दशार्ण देश की राजधानी भिलसा मानते हैं और उनके विचार में प्राचीन दशार्ण का क्षेत्र यही था। वे आगे इसी सन्दर्भ में कहते हैं कि ऐसा सम्भव है कि यूनानियों का "दोसारा" भारतीय "तोशगली" का अपभ्रंश हो, जिसकी पहचान पुरी जिले के धौली से की जाती है, जोकि प्राचीन समय में कलिंग की राजधानी थी।[149] दशार्ण को आधुनिक मालवा से भी समीकृत किया जाता है।[150] विल्सन महोदय मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ जिले के एक क्षेत्र को दक्षिण–पूर्व में स्थित दशार्ण नामोल्लेख करते हैं, जिसके अन्तर्गत आधुनिक पटना का क्षेत्र भी आता था।[151] पार्जिटर महोदय यह मानते हैं कि महाभारत में दशार्ण क्षेत्र में यादवों का प्रभुत्व था।[152] वेट्टम मणि महोदय के अनुसार यह देश दो भागों में विभक्त था। पहले को पूर्वी दशार्ण जिसके अन्तर्गत पटना तथा समीपवर्ती क्षेत्र आते थे तथा दूसरे को पश्चिमी दशार्ण कहा जाता था, जिसके अन्तर्गत मालवा के क्षेत्र आते

---

139. Law, B.C. , 'Historical Geography of Ancient India', p. 314. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, सम्पादित द्वारा सामशास्त्री, पृ. 50. माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 429 Misra, S.N., op. cit., p. 68.

140. त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजंबूवनान्तारसंपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायि हंसा दशार्णः! – (कालिदास, मेघदूतम, पूर्वमेघ, 25. अधिक विस्तार के लिए देखें 23. 47)

141. Dey, N.L., op. cit., p. 54.

142. Ibid.

143. महाभारत, आदिपर्व 112.25, सभापर्व 29.5 32.7, वनपर्व 69, भीष्मपर्व 9.41, 51.12, अश्वमेधपर्द 83, कर्णपर्व 22. 23, द्रोणपर्व 25, 35

144. भागवत पुराण 10.52 11 (12), 86.25 Ali, S.M., 'The Geography of the Puranas', Delhi, 1983, pp. 158, 159, 168, 173. तथा मलदाश्च कारुषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह। उत्तमर्णा (का?) दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह।।
(Sircar, D.C., Geography of Ancient and Medieval India, pp. 43 & n2)
Misra, S.N., op. cit., p. 68 n-6. मार्कण्डेय पुराण, 57.21. 53. 58.16. 58. 18. 133 9. 21. 60. 134.4.

145. Sircar, D.C., op. cit., p. 337, n.2.

146. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 41. 8–10.

147. Wilfred, H., Schoff, 'The Periplus of the Erythraean Sea', 1974, New Delhi, p. 47. McCrindle, John W., 'Ancient India as Described in Classical Literature', Delhi, 1979, p. 198 n7.

148. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 333.

149. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 185-186.

150. Ibid., pp. 205-206.

151. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1905, pp. 7.14.

152. Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tribes', Delhi, 1962, p. 280.

थे।[153] शिवनन्दन मिश्र के अनुसार यशोधर्मन् गुप्त (लगभग पाँच सौ बत्तीस ईसवी) द्वारा मध्य एवं पश्चिमी क्षेत्र को मालवा मान लिया गया, जिसमें अवन्ति, आकार अथवा दशार्ण सम्मिलित थे।[154] नयचन्द्र द्वारा रचित "रम्भामञ्जरी" (पन्द्रहवीं शताब्दी) गोविन्द चन्द्र द्वारा जयचन्द्र (जून 16, 1168 ई.) गहड़वाल के जन्म समय दशार्ण क्षेत्र की उसकी विजय का उल्लेख करता है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से कन्नौज का जुआ दशार्णो पर उस समय था, यह संदेहास्पद है।[155] लगभग बारह सौ एक ईसवी में पश्चिमी दशार्ण अर्थात् पूर्वी मालवा चन्देल राजा परमर्दी के अधीन था।[156] विद्याधराचार्य के तांत्रिक ग्रन्थ में दशार्ण देश से आये गुरूजनों को मध्यम बताया गया है।[157]

पार्जिटर बेसनगर के स्थान पर भिलसा को ही प्राचीन दशार्ण से समीकृत करते हैं।[158] इस प्रकार पुराणों का एक आधार दशार्ण देश को दक्षिण–पूर्व दिशा में स्थित बताता है। आलोच्य ग्रन्थ भी दशार्ण को उन देशों में परिगणित करता है जो पूर्व–दक्षिण दिशा के मध्य में स्थित हैं तथा पाश देश के हाथों पराजित हुए।[159] उपर्युक्त से स्पष्ट ही है कि दशार्ण देश की स्थिति गुप्तकाल के अन्तिम चरण में मालव देश में ही परिगणित की जाने लगी थी। अब इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को उत्तर–गुप्तकाल के पूर्व के निकटवर्ती समय में विचार किया जा सकता है क्योंकि इसमें दिया गया वर्णन दशार्ण को मालव से सम्बद्ध नहीं करता।

प्रश्नगत ग्रन्थ के अतिरिक्त अंग देश का सर्वप्रथम सन्दर्भ अथर्ववेद एवं ऐतरेय ब्राह्मण में आता है।[160] रायचौधरी, श्यामनारायण पाण्डेय, शिवनन्दन मिश्र तथा डी.सी. सरकार इसे एक जनपद के रूप में जातकों, महाभारत, पुराणों तथा कथासरित्सागर आदि में उल्लिखित मानते हैं।[161] बोधायन धर्मसूत्र इन्हें वर्णसंकर उल्लिखित करता है[162] तथा जैन परम्परा के अनुसार दधिवाहन के उत्तराधिकारी ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आरम्भ में यहाँ राज्य कर रहे थे।[163] कौशल राज्य के मित्र देशों में परिगणित पूर्व के जनपदों में विदेह, अंग एंव मगध का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है।[164] इस शताब्दी के मध्य में यह मगध का एक अंग बन गया।[165] पौराणिक आधारों पर यह माना जाता है कि इस

---

153. Vettam Mani, 'Puranic Encyclopadia', Delhi, 1979, p. 205.

154. Misra, S.N., 'Ancient Indian Republics', Lko, 1976, p. 83.

155. Tripathi, R.S., 'History of Kannauj to the Moslim Conquest', Photoprocess Impression, Delhi, 1959, pp. 311, 320.

156. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Delhi, 1973, p. 179 n.1.

157. Majumdar and Pusalker, The 'Age of Imperial Kanauj', Bombay, 1984, p. 323.

158. Pargiter, F.E., 'Markandeya-Purana', p. 342 n.

159. यो. महा., 3.36. 26, 37.18

160. यो. महा. 3.36. 26. 37.30. Atharved with Sayan's commentary Pandit, S.P., Bombay, 1895-1898, 5.22.14. Aitreybrahman, edn. tr. Keith, A.B., Horvert Oriental Series, No. 25, Cambridge Mass 1920 & Hog. 8.22.

161. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 98, टिप्पणी 2 Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 30. Misra, S.N., 'Ancient In dian Republics', p. 50, 104-5 n.l, 162. n.4. Pandey, S.N., Geographical Horizon of the Mahabharat, 1st edition, Varanasi, 1980, pp. 135n, 385.

162. Baudhayan-Dharmsutra. Tr. with the commentary of Govind Swami edited by Shastri Chinnaswami, A., Kashi Sanskrit Series, Benaras, 1934, 1.1.29.

163. Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1941, pp. 321 ff.

164. वाल्मीकि रामायण 1. 13. 25, 8. 7–9 तथा 69. 10–14 तथा 17. 18. 10. 1–10 Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', p. 276.

165. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 96–101. कालिदास, रघुवंशम्, 6. 27–29. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', pt. I, pp. 152-153. Smith, V.A., 'The Early History of India', pp. 31-32.'Sacred Books of the East', Vol. 17, p. 1.

जनपद का नामकरण पूर्व के शासक बलि की पत्नी सुदेशना के दीर्घतमस से उत्पन्न पाँच पुत्रों में से एक के नाम पर हुआ।[166] प्राचीन अंग जनपद के अन्तर्गत आधुनिक भागलपुर तथा मुंगेर (Monghyr) जिले के क्षेत्र आते थे, जिसमें अति उत्तर एवं दक्षिण के क्षेत्र सम्मिलित नहीं थे। यह गंगा के दक्षिणी किनारे पर स्थित था तथा चम्पा नदी एक प्राकृतिक सीमा के रूप में इसको आबद्ध करती थी।[167] सम्भवतः अपनी सम्प्रभुता समाप्त होने के पश्चात् कुछ समय के लिए यह प्रवंग नाम से विख्यात हो गया था।[168], तदनन्तर काफी समय तक इतिहास के पृष्ठों से इस जनपद का नाम लुप्तप्राय दृष्टिगोचर होता है। पुनः प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व में सर्वप्रथम इसका उल्लेख एक पराभूत जनपद के रूप में प्राप्त होता है।[169] तत्पश्चात् तो यह उत्तरगुप्त शासकों से लेकर बारहवीं शताब्दी तक वर्धनों, चालुक्यों, कलचुरियों, पालों, गहड़वालों, चन्देलों, सेनों एवं वर्मन शासकों के अधीन रहा।[170] इस प्रकार सम्पूर्ण विवरण यह स्पष्ट करता है कि एक समय सम्पूर्ण जनपद अपनी शक्ति के लिए विख्यात था। बाद में अंग देश काशी राज्य के अधीन हुआ और फिर उत्तरगुप्त काल से बारहवीं शताब्दी तक इसका उल्लेख विभिन्न राजवंशों के अधीनस्थ रूप में यदा-कदा प्राप्त होता है, परन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि जहाँ सम्पूर्ण विवरण इसकी स्थिति पूर्व में बताते हैं वहीं योगवासिष्ठ महारामायण में इसका उल्लेख पूर्व-दक्षिण दिशा के जनपदों एवं देशों की सूची में प्राप्त होता है, पर यह शोधविषय पर प्रकाश नहीं डालता। वंगों को भी पूर्व-दक्षिण के देशों के वर्णन में योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित किया गया है।[171] वंग या बंग बंगाल का प्राचीन नाम है। प्राचीनकाल में वंग सामान्य रूप से बंगाल का नाम था किन्तु कभी-कभी यह शब्द केवल पूर्वी बंगाल के लिए ही व्यवहृत होता था। माधव चंपू में वंग और गौड भिन्न-भिन्न प्रदेश माने गये हैं। सुह्य पश्चिमी-दक्षिणी बंगाल (राजधानी-ताम्रलिपि) और समतट बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती प्रदेश का नाम था। राढ या राढी (बर्दवान कमिशनरी) भी बंगाल का एक भाग था। पुंड गंगा का मुख्यधारा पदमा (ब्रह्मपुत्र-गंगा की संयुक्त धारा) के उत्तर में स्थित प्रदेश का नाम था।[172] डाउसन की क्लासिकल डिक्शनरी के अनुसार प्रचीन काल में वंग भागीरथी के उत्तर में स्थित भाग का नाम था, जिसमें जैसोर और कृष्णनगर के जिले सम्मिलित थे।[173] आभिलेखिक साक्ष्यों में वीरपुरुषदत्त का नागार्जुनीकांड अभिलेख (=तृतीय शताब्दी का द्वितीय मध्याह्न काल) वह प्रथम ज्ञात साक्ष्य है, जिसमें वंग देश का उल्लेख किया गया है।[174] जिसको डी.सी. सरकार ने बंगाल के पूर्व तथा दक्षिणी भाग से समीकृत किया है।[175] टॉलमी इस क्षेत्र को गंगरीदेई (Gangaridai) प्रदेश के नाम से उल्लिखित करते हैं।[176] कालिदास के विवरणों में यहाँ के

---

166 Ray, H.C.'The Dynastic History of Northern India' Vol I, Delhi, 1973, p 271.

167. Pargiter, F.E. 'Markandeya Purana', p. 325n. Law, B.C., 'Historial Geography of Ancient India', pp 42-44, 204-208. उपाध्याय, भगवतीशरण, हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 1, पृ. 8 Ray, H.C., op. cit., Map 6.

168. Pargiter, F.E., op. cit., p. 325 note.

169. हाथीगुम्फा गुहालेख, संख्या 91, पंक्ति 12

170. Indian Antiquery, 19, p 7. Srivastava, B.N., 'Harsha and His Times', p. 47 n. 1 Majumdar and Pushalkar, 'Struggle For Empire', pp 25, 29, 32, 32 6 Epigraphia Indica, 9, pp 323 ff Sarnath Stone Inscription, A.D 1114-55, verse 9 Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', Vol 1, Hindu Period, Delhi, 1971, pp 127, 131, 132, 134, 141, 143, 181, 198, 208, 564, 626 Ray, H.C., op cit., pp 301, 332, 337, 339

171 यो. महा. 3 36 26

172 Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', Patna, 1971 p. 2.

173. Indian Culture, No 1, Law, B.C., 'The Vangas'.

174. नागार्जुनीकोंड अभिलेख, संख्या 101, पंक्ति 1

175. Sircar, D.C., 'Select Inscription', Delhi, 1991.

176. Majumdar, R.C., op. cit., p. 2

रहने वालों को अच्छा नाविक बताया है।[177] कतिपय विद्वान्, जैसे कीथ ऐतरेय आरण्यक में आये 'वंग' शब्द को इनके प्रति हुआ सर्वप्रथम साहित्यिक उल्लेख मानते हैं। इस विषय में विद्वानों में वैभिन्य होने के कारण विशेष रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।[178] रामायण, महाभारत एवं जैन साहित्य में वंगों का उल्लेख आता है।[179] रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार सम्भवतः प्रारम्भिक बौद्ध विवरण वंगों के प्रति अधिक जानकारी नहीं रखते थे परन्तु धीरे–धीरे मिलिन्दपञ्ओं ग्रन्थ के काल तक वंगों का स्पष्ट उल्लेख प्रापत होता है[180] इसी क्रम में महाभाष्य में इनका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है जबकि अष्टाध्यायी में वंग शब्द का उल्लेख नहीं है।[181] मेहरौली के लौहस्तम्भ पर चन्द्र नामक नरेश के अभिलेख में उसकी विजय का विस्तार वंग देश तक बताया गया है।[182] छठी शताब्दी के वातापी के चालुक्यों के आरम्भिक ज्ञात प्रमाण भी वंगों का उल्लेख करते हैं।[183] जैन, महाभारत एवं कालिदास के विवरणों में भागीरथी नदी के दक्षिणी प्रदेश में उल्लिखित वंग प्रदेश का क्षेत्रफल पालों तथा सेनों के समय में घट गया था।[184] पुराणों में वंशों के जो उल्लेख आते हैं वे उनके आदि संस्थापक को "वंग" नाम से उल्लिखित करते हैं और इन्हीं वर्णनों का आधार यह स्पष्ट करता है कि बाहर से आये हुए ब्राह्मण के यहाँ पर रहने से रक्त सम्बन्ध स्थापित हुए।[185] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यहाँ उत्तम तन्तु की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है।[186] फ्रांसिस महोदय के अनुसार भौगोलिक परिवेश में इसका क्षेत्र गंगा के पूर्वी डेल्टा के प्रदेश तक विस्तृत था इसका केन्द्र बिन्दु उपवंग तथा पश्चिमी सीमा के क्षेत्र को चुम्बित करती थी। भाऊदा जी महोदय ने ब्रह्मपुत्र और पद्मा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र में इइसे स्थित बताया। महाभारतकाल से प्रथम शताब्दी तक इसकी एक अलग सम्प्रभुसत्ता थी। पार्जिटर महोदय के अनुसार इसके अन्तर्गत मुर्शिदाबाद, नादिया, जैसोर राजशाही के कुछ भाग, पब्ना एवं फरीदपुर आते थे।[187] इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक बंगाल की भौगोलिक एकता प्राचीनकाल में स्वीकार्य न थी। सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए कोई भी सामान्य नाम नहीं था। यद्यपि धीरे–धीरे काल के प्रवाह में इस क्षेत्र के बहुत से प्राचीन नाम अन्तर्ध्यान होते गये परन्तु परवर्ती मुसलमान लेखक यह बताते है कि वंग और गौड दो अलग–अलग राजनैतिक प्रतिस्पर्धी क्षेत्र अधिसत्ततात्मक रूप में बने रहे। प्रश्नगत ग्रन्थ में ही नहीं अपितु भारत

---

177. 'वंगानुत्खाय सरसा नेता नौसाधनोद्यतान्, निचखान जयस्तंभान्गंगास्रोतोन्तरेषु सः'
(कालिदास, रघुवंशम्, 4.36)

178. Majumdar, R.C., op. cit., pp. 7-8.

179. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 10.37.
'उभौ बलभृतौ वीरावुभौ तौ व्रपराक्रमो निर्जित्याजौ महाराज वंगराजमुपाद्रवत'
(महाभारत, सभापर्व 30.23)
'वंगाः कलिंगा मगधास्ताम्रलिप्ताः संपुड्रकाः दौवालिकाः सागरकाः पत्रौर्णाः शैशवारतथा।'
(वही, 52.18) तथा Indian Antiquary, 1891, p. 375.

180. Majumdar, R.C., o.p., cit., p. 10.

181. Ibid.

182. 'यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान,
वंगेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे...'
(Fleet, J.F., Corpus-Inscriptionum-Indicarum, Vol. 3, p. 141)

183. The Mahakuta Pillar Inscription, Indian Antiquary, Vol. 19, p. 7 ff.

184. Majumdar, R.C., op. cit., pp. 15-16.

185. Canda, Ramprasad, 'Indo-Aryan Races', Raj Shani, 1916, p. 43.
मत्स्य पुराण 48.77 एव आगे। वायु पुराण 99.11 एवं आगे। Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', 325 n. Indian Historical Quarterly, Vol. 16, p. 225 ff.

186. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, अध्याय 32–33

187. Dey, N.L. op. cit., p. 22.

के अन्यान्य क्षेत्रीय साहित्य से स्पष्ट है कि वंग और गौड अलग–अलग राजनैतिक सत्ता के रूप में विद्यमान रहे, जिसका दिग्दर्शन आज भी हम पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल के रूप में कर सकते हैं।[188] सभी प्रमाणों के लगभग अनुरूप योगवासिष्ठ महारामायण वंग जनपद को पूर्व–दक्षिण के मध्य के क्षेत्र में परिगणित करता है परन्तु इस आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

प्रश्नगत ग्रन्थ में उपवंग को भी पूर्व–दक्षिण के देशों, में परिगणित किया गया है।[189] भागीरथी के पूर्व में स्थित भूभाग तथा समीपवर्ती वन्यक्षेत्र, जिसमें जैसोर का क्षेत्र भी आता था, उसको पाँचवी शताब्दी के वराहमिहिर के बृहत् संहिता तथा लगभग सोलहवीं शताब्दी के दिग्विजय–प्रकाश नामक ग्रन्थ में उपवंग कहा गया है।[190] इस आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं किये जा सकते।

आलोच्य ग्रन्थ में पूर्व–दक्षिण के देशों में कलिंग का भी उल्लेख है[191], जिसे वास्तव में स्थूल रूप में दक्षिण उड़ीसा के क्षेत्र और कभी ईसवी सन् की प्रारम्भिक शक्तियों में मध्य जावाद्वीप में बताया गया एक हिन्दू उपनिवेश, जहाँ भारत के कलिंग देश के निवासियों की बस्ती थी और चीनी लोग जिसे होलिंग नाम से जानते थे, से समीकृत किया गया है।[192] उत्तरी उड़ीसा को प्राचीन समय में उत्कल या उत्कलिंग (उत्तर कलिंग) कहते थे। कुछ विद्वानों सिल्वां लेवी, जीन प्रेज़ीलुस्की आदि के मत में कलिंग, सोसल, कोसल आदि नाम आस्ट्रिक भाषा के हैं। आस्ट्रिक लोग भारत में द्रविडों से भी पूर्व बसे हुए थे।[193] कलिंग का उल्लेख सूत्र ग्रन्थों तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी प्राप्त होता है।[194] रामायण में इसे दक्षिण के देश[195] एवं एक अन्य स्थल पर नगर के रूप में इसका उल्लेख भरत के केकयदेश से अयोध्या की यात्रा के प्रसंग में है। इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समय में कलिंग नगर की स्थिति गोमती और सरयू नदी के बीच (पूर्वी उ.प्र.) में रही होगी।[196] महाभारत के अनुसार उड़ीसा की वैतरणी नदी से कलिंग प्रारम्भ होता था।[197] कलिंग की राजधानी राजपुर बतायी गयी है।[198] महाभारत के समय वहाँ का राजा चित्रांगद था[199] तथा अमरकंटक श्रंग, जिससे नर्मदा और सोम नदियाँ प्रवाहित थीं, वह कलिंग के सीमाक्षेत्र में स्थित था महाभारत के वर्णनों से यह स्पष्ट

---

188. Majumdarr, R.C., op. cit., p. 621.

189. यो. महा. 3.36.26, 39.22

190 Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', p. 15. माथुर, विजयेन्द्र कुमार 'ऐतिहासिक स्थानावली', पृ. 99 Dey, N.L., 'The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India', p. 211.

191. यो. महा., 3.36.27

192 Beal, Samual, (Huien-Tsang) 'SI-YUKI', 'Buddhist Records of the Western World', Delhi, 1981, Part I, Book I, p. 43. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', Vol. 1, Lahore, 1926, pp. 2, 3, 30 and Vol. 2, London, 1934, pp. 81, 151.

193. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 148.

194. Gopal, Ram, 'India of Vedic Kalpasutras', Delhi, 1959, p. 94. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.1. 170

195. वाल्मीकि, रामायण, 4.41.1

196. 'एकसाले स्थामतीं विनते गोमतीनदीं।
कलिंग–नगरे चापि प्राप्त सालवनं तदा।।'
वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 71.16 (विस्तार के लिए देखें – माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 148–149)

197. 'एते कलिंगाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी'– (महाभारत, वनपर्व 114.4)

198. 'श्रीमद्राजपुरं नाम नगरं तत्र भारत'– (वही, शान्तिपर्व, 4.3)

199. 'कलिंगविषये राजन् राज्ञश्चित्रांगदस्य च।' (वही, 4.2)

होता है कि वैतरणी नदी से लेकर विशाखापत्तनम तक कलिंग की स्थिति थी।[200] प्रथम शताब्दी के रोम के इतिहास–लेखक प्लिनी का भारतीय प्राकृतिक इतिहास, जिसका आधार तीन सौ बाईस ईसा पूर्व में आये यूनानी दूत मेगास्थनीज़ का वर्णन है, उसके अनुसार कलिंग के सीमा–क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर में गंगा, दक्षिण में गोदावरी, पश्चिम में पर्वत–श्रृंख और पूर्व में समुद्र के क्षेत्र आते थे। कलिंग के इस सीमा–क्षेत्र में गंगा–गोमुख के हिमाच्छादित क्षेत्र भी आते थे। कलिंग के इस सीमा–क्षेत्र में परिवर्तन होता गया, जिसका उल्लेख हमें जातकों, जैन–ग्रन्थों, बौद्ध–ग्रनथों तथा पुराणों में पृथक–पृथक रूप में प्राप्त होता है।[201] ऐसा प्रतीत होता है कि दो राजवंशों के अन्तर्द्वन्द्व के कारण कोंगद नामक एक छोटा सा राज्य, जिसके अन्तर्गत गंजाम एवं पुरी जिले के क्षेत्र थे, इसी से उद्भूत हुआ।[202] कालिदास के वर्णनों में कलिंग का उल्लेख मिलता है।[203] धीरे–धीरे कलिंग राज्य की अनेकता में एकता स्थापित हुई और इस राज्य ने अपने आरम्भिक वर्षों में गोदावरी नदी तक अपनी सीमा विस्तृत कर ली। कुरुक्षेत्र युद्ध के पश्चात् यहाँ बत्तीस राजवंशों ने राज्य किया तथा चार सौ दो ईसा पूर्व के लगभग इसे नन्दों की सम्प्रभुता स्वीकार करनी पड़ी और लगभग तीसरी से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक यह पुनः मागधों का एक अधीनस्थ क्षेत्र बना रहा। तदनन्तर कलिंग नगर का उल्लेख खारवेल के प्रसिद्ध अभिलेख में है, जो प्रथम शती ई. में वहाँ का राजा था। समुद्रगुप्त के काल में यह गुप्तों के परोक्ष शासन क्षेत्र में था। लगभग चौथी से सातवीं शताब्दी तक यहाँ वासिष्ठों, माठरों तथा शैलोद्भवों के राज्य रहे। सातवीं शताब्दी के मध्य में यह क्षेत्र चालुक्यों के अधीन रहा तथा तदनन्तर यहां गंग राजवंशों का अधिकार हुआ, जिनके एक राजा अवन्तिवर्मा चोडगंगदेव ने बारहवीं शताब्दी में राजनैतिक और सांस्कृतिक एकता स्थापित की।[204] इस प्रकार जो वर्णन प्रश्नगत ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं, वह कलिंग देश की सटीक भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश नहीं डालते फिर भी ये वर्णन इस बात का स्पष्ट करते हैं कि इसकी स्थिति पूर्व–दक्षिण के मध्य में कहीं पर थी। इतना होते हुए भी इस वर्णन में कलिंग, तुग एवं वंगों की पराजय का उल्लेख अवश्य प्राप्त है।[205] क्योंकि हमारे पास तत्सम्बन्धी विवरण के तादात्म्य के लिए पुष्ट प्रमाणों का अभाव है, अतः सार रूप में इस आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

ग्रन्थ में पूर्व–दक्षिण के क्षेत्र में बसे अनेक अन्य देशों, जनपदों एवं जातियों के युद्ध में आगमन के वर्णन में पुण्ड्र शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[206] इस शब्द के विभिन्न अर्थों में प्रयोग किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है[207] परन्तु

---

200 Mahtab, Harekrushna, 'The History of Orissa', Lucknow University, 1947, pp. 5-7. माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 148-149

201. Indian Antiquary, 1981, p. 375. माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 148-149
'कालिंगदेशादभ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना', (विष्णुपुराण 3.7.36)
तथा
कलिंगमाहिष महेन्द्र भौमान् गुहा मोक्ष्यन्ति' – (वही, 4.24.65), Pargiter, F.E. Markandya Purana, p. 325n. Mahtab, Harekrushn &, pp. 2, 7-9, 9-12.

202 Ibid

203. उत्कलादर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ' -- (कालिदास, रघुवंशम्, 4. 38)
तथा
'अथांगदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमांगदं नाम् कलिंगनाथम्' – वही 6. 53

204. Mahatab, Karekrushna, op. cit., pp. 13-22, 25-26, 27-34, 43-49.
देव, कृष्ण, लेख 'कलिंग', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 2, पृ. 443

205. यो. महा. 3.39.22

206. वही, 3.36.27

207 Williams, M.M., 'A Sanskrit-English Dictionary', p. 632. Cappeller, Carl 'A Sanskrit-English Distionary' Varanasi, 1972, p. 318.

आलोच्य ग्रन्थ में इसे जनपद के रूप में ही उल्लिखित किया गया है। इसीलिए इस आधार पर समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।[208]

बंगाल में गंगा की मुख्य धारा पद्मा के उत्तर में स्थित प्रदेश को प्राचीन काल में पुण्ड्र देश कहते थे। इसका समीकरण बंगाल के पाण्डुआ नामक क्षेत्र से किया गया है। यह महानन्दा नदी पर स्थित था और जो नदी वर्तमान समय में चार मील उत्तर की ओर हट गयी है। यहाँ पर आदिनाह नामक मस्जिद तथा सतसगढ़, जिसे राजमहल माना जाता है, स्थित है। पार्जिटर महोदय के अनुसार पुण्ड्र और पौण्ड्र अलग-अलग देशों के नाम थे। गंगा के दक्षिण में पौण्ड्र स्थित था तथा उसके उत्तर की ओर अंग और बंग देशों के बीच में पुण्ड्र देश था। पौण्ड्र के अन्तर्गत आधुनिक संथाल परगना एवं वीरभूमि के क्षेत्र और हज़ारीबाग जिले का उत्तरी भाग सम्मिलित रहे होंगे।[209] इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में आता है।[210] इसकी पहचान मजूमदार महोदय बोगरा जिले से करते हैं।[211] बहुत सम्भव है कि आरम्भिक और अनार्य जातियों का आर्यकरण किये जाने के कारण ही महाभारत आदि में इन्हें क्षत्रिय कहा गया।[212] तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व के प्राचीन ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण महास्थान अर्थात् पूर्वी पाकिस्तान में स्थित बोगरा जिले से प्राप्त मौर्यकालीन भग्नप्रस्तर लेख में सर्वप्रथम पुण्ड्रों का उल्लेख प्राप्त है।[213] इससे स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास ये भले ही राजतंत्रात्मक प्रणाली के अन्तर्गत राज्य कर रहे थे अथवा महाकाव्यकाल में ये शक्ति-सम्पन्न थे परन्तु मौर्यकालीन अशोक के उक्त अभिलेखिक वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि इस समय तक इनकी राजनैतिक स्वायत्तता समाप्त सी हो गयी थी और यही कारण है कि वर्णित अभिलेख में पुण्ड्र शब्द के स्थान पर पुण्ड्र नगर का उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन-युग में भी इनकी किसी राजनैतिक स्वतंत्रता का वर्णन हमें प्राप्त नहीं होता। लगभग आठवीं शताब्दी के लेख से यह स्पष्ट होता है कि शैलवशीय जयवर्धन द्वितीय के पितामह के बड़े भाई ने बहुत पहले ही कभी छह सौ उन्नीस ईसवी के बाद पुण्ड्रों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।[214]

---

208 यो. महा., पूर्वोक्त

209. Imperial Gazzeteer of India Vol. 1, p. 316. Mahtab, Harekrushnaa, Op. cit. pp. 10-11. Pargiter, F.E., "Ancient Countries in Eastern India", Journal of Asiatic Society of Bengal, 1877, p. 85. Pargiter, F.E., "Markandeya Purana", p. 325n.
कोशलांधपुड्रताम्रलिप्तसमुद्रतटपुरी च देवरक्षितो रक्षिता।
(विष्णु पुराण 4 24 64)
यत्र सार्वान् महीपालछत्रतेजोभयादितान् सवंगांगान् सपौंड्रोड्रान सचोलद्राविडांधकान्'।
– महाभारत, वनपर्व 51 22 तथा सभापर्व अध्याय 51. 52 17, भीष्मपर्व अध्याय 9. तथा हरिवंश पुराण, अध्याय 281. 282 वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 40 23-25. Majumdar, R.C., "The History of Bengal", pp. 35, 20, 7.

210 ऐतरेय ब्राह्मण 7 13-18

211. Majumdar, H. 'The Tribes and Castes of Bengal', pp. 35, 20, 7.

212. Risley, H. 'The Tribes and Castes of Bengal' Calcutta, 1891, Vol. 1, pp. XVff.

213 1–......नेन (1) स वगि (गी?) य (।) नं (तल दिन स) –1
साम दिन । (सु)–
2– (म) । ते। सुलिखिते पुडनगलते। ए (त)..
3– (नि) वहिपयिसति। सवगियानं (च) (दि) नै
4– (धा) नियं। निवहिसति। दग–तिया (ि) यके...
5– ... (यि) कसि। सुअ– तियायिक (सि) पि । गंड (केहि)
6– ... (यि) केहि एस कोठागाले कोसं...
7– ......
(Mahasthan Fragmentary Stone Plaque Plaque Inscription, No. 45)

214. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', pp. 276, 277. Mahtab, Sri Harekrushna, 'The History of Orissa', Lucknow, 1949, p. 32.

लगभग आठवीं शताब्दी में कन्नौज के यशोवर्मन् ने इस क्षेत्र पर विजय प्राप्त की थी। उस समय यहाँ गौड, पुण्ड्र एवं मगध का अधिपति शैलवंशीय शासक था[215] अतः प्रश्नगत ग्रन्थ में यदि पुण्ड्रों का स्वतंत्र रूप से किसी युद्ध में सम्मिलित होने का उल्लेख है तो इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं किये जा सकते क्योंकि यह बात तो स्पष्ट ही है कि पुण्ड्रों की स्वतन्त्र सत्ता का ह्रास मौर्य काल में ही हो गया था।

प्रश्नगत ग्रन्थ में जठरों को भी पूर्व–दक्षिण में बताया गया है।[216] जठर नाम के पर्वत का उल्लेख विष्णु तथा मार्कण्डेय पुराण में आता है, जिसकी भौगोलिक स्थिति पूर्व में बताई गयी है।[217] कुछ पुराण, बृहत्संहिता एवं महाभारत के आधार पर जठर नाम के लोगों को मध्य देश के दक्षिण–पूर्व में स्थित बताया गया है।[218] विष्णुपुराण का आधार लेते हुए विजयेन्द्र कुमार माथुर जठरों को साइबेरिया में स्थित बताते हैं।[219] इस सन्दर्भ में यदि उक्त वर्णनों का आधार लेकर आलोच्य ग्रन्थ में जठरों के उल्लेख के आधार पर उसके रचनाकाल का निर्धारण करने हेतु कुछ प्रयास किया जाय तो यह परिकल्पना प्रस्तुत की जा सकती है कि योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल कभी भी छठी शताब्दी के पश्चात् होना चाहिए, जो कि वराहमिहिर की लगभग अन्तिम ज्ञात तिथि है।[220]

प्रश्नगत ग्रन्थ में पूर्व–दक्षिण के देशों में विदर्भ का भी परिगणन है।[221] यह विंध्याचल के दक्षिण में अवस्थित प्रदेश है जिसकी स्थिति वर्तमान बरार के परवर्ती क्षेत्र में मानी गयी भी है। विदर्भ अतिप्राचीन समय से दक्षिण के जनपदों में प्रसिद्ध रहा है। बृहदारण्यकोपनिषद् में विदर्भ–कौण्डिन्य नामक ऋषि का उल्लेख है जो विदर्भ के निवासी रहे होंगे। पौराणिक अनुश्रुति में कहा गया है कि किसी ऋषि के शाप से इस देश में घास या दर्भ उगनी बंद हो गयी थी जिसके कारण यह विदर्भ कहलाया। मुगल सम्राट अकबर के समकालीन अबुलफज़ल ने "आइनेअकबरी" में विदर्भ का नाम 'वरदातट' लिखा है। सम्भवतः वरदा नदी (=वर्धा) के निकट स्थित होने के कारण ही मुगलकाल में विदर्भ का यह नाम प्रचलित हो गया था। "बरार" तथा "बीदर" नामों की व्युत्पत्ति भी विदर्भ से ही मानी जाती है।[222] इसके प्राचीन मुख्य स्थल कुंडिननगर तथा भोजकटपुर थे। प्राचीन समय में भोपाल तथा भिलसा एवं नर्मदा नदी के उत्तर तक के क्षेत्र विदर्भ राज्य में सम्मिलित थे।[223] महाभारत, पुराण, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंशम्, कामसूत्र, शक्तिसंगमतन्त्र तथा रामायण में विदर्भ राज्य का उल्लेख दक्षिण–पूर्व में किया गया है।[224] यदि कुम्भकार जातक पर विश्वास किया जाय तो इसमें वर्णित

---

215. Ray, H.C., op. cit., p. 277.

216 यो. महा., 3.36.27, 37 38.

217 विष्णु पुराण, 2. 2. 20

218. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 277. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14. 8

219 'मेरोरनन्तरांगेषु जठरादिष्ववस्थिताः।
शंखकूटोऽथ ऋषभो हंसो नामस्तथापरः।।
कालंजाद्याश्च तथा उत्तरकेसराचलाः' (विष्णु पुराण 2.2.29) तथा मथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 354

220 Keith, A.B., Ibid, p. 520- Williams, M.M., 'A Sanskrit - English Dictionary', p. 923.

221. यो. महा. 3.36.27.

222. Dey, N.L. Op. cit., p. 34.

223. Sircar, D.C., 'Studies In the Geography of Ancient and Medival India', pp. 39 and n, 97, 259-262. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', 14.3, 57.47, 119.14, 131.45 133. 11, 76.47 and p. 343.

224. 'ततो विदर्भान् संप्राप्तं सायाह्ने सत्यविक्रमम्।
ऋतुपर्णं जना राज्ञे भीमाय प्रत्यवेदयन्।।' (महाभारत, वनपर्व 73.1 तथा – 5. 157, 15–6)
Misra, S.N., 'Ancient Indian Republics', pp. 104, 105. महाभारत, सुकथांकर, मुम्बई, 2, अध्याय 14, पंक्ति 21. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व 60.32
'काश्यपदुहिता सुमति विदर्भराजतनया केशिनी च द्वे भार्ये सगरस्यास्ताम्'
(विष्णु पुराण 4.4.1)

गंधार के राजा नग्नजित तथा विदर्भ के राजा भीम, कलिंग के राजा काण्डु के समकालीन थे, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निमि के समय या ब्राह्मण काल में विदर्भ तथा कलिंग राज्य का भी अस्तित्व था।[225] रायचौधरी महोदय के अनुसार सम्भवतः पुष्यमित्र के राजवंश की स्थापना के समय में ही दक्षिण में भी विदर्भ जैसे राज्य अस्तित्व में आ गये थे। अग्निमित्र के मन्त्री ने इस राज्य को अचिराधिष्ठित (established not long ago) कहा है तथा इस काल के राजा की तुलना उसने ऐसे वृक्ष से की है जो थोड़े दिनों का ही लगाया हुआ था और कमजोर था (नवसंरोपितशिथिलस्तरुः)। विदर्भ के राजा को मौर्यों के एक मन्त्री का सम्बन्धी (बहनोई) तथा पुष्यमित्र के राजवंश का कट्टर शत्रु कहा गया है। इससे लगता है कि बृहद्रथ मौर्य के शासनकाल में मगध राज्य के दो गुट हो गये थे। एक दल का नेतृत्व मन्त्री लोग करते थे तथा दूसरे का नेतृत्व राज्य के सेनापति लोग। मन्त्रियों के प्रतिनिधि या कृपापात्र यज्ञसेन को विदर्भ का राज्य मिला तथा सेनापति के पुत्र अग्निमित्र को विदिशा के उपराजा पद प्राप्त हुआ। लगभग एक सौ चौरासी से एक सौ सत्तासी ईसा पूर्व में सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने राज्य–क्रान्ति करके स्वयं राजा का पद ग्रहण कर लिया और उसके पुत्र अग्निमित्र द्वारा इसी समय स्वतंत्र हुए विदर्भ राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया गया तथा वहाँ के राजा यज्ञसेन की हत्या कर दी गई। परिणामतः वर्धा नदी विदर्भ और विदिशा की सीमा रेखा बनी और दोनों ही राज्यों ने पुष्यमित्र की सत्ता स्वीकार कर ली[226] और धीरे–धीरे इसकी राजनैतिक दशा में परिवर्तन हुआ। सम्भवतः कालान्तर में विदर्भ राज्य शकों के अधीन था क्योंकि उशवदात्त शक का राज्य सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर था।[227] परवर्ती युग में यह क्षेत्र वाकाटकों के अधीन रहा।[228] भवभूति की जन्मस्थली भी यही थी।[229] आभिलेखिक साक्ष्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि लगभग पहली–दूसरी शताब्दी में यह क्षेत्र सातवाहनों के स्वच्छन्द अधिकार क्षेत्र में था।[230] ग्वालियर प्रस्तर अभिलेख से विदित होता है कि लगभग आठवीं शताब्दी में यह क्षेत्र गुर्जर प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय द्वारा पालों एवं राष्ट्रकूटों के विरुद्ध राजनयिक संघ में सम्मिलित किया गया और इस प्रकार से नागभट्ट द्वितीय पालों तथा प्रतिहारों के विरुद्ध एक शक्तिसम्पन्न शासक सिद्ध हुआ।[231] कुमारगुप्त षष्ठ का काल (लगभग छठी शताब्दी ई.) वह समय था जब विदर्भ से सम्बद्ध शूलिकों अथवा चालिक्यों (चालुक्यों) का उदय हुआ।[232] सम्भवतः विदर्भ से इसी राजनैतिक सम्बन्ध के कारण

आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः' श्रीमद्भागवत 10.53.6

Pargiter, F.E., 'Markandeya-Purana', pp. 293, 299, 335, 360, 355. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Vol.2, p. 743 n.2.

विदर्भविषयाद् भ्रात्रा वीरसेनेन प्रेषितं लेखं लेखकरैः वाच्यममानं श्रृणोति'।

(मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5)

'प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम्'।

(रघुवंशम् 5.41)

Sircar, D.C., 'Geography of Ancient and Medival India', p. 78

कामसूत्र, वाराणसी, 2039, 5.5 33-34. वाल्मीकि रामायण, 4. 41. 10.

225. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 78.

226. वही, पृ. 328 एवं आगे।

227. Misra, S.N., op. cit., p. 114.

228. Sircar, D.C., 'Studies In the Geography of Ancient and Medival India', p.186.

229. Ibid, p. 188.

230. Nasik Cave Inscription of Vasishthiputra Pulumavi- No-86 (=c.149 A.D.).

231 भोज प्रथम का ग्वालियर प्रस्तर अभिलेख सं. 10 (लगभग 836 –85 ई.) पंक्ति 8. Majumdar, R.C., 'Gurjara-Pratiharas, Journal of the Department of Letters', Calcutta University, Vol. 10, pp. 38-39

232. वराहमिहिर, बृहत्संहिता 9.15, 21, 14.8, 10.7, 16.35 तिब्बती लामा, तारानाथ, इण्डियन एंटीक्वेरी, भाग 4, पृ. 364 एवं आगे। रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 540

विक्रमादित्य षष्ठ ने दस सौ सतहत्तर अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी ई. में गुर्जर–प्रतिहारों से इसे विजित किया, जिसका प्रमाण उसके कई अभिलेख देते हैं।[233] इस प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ में उल्लितिख विदर्भ को ऐतिहासिक आयामों में मापित करने के पश्चात् ही हम उक्त तथ्यों का आधार लेकर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई उल्लेखनीय प्रकाश नहीं डाल सकते, क्योंकि आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित युद्ध की ऐतिहासिकता हमें ज्ञात नहीं है।

यदि प्रश्नगत ग्रन्थ में वर्णित मेखल[234] को मेकल समझा जाय[235] तो उसकी स्थिति विंध्याचल पर्वतमाला के अन्तर्गत अमरकंटक पहाड़ी जो नर्मदा का उद्गम स्थान है, वही होनी चाहिए। मेकल–श्रेणी की स्थिति विन्ध्य और सतपुडा पर्वतमाला के बीच में है और यह इन दोनों को मेखला के रूप में बांधे हुए प्रतीत होती है। इस पर्वत का निकटवर्ती प्रदेश भी इसी नाम से प्रसिद्ध था। पौराणिक कथा के अनुसार राजा मेकल ने इस पर्वतीय प्रदेश में घोर तपस्या की थी जिसके कारण यह पर्वत तथा उसका क्षेत्र इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस स्थल को व्यास, भृगु तथा कपिल आदि की तपः स्थली भी माना जाता है। सम्भवतः मेकल का वर्णन मेखल के रूप में कविवर राजशेखर ने कन्नौजाधिप महीपाल द्वारा विजित प्रदेशों के उल्लेख में किया है। मेकल–पर्वत से शोण (= सोन) नदी भी निकली है। नर्मदा का उद्गम मेकल में होने के कारण इस नदी को मेकलसुता या मेकलकन्या कहते हैं। इसी पहाड़ के निकट स्थित एक नगर को भी मेकल कहते हैं, जहाँ के निवासी इसी नाम से प्रसिद्ध थे। विन्ध्याचल की एक जंगली जाति को भी मेकल कहते हैं।[236] रामायण में मेकल के स्थान पर मेखल शब्द का प्रयोग किया गया है।[237] रायचौधरी महोदय के अनुसार सिकन्दर के समय में दक्षिण की मेकल पर्वतमाला के समीप लोकतान्त्रिक जाति, जिसे मार्कण्डेय पुराण में मेखलामुष्ट कहा गया है तथा जिसका वर्णन बृहत्संहिता में भी प्राप्त होता है, वे मेकल अथवा मेखल लोग लोकतांत्रिक अम्बष्ठ कायस्थ अथवा अम्बष्ठ मेखल थे।[238] महाभारतकाल में उत्कलों की स्थिति मेखलों या मेकलों के क्षेत्र को चुम्बित करती थी।[239] पुनः रायचौधरी महोदय के अनुसार मेकल नाम आज भी मैकल श्रेणी के नाम से विख्यात है, जो विन्ध्य और सतपुड़ा पर्वतमाला को जोड़ती है और मध्य प्रदेश के खेरगढ़ क्षेत्र के रीवा तक फैली हुई है। अमरकंटक पहाड़ी के समीप मेकल रहते थे। पश्चिम क्षेत्र में मिदिनापुर जिले का भूभाग, जो उत्कल में आता था, वह इनकी पश्चिमी सीमा को स्पर्श करता था।[240] ग्यारह सौ छब्बीस से ग्यारह सौ अड़तीस ईसवी में कल्याणी के सोमेश्वर तृतीय द्वारा लिखवाये गये मानसोल्लास नामक ग्रन्थ में भी मेकल का उल्लेख प्राप्त होता है।[241] गुर्जर प्रतिहार राजा महिपाल की प्रशस्ति

233. Majumdar and Pusalkar, op. cit . Vol. 5, p. 177.

234 यो. महा. 3 36 27 37 54

235. माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 756.

236. शर्मा, राणाप्रसाद, 'पौराणिक कोश', वाराणसी, 1986, पृ. 429. महाभारत, भीष्मपर्व 9 328. द्रोणपर्व 4 122, कर्णपर्व 22 882
Misra, S.N., "Ancient Indian Republics", p. 116.

237 तेषामग्रे सरचैव बृहद्बलमथाङ्गदम्।
विधाय हरिवीराणामादिशद्दक्षिणां दिशम्।।
ये केचन समद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः।
स तेषां कपिमुख्याना कपीशः समुदाहरत्।।
सहस्रशिरसं विध्यं नानाद्रुमलतायुतम्।
नर्मदां च नदीं रम्यां महोरगनिषेविताम्।।
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णवेणीं महानदीम्।
मेखलानुत्कलांश्चैव दशार्णनगराण्यपि।।
(वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 41 6-9)

238. Misra, S.N., 'Ancient Indian Republics', p. 87. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 224 एवं टिप्पणी 2

239. Mahtab, Harekrushna, 'The History of Orissa', p.2.

240. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 42 and n9.

में लगभग नवीं–दसवीं शताब्दी के कवि राजशेखर द्वारा उल्लेख में महिपाल के द्वारा मेखलों को अवरुद्ध करने की बात कही गयी है।[242] पौराणिक सूची के अनुसार एक समय कलिंग क्षेत्र में न केवल अमरकंटक अथवा मेखल क्षेत्र अर्थात् ब्रिटिश भारत के मध्य प्रदेश के क्षेत्र सम्मिलित थे अपितु दक्षिण में मद्रास के भी भूभाग इसमें सम्मिलित थे।[243] गुहिलों (लगभग ग्यारहवीं शताब्दी) के एकलिंगजी अभिलेख में भी इनका उल्लेख अधीनस्थों के रूप में प्राप्त होता है।[244] लगभग छठी शताब्दी ईसवी में बुद्धगुप्त के राज्य–काल में गुप्तों पर दक्षिण के नरेन्द्र सेन वाकाटक नरेश द्वारा आक्रमण किया गया तथा मेखल के क्षेत्र को अधिकृत कर लिया गया। यही वह समय था, जब गुप्तों का पराभव काल आरम्भ हो गया था और विभिन्न प्रकार के विदेशी आक्रमण होने लगे थे। इसी समय मेखलों पर वाकाटकों का अधिकार हो गया था।[245] इस समय मेकल का एक भूभाग दक्षिणी कोसल का मुख्य नगर था तथा दूसरा भूभाग पूर्वी मालवा के अधिकार क्षेत्र में आता था। पाँचवी शताब्दी में मेकल राज्य स्तर पर पाण्डुवंशियों का राज्य हुआ। ये पाण्डुवंशी मध्य भारत तथा दक्षिण कोसल से सम्बद्ध थे।[246] बघेलखण्ड रीवा राज्य में सोहागपुर के बम्हानी (Bamhani) क्षेत्र से एक ताम्रपत्र लेख प्राप्त हुआ है। इसमें मेकल के पाण्डुवंशियों के चार सदस्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके नाम जयबाल, वत्सराज, महाराज नागवाल, भरतवाल अथवा इन्द्रबाल थे। इनमें नागबाल तथा भरतबाल ने परम–महेश्वर, परम–ब्राह्मण्य एवं परम–गुरु–देवाधिदैवत–विशेष की उपाधियाँ धारण कीं। सम्भवतः ये शरभपुरिया वंशियों से सम्बन्धित थे। प्रारम्भिक दोनों शासकों ने गुप्तों के अधीनस्थ सामन्त के रूप में यहाँ की सत्ता सम्भाली, परन्तु परवर्ती नागवाल एवं भरतबाल ने पाँचवीं शताब्दी के दूसरे चरण में गुप्तकाल की पतनोन्मुख स्थिति से लाभ उठाकर स्वयं की स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। पाँचवीं शताब्दी के तृतीय चरण में सम्भवतः इनका मेखल शासनतंत्र वाकाटकों के अधिकार क्षेत्र में आ गया।[247] इस प्रकार इतिहास के अनुच्छेदों में यहाँ ऊहापोह के मध्य प्रश्नगत ग्रन्थ में पूर्व–दक्षिण के देशों की जो सूची दी गई है, उसमें मेखलों के परिगणन के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में कोई अनुमानित अथवा निश्चित मान्यता प्रस्तुत नहीं की जा सकती। पर फिर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अपनी स्वतन्त्र सत्तात्मक अथवा अधिसत्तात्मक स्थिति में ही ये योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित किसी युद्धक संघ के सदस्य रहे होंगे और यह घटना मेखलों के सन्दर्भ में उक्त विवरण के अन्तर्गत लगभग छठी–सातवीं शताब्दी में ही सम्भाव्य होती है। इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ का रचनाकाल इसके पूर्व न रहा होगा।

पूर्व–दक्षिण के देशों में ग्रन्थकार अन्य उक्त देशों एवं जनों के अतिरिक्त शबरानन वर्ण वालों का भी उल्लेख करता है[248] अर्थात वे लोग जिनका मुख एवं वर्ण शबरों के समान था। ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम शबरों के विषय में तथ्यों के निदर्शन से यह स्पष्ट है कि महाभारत का वर्णन इन्हें नन्दिनी गाय से उत्पन्न तथा परशुराम के भय से रहने वाले विभिन्न क्षत्रिय जातियों के रक्त–सम्मिश्रण के कारण वर्णसंकर मानता है तथा अन्यत्र इन्हें मान्धाता की प्रजा और पाण्डव

---

241. Ibid., p. 338.

242. Tripathi, R.S., 'History of Kannauj', Delhi, 1959, p. 263. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Vol. 1, p. 576 and n

243. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.4, pp. 35.

244. Ray, H.C., Op. cit., Vol.I,pp. 392, 783 fn.1. Ibid, p.1171.

245. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 32.

246. Ibid, p. 184.

247. Ibid, p. 222-223.

248. यो. महा. 3.36.27

सात्यकि द्वारा विजित किया गया वर्णित किया गया है।[249] अतः सम्भवतः उपनिषद् काल तक ये पूर्णरूपेण आर्य नहीं हुए थे।[250] बाशम महोदय के अनुसार इनका सर्वप्रथम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है।[251] रामायण में उल्लिखित "शबरी" शबर जाति की ही थी, जो पद्म झील के किनारे तथा मध्य प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में रहते थे।[252] सम्भवतः प्लिनी एवं टॉलमी द्वारा वर्णित स्वारी (Suari) और शबराय (Sabarae) ये ही थे, जिन्हें शवरालु (Savaralu) का पूर्वज माना जाता था और जो विशाखापत्तनम पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे[253] अथवा ये ग्वालियर की भूमि में निवास करने वाले शवरी (Savaris) या उड़ीसा के सीमान्त क्षेत्र की एक वन्य या जंगली जाति के थे।[254] पार्जिटर महोदय शांखायन श्रौतसूत्र के आधार पर इन्हें म्लेच्छ वर्णित करते हैं।[255] इनका वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है। एक स्थान पर इसी नाम की एक नदी का उल्लेख है। जहाँ दूसरी ओर तत्सम्बन्धी जाति का उल्लेख है, वहाँ उसे आटव्यों से सम्बद्ध बताया गया है।[256] महाभारत में इन्हें मध्य तथा दक्षिण भारत में रहने वाला दुष्टकर्मा पुलिन्दों से सम्बद्ध दस्यु कहा गया है, जिन्हें वर्णसंकर जाति मानकर कोलारियों तथा द्रविणों से समीकृत किया गया है। इन्हें आज भी बिखरे हुए रूप में दक्षिणी एवं मध्य भारत में उड़ीसा की ओर शबर, सौर, स्वीर नाम से मद्रास, गंजाम एवं विशाखापत्तनम के क्षेत्र में पाया जाता है। कनिंघम महोदय द्वारा इनका समीकरण उड़ीसा तथा छोटा नागपुर की पहाड़ी पर घुमन्तू जाति से किया गया है।[257] बृहत्संहिता के आधार पर अल्बरूनी इनकी स्थिति दक्षिण–पूर्व में बताते हैं।[258] नोन्नोस (Nonnos) द्वारा पाँचवी शताब्दी में लिखित डायोनीसियाका (Dionysiaka) में शबराय (Sabbaroi) उन लोगों को कहा गया है, जिन्हें यूली (Yule) दशार्ण (Dosaraene) के निकट सम्भलपुर में रहने वाला वर्णित करता है। ये घुमन्तू वन्य जाति थी, जो सुन्दर हीरों का निर्माण करती थी।[259] नौ सौ तीस से नौ सौ सैतीस तक वंगी पर युद्धमाला द्वितीय, जो राष्ट्रकूटों के अधीन संरक्षित था, का अधिकार रहा। इस समय आन्ध्र क्षेत्र में राष्ट्रकूट अत्यन्त शक्तिशाली थे और अम्माद्वितीय के एक अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि इसी काल में अधीनस्थ शबर–प्रमुखों ने भी पूर्वी चालुक्यों के कुछ भागों पर अधिकार कर रखा था।[260] सम्भवतः लगभग तृतीय शताब्दी के भारत के नाट्य–शास्त्र[261] में जहाँ अपभ्रंश एवं प्राकृत भाषा के अनेक रूपों एवं विरूपों का वर्णन किया गया है, वहीं शबरों द्वारा बोली जाने वाली भाषा अर्थात् शाबर भाषा का भी उल्लेख प्राप्त

---

249. महाभारत, आदिपर्व 174.36, अश्वमेधपर्व 29. 15–16, शान्तिपर्व 65.13, द्रोणपर्व 119.46.
250. Majumdar and Pusalker, op.cit., Vol. 1, pp. 266, 318.
251. Basham, A.L., 'A Cultural History of India', Oxford University Press, 1975, p. 27. Law, B.C., 'Indian Culture', Vol. 1, pp. 305-306.
252. वाल्मीकि रामायण, आरण्यकाण्ड 74.7–35.
253. Vishvanath, S.V., 'Racial Synthesis of Hindu Culture', London, 1928, p. 86. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 327.
254. Rai Chaudhary, H.C., 'Political History of Ancient India', p. 79. Dutta, N.K., 'Aryanaisation of India', Calcutta, 1925, p. 69. Misra, Sudama, 'Janapadas State in Ancient India', pp. 78-79.
255. Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', pp. 235, 283-284.
256. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 61n, 39n4. Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skandpurana', Vol. 1, p. 311. Misra, S.N., 'Ancient Indian Republics', p. 116.Sachau Edward', Alberuni's India', E.tr. 1, p. 300.
257. Madras Census Report of 1891, p. 254. Cunningham, A.A., 'Archoeological Survey Reports', 17 and 20.
258. Sachau Edward, 'Alberuni's India', E.tr.1.p.301.
259. Mc Crindle, J.W. 'Ancient India as Described in Classical Literature', p. 198 n8.
260. Annual Report of South Indian Epigraphy, 1917, p. 117
261. Keith, A.B. 'A History of Sanskrit Litrature', p. 31

होता है।[262] लगभग बारह सौ अड़सठ ईसवी में चन्देलों ने वन्य जाति शबरों पर अधिकार कर उन्हें प्रतिबन्धित कर राज्य में शान्ति स्थापित की थी। दस सौ उनसठ ई. का खुजराहों प्रस्तर अभिलेख, जिसे कवि राम द्वारा रचा गया, वह शबरवंशीय कवि नन्दन का पौत्र था।[263] अजयगढ प्रस्तर शिलालेख (लगभग बारह सौ उन्तालीस ई.) भोजवर्मन् द्वारा निम्नजातीय शबरों के विध्वंस का वर्णन है।[264] समस्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि शबरों का अस्तित्व लगभग नवीं से बारहवीं शताब्दी तक राजनैतिक पटल से सामान्य स्थिति में आ गया था और लगभग तीसरी शताब्दी ईसवी से ये किसी न किसी शासक के अधीनस्थ सैन्य–शक्ति के रूप में युद्धों में भाग लेते रहे। यही कारण है कि आलोच्यग्रन्थ जब इनका वर्णन करता है तो वह शबरों के समान मुख एवं वर्ण वाले लोगों का उल्लेख करता है न कि सापेक्ष रूप में शबर जाति का। इसके दो कारण सम्भावित हो सकते हैं– प्रथम यह कि योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकार किसी दूरस्थ क्षेत्र का रहने वाला था, अतः उसने शबरों का सापेक्ष उल्लेख न करते हुए शबरों के समान मुख एवं वर्ण वाले लोगों का उल्लेख किया। द्वितीय कारण के अन्तर्गत हम यह विचार कर सकते हैं कि जिस समय आलोच्यग्रन्थ की रचना हुई होगी उस समय मूल शबर जाति का अन्त हो चुका होगा और उनके स्थान पर किन्हीं सम्मिश्रित शबरों के समान मुख एवं वर्ण वाली जाति ने किसी युद्ध में भाग लिया होगा। अधिक औचित्य इस तर्क का प्रतीत होता है कि सम्भवतः प्रश्नगत ग्रन्थ का रचयिता किसी दूरस्थ क्षेत्र का रहने वाला हो और उसने शबरों का उल्लेख केवल अध्ययन के आधार पर किया हो। इसीलिए ग्रन्थ में पूर्व–दक्षिण के देशों के वर्णन में शबर मुख एवं वर्ण वाले लोगों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। चाहे जो भी हो हम इस वर्णन के आधार पर कोई सार्थक तथ्य आलोच्यग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में अनुमान रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकते, परन्तु तत्सम्बन्धी विषय पर गहन चिन्तन विद्वानों के मध्य एक विषय अवश्य हो सकता है।

इसी क्रम में ग्रन्थकार कर्णात्रिपुरपूरकों का भी उल्लेख करता है[265] इनके विषय में किसी भी ग्रन्थ अथवा कोश से सापेक्ष अथवा निरपेक्ष रूप में कोई भी जानकारी अर्जित नहीं की जा सकी है। ऐसी दशा में उक्त सन्दर्भ के आधार

---

262. Majumdar & Pusalker, op. cit., Vol. 4, pp. 213.

263. Majumdar & Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 60. Ray, H.C. 'The Dynastic History of Northern India', 2, p. 687.

264 अजयगढ प्रस्तर शिलालेख, पंक्ति–22

265 यो. महा. 3.36.27
बिहारी लाल मित्र महोदय इसे इस प्रकार अनूदित करते हैं;–
From the South were Kalinga and Pundras, the Jatharas, Vidarbhas and the hill people, the Sabaras, the outcasted savages, the Karans and Tripura people (Mitra, V.L., Yogavasistha Maharamayana, Book III, Ch. 36, Sec. 2, pp. 403-404, Verse. 27)
अब इस अनुवाद के आधार पर सर्वप्रथम कर्ण देश के उल्लेख का आधार लेने पर कर्ण नामक एक महाकाव्यकालीन राजा तथा इसी नाम के एक कल्चुरि शासक एवं चालुक्य शासक के विषय में इतिहास पर आधारित जानकारी प्राप्त होती है (Sircar, D.C., 'Studies in Geography of Ancient and Medieval India', pp. 6-7, 195, 41 n, 140, Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', pp. 368, 369 and 629, Ray, H.C., Ibid, pp. 872, 962-964, 984,1010, 1108) संस्कृत के कृष्ण का नाम–प्रयोग दक्षिण भारत में अधिकांशः कंदड़ (Kandara), कंदाड (Kandara), कंधड (Kandhara), कंधाड़ (Kandhara), कंहड़ (Kanhara), कंहाड़ (Kanhara), कन्नड़ (Kannara), कन्नाड़ (Kannara) कृष्ण–कंधड़ (Krsna-Kandhara) या कृष्ण कंधाड (Krsna-Kandhara) नामों से जाना जाता है। प्राकृत नाम कन्नड़ का भी कभी पुनः संस्कृतकरण कर्ण नामोल्लेख से हुआ, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग आनंद राज्य के संस्थापक कंधड़ (Kandhara) कंधाड के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगोचर होता है, जो चतुर्थ शताब्दी ईसवी में आंध्र के गुंतूर जिले तथा समीपवर्ती क्षेत्र में उद्भूत एवं विकसित हुआ (Sircar, D.C., Ibid, p. 309 & n) कर्णपुर = कर्णगढ– यह भागलपुर (अंग–देश की राजधानी, प्राचीन चंपा) के निकट एक पहाडी है; इसका नाम महाभारत के कर्ण से सम्बन्धित है। कर्ण अंगदेश का राजा था। यह स्थान पूर्व–बोद्धकालीन है। महाभारत में भी पूर्वदिशा की दिग्विजय के प्रसंग में मगध के नगर गिरिव्रज के पश्चात् मोदागिरि या मुंगेर के पूर्व जिस स्थान पर भीम और कर्ण के युद्ध का वर्णन है वह निश्चय पूर्वक यही जान पडता है। (माथुर विजयेन्द्र कुमार, ऐतिहासिक स्थानावली, पृ. 143) (यूली के अनुसार कर्णगढ टालमी का कार्तिनगर (Kartinagar) है। (Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. 18, p. 395)।

पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई भी विचार प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

प्रश्नगत ग्रन्थ में आए कंटकस्थल[266] का तादात्म्य यदि वराहमिहिर के द्वारा वर्णित कंटकस्थली देश से स्थापित किया जाय तो इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि का निर्धारण छठी शताब्दी से किया जा सकता है, क्योंकि वराहमिहिर की बृहत्संहिता के अतिरिक्त उक्त सन्दर्भ अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।[267]

इसी प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ में आये कोमल[268] को मोनियर–मोनियर विलियम्स वायुपुराण एवं हरिवंश पुराण के आधार पर कोसल देश से संज्ञित करते हैं।[269] यदि उनके द्वारा निर्धारित कोमल को कोसल माना जाय तो आलोच्य ग्रन्थ में पूर्व--दक्षिण में वर्णित कोमल को भी हम वैसा ही मान सकते हैं और इस प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को गुप्तकाल के अनन्तर अर्थात् पाँचवीं–छठी शताब्दी के पश्चात् निर्धारित कर सकते हैं क्योंकि यह एक ज्ञात विषय है कि गुप्त काल तक पुराण जन–मानस में प्रचलित हो चुके थे[270] और केवल ज्ञात आधार ही कोसल को कोमल कहते हैं।

इसी प्रकार यदि त्रिपुर को त्रिपुरा अथवा त्रिपुरी से संज्ञित करते हैं तो यह जबलपुर से सात मील पश्चिम की ओर तेवर नामक एक छोटा सा ग्राम है, जो प्राचीनकाल की वैभव शालिनी नगरी त्रिपुरी का वर्तमान स्मारक है। त्रिपुरी का इतिहास महाभारत के समय तक जाता है। महाभारत एवं पुराणों में इसका उल्लेख है। तीसरी शती ईसवी की मुद्राओं में त्रिपुरी का नाम मिलता है। परिव्राजक महाराज संक्षोभ के 518 ई. के ताम्रपट्टलेख में भी त्रिपुरी का नाम है। 9वीं शताब्दी में मध्य प्रदेश के कल्चुरि नरेश कोकल्लदेव ने त्रिपुरी में अपनी राजधानी बनाई। कल्चुरि–नरेशों के शासन काल में 12 वीं शती के मध्य तक त्रिपुरी की सर्वांगीण उन्नति हुई। कर्पूरमञ्जरी के प्रसिद्ध लेखक विद्वान् राजशेखर कुछ समय तक त्रिपुरी में रहे। युवराज द्वितीय (975 1000) के समय मे त्रिपुरी अमरावती के समान सुन्दर थी (जबलपुर ताम्रलेख) कल्चुरि नरेश कर्णदेव (1041 73) ने भी त्रिपुरी के यश का दूर–दूर तक फैलाया। त्रिपुरी के खण्डहरों से अनेक मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। इनमें त्रिपुरेश्वर महादेव की प्रतिमा उल्लेखनीय है। कुछ लोगों का मत है कि त्रिपुरेश्वर शिव का मन्दिर कल्चुरिकाल में त्रिपुरी में स्थित था किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इस मंदिर का उल्लेख किसी कल्चुरि--अभिलेख में नहीं है, यद्यपि ये नरेश शैव ही थे। बालसागर नामक सरोवर के तटपर कई मन्दिरों के अवशेष आज भी हैं। यहीं गजलक्ष्मी की मूर्ति भी मिली थी। त्रिपुरी की कलचुरिकालीन मूर्तियों में आभूषणों का बाहुल्य दिखलाई देता है। त्रिपुरी से प्राप्त बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित हैं। इसमें प्रवचन मुद्रा में स्थित बुद्ध की मूर्ति विशेष कलापूर्ण है। त्रिपुरी के समीप ही जंगली कर्णबेल या कर्णावती नगरी के खडहर हैं। (माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 416 417, डे, नंदूलाल, पूर्वोक्त, पृ. 206) शब्दकल्पद्रुम के अनुसार त्रिपुरा, त्रिपुरी, त्रिपुर एक ही शब्द के पर्याय हैं (त्रिपुरी–स्त्री, देशविशेषः त्रिपुरी इति ख्याता। तत पर्य्यायः। चेदिनगरी 2 । इति हेमचन्द्रः 4 41, त्रिपुर–त्रयाणा पुराणां समाहार)। तद्धितार्थेति समास । पात्रादित्वात् स्त्रीत्वाभाव:, मयदानवनिर्मितं पुरत्रयम" यथा, महाभारते – 3/41/38 तथा कालिका पुराण, अध्याय 66) देव राजा – राधाकान्त, शब्दकल्पद्रुम, खण्ड 2, कलकत्ता, 1751) इसी प्रकार बिहारी लाल मित्र का अनुवाद कर्णात्रिपुरपुर को के सन्दर्भ मे दक्षिण से आये कर्ण और त्रिपुर देश के लोगों के विषय मे संज्ञान देता है। जिसकी सम्पुष्टि में यदि पाणिनि के सूत्र "जनपदतदवधोश्च" मे "वुञ्" प्रत्यय का प्रयोग किया जाय। जैसे, कर्णात्रिपुरक अर्थात् कर्ण और त्रिपुर में रहने वाले लोग। जनपदवाची और उसकी अवधिवाची शब्दों में इस सूत्र के उपयोग से जो शब्द बनता है, वह वहा के निवासियों और जनपद का सूचक होता है (तद्धितशक्षिक प्रकरणम्, पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4 2 124, भाष्य = वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, दीक्षित, भट्टोजि, अंग्रेजी–अनुवाद, वसु, श्रीशचन्द्र खण्ड I, वाराणसी, 1962 पृ. 748)। इस प्रकार उदाहरण के लिए हम कर्णात्रिपुरपुरकाः को कर्ण और त्रिपुरी में रहने वाले लोगों से ही यदि उक्त के अनुसार समीकृत करें तब भी हमारे पास ऐतिहासिक रूप से कोई ऐसा राजनैतिक प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर हम किसी ऐसे घटनाकाल का उल्लेख कर सकें, जबकि कर्ण और त्रिपुरी देशों की ऐसी राजनैतिक स्थिति रही हो, जिसके आधार पर दोनों ही देशों को किसी अन्य साहित्यिक अथवा पुरातात्विक वर्णन में एक साथ उल्लिखित किया गया हो। इसीलिए उक्त सन्दर्भों के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

266. यो. महा. 3 36 28

267 Williams, M.M., op. cit. p. 245

268. यो. महा., 3 36 28

269 Williams, M.M., op. cit., p. 313.

270. Srivastava, B.N., op. cit., p. 218-220.

ग्रन्थ में उल्लिखित चौलिक[271] के विषय में बहुत अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता परन्तु चौल शब्द संस्कृत में चूड़ा–कर्म के लिए प्रयुक्त हुआ है[272] और चौलि शब्द का अर्थ चूड़ा है।[273] अब यदि चौलिक संज्ञा मानी जाय तो उससे अभिप्रेत अर्थ चूड़ा–कर्म करने वालों से किया जा सकता है। ऐसे लोगों की तत्काल समय में राजनैतिक स्थित क्या थी?, इस विषय में ऐतिहासिक परिज्ञान का अभाव होने के कारण हम तर्क संगत रूप में प्रश्नगत ग्रन्थ में उल्लिखित चौलिक के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल का कुछ भी निर्धारण नहीं कर सकते।[274]

इसी प्रकार ग्रन्थ में उल्लिखित कर्णांध्र का विहारी लाल मिश्र द्वारा "The Karnas, the Andhras" अनुवाद किया गया है।[275] इस प्रकार अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर जिसमें कर्णांध्र का सन्धि–विच्छेद कर कर्ण एवं आन्ध्र कहा गया है, उसके प्रमाण मानें तो कर्णदेश को हम दो प्रकार से मूल्यांकित कर सकते हैं– पहला वह जिसमें कर्ण देश बताया गया है और जिसकी स्थिति भागलपुर के एक पहाड़ी के निकटवर्ती क्षेत्र में थी तथा जिसे टॉलमी ने कार्तिनगर कहा है।[276] दूसरा वह, जिसे प्राकृत भाषा में आनन्द राज्य का संस्थापक कहा गया है तथा जिसका संस्कृतकरण कर्ण नाम से किया गया है। जहां तक आंध्रों का प्रश्न है[277], उनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर पुराणों एवं अशोक के अभिलेख तक में मिलता है।[278] यद्यपि वे लगभग 240 ई. पूर्व से लगभग 225 ईसवी तक दक्षिण भारत में एक विकसित राज्य के अधिकारी थे[279] तथा छठी शताब्दी ई. में उड़ीसा के शुल्कियों द्वारा इनका उन्मूलन किया गया[280], तथापि इन्होंने कर्ण देश पर विजय प्राप्त की थी अथवा आनन्द राज्य इनके अधीनस्थ था या कर्ण देश के साथ मिलकर इन्होंने किसी युद्ध में भाग लिया था, ऐसी जानकारी का अभाव होने के कारण निष्कर्ष रूप में इस आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। चन्देल धंग द्वारा लगभग नवीं–दसवीं शताब्दी में इनके क्षेत्र को अधिकृत किया गया[281] ग्यारहवीं शताब्दी में इन्हें कलचुरि यशकर्ण के अधीन किया गया, इसी शताब्दी में चालुक्य कुमारपाल द्वारा भी इन्हें विजित किया गया तथा इसी समय में गुर्जर भीम और कलचुरि कर्ण के मध्य युद्ध हुआ था, जिसमें वर्णित घटनाक्रम के अनुसार आंध्र देश के राजाओं ने भीम को उपहार भेजे थे, जो उल्लेख आंध्रों की राजनैतिक अशक्तता के द्योतक हैं।[282]

---

271 यो. महा., 3.36.28.

272 Williams, M.M., op. cit., p. 403.

273. Ibid.

274. विहारीलाल मित्र महोदय ने चौलिक के स्थान पर 'Cholas' लिखा है। हमारी दृष्टि में योगवासिष्ठ महारामायण के जो भी हिन्दी भाषा के अनुवाद सामने आए, उन सब में चौलिक शब्द ही प्रयोग किया गया है। (देखिए – योगवासिष्ठ महारामायण 3.36.28, निर्णय सागर प्रेस, मुबई संस्करण तथा अच्युतग्रन्थमाला वाराणसी एवं ज्ञानसागर यन्त्रालय, मुम्बई से प्रकाशित संस्करण)।

275 Mitra, V.L., op. cit., Book 3, Ch. 36, Sec. 2., p. 404, verse - 28 = यो. महा. 3.36.28, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई.

276. Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. 18, p. 395.

277. यो. महा. 4.29.27.

278. ऐतरेय ब्राह्मण 7.18. महाभारत, सभापर्व 31.71, वनपर्व 51.22. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 41.11. मार्कण्डेय पुराण, 57. 48-49. विष्णु पुराण 4.24.64. अशोक का शहबाजगढी शिलालेख, स. 13, पंक्ति 10. Dey, N.L., op. cit., p. 7. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', Calcutta, 1957, pp. 140-141.

279. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', इलाहाबाद, 1971, पृ. 7, 82, 275, 350, 353, 438, 540, 542.

280. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Vol. 1, New Delhi, 1973, p. 438.

281. Ibid., Vol. 2, p. 680.

282. Ibid., pp. 787, 986n. 2, 95. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 63, 65, 68, 75, 169, 170, 171, 174, 175, 177, 100, 181, 182, 198, 199, 200, 202, 207, 220, 223, 235, 246, 372. Ibid., Vol. 4, pp. 24, 25, 86, 88, 138, 163, 291, 370. Ibid., Vol. 3, pp. 202-211, 224, 225, 238, 250, 252n, 537, 537, 538

इस आधार पर ग्रन्थ में कर्णांध के उल्लेख को दृष्टि में रखते हुए हम यह अनुमान नहीं लगा सकते हैं कि ऐतिहासिक आधारों पर इन दोनों देशों के राजनैतिक सम्बन्ध किस प्रकार के थे अथवा दोनों ही देशों की राजनैतिक विषमताएं कौन सी थीं, जिनके कारण उन्हें किसी युद्ध में एक संघ में होकर भाग लेना पड़ा। अतः उपर्युक्तानुसार प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाक्रम पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

ग्रन्थ में जहां चार्मण्वत शब्द का प्रयोग किया गया है[283] उसका अर्थ यदि लक्षणा के आधार पर चर्मण्वती अथवा चंबल नदी के पास रहने वालों से लगाया जाय[284] तो यह बात स्पष्ट होगी कि ग्रन्थकार को मध्य प्रदेश की चंबल नदी के क्षेत्र में बसने वाली जातियों के विषय में जानकारी थी परन्तु इसके आधार पर हम तथ्यों के अभाव में प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई तथ्यपूर्ण निष्कर्ष नहीं प्रस्तुत कर सकते। इसी प्रकार से ग्रन्थ में आये पूर्व–दक्षिण के देशों में 'काकका', 'काक' का भी उल्लेख है[285], जिस नाम की उपलब्धि अथवा जिसके सन्दर्भ में कोई भी जानकारी वास्तविक रूप में किसी भी ग्रन्थ एवं कोष से प्राप्त नहीं हो सकी है।[286] अतः उक्त सन्दर्भ के आधार पर शोध विषय में निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित महाग्रीव तथा नारिकेल[287] जो पूर्व–दक्षिण दिशा में परिगणित किये गये हैं, इनका उल्लेख मार्कण्डेय पुराण के अट्ठानवें काण्ड में प्राप्त होता है।[288] पार्जिटर के अनुसार महाग्रीव त्रिपुर देश के समान लक्षण

283 यो. महा. 36.28. वही, अंग्रेजी अनुवाद, मित्र, विहारीलाल, '.....the people on the borders of the Charmanvati river' - (खण्ड 1, बुक 3, चैप्टर 6, सेक्शन 2, पृ. 404, पंक्ति 284.)

284 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 328-329 Dey, N.L., op. cit., p. 48. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol 1, p. 95.

285 यो. महा. 3.36.29.37.38. हिन्दी अनुवाद, ज्ञानसागर यन्त्रालय के अनुसार इसे 'काकक' पढ़ा जाना होगा (श्रीयोगवासिष्ठमहारामायणम्' शर्मा, ठाकुर प्रसाद, आचार्य द्वारा अनुदित, ज्ञानसागर यन्त्रालय, मुंबई, संवत 1960, पृ. 259 / 29) जिसे अंग्रेजी अनुवादक (प्रश्नगत ग्रन्थ के) 'जिसे अंग्रेजी अनुवादक (प्रश्नगत ग्रन्थ) 'Kakos' पढ़ते हैं) मित्र, विहारीलाल, पूर्वोक्त, पंक्ति 29

286. संस्कृत व्याकरण पाणिनि अष्टाध्यायी तथा सिद्धान्त कौमुदी, पूर्वोक्त के 'जन–पदतदवध्योश्च' तथा 'अवृद्धादपि बहुवचन विषयात्' उल्लेख में 'काका' शब्द को 'वुञ्' प्रत्ययार्थ में काक जाति को जनपद के अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए। (पाणिनि, अष्टाध्यायी, पूर्वोक्त, भाष्य=दीक्षित, भट्टोजि, सिद्धान्तकौमुदी, वाराणसी, 1941), जिससे स्पष्ट होता है कि आलोच्य ग्रन्थ में वर्णितयुद्धक संघ में पूर्व–दक्षिण दिशा से उल्लिखित देशों में काक जनपद के लोगों का सम्मिलित होना भी बताया गया है, जिनका उल्लेख गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख (प्रयाग प्रशस्ति) में प्राप्त होता है। (समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख, पंक्ति 22)। इनका समीकरण मध्य–प्रदेश में एरण में सौगोर जिले से पचास मील दूर भिलसा के उत्तर एवं उत्तर–पूर्व से किया जाता है, क्योंकि यह क्षेत्र समुद्रगुप्त के साम्राज्य में सम्मिलित था। महाभारत के भीष्मपर्व में इन्हें तंगण, परतंगण, विदर्भ आदि की सूची में में रखते हुए दक्षिण में बताया गया है (महाभारत, भष्मपर्व, 9.64)। स्मिथ महोदय इन्हें 'काकनाद' और 'काकूपुर' से सम्बद्ध करते हुए इनकी स्थिति विदिशा से तीस किलोमीटर दूर बताते हैं (Smith, V.A., Journal of Royal Asiatic Society, 1897, pp. 892-899), जैसा कि पूर्वोल्लिखित है कि इन्होंने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उसी आधार को लेते हुए शिवनन्दन मिश्र महोदय इन्हें सनकानिकों का पड़ोसी मानते हैं (Misra, S.N., 'Ancient Indian Republic, pp. 105, 115-116) किन्तु भगवान् सिंह महोदय इस सम्बन्ध में कहते हैं कि काकों की स्थिति के विषय में सटीक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अधिकतर विद्वानों ने इन्हें सांची के समीपस्थ उसी से सम्बद्ध किया है और विजयेन्द्र कुमार माथुर महोदय ने काक जनपद की स्थिति उत्तर प्रदेश के कानपुर महानगर के समीप वर्णित की है (सूर्यवंशी, भगवान सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 163 तथा माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूवोक्त, पृ. 160) बाम्बे–गजेटियर में काक को विठूर के निकट काकूपुर बताया गया है (रायचौधरी, एच.सी., 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 488-489)।

यदि उपर्युक्त विवरणों को एक आधार माना जाय तो यहाँ पर निर्दिष्ट काक, जिन्हें युद्ध में पूर्व–दक्षिण की ओर से सम्मिलित होने की बात कही गई है, उनका सन्दर्भ समुद्रगुप्त काल के अनन्तर ही ग्रन्थ में सम्भव है, क्योंकि महाभारत के भीष्मपर्व की रचना का काल भी गुप्तकाल के पश्चात् माना गया है (एनाल्स ऑफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूणे, 'महाभारत, भीष्मपर्व, सुक्थांकर संस्करण)। इसी आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल के पाँचवीं–छठी शताब्दी ई. में किसी समय आरम्भ होने से सम्बन्धित विचार स्वीकृत किये जा सकते हैं।

287. यो. महा. 30.36.29.

288. Pargitar, F.E., 'Markandeya Purana', 58.17,18.

वाले समीकृत हैं तथा विशाल एवं नग्न रूप में रहने वाले थे और नारिकेल के विशेष उल्लेख में वे उसे एक द्वीप बताते हैं।[289] यद्यपि वे इस विषय में और कुछ नहीं कहते तथापि भगवान सिंह महोदय क्षेमेन्द्रकृत "बृहत्कथामञ्जरी" में आये इसके उल्लेख के अनुसार इस द्वीप का समीकरण निकोबार द्वीपसमूह से करते हैं।[290]

इस प्रकार उक्त सन्दर्भो के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ को 'मार्कण्डेय पुराण' एवं 'बृहत्कथामञ्जरी' के काल के मध्य अर्थात् तृतीय शताब्दी ईसवी से ग्यारहवीं शताब्दी तक विचार किया जा सकता है।[291]

आलोच्य ग्रन्थ में किष्किन्धों का उल्लेख भी पूर्व--दक्षिण देशों के सन्दर्भ में आता है।[292] रामायण में वर्णित यह वानरों की राजधानी थी, जहाँ पर श्रीराम एवं लक्ष्मण जी ने बालि को मारने के पश्चात् समय व्यतीत किया था तथा इस नगरी में युद्धार्थ सुरक्षायंत्र आदि भी लगे थे।[293] महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा रघुवंश में भी इसका उल्लेख है।[294]

---

289 Pargitar, F.E., 'Markandeya Purana', p. 360 &n.

290. Suryavanshi, Bhagwan Singh, 'Geography of the Mahabharat', pp. 72-76.

291 Pargitar, F.E., Markandeya Purana, Introduction, pp. xiii-xx. Williams, M.M., 'A Sanskrit-English Dictionary', p. 333.

292 मा. महा. 3.36.29

293 अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवर्णगिरिम् ।। (वाल्मीकि रामायणम् किष्किंधा, 28.1)
तथा –
स बालिनं हत्वा तथा सुग्रीवमभिषिच्य च।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।।
– माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 190
एवं
सतां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमानपुष्पितकानाम्।
रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम्।।
हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नोपशोभिताम्।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम्।।
देवगंधर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः।
दिव्यमाल्यांबरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः।।
चंदनागुरुपद्मानां गंधः सुरभिगंधिताम्।
मैरेयाणां मधूनां च स समंदितमहापथाम्।।
विंध्यमेरुगिरिप्रख्यैः प्रसादैनैकभूमिभिः।
ददर्श गिरिनद्यश्च विमलास्तत्र राघवः।। (वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धा, 33. 4-8)
प्राप्ताः स्म ध्वजं जयंत्राढ्यां किष्किंधावालिनः पुरीम्। – (वही, 15.6)
सुषेणं कुमुदं नीलं नलं चप्लवर्गषभम्।
गंजगवाक्षंशर भमेदं च द्विविदं तथा।।
किंचिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथां ते शुकसारणौ।। – (वही, युद्धकाण्ड, 28.4-5)
तामपश्यद्वलाकीर्णांहारिराजमहापुरीम्।
दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलः किष्किंधांगिरिसंकटे।। – (वही, किष्किन्धा, 31.16)
किष्किन्धां यः ससमध्यास्ते दुर्गांसगहनद्रुमाम्।
दुर्गां पर्वतदुर्गम्यां प्रधानैः सहयूथपैः।। – (वही, युद्धकाण्ड, 28.30)
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किंधां वालिनः पुरीम्।
वृक्षैरात्मनमावृत्यह्यतिष्ठन्गहने वने।। – (वही, किष्किन्धाकाण्ड, 12.14 तथा 26.14-17)

294 तं जित्वाराः महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम्।
गुहामासादयामास किष्किंधां लोकविश्रुतम्।। (महाभारत, सभापर्व, 31.17, तथा वनपर्व,-अध्याय 280.40)

ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण तथा वायु पुराण में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है।[295] होसपेट स्टेशन से ढाई मील की दूरी पर और बिलारी से साठ मील उत्तर की ओर इसकी स्थिति बतायी जाती है। होसपेट स्टेशन से दो मील पर अंजनी (हनुमान् की माता) के नाम से एक पर्वत है और इसके कुछ ही दूर पर ऋष्यमूक स्थित है जिसे घेरकर तुंगभद्रा बहती है। नदी के दूसरी ओर हंपी (16वीं शती ई.) के ऐश्वर्यशाली नगर विजयनगर के विस्तृत खण्डहर हैं। इसका समीकरण अनेगुंडी तथा गोदावरी नदी के निकटवर्ती क्षेत्र में भी किया गया है।[296] लगभग बारहवीं शताब्दी में रचित नागचन्द्र की पम्पा रामायण में भी किष्किन्धा का उल्लेख प्राप्त होता है।[297] आठवीं शताब्दी में भवभूति द्वारा अपने ग्रन्थ उत्तररामचरित में एक सुन्दर चितेरे की भांति किष्किन्धा का वर्णन किया गया है।[298]

उक्त सन्दर्भों के आधार पर यह बात स्पष्ट है कि आलोच्य ग्रन्थ में यद्यपि पूर्व-दक्षिण में किष्किंधा का उल्लेख प्राप्त होता है तथापि अन्य ग्रन्थों में लगभग तेरहवीं शताब्दी तक इसे दक्षिण में स्थित बताया गया है और इसका समीकरण भी उक्त आधार ही किया गया है, जो इसका द्योतक है कि आलोच्य ग्रन्थ में दी गई सूची का प्रस्तुतीकरण ग्रन्थकार के अनुमानित अथवा पठित विवरण पर आधारित रही होगी और इसीलिए इस सूची में वर्णित उपर्युक्त सभी आधारों पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में बहुत कुछ नहीं कहा जा सकता।

पूर्व में स्थित विविध देश

कोसल, काशी, मगध, मिथिल, उत्कल, मेखल, कर्कर, मुद्रसंग्राम, शौण्डक, मुख्य, रुद्रमुख्य, ताम्रलिप्त, प्राग्ज्योतिष, वाजिमुख, अम्बष्ठ, पुरुषादक, वर्णकोष्ठ, विश्वोत्र, आममीनाशन, व्याघ्रवक्र, किरात, सौवीर तथा एकपादक आदि उन जनपदों का वर्णन आलोच्य ग्रन्थ में पूर्व के देशों में किया गया हैं, जिन्होंने एक (कल्पित) युद्धक संघ में भाग लिया था[299] तथा पूर्व की ही भाँति अनुसंधानात्मक विषय में इनका आधार लेकर इस प्रकार मन्तव्य प्रस्तुत किये गये हैं-

ग्रन्थ में कोसल देश को पूर्व से युद्ध में आये देशों में परिगणित किया गया है, जो पौरवों से पराजित हुए।[300] प्राचीनकाल में यह एक महाजनपद था। इसके पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सई (सर्पिका) नदी, पूर्व में विदेह राज्य से अलग करने वाली सदानीरा नदी और उत्तर में नेपाल की पहाड़ियाँ इसकी प्राकृतिक सीमा निर्धारित करती थी।[301]

'सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेन्द्रो वारिधरो विन्ध्यः'
(श्रीमद्भागवत, 5 19 16 तथा दशम स्कन्ध)
'एतद् गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखिश्रृङ्गम्।
नवं पयो यत्र घनैर्मया चत्वद्विप्रयोगाश्रुसमं विसृष्टम्'।।
(कालिदास, रघुवंश, 13 26)

295 शर्मा, राणाप्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 111. मार्कण्डेय पुराण, 57 54, 58 18. Sircar, D.C., 'Geography of Ancient and Medieval India', p. 43.

296 गुप्त, परमेश्वरीलाल (किष्किन्धा), हिन्दी विश्वकोश, भाग 3, पृ. 20 Suryavamshi, B S., op. cit., p. 114. Journal of the Royal Asiatic Society, 1894, pp. 255f.

297. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 371.

298. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 326-327.

299 पूर्वस्यां कोसलाः काशिमागधा मिथिलोत्कलाः।
मेखलाः कर्करा मुद्रास्तथा संग्रामशौण्डकाः।।
मुख्या हिमा रुद्रमुख्यास्ताम्रलिपतास्तथैव च।
प्राग्ज्योतिषा वाजिमुखा अम्बष्ठाः पुरुषादका।।
वर्णकोष्ठा सविश्वोत्रा आममीनाशनस्तथा।
व्याघ्रवक्राः किराताश्च सौवीरा एकपादकाः।। (यो. महा. 3 36 22-24)

300 वही, 36 22, 37 43

301 रायचौधरी, एच.सी., ''प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास'', पृ. 68 71, 86, 89, 96, 136, 137, 186, 206, 327, 269, 416

इसके तीन बड़े नगर अयोध्या, साकेत और श्रावस्ती प्राचीनकाल में विख्यात थे।[302] रामायण तथा पुराण इसके आदि पूर्वजों को इक्ष्वाकु कहते हैं।[303] इसका उल्लेख ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद् तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी प्राप्त होता है।[304] बौद्ध तथा जैन दोनों ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।[305] राजनैतिक रूप से कोसल–काशी तथा कोसल–मगध का वैमनस्य प्राचीनकाल से चला आ रहा था।[306] प्रसेनजित् के पिता महाकोसल द्वारा एक समय काशी को विजित कर लिया गया था।[307] प्राचीन–काल में इसके अन्तर्गत कालामों तथा शाक्यों के राज्य भी सम्मिलित थे।[308] इसकी राजधानी के अवशेष गोण्डा–बहराइच जिले से प्राप्त हुए हैं।[309] जातकों से स्पष्ट होता है कि काशी के राजा मनोज ने कोसल को अपने अधिकार में कर लिया था।[310] ऋग्वेदकालीन सरयू के तट पर बसी बस्ती का प्रमुख चित्ररथ था[311], जिसका सम्भाव्य समीकरण रामायण कालीन अयोध्या से किया जाता है। प्रतीत होता है कि रामायण काल में ही यह देश उत्तर कोसल तथा दक्षिण कोसल नामक दो जनपदों में विभक्त था। राजा दशरथ की रानी कौशल्या सम्भवतः दक्षिण कोसल (रायपुर– विलासपुर के जिले, म.प्र.) की राजकन्या थी।[312], जो क्षेत्र गुप्तकाल के पतन होते–होते कई अन्य राज्यों का अधीनस्थ रहा।[313] कालिदास ने रघुवंश में अयोध्या को उत्तर कोसल की राजधानी कहा है।[314] मार्कण्डेय पुराण में इसे मध्यदेश के जनपदों की सूची में वर्णित किया गया है।[315] दशकुमारचरित (सातवीं शताब्दी) में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। गुप्त–सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में "कोसलक महेन्द्र" या कोसल (दक्षिण कोसल) के महेन्द्र का उल्लेख है जिस पर समुद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की थी।[316] हरिषेण वाकाटक ने स्कन्दगुप्त के पश्चात् कोसल पर अपना

---

302. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 47. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त पृ 34 37 915-918 950-952

303 भागवत पुराण, 10 75 12, 96 20, 2 7 23, 44, 12 2 37, 9 10 29, 11 22, 10 2 3 58 52 86 12 1 रामायण, उत्तरकाण्ड, 2 21-26 ब्रह्माण्ड पुराण, 2 16 41, 64, 3 53 199, 74 197 विष्णु पुराण, 4 24 64 वायु पुराण, 88 198

304 शतपथ ब्राह्मण, 1 4 11 पाणिनि, अष्टाध्यायी 4 1 17, रायचौधरी, एच.सी. पूर्वोक्त

305 Law, B.C., op. cit., p. 47.

306. Ibid.

307. Ibid.

308 Smith, V.A., "The Oxford History of India", Delhi, 1988, p. 77. Misra, S.N., op. cit., p. 48.

309. Smith, V.A., op. cit., pp. 72-73.

310. Law, B.C., op cit., p. 47.

311 'उतत्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्रपारतः अर्णाचित्रथा वधीः'
(ऋग्वेद 4 30 14)
तुलना करें – 'सूतश्चात्ररथश्चार्य सचिवः सुचिरोषितः तोषयैनं महार्हैश्च रत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा'
(वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 32 17)

312 'स मही मनुना राजा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा, स्फीतां राष्ट्रवतां रामे वैदेहीमन्वदर्शयत्।' (वही, 49 12)

313 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 217-218.

314 'सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तकोसलानाम्
(कालिदास, रघुवंशम् 13 62)

315 मार्कण्डेय पुराण 57 32-35

316 समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख, संख्या 2, पंक्ति 19
दक्षिणापथ के कोसल अर्थात् दक्षिणी कोशल में आधुनिक विलासपुर, रायपुर, सम्बलपुर जिले तथा गंजाम के कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। इसकी राजधानी श्री पुर (आधुनिक सीरपुर) रायपुर से पूर्व तथा उत्तर की ओर 30 मील पर स्थित था। (Fleet, J.F., Corpus Inscriptionum, p. 293. Ipigraphica Indica, pt. 23, p. 118f, pt 10, p.26, रायचौधरी, एच.सी., पूर्वोक्त पृ 481)

अधिकार कर लिया था।[317] नरेन्द्रसेन वाकाटक (बुद्धगुप्त के समकालीन, लगभग पाँचवीं शताब्दी के तृतीय चरण में) ने भी यहाँ पर अपना अधिकार स्थापित किया था।[318] लगभग आठवीं शताब्दी में यह हर्षदेव के अधीन था, जिसकी पुत्री से लिच्छवि राजा जयदेव का विवाह होने के कारण तत्कालीन लिच्छवियों के प्रभाव में भी यह क्षेत्र आ गया था।[319] यहाँ पर दक्षिण कोसल में पृथ्वीसेन द्वितीय वाकाटक के समय (छठी से आठवीं शताब्दी) पाण्डुवंशियों का शासन था।[320] आठवीं शताब्दी में यह क्षेत्र राष्ट्रकूटों के भी अधीन था।[321] दसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में मूलराज चालुक्य द्वारा गुजराती वर्णनों के अनुसार सिन्धुराज एवं उत्तर कोसल पर की गयी विजय संदिग्ध है।[322] विजयादित्य द्वितीय पूर्वी चालुक्य–वंशीय ने आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र पर अधिकार किया था।[323] दसवीं शताब्दी में वेंगी के पूर्वी चालुक्यों के अधीन त्रिकलिंगों का राज्य होने के कारण दक्षिण कोसल के भूभाग भी उसमें सम्मिलित थे।[324] पाँच सौ तीस से पाँच सौ पचास के लगभग तीवारदेव नामक दक्षिण कोसल का एक शक्तिशाली शासक था।[325] पुल्केशिन द्वितीय द्वारा दक्षिण कोसल की विजय की गई।[326] लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में चोलों ने दक्षिण कोसल पर विजय प्राप्त की।[327] ग्यारहवीं शताब्दी में यह सोमवंशियों के अधीन रहा।[328] बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चन्द्रदेव गहड़वाल द्वारा उत्तर कोसल को अपने साम्राज्य में मिला लिया गया।[329]। ऐतिहासिक विवरण यह स्पष्ट करते हैं कि गोविन्दचन्द्र गहड़वाल के समय में (लगभग बारहवीं शताब्दी में) दक्षिण कोसल पर जाज्जलदेव कलचुरि का राज्य था।[330] लगभग इसी शताब्दी में कलचुरि गांगयदेव द्वितीय ने दक्षिण कोसल के सोमवंशी महाशिवगुप्त ययाति को पराजित किया।[331] इसी शताब्दी में चक्रकोट के नागों द्वारा दक्षिण कोसल हस्तगत करने के कारण कलचुरियों द्वारा उन्हें दण्डित किया गया था[332], जिन्होंने नवीं शताब्दी में यहाँ अपना राज्य स्थापित किया था।[333] ग्यारहवीं शताब्दी में पूर्वी चालुक्य विक्रमादित्य पंचम द्वारा दक्षिण कोसल पर विजय प्राप्त की गई।[334] सोमेश्वर सामन्त काकतीय प्रोल द्वारा भी कोसल पर विजय प्राप्त की गई थी।[335] देवगिरि के यादववंशीय कृष्ण के काल में ही उसके द्वारा भेजे गये मल्ल ने तेरहवीं शताब्दी में दक्षिण कोसल

---

317 वही, पृ 521 Majumdar and Pusalker, op cit., Vol. 3, p. 186.

318. Ibid., p. 32, 184

319. Ibid., p. 138, 141.190.

320. Ibid., pp. 220-22.

321. Ibid., Vol. 4, pp. 1, 7.

322. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 105.

323. Ibid., p. 135.

324. Ibid., Vol. 3, p. 215.

325. Ibid., p. 225

326. Ibid., p. 238.

327. Ibid., Vol. 5, pp. 170, 237, 205, 206, 212, 219. Ibid., Vol. 4, pp. 146, 148, 149.

328. Ibid., Vol. 5, pp. 27, 214. Ibid., Vol. 4, pp. 62, 86, 91. Ibid., Vol. 5, p. 209.

329. Ibid., pp. 51-52.

330. Ibid., pp. 53-176

331. Ibid., p. 61.

332. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 65, 217-218.

333. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 88.

334. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 166.

335. Ibid., p. 172.

पर विजय प्राप्त की।[336]

इस प्रकार इतिहास के परिवेश में प्रश्नगत ग्रन्थ के विवरण को लेने से यह बात स्पष्ट होती है कि ग्रन्थकार द्वारा कोसल का उल्लेख उत्तर कोसल के सन्दर्भ में है, क्योंकि वह कोसल की स्थिति मध्य देश के पूर्व में स्थापित करता है। उत्तर कोसल के राजनैतिक इतिहास के विषय में रामायणोत्तर काल में कम विवरण प्राप्त हैं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तक आते--आते उसकी स्वायत्तता गहड़वालों के हाथों समाप्त हो चुकी थी, परन्तु ऐसा उल्लेख हमें कहीं नहीं प्राप्त होता है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस कोसल राज्य ने किसी युद्धक संघ में सम्मिलित हो युद्ध किया हो, जैसा कि योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित है। इसीलिए सन्दर्भित आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में तथ्य प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं।

आलोच्य ग्रन्थ में काशी[337] को भी पूर्व के जनपदों मे परिगणित किया गया है। प्राचीनकालीन काशी का समीकरण वर्तमान उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग के, जो वाराणसी के समीपवर्ती क्षेत्र थे, आसपास के भूभाग से किया जाता है। इसकी भौगोलिक स्थिति में उत्तर की सीमाएं कोसल का स्पर्श करती थीं। इसी के दक्षिण--पूर्व भाग में मगध का क्षेत्र था तथा पश्चिमी क्षेत्र में इसकी सीमाएं वत्स की सीमाओं को चुम्बित करती थीं। यह गंगा के वाम तट पर उत्तर प्रदेश के दक्षिणी--पूर्वी कोने में वरुणा और असी नदियों के गंगासंगमों के बीच बसी हुई है। इस स्थान पर गंगा ने प्रायः चार मील का दक्षिण से उत्तर की ओर घुमाव लिया है और इसी घुमाव के ऊपर इस नगरी की स्थिति है।[338] कुछ विद्वानों के मत में काशी वैदिक काल से भी पूर्व की नगरी है। शिव की उपासना का प्राचीनतम केन्द्र होने के कारण ही इस धारणा का जन्म हुआ ज्ञान पड़ता है। इसके साहित्यिक उल्लेख के रूप में सर्वप्रथम अथर्ववेद की पैप्पलादसंहिता का उद्धरण दिया जा सकता है। शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में काशिराज धृतराष्ट्र का उल्लेख है, जिसे शतानीक सहस्त्राजित् ने परास्त किया था। उपनिषदों एवं सूत्र--साहित्य में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में भी इसे पूर्व में स्थित बताया गया है।[339] महाभारत में इसके विषय में अनेक उल्लेख प्राप्त हो जाते हैं, जो इसकी गरिमा एवं महिमामंडन का विशेष उल्लेख करते हैं।[340] बुद्धकाल तक आते--आते इस नगर नाम वाली काशी ने महाजनपद का रूप धारण कर लिया, जिसका उल्लेख विविध बौद्ध साहित्य मे प्राप्त होता है और इस समय तक इसकी राजधानी वाराणसी प्रख्यात हो गयी थी। बुद्धकाल में काशी जनपद कोसल के अधीन हो गया था और अन्ततोगत्वा इसकी राजनैतिक स्वायत्तता मगध साम्राज्य में विलीन हो गई थी।[341] पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा पतञ्जलि के महाभाष्य में इसका उल्लेख मिलता है।[342] पुराणों में इसका कितना महत्त्व है यह बात इसी से स्पष्ट हो जाती है कि स्कन्दपुराण में काशीखण्ड नाम का एक सम्पूर्ण अध्याय ही है।[343] चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्वेन--त्सांग के विवरणों में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यह नगरी शंकराचार्य के समय से आज तक भारतीय संस्कृति का केन्द्र बनी रही

---

336. Ibid., p. 192.

337. यो. महा. 3.36.22

338. Dey, N.L., op. cit., p. 95. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', pp. 46, 94-96. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 68, 71, 85, 87, 137, 181, 185, 187, 205, 527, 532

339 महीं कालमहीं चापि शैलकाननशोभिताम्।
ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान्।।
(वाल्मीकि रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 40. 22 तथा उत्तरकाण्ड, अध्याय 48)

340 महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 102, वनपर्व, 84 78 30. 6-7, शान्तिपर्व 27 9

341 Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 208.

342. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4 2 116 पतञ्जलि, महाभाष्य, द्वितीय संस्करण, मुम्बई, 2 1 1

343 पाण्डेय, राजबली, 'हिन्दू धर्मकोश', लखनऊ 1988, पृ. 183-186

है। भारत के इतिहास के प्रमुख राजवंशों में से कुषाण, भारशिवनाग, गुप्त, मौखरि, प्रतीहार, चेदि तथा गहड़वालों ने क्रम से यहाँ राज्य किया। 1033 ईसवी में नियाल्तगीन नामक मुसलमान सेनाध्यक्ष ने सर्वप्रथम बनारस पर आक्रमण करके उसे लूटा। ग्यारह सौ तिरानबे–चौरानबे में यह प्रदेश कन्नौज के साथ–साथ मुसलमान आक्रान्ताओं के अधीन हो गया।[344]

इस प्रकार ग्रन्थकार द्वारा काशी को पूर्व के देशों में परिगणित करने का कारण उसका रामायण का एक परिशिष्ट होना है, परन्तु काशी ने भी किसी युद्ध संघ में भाग लिया होगा इस विषय में हमारी जानकारी नगण्य है इसीलिए इस उल्लेख के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ का रचनाकाल निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

योगवासिष्ठ महारामायण में उपर्युक्त की भाँति मगध का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[345] ऋग्वेद एवं पुराणानुसार इसका प्राचीन नाम कीकट था।[346] महाभारत काल एवं रामायण काल में यह अपनी शक्तिसम्पन्नता के कारण विख्यात था तथा छठी से चौथी शताब्दी ई. पू. तक यह अपने राजनैतिक साम्राज्य संस्थापन में प्रमुख भूमिका निभाता रहा और इस भूमिका में मौर्यकाल से गुप्तकाल तक इतिहास के परिवर्तित मंच पर इसकी शक्तिमयता के दृष्टान्त प्राप्त होते रहे हैं। छठी तथा आठवीं शताब्दी ई. तक इसकी अधिसत्ता पुष्यभूतिवंशियों एवं कन्नौज के यशोवर्मा के हाथों में चली गई[347] राष्ट्रकूट शासकों के काल अर्थात् नवीं–दसवीं शताब्दी तक मगध गुर्जरों तथा पालों के साम्राज्य का एक अंग था। पालों तथा राष्ट्रकूटों के युद्ध में कब, किसने, इस पर कितनी विजय प्राप्त की? इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।[348] लगभग नवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में दक्षिण पाण्ड्यों द्वारा किये गये पराभव में मगध का उल्लेख प्राप्त होता है।[349] लगभग बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह क्षेत्र गहड़वालों द्वारा अधिकृत कर लिया गया।[350] खयरवालवंशियों (Khayarvala dynasty) द्वारा इसी शताब्दी में यहाँ पर राज्य किया गया। ग्यारहवीं शताब्दी में गहड़वालों, काकतीयों तथा गहड़वाल और राष्ट्रकूटों के मध्य हुए युद्ध में मगध का उल्लेख प्राप्त होता है।[352] कल्याणी के चालुक्य सोमेश्वर प्रथम द्वारा ग्यारहवीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर अधिकार किया गया था।[353]

---

344 माथुर, विजयेन्द्रकुमार, हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 2, पृ. 579–580 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 25, 26, 38, 39, 52, 53, 54, 61, 62-64, 67, 75, 92, 99, 119, 132, 135, 194, 197, 301, 318, 335, 513.

345 यो. महा. 3.36.22

346 रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का इतितहास', पृ. 102–103

347 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 691–693 Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', pp. 42, 44, 45, 208, 232, 233, 234, 308. Law, B C., 'Ancient Indian Tribes', Vol. 1 2, 14, 17, 37, 37, 39, 65, 69, 70, 88, 90, 93, 94, 95, 97, 103-106, 108-112, 117-122, 125, 129, 133, 137, 138, 141, 142, 148, 149, 150, 153, 158, 171, Vol. II, 11, 33, 33. Ali, S M., 'The Geography of Puranas', Delhi, 1988, pp. 130, 136, 150, 163, 173, 167, 20, 21, 131, 151, 171, 172, 175. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medival India', pp. 27, 31, 38, 46, 70, 78, 85, 86, 106-107, 109, 163, 166, 171, 213-14, 217, 219, 220, 254, 255, 262, 264. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 86 100 136 180, 270, 352, 371, 473, 474, 523, 540 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 2, 3, 4, 5, 40, 42, 43n, 44, 68, 73, 75, 76, 78n. 79, 80, 93, 107, 110, 112, 120, 121, 126, 128, 129, 134, 137 n 168, 285, 353, 358, 381, 382, 394, 408, 409, 592, 522, 607, 611, 623.

348 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, pp. 9, 11, 33, 49, 272, 274, 53. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 24, 27, 28, 29, 30, 31, 32.

349. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, pp. 51, 159.

350 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 38.

351. Ibid., pp. 49, 54.

352. Ibid., pp. 52-55.

353. Ibid., p. 172.

यद्यपि इतिहास में आठवीं से दसवीं शताब्दी तक कई राज्यों ने संघ बनाकर युद्ध किये थे, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं, तथापि इस प्रकार के युद्ध का वर्णन आलोच्य ग्रन्थ में जैसा किया गया है उसका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में क्या महत्त्व है? यह बात सुस्पष्ट न होने के कारण हम तत्संदर्भित ग्रन्थ में उल्लिखित मगध के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में कोई निर्णयात्मक तथ्य प्रस्तुत नहीं कर सकते।

आलोच्य ग्रन्थ के अनुसार मिथिला को भी मध्य देश के पूर्व से आये देशों एवं जनपदों में परिगणित किया गया है।[354] रामायण, महाभारत, पुराणों, रघुवंश, एवं बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों के आधार पर बिहार–नेपाल सीमा पर विदेह (तिरहुत) का प्रदेश जो कोसी और गंडकी नदियों के बीच में स्थित है, मिथिला से समीकृत किया जाता है, जिसके संस्थापक निमि, मिथि तथा मखादेव नामक शासक माने गये हैं।[355] प्राचीन विदेह की राजधानी मिथिला थी, जो आजकल नेपाल की सीमा में जनकपुर नामक कस्बे के रूप में है। रामायण में वैशाली तथा मिथिला के बीच भिन्नता रखी गई है, किन्तु बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उक्त भिन्नता का ध्यान ने देकर विदेह शब्द का विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया गया है।[356] इतिहास में कैवर्तों के द्वारा की गई क्रान्ति के पश्चात् लगभग 1068 से 1097 ईसवी तक कर्नाटक के नयचन्द्र ने मिथिला में अपना साम्राज्य स्थापित किया, जो मुहम्मद तुगलक के काल तक मुसलमानों के आधिपत्य में चला गया।[357] लगभग चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य यहाँ पर ब्राह्मणों ने अपना राज्य स्थापित किया और इन्हीं के राज्य में विद्यापति नामक श्रेष्ठ कवि हुआ।[358]

सारांश रूप में यह मान सकते हैं कि उपर्युक्त की ही भाँति योगवासिष्ठ महारामायण की सूची मे मिथिला का भी उल्लेख आया हैं, जो उसके रामायण का परिशिष्ट होने के कारण ही परम्परागत रूप में द्रष्टव्य है परन्तु उक्त सन्दर्भ के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

आलोच्यग्रन्थ में उत्कल को भी मध्य देश के पूर्व में बताया गया है।[359] प्राचीन काल में यह आधुनिक उड़ीसा का पर्याय था, जिसकी सीमा समय–समय पर बदलती रही। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उत्कल शब्द शबरों एवं द्रविड ब्राह्मणों का परवर्ती स्वरूप है।[360] यद्यपि वैदिक साहित्य में उत्कल का उल्लेख नहीं प्राप्त है। तथापि महाभारत, पुराणों एवं रघुवंश में इसका जो उल्लेख प्राप्त होता है, उसमें इसको विन्ध्य क्षेत्र में स्थित बताया गया है[361] तथा परवर्ती–युगीन

---

354. यो. महा. 3 36 22

355 ततः परमसत्कारं समुते प्राप्य राघवः।
उप्यतत्र निशामेकां जग्मतुः मिथिलां ततः।।
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम्।
साध्वसाध्वतिशंसन्तो मिथिलां संपूजयन्।।
मिथिल पवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः।
पुराणं निजने रम्यं प्रयच्छ मुनिपुंगवम्।। (वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 48-49 तथा 7 71 3 49 9-16)
महाभारत, शान्तिपर्व 298 1 219 327 12233-89, सभापर्व 30 13 13 26-30 (पूना), 20 28-30 (गोरखपुर), भागवत पुराण 9 13 13 10 57 20-26 विष्णु पुराण 4 13 93 107 4 5 वायु पुराण 88 7-8 96 74 99 324 ब्रह्माण्ड पुराण 3 64 6 71 80 मार्कण्डेय पुराण, 58 12 कालिदास, रघुवंशम् 11 32 मज्झिमनिकाय 2 4 83 जातक सं 539 (Faushboll Edition) माथुर, विजयेन्द्रकुमार "ऐतिहासिक स्थानावली", पृ. 745-746

356 वाल्मीकि रामायण, 1 47-48 रायचौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 108 टिप्पणी.

357. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 47-48.

358. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1884, pp. 76 f.

359 यो. महा. 3 36 22

360 Sircar, D.C. 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India,' p. 16, 42, 43, 129.

361. Mahatab, Harekrushna, 'The History of Orissa, 'p.1, 2. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 41 8-10 महाभारत, भीष्मपर्व, 9 सभापर्व 52, द्रोणपर्व 4, भीष्मपर्व, जम्बूखण्डनिर्माणपर्व, अध्याय 10, श्लोक 37-56 ब्रह्माण्ड पुराण, 2 16 42 37 358 60 18 3 60 18 मत्स्यपुराण, 12 17 145 103 भागवतपुराण, 4 10 2 13 6-10, 6 10 20 8 10 21 33 9 1 41 वायुपुराण, 69 240 85 19 कालिदास, रघुवंश, 4 38

शक्तिसंगम तंत्र में उत्कलों एवं मेखलों का एक साथ उल्लेख करते हुए इसे जगन्नाथ प्रान्तदेश में स्थित बताया गया है।[362] इस प्रकार डे महोदय के अनुसार उत्कल 'उत्–कलिंग' का परिवर्तित स्वरूप है[363], जिससे सामान्य रूप से कलिंग के उत्तरी भाग का तादात्म्य स्थापित किया जाता है। कुछ विद्वानों ने द्रविड़ भाषा के "ओक्कल" को किसान का पर्याप्य मानते हुए उत्कलों को उसी का परिवर्धित स्वरूप माना है, जिनका उल्लेख इतिहास में पूर्व बुद्व काल में मिलता है।[364] इन पर सर्वप्रथम मगधों तदनन्तर गुप्तों, गौडों एवं ययाति केसरियों का पाँचवीं शताब्दी तक तथा बारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक गंगों का शासन रहा और जब बारहवीं शताब्दी में प्राचीन त्रिकलिंग देश एकीकृत हो गया तब से वह सम्पूर्ण क्षेत्र उत्कल एवं उड़ीसा के नाम से विख्यात है।[365] ब्रह्मदेश में रंगून से लेकर पीगू तक के औपनिवेशिक प्रदेश को उत्कल कहते थे। यहाँ भारत के उत्कल देश के निवासियों ने आकर अनेक बस्तियाँ बसायी थीं। कहा जाता है कि 'तपुस' और 'भल्लुक' नामक दो व्यापारी, जिन्होंने भारत आकर गौतम बुद्ध से भेंट की थी तथा जो उनके शिष्य बनकर तथागत के आठ केशों को लेकर ब्रह्मदेश आए थे, इसी प्रदेश के निवासी थे।[366]

इस प्रकार आलोच्यग्रन्थ में वर्णित उत्कल भारतीय परम्परागत साहित्य में वर्णित उत्कल ही है, जिसका उल्लेख ग्रन्थ में स्वतंत्र रूप में प्राप्त होता है। यदि इस विवरण की ओर दृष्टिपात किया जाय तो उत्कल को भी उस युद्धक संघ राज्य में सम्मिलित बताया गया है, जिस युद्ध के विषय में हमें परिज्ञान नहीं है। इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है, कि ऐसा उल्लेख बारहवीं शताब्दी के पूर्व ही कभी संभव है क्योंकि इसी समय में प्राचीन उत्कल राज्य अपनी स्वायत्तता का क्षेत्र खोकर आधुनिक उड़ीसा में परिवर्तित हो गया था और इतना होते हुए भी बहुत खींच–तान कर हम योगवासिष्ठ महारामायण में आये उत्कल के सन्दर्भ पर इसके रचना काल को बारहवीं शताब्दी के पूर्व भी मान सकते हैं।

उपर्युक्त की ही भाँति आलोच्य ग्रन्थ के कर्करों को भी मध्य देश के पूर्व में स्थित बताया गया है।[367] ग्रन्थ के भाष्यकार के अनुसार इस प्रकार की सूची मार्कण्डेय तथा अन्य पुराणों में प्राप्त है, परन्तु यहाँ पर उल्लिखित सूची उक्त का विवर्त है।[368] विजयेन्द्र कुमार माथुर के अनुसार कलकल अथवा कर्करपुर नाम का एक जैन तीर्थ था। जैनस्तोत्र तीर्थमालाचैत्यवंदन में इसका उल्लेख इस प्रकार है– "मोढरे दधिप्रदकर्करपूरे ग्रामादिचैत्यालये"।[369] यदि इसे कर्कखण्ड से समीकृत किया जाय तो मानना होगा कि इसकी स्थिति योगवासिष्ठ महारामायण की भांति ही पूर्व में थी।[370]

अब यदि इसे एक आधार माना जाय तो आलोच्य ग्रन्थ के रचना काल को महाभारत के उत्तरवर्ती समय में निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि महाभारत के अतिरिक्त अथवा जैनस्तोत्र तीर्थमालाचैत्यवंदन के अतिरिक्त इस प्रकार का उल्लेख अन्यत्र प्राप्त नहीं है।

---

362. Sircar, D.C., op. cit., pp. 78, 85, 91, 107.

363. Dey, N.L., op. cit., p. 213.

364. Epigraphia Indica, Vol. 5, p. 108. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास' पृ. 125

365. Mahatab, Harekrushna, 'History of Orissa, pp. 1-7, 9-12.

366. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, 'ऐतिहासिक स्थानावली', पृ. 89

367. यो. महा. 3 36 22, आनन्दबोधेन्द्र का भाष्य, वाराणसी, संस्करण, पृ. 217

368. वही, पृ. 217

369. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 142

370. अंगान् वंगान् कलिंगाश्च शुंडिकान् मिथिलानथ।
मागधान् कर्कखंडांश्च निवेश्य विषयआत्मनः।।
(महाभारत, वनपर्व, 254 8 तुलनीय– यो. महा. 3 36 22)

आलोच्य ग्रन्थ में मुद्र, संग्रामशौण्डक[371] तथा हिम[372] को भी उपर्युक्त के अनुसार ही पूर्व से युद्ध में आये जनपदों में सम्मिलित हुआ बताया गया है। हिम के विषय में पुराणानुसार वर्णित हिमालय के पूर्वी क्षेत्र के स्थलों से आये देश का भान होता है।[373] इसके आधार पर विषयगत प्रकरण में गुप्तकाल के अनन्तर होने के लिए अनुमानित तर्क ही प्रस्तुत किया जा सका है, क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है और क्योंकि इसी समय में ही पुराण जन–मानस में प्रचलित हो चुके थे।

आलोच्य ग्रन्थ में आये रुद्रमुख्यों[374] का तादात्मय यदि रुद्रपुर के प्रमुखों से जोडा जाय तो यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार को आधुनिक गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, गौरी बाजार रेलवे स्टेशन से लगभग दस मील दक्षिण की ओर एक छोटे से कस्बे के पास सहनकोट नामक एक जीर्ण–शीर्ण वर्तमान दुर्ग अर्थात प्राचीन रुद्रपुर की जानकारी थी, जिसका वर्णन लगभग सातवीं शताब्दी के उत्तरार्थ में आये युवानच्वांग के यात्रा विवरणों में प्राप्त होता है। यहाँ विष्णु की मूर्ति एवं अन्यान्य सुन्दर देवालयों की प्राप्ति पुरातत्त्वविदों को हुई[375] और इसी का परिगणन उसने पूर्व से आये रुद्र–प्रमुखों के लिए युद्ध में शामिल होने के सन्दर्भ में अन्य देशों एवं जनपदों के साथ किया है।

इसी आधार मानने पर उक्त सन्दर्भ की दृष्टि में आलोच्यग्रन्थ के रचनाकाल को सातवीं शताब्दी अथवा उसके कुछ बाद में माना जा सकता है।

उक्त की ही भाँति आलोच्यग्रन्थ में ताम्रलिप्तों का वर्णन किया गया है।[376] ये ताम्रलिप्त वास्तव में प्राचीन ताम्रलिप्त के रहने वालों से समीकृत हैं। यह पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर जिले का तामलुक अथवा तमलुक है, जो कलकत्ता से 33 मील दूर दक्षिण–पश्चिम में रूपनारायण नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है। यद्यपि इसकी समुद्र से वर्तमान दूरी 60 मील है, प्राचीन और मध्यकालीन युग में 17वीं शताब्दी तक समुद्र उसको छूता था और वह भारतवर्ष के दक्षिण–पूर्वी तट का एक प्रसिद्ध बंदरगाह था। ताम्रलिप्ति न केवल नगर की अपितु एक बड़े जनपद की भी संज्ञा थी। उन दिनों गंगा नदी भी उसके नगर के निकट से गुजरती थी। समुद्र के निकट स्थित होने के कारण उसका व्यापारिक महत्त्व अत्यधिक था। प्लिनी उसे 'तामलिटीज' की संज्ञा देते हुए एक ऐसी सड़क का वर्णन करता है जो उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत में पुष्करावती (पेशावर के पास) से प्रारम्भ होकर तक्षशिला, हस्तिनापुर, आधुनिक अनूपशंहर और डिबाई होते हुए कन्नौज, प्रयाग वाराणसी और पाटलिपुत्र तक जाती थी। बीच में वह सिंधु, झेलम, व्यास, सतलज, यमुना और गंगा को पार करती थी। पाटलिपुत्र के आगे भी वह पूर्व में गंगासागर तक जाती थी और ताम्रलिप्ति स्थल ही उसका अंतिमबिंदु रहा होगा।[377] मौर्यो का युग आते–आते उसका महत्त्व निश्चय ही स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगा

---

371. यो. महा. 3 36 22-23
यदि संग्राम और शौण्डक को अलग–अलग पढ़े तो संस्कृत–अंग्रेजी कोष के अनुसार संग्राम का अर्थ 'लोगों का समूह' (विलियम्स, एम.एम. पूर्वोक्त, व्यक्तिवाची' पृ. 1129) और यदि शौण्डक 'शौण्डिक' है तो उनका अर्थ पराशर तथा मनुस्मृति के अनुसार अछूत जाति से लगाया जा सकता है (शर्मा, राणाप्रसाद, पौराणिक कोष, पृ. 501)

372. यो. महा. 3 36 23.

373. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, 'ऐतिहासिक स्थानावली', पृ. 797. Pargiter, F.E., Markandeya Purana, pp. 5, 28-28, 127, 132, 240, 275-83, 287, 293, 345, 347, 369, 391-6, 475, 488-9 494, 518, 598, 655, 669-70. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medival India', pp. 5n, 12n, 18n, 20, 40n 51n, 68n, 213n, 214, 275, 314, 337, 339n.

374. यो. महा. 3 36 23.

375 माथुर विजयेन्द्र कुमार, 'ऐतिहासिक स्थानावली' पृ. 797.

376 यो. महा. 3 36 23

377. Mc. Crindle, John W. 'Ancient India as Described in Classical Literature', Delhi, 1979, p. 102-135. Scoff, Wilfred H. 'The Periplus of the Erythraean Sea', Delhi, 1974, p. 249, 255.

था।[378] इसका सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत में मिलता है।[379]

पुराण[380], अर्थशास्त्र[381], बृहत्संहिता[382], दशकुमारचरित[383], तथा चीनी यात्रियों[384] के उल्लेख यह स्पष्ट करते हैं कि चौथी से बारहवीं शताब्दी तक यह व्यापार का प्रमुख केन्द्र रहा, जिसकी सम्पुष्टि ऐतिहासिक विवरण भी करते हैं।[385] यहाँ पर हिन्दू तथा बौद्ध तीर्थ स्थान है।[386] पुरातात्त्विक सर्वेक्षण से इस स्थान के सम्बन्ध में वर्तमान में भी जानकारी प्राप्त होती है।[387] यद्यपि ग्रन्थकार ताम्रलिप्त का स्पष्ट उल्लेख करता है, तथापि हम उपर्युक्त वर्णन के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते।

आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित पूर्व में स्थित प्राग्ज्योतिष[388] को रामायण[389], महाभारत[390], पराुण[391], रघुवंश[392], हर्षचरित[393] तथा योगिनीतंत्र[394] में उल्लिखित किया गया है, जिसमें पार्जिटर के अनुसार सम्पूर्ण उत्तर एवं पूर्वी बंगाल के क्षेत्र थे, परन्तु परवर्ती काल में इसका क्षेत्र जब पूर्वी बंगाल तक ही सिमट गया होगा, तब यह कामरूप नाम से बाद के लेखों में विख्यात हुआ होगा।[395] कामरूप नाम के उल्लेख सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री[396] तथा अन्य परवर्ती ऐतिहासिक वर्णन में प्राप्त होता है।[397] पार्जिटर के अनुसार प्रारम्भिक प्राग्ज्योतिष देश के अन्तर्गत आधुनिक असम, जलपैगुड़ी (Jalpaigudi), कोच विहार (Coch Bihar), बड़ा भूभाग, रंगपुर (Rangpur), बोगरा (Bogra)

---

378. Mookerji, Radha Kumud, 'Ashoka; Delhi, 1972, pp. 15, 35, 36
379. महाभारत सभापर्व, 2. 24 25 29, भीष्मपर्व, 9 57
380 विष्णुपुराण, 4 24 64 ब्रह्माण्डपुराण, 2 18 51 मत्स्यपुराण, 114 45 वायुपुराण, 45 123
381. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, अध्याय – 32-33
382. वराहमिहिर, बृहतसंहिता, अध्याय – 14
383. दण्डी, 'दशकुमारचरित', निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1951, पृ. 215 एवं आगे।
384. Watters, Thomas, "On Yuan Chwang's Travels in India", Delhi, 1973, II, p. 190. Beal, S. "SI-YU-KI Budhist Records of The Western World", Delhi, 1981, II, p. 200.
385. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 142, 613, 614, 620, 642. Epigraphia Indica, Vol. 2, p. 343. (आठवीं शताब्दी के मानवंशीय शासकों के अभिलेख)
386 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2 pp. 235-652, 654, 655. Indian Antiquary, 1914, pp. 63, 64 and f.
387. Journal of Marine Archaeology, Vol. I, January, 1990, Madras, pp. 19 ff (Observation made of Archaeological Sights by I.K. Sharma, see his article, 'Ancient Andhra Ports, Religious Centres and Sea-faring').
388 यो. महा. 3 36 23
389. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 42 30-31
390. महाभारत 6.95–46, सभापर्व 24. 9–11, 25 1000–1, 50 1834, उद्योगपर्व 166 5804, कर्णपर्व 5 104–5 (कलकत्ता संस्करण), उद्योगपर्व 48 80–83, अश्वमेघ पर्व 75 1
391. विष्णु पुराण 5 29 16 मत्स्य पुराण 163 81 भागवत पुराण 10 59.2–5, मार्कण्डेय पुराण 52 44, 53 3
392. कालिदास, रघुवंश 4 8
393. बाणभट्ट, हर्षचरित बम्बई, सं. 1814, पृ. 214
394. योगिनीतंत्र, कन्हैयालाल–कृत भाषाटीका, बम्बई सं. 1949 पृ. 81
395 Pargiter, F.E. 'Markandeya-Purana', E. tr. Introduction p.20
396. Watter, Thomas, 'On Yuan-Chawang's Travels in India' pp. 185-186, 348 (2nd Indians Edition, 1973)
397. Alberuni, 'Tarikh 'L Hind', Text and Translation by Sachau, E.C., edn. Tribner's Oriental Series, London 1910, Vol. 1, p. 201.

मीमेनसिंह (Mymen Singh) ढाका (Dhaka) और टिप्परा (Tippera) तथा पब्ना (Pabna) जिलों के बंगाल के क्षेत्र एवं पूर्वी नेपाल के सम्भाव्य क्षेत्र भी सम्मिलित हैं।[398] महाभूतवर्मन् द्वारा निधनपुर लेख में लगभग छठी शताब्दी ईसवी में यह बताया गया है कि प्राग्ज्योतिष देश पर उसके परिवार द्वारा शासन किया गया। इसी लेख को पुनः भास्करवर्मन् द्वारा भी व्यक्त किया गया।[399] तत्पश्चात् लगभग तीन शताब्दियों तक अर्थात् तीन सौ पचास से छह सौ ई. तक पुराणों तथा महाभारत में वर्णित नरकासुर से सम्बन्ध रखने वाली एकल जाति ने यहाँ शासन किया। ऐतिहासिक दृष्टि से पुष्यवर्मन् के राज्यारोहरण का काल अर्थात् लगभग तीन सौ पचास ई. के आस--पास का समय अनुमानतः वह समय था, जब से प्राग्ज्योतिष के इतिहास के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होने लगती है।[400] उमाचल शिलालेख, जो कि कामाख्या पर्वत गौहाटी में स्थित पाया गया और जिसका तिथिक्रम नरक के परिवार से सम्बद्ध महाराजाधिराज सुरेन्द्रवर्मन् (चार सौ सत्रह से चार सौ पञ्चान्नबे ईसवी) तक का है। उसमें बलराम की पूजा का स्वतंत्र रूप से इसी शताब्दी में उल्लेख किये जाने के साथ ही प्राग्ज्योतिष का भी उल्लेख मिलता है।[401] लगभग छठी शताब्दी ईसवी के समय में यहाँ के एक शासक ने अश्वमेध यज्ञ किया था।[402]

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तकाल के पश्चात् जिस राजा का नेतृत्व भूतिवर्मन, स्थितिवर्मन सुस्थितिवर्मन्, मृगांक, सुप्रतिष्ठितवर्मन् और भास्करवर्मन् ने किया, वह कामरूप नाम से विख्यात हुआ तथा यही प्राग्ज्योतिष का परवर्ती स्वरूप था।[403] ऐसा प्रतीत होता है कि भास्करवर्मन् के काल तक आते–आते प्राग्ज्योतिष कामरूप की राजधानी के रूप में विख्यात था।[404] दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लोगों ने प्रलम्भ परिवार के त्याग सिंह के दारा ब्रह्मपाल को चयनित कर कामरूप का शासक नियुक्त किया।[405] ग्यारह सौ तिरासी से ग्यारह सौ बानब्बे ई. के मध्य गहडवालों की शक्ति को अवरोधित करते हुए बंगाल के सेनवंशियों ने प्राग्ज्योतिष को अधिकृत करते हुए सम्पूर्ण कामरूप क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। बारहवीं--तेरहवीं शताब्दी तक कामरूप शक्ति की स्वायत्तता समाप्त हो गई।[406]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राग्ज्योतिष का जो उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्त होता है, उसके आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचना काल का तिथि क्रम पाँचवीं शताब्दी ई. से ही निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि इसके लिए पश्चात् प्राग्ज्योतिष की अपनी स्वायत्तता समाप्त हो गयी थी और वह लगभग तेरहवीं शताब्दी तक कामरूप की राजधानी के रूप में जाना जाने लगा था। अतः प्राग्ज्योतिषों का गुप्तकाल के अनन्तर स्वतन्त्र रूप से किसी युद्धकसंध में भाग लेने का प्रश्न कैसे उठ सकता है?

आलोच्यग्रन्थ में पूर्व से युद्ध में सम्मिलित हुए देशों में अम्बष्ठों का भी नाम आता है।[407] इनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण[408],

---

398 Pargiter, F.E. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1987 p. 106

399 Indian Historical Quarterly, 7.p. 743-823

400 Epigraphia Indica Vol. 12, p. 73, Vol. 19, pp. 115 and 245 ff. Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. 5, pp. 151ff. Memors of the Archaeological Survey of India, No. 66 pp. 69-70.

401. Epigraphia Indica, Vol. 31, pp. 67ff.

402. Journal of Royal Asiatic Society, Vol. 1, pp. 419 ff, Vol. 8, p. 33, Vol. 10, p. 63 Indian Historical Quarterly, Vol. 7, pp. 743 ff.

403 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 91-92.

404 Beal, S., 'Buddhist Records of the Western World', p. 195n-24. Indian Culture, No. 3, pp. 731-733.

405. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 42, 44-45

406. Ibid., p. 38.

407 यो. महा. 3 36 22

408. ऐतरेय ब्राह्मण 8 21--23

अष्टाध्यायी[409] महाभारत[410], पुराण[411], मनुस्मृति[412] तथा बृहत्संहिता[413] में प्राप्त होता है। डे महोदय के अनुसार आरम्भिक काल में ये पंजाब में रहते थे तथा बाद में बंगाल तथा बिहार में फैल गये।[414] एरियन (Arian), डायोडोरस (Diodors), करसियस (Curtious), ओरोसियस (Orosius) तथा टॉलमी (Ptotemy), सबैरचल (Sabarcal), सैबग्रेइ (Sabagrae) तथा ऐम्बोउदटेई (Ambautal) के नाम से दक्षिण–पूर्व हिन्दूकश में स्थित होने के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह जाति पूर्व की ओर अभिमुख बिहार तक बढ़ती गई, जहाँ पर कायस्थों की एक श्रेणी आज भी अम्बष्ठ कायस्थ नाम से विख्यात है, जबकि बंगाल में रहने वाले कायस्थ भी अम्बष्ठ नाम से विख्यात हुए।[415]

अब ऐतिहासिक रूप से यह कहा जा सकता है कि अम्बष्ठों के विषय में हमें ब्राह्मण काल से ही विदित हो जाता है, जिन्होंने लड़ाकू होने के साथ–साथ परवर्ती युग में वैद्यों तथा कार्यालय के लेखा–जोखा रखने वालों के काम अपना लिये, इसलिए वैद्यों और कायस्थों में भी उनकी उपशाखा के रूप में ये पहचाने जाने लगे और साथ ही इनका ज्ञान क्षत्रियों की उपशाखा के रूप में भी प्राप्त होता रहा।[416] रमेश चन्द्र मजूमदार के अनुसार वैद्यों की एक जाति के रूप में अथवा एक अलग सामाजिक जत्थे के रूप में पाण्ड्य काल के आठवीं शताब्दी के तीन दक्षिण भारतीय अभिलेखों – नेडुन्जदैयन के वेल्वीकुडी ग्रान्ट (Valvikundi Grant of Nedunjadaiyan), जतिलवर्मन् के मद्रास म्यूजियम प्लेट्स (Madras Plates of Jatilavarman) तथा मरांजदैयन के अन्नामलाइ लेख (Annamalai inscriptiona of Maranjadaiyan) में उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें अम्बष्ठों को मिश्रित जाति का बताया गया है अम्बष्ठों तथा वैद्यों का समीकरण उत्तर हिन्दू काल से सत्रहवीं शताब्दी तक एक साथ किया गया।[417]

अब यह नहीं कहा जा सकता है कि जिन पूर्व से आये अम्बष्ठों का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में किया गया है वे कायस्थ थे अथवा बंगाल के वैद्यों की एक उपशाखा थे। इसीलिए योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित अम्बष्ठों के आधार पर उसके रचनाकाल के विषय में कोई अवधारणा प्रस्तुत नहीं की जा सकती।

आलोच्य ग्रन्थ में एकपादक को पूर्व में तथा उत्तर में स्थित बताया गया है[418], जिसे मार्कण्डेय पुराण में 'एकपादप' तथा 'एकपाद' पढ़ा गया है तथा उसे कच्छपावतार के मुख पर स्थित बताया गया है।[419] पार्जिटर के अनुसार इसे एक 'एकपादक' ही पढ़ा जाना चाहिए, जिसका उल्लेख महाभारत तथा प्लिनी दोनों ने ही किया है।[420]

---

409. पाणिनि, अष्टाध्यायी 4.1.171, 8.3.97

410. महाभारत 6.20.10, 65.39–40, 2.47.14, 52. 14.15, उद्योगपर्व 30.23, कर्णपर्व 5.18, द्रोणपर्व 25.50, 43. 60–69, 109.14

411. भागवतपुराण 10.83.23, मत्स्यपुराण 48.21 ब्रह्माण्डपुराण 3.74.22 वायुपुराण 99.22, विष्णुपुराण 2.3.18 मार्कण्डेयपुराण 58. 40. शर्मा, राणा प्रसाद, 'पौराणिक कोश', पृ. 6

412. मनुस्मृति 10.47

413. वराहमिहिर, बृहत्संहिता 14.7

414. Dey, N.L., 'The Geographical Dicitionary of Ancient and Mediaeval India', p. 6.

415. Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', pp. 108-109. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', p. 36. Raichaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', 2nd edn., Allahabad, pp. 157-158. Misra, S.N., 'Ancient Indian Republics', pp. 85-86. Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', p. 670ns.

416. Majumdar, R.C., 'History of Bengal', pp. 589-591.

417. Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', pp. 589-591.

418. यो. महा. 3.36.24 तथा 56

419. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', 58.14, 51.

420. Ibid., pp. 356, 383 & n.

महाभारत में दक्षिण के भूभाग के वर्णन में ही एक पैर वाले मनुष्यों के देश का उल्लेख आया है।[421] मोनियर–मोनियर विलियम्स ने इसे अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण मानते हुए अवास्तविक लोगों से संज्ञित किया है।[422]

इस प्रकार एक ओर तो आलोच्य ग्रन्थ का विवरण इनकी स्थिति के सन्दर्भ में महाभारत के विवरण से तादात्म्य नहीं रखता तो दूसरी ओर इनके देश को काल्पनिक माना जाता है। अगर हम यह मान भी लें कि योगवासिष्ठ महारामायणकार को दूसरे स्थान का होने के कारण इनकी सही सूचना नहीं थी तो भी उक्त आधार पर मार्कण्डेयपुराण और महाभारत का सन्दर्भ लेते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को आठवीं–नवीं शताब्दी से आगे की तिथियों में विचार नहीं कर सकते।

आलोच्य ग्रन्थ में सौवीर[423] देश का परिगणन पूर्व में किया गया है और दक्षिण–पश्चिम में भी किया गया है। सौवीर का उल्लेख बौधायन धर्मसूत्र[424], अष्टाध्यायी[425], पालिग्रन्थ[426], वाल्मीकिरामायण[427], महाभारत[428], पुराण[429], हेमकोश व्याकरण–ग्रन्थों एवं अल्बरूनी के विवरणों में प्राप्त होता है[430] और ये सभी उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ के वर्णन के विपरीत सौवीर को पश्चिम में बताते हैं।[431] बिमला चरण लॉ के अनुसार 'सोवीर' देश बाइबिल का 'सोफिर' (Sophir) और ओफिर (Ophir) का समानार्थक है।[432] बेसनगर से प्राप्त लेख यह स्पष्ट करता है कि यवन डेमेट्रिओस (Demetrios) के अधीन सिंध का निचला क्षेत्र अर्थात् सौवीर का क्षेत्र था।[433] दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्याह्न में यह क्षेत्र शकक्षत्रपों द्वारा शासित था[434] का कालान्तर में यहाँ कुषाणों, गुप्तों एवं वल्लभी के मैत्रकों (Maitrakas) का शासन

---

421. महाभारत, सभापर्व 31. 69

422. Williams, M.M., "A Sanskrit-English Dictionary", p. 228.

423. यो. महा. 3.36.24. तथा–
अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्यसुराष्ट्रकाः।
सिन्धुसौवीरशूद्राख्या आभीरा द्रविडास्तथा।। (वही. 3. 36. 40)

424. Baudhayan Dharmasutra, Benares, 1934, 1.1.2

425. पाणिनी, अष्टाध्यायी, 4.1.148

426. Sacred books of the East 36, p. 269

427. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, 41. 8–10, अयोध्या काण्ड, 10.38, 3.47.45 Vyas, S.N. India in the Ramayana Age, Delhi, 1988, p. 207.

428. महाभारत, 6.18. 13–14, 51.14, आदिपर्व 138. 20–22, 139. 29–23

429. विष्णुपुराण, 2.3 मार्कण्डेयपुराण, 57.36.30 अग्निपुराण अध्याय, 200 भागवतपुराण, स्कन्ध .10

430. Sachau, Edward C. op. cit, 1, pp. 300-302 Law, B.C., 'Ancient Indian Tirbes', 2, p. 21 Sircar, D.C. 'Studies in the Geography of Ancient and Medival India, p. 78.

431. Awasthi, A.B.L. 'Studies in Skandpuran', 1, p. 40 Dey, N.L., Op. cit. p. 183. Sircar, D.C.,Op. cit. p. 213, 160 Law, B.C. 'Geography of Early Buddhism', edn. 2, Delhi, 1989, p. 56. Canningham, A.A. 'Ancient Geography of India', pp. 497f. Indian Antiquary, 1911, Foreign elements in Hindu population by Bhandarkar, D.R. Bombay Gazzatier, p. 11. pt. 2. Law, B.C. Ancient Indian Tribes, 2, p. 270. Majumdar and Pusalker, op. cit. Vol. 2, p. 107. Indian Antiquary, 7, p. 259.

432. Oxford reference Dictionary, 1987, p. 589. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 611. p. 611 Indian Antiquary, 13, p. 228.

433. Rai Chaudhuri, H.C., 'Political History of Ancient India', 4th ed., Allahabad, p. 319. Smith, V.A. 'Early History of India', edn. 4, p. 255n. "Inscription on some Coins of Demetrios", No. 11, (C.190-160 B.C.) vide Sircar, D.C. 'Select Inscriptions, Vol. I.p.100. Mookerji, R.K. 'Ancient India', p. 203.

434. Junagadh Rock Inscription of Rudradaman I, Verse - II, (Saka Era. 72 150 A.D.) No. 67.

हुआ।[435] पूर्व मध्ययुग में सौवीरों द्वारा बोली जाने वाली भाषा में 'उ' की अधिकता थी।[436]

अब स्पष्ट है कि सौवीरों के विषय में अतिप्राचीन काल से ही ज्ञान प्राप्त होता है तथा जिन सौवीरों का उल्लेख पश्चिम में किया गया है, उनकी राजनैतिक स्थिति का समापन मैत्रकों के काल तक अर्थात् छठी शताब्दी ई. तक हो गया था। यद्यपि उनके सन्दर्भ परवर्ती साहित्य में भी प्राप्त होते हैं तथापि यह आश्चर्य का विषय है कि जहाँ सौवीर से सम्बन्धित सभी विवरण इसकी स्थिति पश्चिम में बताते हैं, वहाँ योगवासिष्ठ महारामायणकार एक स्थल पर इनकी गणना पूर्वी देशों में तथा दूसरे स्थल पर पश्चिम–दक्षिण में करता है। इसीलिए जब तक तत्सम्बन्धी तथ्यों का ऐतिहासिक निराकरण न हो, तब तक उक्त सन्दर्भ के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कुछ भी कहना उचित नहीं होगा। फिर भी यदि यह मान लिया जाय कि ग्रन्थ में सौवीरों को पूर्व में भी बताए जाने का अर्थ यह हो सकता है कि वे अन्य जनजातियों की भाँति अपना मूल स्थान छोड़कर पूर्व में भी जा बसे, तो इस घटना का अनुमानतः घटित होना मैत्रकों अर्थात् छठी शताब्दी ई. के पश्चात् ही सम्भव हुआ होगा और इस परिकल्पना को स्थान देने पर आलोच्यग्रन्थ के रचनाकाल को छठी शताब्दी के बाद कभी रखा जा सकता है, परन्तु जब तक तत्सम्बन्धी कोई तथ्य प्राप्त न हो, अनुसंधानात्मक विषय में सौवीर के सन्दर्भ के आधार पर विचार सम्प्रेषित नहीं किये जा सकते।

दक्षिण दिशा में स्थित विविध देश

विन्ध्य, कुसुमापीड, महेन्द्र दर्दुर, मलय, सूर्यवान्, राज्यसमृद्ध, अवन्ति, शाम्बवती, दशपुर, चक्रार, इषिका, आतुर, कच्छप, वनवास, उपगिरि और भद्रगिरि, नागर, दण्डक, नृराष्ट्र, साह, शैव, ऋष्यमूक, कर्कोट, वनबिम्बिल, पम्पानिवासी, कैरक, कर्कवीर, स्वेरिक, यासिक, धर्मपत्तन, पञ्जिक, काशिक, तृष्णखल्लूल, याद, ताम्रपर्णक, गोनर्द, कनक, दीनपत्तन, ताम्रीक, दम्भराकीर्ण, सहकार, ऐणक, वैतुण्ड, तुम्बवनला, जिन, द्वीपकर्णिका, कर्णिकाभा, शिवि, कोंकण, चित्रकुटक, कर्णाट, मंट, वटक, महाकटकी, आन्ध्र, कोलागिरि, आवन्तिक, विचेरिक, चण्डयत्त, देवनक, क्रौञ्चवाह, शिलाक्षारोद, भोनन्द, मर्दन, मलय, चित्रकूट के शिखर तथा लंका के निवासी रक्षोगण[437] आदि नामों का उल्लेख ग्रन्थकार

---

435. गोयल, श्रीराम, 'प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह', पृ. 341

436. Majumdar and Pusalker, op. cit. Vol. 4, p. 213.

437. अथ लीलापतेरस्य दक्षिणस्यामिमे नृपाः।
विन्ध्योऽथ कुसुमापीड महेन्द्रो दर्दुरस्तथा।।
मलयः सूर्यवांश्चैव गणा राज्यसमृद्धकाः।
अवन्तीरिति विख्यातास्तथा शाम्बवतीति च।।
दशपूरकथाचक्रारेषिकातुरकच्छपाः।
वनवासोपगिरयस्ते भद्रगिरयस्तथा।।
नागरा दण्डकाश्चैव गणराष्ट्रनृराष्ट्रकाः।
साहा शैवार्ष्यमूकाश्च कार्कोटा वनबिम्बिलाः।।
पम्पानिवासिनश्चैव कैरकाः कर्कवीरकाः।
स्वेरिका यासिकाश्चैव धम्रपत्तनपञ्जिकाः।।
काशिकास्तृष्णखल्लूला यादस्ते ताम्रपर्णकाः।
गोनर्दाः कनकाश्चैव दीनपत्तननामकाः।।
ताम्रीका दम्भराकीर्णाः सहकारैणकास्तथा।
वैतुण्डकास्तुम्बवनालाजिनद्वीपकर्णिकाः।।
कर्णिकाभाश्च शिवायः कोंकणाश्चित्रकूटकाः।
कर्णाटमण्टवटका महाकटकिकास्तथा।।
आन्ध्राश्च कोलगिरयश्चावन्तिविचेरिका।
चण्डायत्ता देवनकाः कौञ्चवाहास्तथैव च।।
शिलाक्षारोदभोनन्दमर्दना मलयाभिधाः।
ते चित्रकूटशिखरा लंका–रक्षोगणः स्मृताः।।
(यो. महा. 3.36, 30–39)

दक्षिण दिशा के देशों की सूची में करता है। आलोच्य ग्रन्थ के उपर्युक्त विवरण में बहुत से पर्वतों का भी उल्लेख आया है, जिनके विषय में यहाँ विचाराभिव्यक्ति नहीं की गयी है, प्रत्युत इन पर आगे पृथग् रूप से प्रकाश डाला जायेगा। यहाँ केवल देशों के सन्दर्भ में ही योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

आलोच्य ग्रन्थ में उत्तर और दक्षिण के देशों में अवन्ति का उल्लेख मिलता है।[438] आधुनिक भारत का मालवा प्रान्त प्राचीनकाल में अवन्ति के नाम से विख्यात था। इसका उत्तर अवन्ति तथा दक्षिण अवन्ति नाम से दो भागों में विभाजन था। इसकी क्रमशः उज्जयिनी[439] तथा माहिष्मती नामक दो राजधानियां थी। यह सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनैतिक केन्द्र था, भगवान् बुद्ध के समय में यहाँ का शासक चंडप्रद्योत था। चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व में यह क्षेत्र मगध राज्य का एक अंग बन चुका था, तदनन्तर गुप्तकाल के उदय के पूर्व यहाँ आभीरों आदि का राज्य था। चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रावृत्त से ज्ञात होता है कि अवन्ती या उज्जयिनी का राज्य उस समय (615–630ई.) मालवा राज्य से अलग था और यहाँ एक स्वतंत्र राजा का शासन था।[449] 9वीं तथा 10वीं शतियों में उज्जयिनी में परमार राजाओं का शासन रहा। तत्पश्चात् उन्होंने धारानगरी में अपनी राजधानी बनायी। मध्यकाल में इस नगरी को मुख्यतः उज्जैन ही कहा जाता था और इसका मालवा के सूबे के एक मुख्य स्थान के रूप में वर्णन मिलता है। जैन–ग्रन्थ विविध तीर्थ कल्प में मालवा–प्रदेश का ही नाम अवंति या अवंती है। विभिन्न मन्दिरों तथा खण्डहरों के पुरावशेष प्राचीन अवन्ती की गाथा दोहराते हैं। बिंदुसार और अशोक के समय अवंती साम्राज्य का प्रधान मध्यवर्ती प्रान्त था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी में मगध का प्रांतीय शासक रहता था। उसी जनपद में विदिशा में शुंगों की भी राजधानी थी, जहाँ सेनापति पुष्यमित्र शुंग का पुत्र राजा अग्निमित्र राज्य करता था। जब मालव सम्भवतः सिकंदर और चंद्रगुप्त की चोटो से रावी के तट से उखड़कर जयपुर की राह पर दक्षिण की और चले थे, तब अन्त में अनुमानतः शकों को हराकर अवंती में ही बस गये थे और उन्हीं के नाम से बाद में अवंती का नाम मालवा पड़ा।[441] रीज डेविड्स के अनुसार लगभग सातवीं–आठवीं शताब्दी में अवन्ति मालवा के नाम से विख्यात हो गया था।[442]

इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ में अवन्ती की सही भौगोलिक स्थिति बताते हुए उसे एक अलग एवं स्वायत्त रूप में प्रदर्शित करने का अर्थ योगवासिष्ठ–महारामायण के रचनाकाल को सातवीं–आठवीं शताब्दी ईसवी के आस–पास स्वीकार्य विचार प्रस्तुत करने हेतु एक आयाम प्रदान करता है, क्योंकि इन शतियों के पश्चात् अवन्ती राज्य की स्वायत्तता मालव में समाहित हो गई थी।

इसी क्रम में आलोच्य ग्रन्थ शाम्बवती[443] का भी उल्लेख करता है। इस नाम के किसी राज्य, नगर अथवा ग्राम के विषय में किसी भी अन्य स्रोत से कोई संकेत प्राप्त नहीं हैं, परन्तु राजतरंगिणी में नौ सौ चौंतीस–पैंतीस ई. के राजा पार्थकी पत्नी के रूप में शाम्बवती का उल्लेख तो प्राप्त होता है, जिसने वितस्ता के निकट सम्बोर्ण (Samborana) में एक शिविलंग की स्थापना कराई थी।[444] परन्तु उक्त नाम की कोई नगरी अथवा राज्य था, यह हमारे ज्ञान के परे

---

438. यो. महा. 3.36.31, 58, 37.8.

439. '...विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।''
(बाणभट्ट, कादम्बरी, भाग–1, सम्पादित द्वारा वैद्य, पी.एल., पूणे, 1935, पृ. 52.)

440. Watters, Thomas, "On Yuan-Chwang's Travels in India", II, p. 251.

441. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 45–47 उपाध्याय, श्री ओंकारनाथ, लेख 'अवन्ती', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड–1, पृ. 370–271

442. Rhys- Davids, T.W. 'Buddhist India', Delhi, 1970 p. 28

443. यो. महा. 3.36.31

444. Stein, M.A., op. cit., Book 5, Line 296 and note.

हैं, अतः योगवासिष्ठ महारामायण का यह संदर्भ भी उसके रचनाकाल के निर्धारण में कोई सहायक तथ्य प्रस्तुत नहीं करता है।

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के देशों की सूची में दशपुर का भी उल्लेख प्राप्त होता है[445] तथा बाणों से मारे जाने पर उनके योजन तक भागकर जल में निमज्जित होने का भी उल्लेख उसी में प्राप्त होता है।[446] शब्दकल्पद्रुम तथा वाचस्पत्यम् नामक कोष इसे मालव देश का एक खण्ड स्वीकार करते हैं।[447] दशपुर का वर्णन महाभारत[448], पुराण[449], कालिदास के ग्रन्थ[450], जैन ग्रन्थ[451] तथा कादम्बरी[452] एवं बृहत्संहिता[453] में प्राप्त होता है। यह अवन्ती का प्राचीन नगर था, जो मध्य प्रदेश के ग्वालियर क्षेत्र में उस नाम के नगर से कुछ दूर उत्तर–पश्चिम में स्थित आधुनिक मंदसोर है।[454] पार्जिटर महोदय का यह मत है कि रंतिदेव, जो अमित सम्पत्ति का स्वामी थी और जिसने याज्ञिक अनुष्ठान किये थे, वह उस दशपुर देश का स्वामी थी, जो चम्बल नदी के निचले भाग तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित था तथा इसी क्षत्रिय रंतिदेव की सन्तानें परवर्ती काल में ब्राह्मण कहलायीं।[455] दशपुर का दूसरा नाम देवपोलिस (Deo-Pollis) मिलता है, जो शब्द यद्यपि वहाँ की परम्परागत जन्मस्थली के कोश में प्राप्त होता है तथापि किसी भी प्रकाशित ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।[456] ग्रॉज (Grawse) महोदय के अनुसार मंदसौर नाम माड (Mad) और दशपुर दो शब्दों को मिलाकार बना है, जिसमें मांड एक गाँव का नाम है तथा दशपुर एक देश का[457] भारतीय इतिहास के प्राचीन युग में उत्तर भारत में जब भी साम्राज्य स्थापित हुए, अवन्ति प्रायःउनकां एक प्रांत रहा। दशपुर उसी में पड़ता था और कभी–कभी वहाँ भी शासन की एक इकाई होती थी। कालान्तर में इसे शकों द्वारा भी पराभूत होना पड़ा।[458] परन्तु मुद्राओं तथा नासिक गुहालेख के एक उद्धरण के आधार पर श्रीराम गोयल महोदय इसको साततवाहन शासक गोमती पुत्र शातकर्णी के अधीन बताते हैं।[459] कुमारगुप्त प्रथम तथा द्वितीय और बंधुवर्मा का मंदसोर में 436 ई. और 472 ई. का वत्सभटि्ट–विचरित लेख मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि (435 ई.) जब बंधुवर्मा कुमार प्रथम का दशपुर में प्रतिनिधि था वहां के तंतुवायों ने एक सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया तथा उसके व्यय का प्रबन्ध किया। 36 वर्षों बाद (472 ई.) ही उस मन्दिर के पुनरुद्वार की आवश्यकता हुई और वह कुमारगुप्त द्वितीय के समय सम्पन्न हुआ। बंधुवर्मा सम्भवतः इस सम्पूर्ण अवधि के बीच गुप्त सम्राटों का दशपुर में क्षेत्रीय शासक रहा।[460] राधा गोविन्द बसाक के अनुसार

---

445. यो. महा. 3.36. 32.
446. वही 3. 37. 10
447. शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय खण्ड, पृ. 691 वाचस्पत्यम्, पञ्चम भाग, पृ. 3479
448. महाभारतत द्रोणपर्व 67, शांतिपर्व 20
449. मार्कण्डेयपुराण 58.22, पृ. 363 टिप्पणी–2
450. कालिदास, मेघदूत 1. 46–48
451. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 281
452. Ridding, C.M., English translation Banbhatta's Kadambari Edited by Parab, K.P. 1896, Bombay, p. 19
453. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, अध्याय–14
454. Williams, M.M., 'A Sanskrit-English Dictionary, p. 472. Awasthi, A.B.L. 'Studies in Skanda Purana',pt. 1, p.170 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 427 Dey, N.L., op. cit., Part 2, p. 245.
455. Pargiter, F.E. 'Ancient Indian Indian Historical Tradition', Delhi, 1962, pp. 249 and 274.
456. Williams, M.M., Op. cit. p. 472.
457. Growse, F.S. Indian Antiquary 25, p. 195. Gwaliyor State Gazzeteer 1, p. 265ff.
458. Archaeological Survey Report of Western India, p. 9 and plate 52, No. 5.
459. गोयल, श्रीराम, पूर्वोक्त, पृ. 447
460. मंदसौर प्रस्तर अभिलेख, पंक्ति 3.16

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का नरवर्मन् नामक शासक अधीनस्थ के रूप में मालव (संवत् 461 में) शासन कर रहा था और उसकी राजधानी दशपुर नामक कस्बा थी, परन्तु सम्भवतः वर्मन् परिवार को पराजित करने के पश्चात् समुद्रगुप्त ने ही नरवर्मन् को अपना सामन्त बनाकर दशपुर का क्षेत्र उसके अधीन रखा था।[461] थोड़े दिनों बाद हूणों ने उसके पार्श्ववर्ती सभी प्रदेशों को रौंद डाला और गुप्तों का शासन वहाँ से समाप्त हो गया। ग्वालियर में मिलने वाले मिहिरकुल के सिक्कों से यह प्रतीत होता है कि दशपुर का प्रदेश हूणों के अधिकार में चला गया। किन्तु उनकी सफलता स्थायी न थी और यशोधर्मन् विष्णुवर्धन् औलिकरवंशीय एक राजा ने मिहिरकुल को परास्त किया। मंदसोर से वि. सं. 589 (532 ई.) का यशोधर्मा का वासुल–रचित एक अभिलेख मिला है, जिसमें उसे जनेन्द्र, नराधिपति, सम्राट राजाधिराज, परमेश्वर उपाधियाँ दी गई हैं। उसका यह भी दावा है कि जिन प्रदेशों को गुप्त सम्राट भी नहीं भोग सके, उन सबको उसने जीता और नीचे मिहिरकुल को विवश होकर पुष्पमालाओं से युक्त अपने सिर को उसके दोनों पैरों पर रखकर उसकी पूजा करनी पड़ी। यशोधर्मा मध्य भारत से होकर उत्तर प्रदेश पहुंचा और पंजाब में मिहिरकुल की शक्ति को नष्ट करते हुए उसने सारे गुप्त साम्राज्य को रौंद डाला। पूर्व में लोहित्य (उत्तरी–पूर्वी भारतीय सीमा की लोहित नदी। से प्रारम्भ कर हिमालय की चोटियों को छूते पश्चिम पयोधि तक तथा दक्षिण–पूर्व में महेन्द्र पर्वत तक के सारे क्षेत्र को स्वायत्त करने का उसने दावा किया है। दशपुर के यशोधर्मा ने अपनी राजधानी बनाया।[462] वर्धन्नामांत दशपुर के कुछ अन्य राजाओं की भी सूचनाएं प्राप्त होती हैं। मंदसोर से ही अभी कुछ समय पूर्व प्राप्त होने वाले एक अभिलेख से आदित्यवर्मन् तथा वराहमिहिर की बृहत्संहिता से अवन्ति के महाराजाधिराज द्रव्यवर्धन की जानकारी होती है।[463] ऐसा प्रतीत होता है कि शक सातवाहन काल में दशपुर कभी शकों के और कभी सातवाहनों के अधीन रहा।[464] चाहमानों तथा महेन्द्र पाल द्वितीय गुर्जर के काल तक दशपुर अपने प्राचीन नाम से विख्यात था[465] यद्यपि उसकी स्वायत्तता हूण और यशोधर्मन् गुप्त के काल तक आते–आते पूर्णतया समाप्तप्राय हो गई थी।[466]

इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ में दशपुरों की जिस पराजय का वर्णन मिलता है, वह सम्भवतः हूणों द्वारा उनकी पराजय का प्रतिबिम्बन मात्र है। इस कल्पना को यदि एक आधार माना जाय तो आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को छठी शताब्दी के पश्चात् कभी विचार किया जा सकता है।

सम्भवतः आलोच्य ग्रन्थ में उल्लिखित दक्षिण का वनवास देश[467], महाभारत[468], वायुपुराण[469], एवं बृहत्संहिता[470]

---

461. Basak, Radha Govind, "Indian Antiquary, June 1919, pp. 98-99 Epigraphia Indica, 12, No. 35, pp. 315ff.

462. Fleet, J.FF., Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. 3, Mandsor Stone Pillar Inscription of Yashodharman, No. 54. Epigraphia Indica, Shastri, Haraprasad, "Mandasor Inscription of the time of Narverman, The Malava Year 461", No. 35, Vol. 12, pp. 315 ff. Mandsorre Inscription of the Time of Narverman, Malva Year 46, Ibid.

463. पाठक, विशुद्धनंद, लेख ''दशपुर'', हिन्दी विश्वकोश, भाग–6, पृ. 18.

464. Mukerji, R.K., "Ancient India", Calcutta, 1956, pp. 201-202, 223. Smith, V.A., The Oxford History of India", pp. 37, 14, 140, 147-148, 157-162, 167, 266.

465. Tripathi, R.S., "History of Kanauj to the Moslem Conquest, 1959, Varanasi, p. 270. Epigraphia India, Vol. 14, pp. 176-186. Sircar, D.C., "Select Inscriptions", Vol. II, Pratapgarh Stone Inscription of Mahendrapal, II, Vikram Year 1003 or 946 A.D. Verse 9 and 12. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, pp. 108.

466. Fleet, J.F., "Corpus Inscriptionum Indicarum", Vol. III, (Yashodharman's Stone Pillar Inscription at Mandsor, No 53, pt. 22. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 37-45, 61n. 1, 65.

467. वा. महा. 3 36 32

468. महाभारत, सभापर्व, 31 69, भीष्मपर्व 9 366

469. वायुपुराण 45 125

470. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14–12

आदि में वर्णित वनवासी हैं, जिसका समीकरण मैसूर के उत्तरी भाग (उत्तर कनारा अर्थात् वर्धा नदी के समीपवर्ती भाग) शिकारपुर और सोराब (Sorab) तालुक, जो शिमोगा (Shimoga) जिले के थे[471] तथा जिनकी पहचान उत्तर कनारा और कारबार जिला, जो तुंगभद्रा के मैदान थे, उन्हीं क्षेत्रों से की गई है[472], जहाँ प्राचीनकाल में मधु–कैटभ का राज्य था और जहाँ पर सम्राट अशोक मौर्य ने 245 ईसा पूर्व में रक्षिता को दूत बनाकर भेजा था तथा जो छठी शताब्दी ई. कदम्ब वंशीय राजाओं का प्रमुख केन्द्र रहा।[473] वीरपुरुषदत्त ने वनवास के राजा छुटु शातकर्णी (Chutu Satakarni) से अपनी पुत्री का विवाह किया था।[474] वीरपुरुषदत्त के नागार्जुनी कोंड अभिलेख, जो तृतीय शताब्दी के द्वितीय चरण का है तथा जिसकी भाषा प्राकृत और लिपि दक्षिण ब्राह्मी है, उसमें बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ उसके द्वारा किए गये कार्यों में अन्य विभिन्न देशों के नामोल्लेख के साथ वनवासी का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है।[475] बृहत्संहिता के आधार पर शूलिकों और शौलिकों का सम्बन्ध अपरान्त (उत्तरी कोंकण), वनवासी (कनारा) तथा विदर्भ (बरार) से बताया जाता है।[476] वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के समय तक कुन्तल, जिन्हें कदम्बों का पर्याय भी माना गया है, का राज्य वनवासी के क्षेत्र में फैला हुआ था तथा वे शक्तिशाली थे, क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय ने अपनी पुत्री का विवाह कुन्तल नरेश के साथ किया था।[477] अजंता अभिलेख के अनुसार चौथी शताब्दी के मध्य में पृथ्वीसेन, जो कि विन्ध्यशक्ति द्वितीय का भाई था, उसने वनवासी के कदम्ब शासक को पराजित किया। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है लगभग छठी शताब्दी ई. के मध्य में कदम्ब वंश के बहुत से परिवार एक साथ राज्य कर रहे थे, परन्तु उनकी राजधानी अथवा मुख्य शासन का केन्द्र वनवासी था। बादामी के चालुक्यों के कीर्तिवर्मन् प्रथम ने वनवासी के क्षेत्र को विजित एवं विनष्ट किया, जिसकी विजय की प्रतिध्वनि उत्तर चालुक्यों के लेखों में भी गुंजित होती है।[479] तदनन्तर पुलकेशिन द्वितीय ने सातवीं शताब्दी में वनवासियों की शक्ति का क्षय किया।[480] इस प्रकार जिन कदम्बों का उन्मूलन पूर्व में बताया गया है, उनका आविर्भाव कुन्तलों से हुआ तथा उनके प्रथम शासक वेदज्ञ मयूर–शर्मन् ने 350 से 370 ई. तक वनवास देश को अपनी राजधानी बनाकर राज्य किया।[481] काकुत्स्थ–वर्मन् के आगे आने वाली संततियों में मृगेश–वर्मन् (लगभग 475–490 ई.) ने पश्चिमी गंगों को एवं पल्लवों को पराजित कर वनवासी की कीर्ति को अभिवर्चित किया।[482] 655 ईसवी में कदम्बों की अपनी स्वतंत्रता की पुनः स्थापन में विक्रमादित्य प्रथम चालुक्यों का सिंहासनारोहण बाधक हुआ, परन्तु दसवीं शताब्दी

---

471. Majumdar and Pusalker, Op. cit. Vol. 5, p. 162.

472. Pandey, S.N. 'Geographical Horizon of the Mahabharat', p. 134. Epigraphica Indica' Vol. 20, Vol. 16, pp. 353ff.

473. Dey, N.L., op. cit., p. 21. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 84. Sircar, D.C. 'Select Inscriptions, Vol. 1, p. 235, n.1.

474. Ibid, p. 225.

475. '------------रंञो मा (ढ) रि–पु (त) (स) (संवछरं) चोदं 10 (+) 4 हेमंतपखं छठं दिवसं तेरं 10 (+) 3 (1) (अ) (चं) त–(रा) जाचरीयानं कस्मीर–गंधार–चीन–चिलात–तोसलि–अतरंत–वंग–वनवासी–(यवन)–(दमिल)–(प)लून–तंवपंणिदोप–पसदकानं थेरियनं तंबपंणकानं सुपरिगहे' वीरपुरुषदत्त का नागार्जुनी कोंड अभिलेख, सं. 101, पंक्ति–1,
Law, B.C. 'Historical Geography of Ancient India', p. 199

486. वराहमिहिर, बृहत्संहिता 9. 15, 14.8 रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 540 टिप्पणी –4.

477. Sircar, D.C. 'Successors of the Satvahanas in the Lower Deccan, Calcutta, 1939, pp. 215-15. Indian Historical Quarterly, 20. 309, 23.65, 320.

478. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 185

479. Ibid, p. 233

480. Ibid, p.

481. Ibid, pp. 270-272.

482. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 272.

ईसवी में उनकी शक्ति की प्रतिष्ठा हुई।[483] लगभग द्वितीय शताब्दी में शैव आलूपों ने भी इस क्षेत्र पर राज्य किया और छह सौ पचास ई. में चालुक्यों के उपराज के रूप में इन्हीं का एक गणसागर नामक व्यक्ति वनवास में शासन कर रहा था।[484] नौ सौ उन्तालिस ईसवी में राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय ने गंगवंशीय राजा को बनवासी का उपराज बनाया।[485] नौ सौ तिरान्वे ईसवी के आस–पास सत्याश्रय चालुक्य को पराजित कर मुञ्ज परमार ने उसकी शक्ति को वनवास के क्षेत्र में ही सीमित कर दिया।[486] लगभग नौ सौ इकतालीस ईसवी के कन्नड़ साहित्य में बनवासी की स्मृति 'पम्पा भारत' नामक जैन कन्नड़ साहित्य, जिसे पम्पा द्वारा लिखा गया था, उसके उल्लेखों में चित्रित होती है, जो इस बात को स्पष्ट करती है कि उस समय तक वनवास की यश–पताका केवल स्मृति मात्र ही रह गई थी।[487] कुंदमार ने वनवासी के उपराज के रूप में विक्रमादित्य पञ्चम के अधीनस्थ लगभग 1008 से 1014 ई. तक शासन किया।[488] लगभग 1043 से 1068 ई. में चालुक्य प्रमुख चामुण्डराज बनवास में शासन कर रहा था और उसे चोलों के हाथ पराजय का मुंह देखना पड़ा था।[489] सोमेश्वर प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य षष्ट ने वनवासी पर अपना अधिकार बनाये रखा।[490] लगभग बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होयसल (Hoysala) वंशीय विष्णुवर्धन ने वनवास को अपने अधिकार क्षेत्र में रखा।[491] सोमेश्वर तृतीय के सामन्त के रूप में कदम्बवंशीय तैल (Taill) तृतीय ने बनवास क्षेत्र पर शासन किया।[492] लगभग 1156 से 1181 ई. में कलचुरि बीज्जल (Bijjala) ने बनवास के क्षेत्र पर तैल तृतीय के पश्चात् उपराज के रूप में शासन किया।[493] बीज्जल के पुत्र सोमेश्वर के मंत्री ने उसके काल में वनवारी क्षेत्र पर शासन किया।[494] बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजेन्द्र चोल द्वितीय ने बनवासी होते हुए दक्षिण पर विजय की थी और तब से लगभग ग्यारह सौ अस्सी तक वनवास देश विभिन्न सामन्तों के अधीन रहा।[495] लगभग ग्यारह सौ इक्यासी ईसवी तक वनवास का क्षेत्र सोमेश्वर चतुर्थ के कदम्ब वंशीय उपराज के अधीनस्थ रहा।[496] लगभग तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में देवगिरि के यादववंशीय सिंघन ने सम्पूर्ण वनवासी क्षेत्र को विजित कर लिया था।[497] तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह क्षेत्र यादववंशीय कृष्ण के राज्य का अंग रहा। होयसलवंशीय बल्लाल तृतीय ने चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यह क्षेत्र यादव रामचन्द्र से छीन लिया था।[498] लगभग 1024 ईसवी के आस–पास परम प्रतापी राजेन्द्र चोल द्वारा यह क्षेत्र अधिकृत कर लिया गया, परन्तु 1193 ईसवी में होयसलवंशीय वीर बल्लाल द्वितीय ने अपनी अधिसत्ता स्थापित कर यहाँ पर किसी भी वंश के राज्य

483. Ibid, p. 273.
484. Ibid, p. 274
485. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 14
486. Ibid, p. 92
487. Ibid, p. 225
488 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 166, 167.
489. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 168, 170
490. Ibid, pp. 172, 174.
491. Ibid, pp. 175, 177.
492. Ibid, p. 178.
493. Ibid, pp. 179, 180.
494. Ibid, p. 181.
495. Ibid, pp. 181, 182.
496. Ibid, pp. 182, 183.
497. Ibid, pp. 189, 191.
498. Ibid, p. 195.

का अस्तित्व नहीं रहने दिया।[499]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बनवास का राज्य लगभग सातवीं शताब्दी में अपने अस्तित्व को इस प्रकार इतिहास के पृष्ठों से समाप्तप्राय कर गया कि परवर्ती काल में वहाँ पर किसी न किसी राजवंश का सामन्त राज्य करता रहा और अन्ततोगत्वा चौदहवीं शताब्दी के आते–आते सामन्तप्रथा का भी अन्त हो गया। अब यदि प्रश्नगत ग्रन्थ में वनवास देश को किसी युद्धक संघ में स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित होने के उल्लेख हैं तो ऐसा सन्दर्भ आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को उक्त सन्दर्भ के आधार पर कभी भी छठी शताब्दी के पूर्व विचार करने के लिए एक तर्कसंगत आधार प्रदान करता है क्योंकि इसी शताब्दी के पश्चात् वनवासी के क्षेत्र की स्वायत्तता समाप्त होकर सामन्तशाही में परिवर्तित हो गई थी।

आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित दक्षिण के देशों की सूची के नागर[500] के सन्दर्भ में यदि दिनेश चन्द्र सरकार के सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री के वर्णन के आधार पर नगरहार अथवा जलालाबाद क्षेत्र के समीकरण को एक आधार के रूप में लिया जाय[501] तो हम यह कह सकते हैं कि योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकार या तो नागर देश के दिशा–निर्देशन में भ्रमित है अथवा वह किसी अन्य दक्षिणी नागर देश का उल्लेख करता है, जिसका समीकरण हम प्रस्तुत नहीं कर सकते, परन्तु यदि इस आधार पर अनुसन्धानात्मक विषय में कुछ कहने का प्रयास किया जाय तो इतना ही कहा जा सकता है कि तत्सन्दर्भित आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में निश्चित ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव के कारण कोई विचार प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं।

आलोच्यग्रन्थ में वर्णित दक्षिण के देशों में दण्डक का भी उल्लेख मिलता है[502], जिसके विषय में वाल्मीकि–रामायण,[503] महाभारत,[504] महावस्तु,[505] पुराण,[506] रघुवंश,[507] उत्तररामचरित,[508] अर्थशास्त्र,[509] सरभंगजातक,[510] मिलिन्दपञ्ओ,[511] कादम्बरी[512] तथा अल्बरूनी के विवरणों[513] में उल्लेख पार्जिटर के अनुसार यह स्पष्ट करता है कि दण्डकारण्य में रहने वाले लोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तव में दण्डक नाम उस अरण्य के नाम पर पड़ा, जहाँ राम

---

499. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 237, 231.

500. यो. महा. 3. 36. 33

501. Sircar D.C. 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 293 Dey N.L. 'Op. Cit; pp. 134, 135.

502. यो. महा. 3. 36. 33.

503. वाल्मीकि रामायण, आरण्यकाण्ड, 1.1. 2. 13–31
उत्तरकाण्ड 92.18, अयोध्याकाण्ड 9.12, आदिकाण्ड 1.46

504. महाभारत सभापर्व 31. 66, वनपर्व 85.41 तथा अध्याय–277 एवं 279

505. Mahavastu, Edited by Senart, E, Paris, 1882-97, p. 363,

506. भागवतपुराण, 9.6.4, 9.11.19, 10. 79. 20. ब्रह्माण्डपुराण 3. 63, 9, 3.5.36, 2. 16. 58, 3. 13. 107 तथा अध्याय–27 वायुपुराण 88.9, 45. 126 विष्णुपुराण 4.2.12 मार्कण्डेयपुराण 57.47 हरिवंश पुराण 10. 637–639 पद्मपुराण, 21

507. कालिदास, रघुवंश 12.9, 15. 14.25.

508. भवभूति, उत्तररामचरितम् 1.30, 2.14 सम्पादित द्वारा रे, एस. कलकत्ता, 1934, पृ. 106, 121.

509. Kautilya, Arthasastra, Edited by Shamashastri, R., Mysore, 1919, p. 11.

510. Sarbhang Jatak, No. 522, Edited by Fausboll, London, 1877-96

511. Rhys Davids, T.W., Millindpanha, Landon, 1890-94, p. 130

512. बाणभट्ट कादम्बरी, पृ. 20. 24.

513. Sachau, Edward C., 'Alberuni's India', Chapter 29, pp. 300, 301.

ने वनवास का समय व्यतीत किया था तथा सूर्पणखा के कारण खर–दूषण नामक राक्षसों का वध किया था, जिसमें बुन्देलखण्ड से लेकर गोदावरी तक सम्पूर्ण मध्य भारत का क्षेत्र आता था, अथवा श्याम नारायण पाण्डेय के अनुसार महाराष्ट्र के नासकि के पूर्व से औरंगाबाद तक का क्षेत्र सम्मिलित था।[514] किन्तु जब इस वन्य क्षेत्र पर आर्यों की बस्ती बस गई तब इसकी सीमाएं गोदावरी के स्रोत से आस–पास के क्षेत्र और ताप्ती नदी के निचले भाग में सिमटकर रह गई एवं यह दण्डक देश के नाम से जाना जाने लगा और इसीलिए हरिवंश पुराण में यहाँ के एक पौराणिक शासक दण्डक के नाम पर इसकी उद्भूति बतायी गई है।[515] तथा भोजवंश जिसकी विदर्भों के साथ घनिष्ठता के कारण यमुना के यादवों के अतिरिक्त विदर्भों से भी कभी–कभी समीकृत किया जाता है तथा जिनका राज्य दक्षिण में ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर वाकाटक नरेश द्वितीय के समय तक उल्लिखित होता है, वे विदर्भ के साथ–साथ दक्षिण के इस दण्डक क्षेत्र पर भी राज्य करते थे, जिसकी पुष्टि कौटिल्य के अर्थशास्त की इस उक्ति से होती है कि दाण्डक्य नामक (या दण्डक में राज्य करने वाले) भोज राजा ब्राह्मण–कन्या पर कुदृष्टि डालने के फलस्वरूप अपने राज्य तथा बन्धु–बान्धवों सहित विनष्ट हो गया, से हो जाती है।[516] इसकी राजधानी कुम्भावती, मधुमन्त एवं गोवर्द्धन बतायी गई है[517], जिसका संस्थापक इक्ष्वाकु का तीसरा पुत्र दण्डक था और उसी ने इस दण्डकारण्य की स्थापना की।[518] जाजल्लदेव प्रथम कलचुरि (ग्यारह सौ चौदह ईसवी) ने दण्डकपुर अर्थात् यादवों के सियुणा–देश (Seuna-Desa) की सीमा पर स्थित क्षेत्र से उपहार प्राप्त किये अर्थात् उस क्षेत्र को अपना वशवर्ती बनाया[519] मुजफ्फर अली के अनुसार दण्डक वन्य क्षेत्र उड़ीसा की पर्वतमाला से गोदावरी के तटवर्ती क्षेत्र तक विस्तीर्ण था, परन्तु पुराणों में वर्णित देश अथवा जनपद सम्भवतः गोदावरी के वाम तटीय भाग पर स्थित इन्द्रावती घाटी के क्षेत्र में सिमट कर रहा गया था।[520]

उपर्युक्त वर्णन स्पष्ट करता है कि लगभग बारहवीं शताब्दी तक इस देश का उल्लेख स्वतन्त्र रूप में प्राप्त होता है। इतिहास में हैहयों से दण्डकों के पराजित होने के काल की जानकारी न होने से ग्रन्थ के रचनाकाल पर इस वर्णन के आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के देशों में कर्कोटा[522] के उल्लेख यदि मोनियर–मोनियर विलियम्स के विष्णुपुराण तथा बृहत्संहिता के आधार पर दिये नाग जाति तथा दक्षिण के देश से सम्बद्ध किया जाय[523] तो योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को छठी शताब्दी ईसवी में निर्धारित करने हेतु अथवा उससे कुछ परवर्ती काल में रखने हेतु विचार किया जा सकता है।

प्रश्नगत ग्रन्थ में पम्पा[524] के निवासियों का उल्लेख भी दक्षिण में किया गया है, परन्तु यह क्षेत्र

---

514. Pandey, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharat', p. 131.
515. Pargiter, F.E., 'Journal of Royal Asiatic Society', 1894, pp. 241, 242.
516. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, पूर्वोक्त, पृ. 11.
517. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 81–82.
518. Majumdar and Pusalker, op. cit.; Vol. 1, pp. 279, 294.
519. Majumdar and Pusalker, op. cit. Vol. 5, p. 65. Epigraphia Indica, Edited by Kielhorn, Vol. I, pp. 33, 35-36, Ratanpur Stone-Inscription, Verse 21-23.
520. Ali, S.M., 'The Geography of the Puranas', pp. 157, 168.
521. यो. महा. 3.37.13
522. वही, 3.36.33
523. Williams, M.M., 'A Sanskrit-English Dictionary', p. 256.
524. यो. महा. 3.36.34.

रामायण,[525] महाभारत,[526] पुराण,[527] रघुवंश[528] एवं उत्तररामचरित[529] में वर्णित ऋष्यमूक पर्वत से निकलने वाली तुंगभद्रा नदी की सहायक नदी का सन्दर्भित क्षेत्र है[530] अथवा इससे ग्रन्थकार का अर्थ मिर्जापुर के सन्निकट स्थित भविष्यपुराण में सन्दर्भित पम्पापुर के क्षेत्र के रहने वाले लोगों से है,[531] इस प्रकार पम्पा की स्थिति स्पष्ट न होने के कारण[532] इस उल्लेख के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण में वर्णित धर्मपत्तन[533] का समीकरण नंदूलाल डे महोदय उत्तर कोसल की राजधानी श्रावस्ती (गोण्डा–बहराइच) के सहेट–महेट तथा अन्यत्र स्वेल (Sewell) महोदय के आधार पर उड़ीसा के कालीकट क्षेत्र से करते हैं[534], परन्तु इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल पर इसलिए प्रकाश नहीं डाला जा सकता क्योंकि डे महोदय के उपर्युक्त दोनों ही विवरण इस का समीकरण आलोच्य ग्रन्थ के विपरीति करते हैं। फिर भी यदि उस समीकरण को, जिसका उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ में हुआ है, उसे योगवासिष्ठ महारामायणकार की भूल समझी जाय, तो भी ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में धर्मपत्तन के उल्लेख के आधार पर हम योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में कोई अवधारणा प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं।

आलोच्य ग्रन्थ के काशिका[535] का उल्लेख मत्स्यपुराण में प्राप्त होता है।[536] मत्स्यपुराण की तिथि अधिकांशतः छठी से दसवीं शताब्दी तक मानी गई है[537] और इस प्रकार काशिका के उल्लेख के आधार पर हम आलोच्यग्रन्थ के रचनाकाल को कभी भी छठी से दसवीं शताब्दी तक मान सकते हैं।

आलोच्य ग्रन्थ के दक्षिण के देशों में ताम्रपर्णका[538] को ताम्रपर्णी के निवासियों से सम्बद्ध करने पर स्पष्ट होता है कि वह सिंहलद्वीप अथवा लंका का पर्याय था, जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में "तंबपण्णि" मिलता है[534] परन्तु यदि इस सन्दर्भ को दक्षिण की ताम्रपर्णी नदी के तट पर रहने वाले लोगों से अथवा वहाँ के देश से समीकृत किया जाय, तो ताम्रपर्णी नदी के उल्लेख की प्राप्ति हमें महाभारत, पुराण, जातक कथाएं तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र, रघुवंशम् में होती है, जिनके आधार पर विजयेन्द्र कुमार माथुर ने इसे दक्षिण में स्थित बताया है[540] तथा जिसे पुरातात्त्विक आधारों पर गुप्तकाल के पाण्ड्य देश में बहने वाली चित्तर नदी से, जो कि 'मनार' में थी, समीकृत किया जाता

525. वाल्मीकिरामायण–किष्किन्धाकाण्ड, 1.6.58. 64–66.

526. Williams, M.M., op. cit., p. 585.

527. भागवतपुराण 7.14.31

528. कालिदास रघुवंशम्, 13–30.

529. Bhavabhuti, 'Uttararamcarita', act 1., Poona 1921.

530. Dey, N.L., op. cit., p. 41. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 518.

531. पूर्वोक्त, पृ. 519.

532. Dey, N.L., op.cit., pp. 144-145. Sircar, D.C. 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 308.

533. यो. महा. 3.36.34.

534. Dey, N.L., op. cit., p. 56.

535. यो. महा., 3.36.35

536. मत्स्य पुराण, 113.32

537. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 298.

538. यो. महा. 3.36.34.

539. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 394–395.

540. वही, पृ. 395.

है।[541] इसके आधार पर समीकरण को स्वीकार करते हुए विद्वानों के मत को उक्त सन्दर्भ में ग्रहण करना होगा, परन्तु सन्दर्भ की ऐतिहासिक अनिश्चितता के कारण आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित ताम्रपर्णिका के आधार पर उसके रचनाकाल की तिथि के विषय में कोई मन्तव्य प्रस्तुत किया जाना दुरूह होगा। सन्दर्भ की अनिश्चितता के कारण उक्त आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

आलोच्य ग्रन्थ में गोनर्द को दक्षिण के देशों में उपर्युक्त उल्लेखों की ही तरह परिगणित किया गया है।[542] पालिग्रन्थों में इसे "गोनदध" कहा गया है तथा पंजाब में स्थित माना गया है।[543] साथ ही इसे पतञ्जलि की जन्मस्थली माना जाता है[544], जिसकी स्थिति विदिशा के समीपवर्ती क्षेत्र में थी।[545] महाभाष्य, कालिदास के मालविकाग्निमित्रम्, ब्रह्माण्ड, मत्स्य, मार्कण्डेय आदि पुराणों के उल्लेखों से भी इसकी पुष्टि होती है।[546] पाणिनि तथा चन्द्रगोमिन नामक वैयाकरणों के आधार पर इसकी स्थिति मालवा में निर्धारित करने से सम्बन्धित तर्क दिनेश चन्द्र सरकार महोदय को अपरिहार्य इसलिए प्रतीत होते हैं, क्योंकि प्राचीन देशों की भौगोलिक स्थिति विशेष रूप से गोनर्द के सन्दर्भ में सही मूल्यांकित कर पाना कठिन है।[547] वराहमिहिर की बृहत्संहिता में भी गोनर्द को प्रश्नगत ग्रन्थ की ही भाँति परिगणित किया गया है।[548] मार्कण्डेय पुराण के अठ्ठावनवें काण्ड की पंक्ति तेइस के आधार पर पार्जीटर ने इसे दक्षिण के गोनर्द (Gonarddha) लोग पढ़ते हुए इसके समीकरण में सन्देह व्यक्त किया है।[549] यहाँ यह समझने की आवश्यकता है कि मार्कण्डेय पुराण का "गोनर्द्ध" क्या बृहत्संहिता तथा योगवासिष्ठ महारामायण का 'गोनर्द' ही है?, हमें इस विषय में कोई निराकरण प्राप्त नहीं हो सका है।

स्पष्ट है कि पुराणों का विस्तार गुप्तकाल में हो चुका था[550] तथा वराहमिहिर की तिथि छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में मानी जाती है।[551] इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण का तिथिक्रम कम से कम तीसरी शताब्दी एवं अधिक से अधिक दसवीं शताब्दी माना जाता है।[552] ऐसी दशा में उपर्युक्त आधारों पर यदि विषयगत क्षेत्र में विचार किया जाय तो गोनर्द के उल्लेख को कभी भी पाँचवीं शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक विचार में लिया जा सकता है, क्योंकि कालिदास से पूर्व उक्त ग्रन्थ के रचनाकाल को निर्धारित करने का कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं होता।[553]

---

541. Pargiter, F.E. Markandeya Purana', pp. 303-304 and n. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 600.
542. यो. महा. 3.36.35
543. Dey, N.L., op. cit., p. 71, No.1
544. शर्मा, राणाप्रसाद, 'पौराणिक कोश', पृ. 156
545. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 38.
546. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 300 Dey, N.L., op. cit., p. 71., No. 2 & 3. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, pp. 38n, 189n, and Chapter 19.
547. Ibid, Chapter, 19.
548. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.12, 13, 32.22
549. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 363.
550. Srivastava, B.N., 'Harsh and His Times', pp. 219-20.
551. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.3, pp. 291, 317, 318, 321, 322, 328, 423, 513n, 518, 561, 579, 590, 591, 595.
552. Ibid., p. 298.
553. Atreya, B.L., 'The Philosophy of Yogavasisth', 1936, Varanasi, pp. 26 f.

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के देशों में ताम्रीका का उल्लेख प्राप्त होता है।[554] बहुवचन के आधार पर इसका अर्थ हुआ ताम्रीक के रहने वाले[555] तथा मोनियर–मोनियर विलियम्स के संस्कृत–अंग्रेजी कोश के अनुसार ताम्रीक का अर्थ है ताम्रवर्णी।[556] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ताम्रीका शब्द दक्षिण के ऐसे राष्ट्र की ओर संकेत करता है, जहाँ ताम्रवर्णी रहते थे। ग्यारहवीं शताब्दी के बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे ही एक ताम्र शब्द का उल्लेख है,[557] जिसकी पहचान सरकार महोदय ने सम्भाव्य रूप में दक्षिण के मदुरै के निकट ताँज (Tanja) से की है।[558]

यदि योगवासिष्ठ महारामायण के ताम्रीका (ताम्रीक) अर्थात् ताम्रवर्णीय का समीकरण ताम्र राष्ट्र के लोगों से किया जाय जिसकी ऐतिहासिक रूप से तथ्यपूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती है, तो इस आधार पर अनुसन्धानात्मक विषय में अधिक से अधिक इतना कहा जा सकता है कि ताम्रीका का ताम्र–राष्ट्र में रहने वाले लोगों से तादात्म्य होने पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को ग्यारहवीं शताब्दी तक निर्धारित करने से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं, अन्यथा ताम्रीका नामक देश के उल्लेख के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के देशों की सूची में जिन का भी उल्लेख हुआ है,[559] जिसके विषय में हम प्रत्यक्ष रूप से भी जानकारी अर्जित नहीं कर सके, परन्तु यदि इससे ग्रन्थकार का तात्पर्य श्रवणबेलगोल अर्थात् मैसूर प्रान्त से एक मील उत्तर की ओर स्थित जिननाथपुर से हैं, जहाँ तीर्थकर शांतिनाथ की साढ़े पाँच फुट ऊँची सुन्दर कलात्मक मूर्ति शांतिनाथ नामक बस्ती में स्थित है,[568] तो भी प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में लेशमात्र भी विचार नहीं व्यक्त कर सकते।

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के जिस कनक देश के लोगों का उल्लेख[561] हुआ है यदि वह ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर असुर, कृतवर्मा का अनुज, बृहती के तीन पुत्रों में से एक अथवा एक क्रोधी राजा के नाम[562] से हमारी दृष्टि में सम्भावित एक देश का नाम है, तो भी इस विषय में प्रमाणों के अभाव में अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु यदि यह कनकगिरि के आस–पास का क्षेत्र रहा हो तो इस पर अनुसंधानात्मक विषय में किंचित प्रकाश शोध–प्रबन्ध के पर्वत–नामोल्लेख के साथ डाला गया है।

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के देशों की सूची में 'शिवयः' शब्द का प्रयोग किया गया है[563], जिसको उसी के हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद में शिषि पढ़ा गया है।[564] संस्कृत–अंग्रेजी कोष में शिवि और शिबि को एक ही शब्द का पर्याय

---

554. यो. महा. 3.36.36. इसका अंग्रेजी अनुवाद मित्र, विहारी लाल ने 'Tamris' किया है, जो व्याकरण की दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता।

555. यो. महा. हिन्दी अनुवाद, पृ. 255

556. Williams, Monierr-Monier 'A Sanskrit-English Dictionary', p.443.

557. Sircar, D.C. 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 315

558. Op. Cit. p. 317

559. यो. महा. 3.36.36

560. माथुर विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 366

561. यो. महा. 3.36.35

562. शर्मा, राणाप्रसाद 'पौराणिक कोश', पृ. 81.

563. यो. महा. 3.36.37

564. यो. महा. हिन्दी अनुवाद, ज्ञान सागर यन्त्रालय, पृ. 255
' The Lotas-like Sibis' English Translation, Op. Cit. Book-III, Chapter-36, Sec.-II, pp. 404/37

माना गया है और बहुवचन में प्रयोग के आधार पर इसे लोगों के अर्थ में बताया गया है।[565] इनका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में अलिनस, पख्थस, भलनासेज, विशाणिन के साथ में होता है, जिन्हें सुदास द्वारा पराजित किया गया था।[566] ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त संघर्ष में केवल शिवियों ने अपना अस्तित्व बनाये रखा, क्योंकि यूनानी इतिहास वेत्ताओं ने ही नहीं, अपितु पाणिनि के भाष्यकार ने भी अपने काल में इनका उल्लेख किया है[567] जिनकी पहचान झेलम नदी के समीपवर्ती क्षेत्र[568] तथा झुंग जिले की तहसील के आस-पास के क्षेत्र से की गई है।[569] ऐतरेय ब्राह्मण में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।[570] इस प्रकार उपर्युक्त आधार पर शिवियों का प्रारम्भिक स्थान उत्तरापथ का क्षेत्र हुआ, परन्तु कालान्तर में इनका उल्लेख दक्षिण में भी प्राप्त होने लगा। शिवियों के सन्दर्भ में इस प्रकार का परिवर्तन किस काल से होना आरम्भ हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। साहित्यिक साक्ष्य जैसे, जातक,[571] महाभारत,[572] पुराण[573] एवं अल्बरूनी[574] भी इनकी स्थिति सिन्ध-पंजाब के क्षेत्र में इंगित करते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कारणवश, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, शिवियों को दक्षिणवर्ती क्षेत्र में, जहाँ पर चोलों का राज्य था, वहाँ जा बसना पड़ा और उनकी इस स्थिति का उल्लेख वराहमिहिर की बृहत्संहिता[575] दण्डी के दशकुमारचरित[576] तथा योगवासिष्ठ महारामायण[577] में प्राप्त होता है हेमचन्द्र रायचौधरी महोदय कीलहार्न (Kielhorn) के आधार पर इन्हें चोल राजवंशीय एवं बिमलाचरण लॉ एक स्थल पर पल्लवों से समीकृत करते हैं[578] उत्तरापथ के शिवियों को सिकन्दर महान ने पराजित किया था।[579] एक हजार चार ई. में इन्हीं के क्षेत्र से होता हुआ महमूद गजनवी भारत के अन्य क्षेत्रों में घुसा।[580] संभवतः चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में सिकन्दर को आत्मसमर्पण करने

---

565. Williams M.M., Op. Cit., pp. 1076, 1072

566. ऋग्वेद, 7. 18.7.

567. 'Sibai', 'Sobil', McCrindle, op. cit., pp. 14n2, 40,189,199. पतञ्जलि, महाभाष्य, 4.22.109 Macdonell, A.A., Vaidic Index, Delhi, third edition, 1967, 'Sib: Indian Historical Quarterly, 1926, p. 758.

568. McCrindle, op. cit., p. 14n.2.

569 Agrawala, V.S., 'India as Known to Panini', University of Lucknow, 1953, p. 53. Vogel, 'Ipigraphia Indica', Vol. 16, 1921, p. 16. Cunningham, A.A., 'The Calcutta, 1924, p. 669.

570. ऐतरेय ब्राह्मण 8. 23. 10.

571 शिविजातक, सं. 499, उम्याद्यंती जातक, सं. 527, वस्संतर जातक, सं. 547 फॉसबॉल (Fousboll) संस्करण, खण्ड-6, पृ. 420 एवं आगे Dey, N.L., op. cit., pp. 11, 81, 187.

572. महाभारत, शान्तिपर्व 29. 39-44. 166.89. 234. 19. 6.18. आदिपर्व 95. 76. 93.3. सभापर्व 8.10. अध्याय – 7. 52. 14. वनपर्व 130. 19-20. 131-21. 267. 11. 271.28 तथा अध्याय – 194 एवं 197, उद्योगपर्व 195.7. द्रोणपर्व 91.38. 155.19. कर्णपर्व 45.34. विराटपर्व 56.9. भीष्मपर्व 9.7. अनुशासनपर्व 137.4. 115.61 Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', pp. 41. 264.

573. ब्रह्माण्ड पुराण 3.74.20. विष्णु पुराण 4.18.10.

574. Sachau, E.C., 'Alberuni's India', Vol. I, p. 202.

575. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.5.12.

576. दण्डी, दशकुमारचरित, मध्य, अध्याय – 16.

577. यो. महा. 3.36.37.

578. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 221. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', pp. 127-128.

579. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 50.

580. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 7.

के बाद ये पंजाब के झाग क्षेत्र के शिवि लोग राजस्थान के माध्यमिका (चित्तौड़) क्षेत्र में जा बसे तथा शक सीथियों से पराजित हुए, जिसके विषय में इनके इस प्रकार राजस्थान में बस जाने का संकेत उपर्युक्त सन्दर्भ में पतञ्जलि के उल्लेख में किया जा चुका है।

प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व की इनकी मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं और जैसा कि हम उनके दक्षिण में बस जाने की बात पहले ही वर्णित कर चुके हैं, उससे सन्दर्भित प्रश्न के उत्तर में तत्सम्बन्धी आधार के रहस्य को सुलझाने के लिए यह कहा जा सकता है कि इक्ष्वाकु परिवार के कृष्णगुंतूर में होने तथा प्राचीन केकय जनों के मैसूर में होने की भाँति शिवियों का भी दक्षिण में होना कोई रहस्यमय स्थिति नहीं है।[581] भारतीय जातियों में यह विक्षेप सम्भवतः विभिन्न, आक्रमणों, भौगोलिक परिवर्तनों तथा जातीय सम्मिश्रण के कारण भी होता रहा, जिसके कई अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण में शिवि के विषय में दिये गये सन्दर्भ का तादात्म्य जब हम बृहत्संहिता तथा दशकुमारचरित के वर्णनों के साथ करते हैं,[582] तो प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि को उक्त ग्रन्थों के समीपवर्ती काल में अर्थात् कभी भी सातवीं शताब्दी या उसके आस–पास के समय में विचार करने पर बाध्य हो जाते हैं,[583] क्योंकि इसके पूर्व ग्रन्थ के रचनाकाल पर विचार करना इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि प्रश्नगत ग्रन्थ को जैसा कि पहले कहा जा चुका है कालिदास अर्थात् पाँचवीं शताब्दी के पूर्व रचित हुआ विचार नहीं किया जा सकता एवं पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्ध के अभिलेखों में कालिदास के ग्रन्थों को प्रतिकृति के रूप में प्रयोग किया गया है, जैसा कि योगवासिष्ठ महारामायण में मिलता है।[584]

आलोच्य ग्रन्थ के दक्षिण के देशों की सूची में कोंकण का भी उल्लेख हुआ है।[585] प्राचीनकाल में भड़ौंच से दक्षिण का भूभाग अपरान्त कहलाता था और उसी को महाभारत, पुराण, रघुवंश, दशकुमारचरित में उल्लिखित कोंकण माना गया है।[586] ईसा की सातवीं शती के ग्रन्थ प्रपञ्चहृदय में कोंकण का कूपक, केरल, मूषक, आलूक, पशुकोंकण और परकोंकण के रूप में उल्लेख हुआ है। सह्याद्रि खण्ड में सात कोंकण कहे गये हैं– केरल, तुलंग, सौराष्ट्र, कोंकण, करहाट, कर्णाट और बर्बर। इससे ऐसा विदित होता है कि लाट से लेकर केरल तक की समस्त पट्टी कोंकण मानी जाती थी।[587] चीनी यात्री युवान–च्वांग के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि कोंकण से वनवासी बेलगांव, धारवाड़ और घाटापलिकड का प्रदेश अभिप्रेत था। मध्यकाल में कोंकण के तीन भाग कहे जाते थे–तापी से लेकर बसई तक बर्बर, वहाँ से बाणकोट तक विराट और उसके आगे देवगढ़ तक किरात कहा जाता था।[588] इस प्रदेश के नामकरण के सम्बन्ध

---

581. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 156, 160.

582. यो. महा. 3.36.35. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.5.12. दण्डी, दशकुमारचरित, मध्य, अध्याय 16.

583. Keith, A.B., 'A History of Sanskrit Literature' (Varahmihir) pp. 75, 75, 159, 409, 411, 416, 461, 463, 465, 469, 516, 517, 520, 521, 527, 528-33. cf. Majumdar and Pusalker, op. cit. Vol. 3, pp. 291, 317, 318, 321, 322, 328, 423, 513n, 518, 561, 579, 590, 591, 592. तुलना करें, मिश्र, उर्मिला प्रकाश, 'प्राचीन भारत में नारी', भोपाल, 1987. पृ. 215 Keith, A.B., op. cit. (Dandin), XVI, XVII, n. 6, 19, 31. n. 1, 32, 49, 59, 60, 92, 101, 116, 266, 268, 271, 296-330, 340, 362, 375-384, 389, 461, 462. cf. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 187, 262, 291, 314, 316, 317 f, 324, 410.

584. Atrey, B.L., 'The Philosophy of Yoga-Vasisth', pp. 26 ff. Upadhyaya, B.S., op. cit., Introduction, p. 7.

585. यो. महा. 3.36.37.

586. महाभारत, शान्तिपर्व 49.66–67. ब्रह्माण्ड पुराण, 2.16.59 मत्स्य पुराण, 16.16. भागवत पुराण, 5.6.9. रघुवंश, 4.60.

587. गुप्त, परमेश्वरी लाल, लेख– 'कोंकण', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड–3, पृ. 148.

588. वहीं

में लोगों के अनेक प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। एक मत के अनुसार परशुराम की माता कुंकणा के नाम पर इस प्रदेश को कोंकण कहते हैं।[589]

इस क्षेत्र में जमदग्नि, परशुराम और रेणुका की मूर्तियाँ कोंकणदेव के नाम से पूजित हैं। कुछ लोग इसके मूल में देश के कांग अथवा कोंग को देखते हैं तथा कुछ इसका विकास तमिल भाषा से मानते हैं, परन्तु वस्तुस्थिति की अस्पष्टता इतना तो स्पष्ट करती ही है कि इतिहास के पृष्ठों पर यह नाम ईसा की चौथी शताब्दी से ही प्रचलित रूप में चला आ रहा है।[590] वराहमिहिर–कृत बृहत्संहिता, कल्हण की राजतरंगिणी एवं चालुक्य नरेशों के अभिलेखों में कोंकण का उल्लेख है।[591] पेरिप्लस, प्लिनी, टॉलमी, स्ट्रेबो, अलबेरूनी आदि ने भी इसकी चर्चा की है।[592] ईसा पूर्व तीसरी से दूसरी शताब्दी के मध्य मौर्यों, प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के आस–पास शकसातवाहनों, चौथी–पाँचवी शताब्दी में कलचुरि, छठी शताब्दी ई. में स्थानीय मौर्य–वंशी राजा, सातवीं शताब्दी में पुलकेशिन द्वितीय चालुक्य तदनन्तर साढ़े चार सौ वर्षों तक सिलाहार वंशियों, 1260 ई. देवगिरि नरेश महादेव, 1347 ई. में गुजरात के सुलतान, विजयनगर राज्य के सामन्त माधव ने दक्षिण कोंकण पर अधिकार किया, सोलहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी तक पुर्तगालियों, उसके पूर्व कुछ क्षेत्रों को छोड़कर छत्रपति शिवाजी के अधिकार क्षेत्र में, पुर्तगालियों के पश्चात् पेशवा के अधीन एवं तत्पश्चात् अंग्रेजों के अधिकार में इतिहास के काल पटल में इस प्रकार यह परिवर्तित शासनतन्त्र में आता रहा।[593] मिश्र, बेबीलोन और रोम के लिए प्राचीन काल में व्यापारिक महत्त्व का यह क्षेत्र भारत के पश्चिमी भाग में सह्य पर्वत (पश्चिम घाट) और अरब सागर के बीच में आज भी कोंकण नाम से जाना जाता है[594], जिसे कश्मीरी शासक ललितादित्य मुक्तापीड ने लगभग आठवीं शताब्दी में अपने अधिकार क्षेत्र में किया[595] तथा जिसे गुप्त काल में त्रैकूटकों ने शासति किया[596] एवं जिसका उल्लेख उदयसुन्दरी–कथा चम्पू के कायस्थवंशी लेखक सोढ्ढल ने किया[597] और इतिहास के पृष्ठों में यह क्षेत्र परमारों और उनके उत्तराधिकारियों[598], काकतीयों[599] तथा होयसल[600] वंशियों के अधीन उल्लेख में आता है। उसने

---

589. वहीं

590. गुप्त, परमेश्वरी लाल, पूर्वोक्त, खण्ड–3, पृ. 148.

591. गुप्त, परमेश्वरी लाल, पूर्वोक्त, खण्ड–3, पृ. 148 पुलकेशिन द्वितीय बादामी चालुक्य का ऐहोल प्रस्तर अभिलेख, (लगभग 634 ई.) सं.–1, पंक्ति 10

592. Sachau, E.C., Op. Cit., I, p. 203 गुप्त, परमेश्वरी लाल, पूर्वोक्त, खण्ड–3, पृ. 148

593. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 54-95. cf 'Ashoka Rock Edict'-5, (Mansehra Version), No. 10, Verse 4, and no10; Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. I, p. 22. Majumdar and Pusalker, Op. Cit., Vol. 2, p. 201. शक एवं सातवाहनों के उल्लेख में पुनः देखें, रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 437, 438, 448, 453. गुप्त. परमेश्वरी लाल, पूर्वोक्त, खण्ड–3, पृ. 148. Ibid, op. cit., Vol. 3 (for Chalukyas) See, pp. 233-235, for local Maurya Chiefs, See, p. 382. Ibid, op. cit., Vol. 4, for Rashtrakutas, See, p. 3. Ibid, for the rule of Silaharas, See, pp. 3, 58, 246. Ibid, op. cit. Vol. 5, for later Chalukyas' and Kalchuris rule of Kalyana, pp. 162-163, 164-182. Ibid., for Silahar, rule over Konkan, See, pp. 184. Ibid., for Yadavas' of Devagiri, See, pp. 186-194. Smith, V.A., 'The Oxford History of India', India, New Delhi, 1988, (for further details of the rules over Konkan, See, pp.1, 281, 283-84, 406, 410, 413, 423).

594. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 228. Dey, N.L., op. cit., p. 103. Parrgiter, F.E. 'Markandeya-Purana', p. 362

595. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 134.

596. Ibid, pp. 192-193.

597. Ibid, op cit., Vol. 4, p. 189.

598. Ibid, op. cit., Vol. 5, pp. 72, 77, 88, 101.

599. Ibid, p. 198.

600. Ibid., p. 227.

स्वतन्त्र रूप से किसी युद्धक संघ में भाग लिया हो, हमें ऐसी जानकारी प्राप्त नहीं होती। अतः अनुसंधानात्मक विषय में उक्त आधार पर हम कोई मन्तव्य प्रस्तुत नहीं कर सके।

आलोच्य ग्रन्थ में उक्त स्थलों की ही भाँति कर्णाट का भी उल्लेख प्राप्त होता है[601], जिन्हें युद्ध में हताहत किये जाने का उल्लेख है।[602] इसे ही महाभारत तथा भागवतपुराण में कर्णाटक पढा गया है[603] परन्तु मार्कण्डेय पुराण एवं बृहत्संहिता इसे 'कर्णाट' ही सम्बोधित करते हैं[604] शक्तिसंगम तन्त्र में भी कर्णाट का वर्णन प्राप्त होता है, वहाँ पर जिसका अर्थ सरकार महोदय के अनुसार कर्नाटिक (Carnatic) है, न कि कन्नड़ बोलने वालों से[605] लगभग दस सौ तीस ईसवी के अरब यात्री अलबेरूनी ने भी कर्नाट का उल्लेख किया है, परन्तु उक्त उल्लेख में उसका अर्थ कन्नड़ बोलने वालों से है[606] प्राचीन भारत के राजनैतिक परिवेश में जब हम दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि यह मैसूर के आस–पास रामनद से श्रीरंगपट्टम तक विस्तृत था।[607]

भारतीय राजनैतिक पटल पर ब्राह्मणों का अत्यधिक महत्त्व रहा है और उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत का विभाजन स्कन्द पुराण के इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर भारत के ब्राह्मणों को दक्षिण में तुर्कों तथा कर्णाट देशों में जाने से अवरोधित किया गया था।[608] इसी सन्दर्भ में सरकार महोदय यह भी उल्लेख करते हैं कि प्राचीनकाल में दक्षिण भारत के ब्राह्मणों के समाज का पाँच भागों में विभाजन किया गया था, जिन्हें पंचद्रविड़ कहते थे और जिनमें कन्नड़ भाषा बोलने वाले कर्णाट भी सम्मिलित थे। इस प्रकार का विभाजन दक्षिण भारतीय भाषा–विज्ञान के आधार पर ब्राह्मण के सन्दर्भ में प्राप्त होता है।[602] दूसरी ओर पार्जिटर कर्णाटों से दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र में फैले ब्रिटिशकालीन भारत के निज़ाम के क्षेत्र तथा पश्चिम में घाटों तक तथा दक्षिण में नीलगिरि की पहाड़ियों तक फैले क्षेत्र को समीकृत करते हैं और उनके मतानुसार मुसलमानों तथा अंग्रेजों ने इसके सम्बन्ध में अनेक भ्रामक धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। काल्डवेल (Caldwell) की द्रविड भाषा की व्याकरण (Grammer of the Dravidian Languages) के आधार पर वे यह मत प्रतिपादित करते हैं कि कर्णाट नाम द्रविड़ भाषा के दो शब्दों से मिलकर निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है– "काला देश"।[610] इसके प्रामाणिक इतिहास के विषय में हमें जानकारी तीन सौ सत्ताईस ईसा पूर्व के पश्चात् सिकन्दर के आक्रमण के झंझावात के समापन से प्राप्त होती है और तब से लगभग द्वितीय शताब्दी ई. तक सातवाहनों ने यहाँ पर राज्य किया। तदनन्तर सम्पूर्ण कर्णाट देश कई भागों में विभक्त हो गया। इसके उत्तर–पश्चिम भाग पर कदम्बों का शासन हुआ तथा उत्तर–पूर्वी भाग पर पल्लवों का शासन हुआ। इतिहास के घटनाक्रम में मोड़ तब आया जब मूल इक्ष्वाकुवंश के दो गंगवंशीय राजाओं ने दूसरी शताब्दी ई. के अन्तिम चरण में कर्णाट देश के कुछ भागों पर राज्य करना आरम्भ किया। इसी वंश के दूसरे शासक माधव ने चार सौ सत्तान्नवे ईसवी में कर्णाट के अन्य भागों पर अधिकार कर लिया। इसी के सातवें वंशज दुर्विनीत ने पल्लवों से कर्णाट के कुछ क्षेत्र छीन लिये और आठवें शासक श्रीपुरुष ने पल्लवों

601. यो. महा. 3.36.37

602 वही 3.37.16

603 महाभारत, भीष्मपर्व, 9.66 भागवतपुराण, 5. 6–7

604 मार्कण्डेयपुराण, 58.23 वराहमिहिर, बृहत्संहिता 14.12

605 Sircar, D.C. 'Studies in the Geography of Ancient and Medival India', pp. 76, 78, and 82.

606. Sachau, A, Op. Cit., Pt.1, pp. 173, 301, pt.2, 135.

607. Imperial Gazzeteer of India, 1886, Vol. 7, p. 377 Journal of Royal Asiatic Society, 1912, p. 482.

608. Sircar, D.C., op. cit., p. 144. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1,p. 172.

609. Sircar, D.C., op. cit., p. 16

610 Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 363 n.

को परास्त कर उत्तर–पूर्वी कर्णाट क्षेत्र में अपना अधिकार जमा लिया। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में इसके उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र पर चालुक्यों ने राज्य किया और इनका प्रभुत्व पुलकेशिन द्वितीय के काल में (लगभग सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण में) बढ़ा तब चालुक्यों का क्षेत्र बादामी तक फैल गया। इसी बीच कश्मीरी शासक ललितादित्य मुक्तापीड ने मध्य भारत पर आक्रमण किया और जिस समय (आठवीं शताब्दी में) महारानी रट्टा (Ratta) का यहाँ शासन था, वह उसी क्षेत्र से होता हुआ अपने विजय अभियान हेतु बढ़ा।[611] इसी शताब्दी में ध्रुव या धारावर्ष ने कर्णाट के उस क्षेत्र से कर वसूला, जहाँ पल्लवों का शासन था और गंग शासक राचमल को कैद कर लिया तदनन्तर गंगों का प्रभाव फिर बढ़ा लेकिन दस सौ चार ई. में चोल शासक राजेन्द्र चोल ने दक्षिण और पूर्व के कर्णाट के हिस्से पर अधिकार कर लिया तथा उत्तर–पश्चिम का क्षेत्र चालुक्यों के अधिकार में ही रहा। लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तथा बारहवीं शताब्दी के आस–पास जब बंगाल में पल्लववंशीय रामपाल का शासन था तो मिथिला के क्षेत्र में कर्णाटों का एक नवीन साम्राज्य उदित हुआ और देवपाल तथा उसके उत्तराधिकारियों ने अनेक कर्णाट अधिकारियों को अपनी सेना में नियुक्त किया। इस मिथिला के कर्णाट राज्य का शासक नान्यदेव था, जिसने चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ की सहायता से दस सौ अड़सठ ई. में कैवर्तों के विद्रोह के कारण अपने को पालों से स्वतन्त्र कर सीमरॉमपुर में अपनी राजधानी स्थापित की और मुहम्मद तुगलक के आक्रमण के समय उस साम्राज्य का भी अन्त हो गया। इसके पूर्व गोविन्द चन्द्र मगड़वाल से इसका युद्ध हुआ।[612] नौ सौ तिहत्तर से सत्तानवे ई. तक तैल द्वितीय चालुक्य कर्णाट पर शासन कर रहा था।[613] दस सौ आठ से दस सौ चौदह ई. तक दक्षिण के सोमवंशियों ने कर्णाट के क्षेत्र को अधिकृत किया, किन्तु दक्षिण के इस कर्णाट क्षेत्र पर ग्यारह सौ छब्बीस से ग्यारह सौ अड़तीस ई. में सोमेश्वर द्वितीय उत्तरकालीन चालुक्य ने कर्णाट राज्य पर शासन किया।[614] ग्यारह सौ पचपन में चालुक्यों का स्थान कलचुरियों ने ले लिया, जो ग्यारह सौ तिरासी ई. तक बना रहा। ग्यारह सौ चार ई. के बाद चोलों को यहाँ से भागना पड़ा और ग्यारह सौ तैंतालीस ई. के आते–आते उनका प्रभुत्व यहाँ से समाप्त हो गया। बारहवीं से तेरहवीं शताब्दी मे कर्णाट के विक्षिप्त क्षेत्रों पर होयसल एवं यादववंशियों ने राज्य किया, और उस समय के उल्लेखों में कर्णाट के स्थान पर कर्णाटक शब्द देखने को मिलता है।[615] इसके पूर्व ग्यारहवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में एक विवादित उल्लेख सोमवंशीय चण्डीहार ययाति महाशिवगुप्त द्वितीय के विषय में प्राप्त होता है, जिसे कर्णाटों से युद्ध करना पड़ा था, जो सम्भवतः मिथिला के रहे होंगे।[616] ग्यारहवीं शताब्दी के तृतीय चरण में बंगाल के पालों को विक्रमादित्य षष्ठ चालुक्य, जिसने कर्णाटों के साथ संघ बना रखा था अथवा कर्ण चालुक्य से युद्ध करना पड़ा।[617] बंगाल के सेनों ने भी अपने को कर्णाट–क्षत्रिय कहा है, जिससे उनके पूर्वज द्वारा सन्देहास्पद रूप में वृद्धावस्था तक विभिन्न युद्धों में सम्बद्ध रहने की बात स्पष्ट होती है।[618] एक नाटक के आधार पर मजूमदार तथा

611. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 134 & 149.

612. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 29, 35, 47-48, 53 & 75.

613. Ibid., p. 163.

614. Ibid., p. 177.

615. Ibid., p. 201.

616. Ibid., pp. 210-211 & 348.

617. Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', p. 147. Banerjee, R.D., "Palas of Bengal", Memoirs of the Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta, Vol. 5, p. 99.

618. देवपाड़ा अभिलेख, पंक्ति 8. 1. 5.
अपशद प्रस्तर अभिलेख 1.11 (कॉरपस इन्सक्रिप्सनम इंडीकेरम, भाग 3, पृ. 203 Ganguli , D.C., 'Indian Historical Quarterly', Vol. 12, pp. 611-613. Majumdar, R.C., op. cit., pp. 205-212. माधाईनगर ताम्रपत्र लेख 5.4 (Majumdar, N.G., Inscriptions of Bengal, containing Inscriptions of the Chandras, the Varamans, the senas, and of Ishverghosh and of Damodar, Bengal Rajshahi, 1929 A.D., p. 206). Journal of the Bihar an dOrissa Research Society, Patna, Vol. 9, p. 306. Indian Historical Quarterly, Vol. 12, pp. 475-476 and 579.

डी.सी. गांगुली महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री के अन्वेषण पर उसमें उल्लिखित महिपाल को बंगाल के पाल शासक से समीकृत करते हुए पराजित कर्णाटों (1023 ई.) को चोल बताते हैं।[619] तेरह सौ तैंतालिस ईसवी में जब चोलों का यहाँ से प्रभुत्व समाप्त हो गया, उससे पहले ही लगभग तेरह सौ छत्तीस ई. में तुंगभद्रा नदी के पास विजयनगर के हरिहर तथा बुक्कों ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। लगभग चौदह सौ उन्नासी ई. में विजयनगर राज्य के सेनापति नरसिंह ने यहाँ राज्य किया और सुलतानों और विजयनगर के वीर तालीकोटा की लड़ाई में पन्द्रह सौ पैंसठ ई. में यहाँ से विजयनगर के राजाओं का प्रभुत्व समाप्त हो गया। इसके बाद अट्ठारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी में जब मैसूर के सुलतान टीपू सुलतान को अंग्रेजों ने पराजित किया तब पहले तो यहाँ पर हिन्दू राजा चामराजेन्द्र को राज सिंहासन पर बैठाया गया, जिनकी मृत्यु के बाद अट्ठारह सौ चौरान्वे ई. में महारानी की देखरेख में उनके बड़े पुत्र ने पहले राज्य किया और उन्नीस सौ दो ई. में सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त कर जब कर्णाट क्षेत्र पुनः अंग्रेजों के अधिकार में आया तब 30 जुलाई 1973 ईसवी से यह कर्णाटक राज्य मैसूर के परवर्ती नाम से जाना जाने लगा।[620]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कर्णाट, बाद में कर्णाटक नाम से भी जाना जाने लगा, उनके युद्ध में पराजित होने के आधार पर अथवा युद्ध में सम्मिलित होने के उल्लेख के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को बंगाल के पालों के काल से सम्बद्ध करना[621] उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि ऐतिहासिक वर्णन से यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि द्वितीय शताब्दी ईसवी, जबसे कि कर्णाट देश का विभाजन हुआ, तब से उन्हें किसी न किसी युद्ध में लगातार पराजय का मुँह देखना पड़ा ऐसी दशा में आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ 'कर्णाटमण्टवटका' को द्वन्द्व समास के आधार पर पढकर अलग–अलग देशों के नाम के रूप में उल्लिखित किया गया है।[622] कर्णाटों के विषय में ऊपर उल्लेख कर ही चुके हैं, जहाँ तक मण्टों का प्रश्न है, उनके विषय में अनुमान ही लगाया जा सकता है और इस आधार पर सम्भवतः इनके देश को गुप्तकालीन प्रयाग प्रशस्ति में आये मण्टराज[623] के नाम पर संज्ञित माना जा सकता है। इस प्रकार से यदि यह देश मण्टराज के नाम पर ही पड़ा होगा तो इसका समीकरण केरल से ही किया जा सकता है। इसे दक्षिण का मालाबार नहीं समझना चाहिए। सम्भवतः यह दक्षिण कोसल और मद्रास के समीपवर्ती भाग में था। कीलहॉर्न महोदय इसकी समता गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच कोलेरू और कासार नामक स्थानों से करते हैं[624] परन्तु रायचौधरी महोदय तथा वासुदेव उपाध्याय महोदय इसके अलग–अलग अनुमान प्रस्तुत करते हैं। हेमचन्द्र रायचौधरी के मतानुसार इसकी स्थिति मध्य–प्रदेश में थी[625] और वासुदेव उपाध्याय के धोयी कृत "पवनदूतम" के आधार पर ययाति नगरी, जिसकी स्थिति सोनापुर के समीप महानदी के किनारे थी, उसके पास–पास के क्षेत्र से करते हुए उड़ीसा और मद्रास के मध्य में बताते हैं[626] वास्तविकता यह है

---

619. Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. 62, p. 250. Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', pp. 279, 308, 309.

620 पाण्डेय, सुधाकर, लेख 'कर्नाटक', हिन्दी विश्वकोश, भाग 2, पृ. 423–24.

621 Bhattacharya, S.P., op. cit., pp. 547 and ff. Diwanji, P.C., Proceedings of the Seventh Oriental Conference, Baroda, 1933, p. 28.

622 यो. महा. 3.36.37, हिन्दी अनुवाद, पृ. 255 '...the people of Karnata, the Mantas, Vatakas...', Mitra, V.L., op. cit., Sec. 2, p. 404.

623 प्रयाग प्रस्तर अभिलेख, पंक्ति 19

624 Epigraphia Indica, Vol. 11, p. 189.

625 रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 482.

626 लीलां नेतुं नयनपदवीं केरलीनां रतेश्चेत्।
गच्छेः ख्यातां जगति नगरीं अख्ययातां ययातेः।।
(उपाध्याय, वासुदेव, "गुप्त साम्राज्य का इतिहास", खण्ड 1, इलाहाबाद, 1969, पृ. 54)

कि कोरल्ल के मण्टराज के राज्य की स्थिति कहाँ पर थी?, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।[627] परन्तु यदि आलोच्य ग्रन्थ का उपरिनिर्दिष्ट देश इसी राजा के नाम पर भी था, तब भी यह स्थिति गुप्तकाल के पश्चात् ही बनती है, जिसके समीकरण एवं तथ्यों के अभाव में हम उक्त सन्दर्भ के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर प्रकाश नहीं डाल सकते।

इसी प्रकार वट क्षेत्र में रहने वाले लोगों को ही प्रश्नगत ग्रन्थ में "वटका" कहा गया है[628] और यदि इनके क्षेत्र को गुहिल शासक शिलादित्य के सामोली प्रस्तर अभिलेख (646 ई.) के वट नगर के रूप में अनुमानित करने का प्रयास करें, तो जो वर्णन उक्त अभिलेख में इस सन्दर्भ में प्राप्त होता है, उसमें कहा गया है कि महाजनों की एक टोली, जिसका प्रमुख एक जेंतक था, उसने वटनगर से आकर एक आगार स्थापित किया था।[629] ऐसे समीकरण पर प्रश्न उठता है कि उक्त वटनगर की स्थिति कहाँ थी? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि यही परिवर्तित नामोल्लिखित वटपुर था, जो वेडूर (Vadur) से बाहर मील पूर्व में कुरहई या कुरू जो ब्रिटिशकालीन सेण्ट्रल प्रोविसेज़ था[630], जिसका उल्लेख आठवीं शताब्दी के राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय के अंजनावती ताम्रपत्र लेख में प्राप्त होता है।[631] यह अभिलेख आधुनिक बरार से बाइस मील पूर्व की ओर मिला था।[632]

अब यदि उक्त आधारों को एक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाय तो तदुल्लिखित तथ्य के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को सातवीं–आठवीं शताब्दी का माना जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित आन्ध्रों[633] एवं अवन्तिकों[634] का आन्ध्र तथा अवन्ति के सन्दर्भ में व्याख्यायित विवरण पूर्व में प्रस्तुत किया जा चुका है।[635] यहाँ इस संदर्भ में अनुसंधानात्मक विषय में पुनः केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार को दक्षिणवर्ती अवन्ति तथा आन्ध्रों के विषय में भी जानकारी थी, परन्तु शोध विषय में तार्किक प्रमाणों की अनुपलब्धता के कारण उक्त आधारों पर यहाँ कोई भी निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

योगवासिष्ठ महारामायण में लंका को दक्षिण के देशों के अन्तर्गत परिगणित करते हुए "लंकारक्षोगणाः स्मृतः" का उल्लेख किया गया है।[636] ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक ने इसका अर्थ "लंका के निवासी रक्षोगण" बताया है।[637] इसी का अनुवाद करते हुए अंग्रेजी अनुवादक लिखते हैं, "**People from the three peaks of mountains called the Silakhara Nandamardana and Malaya which where the seads of the gardian Rakshasas of Lanka**" अर्थात् "चित्रकूट पर्वत के तीन शिखर शिलाखार, नन्दमर्दन और मलय के लोग, जो कि लंका के संरक्षक राक्षसों के

---

627. Majumdar and Pusalker, op. cit. Vol. 3, p. 10.

628. यो. महा. 3.36.37 – "वटका" बहुवचन वट क्षेत्र के लोग 'वुञ्' प्रत्यय (सिद्धान्त कौमुदी, पूर्वोक्त) लगाने पर (Mitra, V.L., op. cit., p. 404).

629. Samoli Stone Inscription of the Time of Siladitya (646 A.D.) No. 31, verse 4. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 2, pp. 360-361.

630. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 335.

631. Anjanavati Copper Plate of Govinda III, Saka Year 722, verse 38.

632. vide : Mirashi, V.V. and Kulkarni, L.R., Epigraphia Indica, volume 23, pp. 11 & 13.

633. यो. महा. 3.36. 38.

634. वही.

635. देखें, शोध प्रबन्ध, पृ.

636. यो. महा. 3.36.39

637. यो. महा. हिन्दी अनुवाद, पूर्वोक्त, पृ. 255.39.

रहने के स्थान थे।[638] इस प्रकार से यह विवरण हमारे सामने एक ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। अब इस विषय की समीक्षा करने पर संस्कृत–अंग्रेजी कोश के अनुसार रक्षोगणाः का अर्थ 'राक्षसों का समूह या वर्ग' (Class or company of Rakshasas) हुआ।[639] पुनः उक्त श्लोक में आये 'स्मृताः' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'स्मृ' धातु से हुई तथा इस प्रकार 'स्मृताः' शब्द का अर्थ हुआ 'remembered' (स्मरण किये गये) colled to mind (मन में स्मरण किये गये) thought of (विचार किये गये)।[640] इस आधार पर लंका के राक्षसों के समूह के स्मरण किये जाने का अर्थ ही उक्त श्लोक लंका के सन्दर्भ में कराता है और यही बात दक्षिण दिशा के अन्य वर्णित देशों के सन्दर्भ पर भी लागू होती है। यहाँ सन्दर्भ लंका के उल्लेख में है, अतः लंका में रहने वाले राक्षस समूहों का आधार लेते हुए ही हमारा उद्देश्य यहाँ शोध विषय में प्रकाश डालने का एक प्रयास होगा, क्योंकि इस श्लोक की ऊपर की पंक्ति में क्रौञ्चों से लेकर नन्द और मर्दन का संदर्भित उल्लेख पर्वत अथवा द्वीपों के सम्बन्ध में शोध–प्रबन्ध के अग्रिम वर्णन के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

कीथ के अनुसार योगवासिष्ठ महारामायण वाल्मीकि रामायण का एक परिशिष्ट है।[641] अतः यदि रामायण की ही भाँति[642] योगवासिष्ठ महारामायण में भी लंका का राक्षसगणों द्वारा रक्षित होने की बात कही गई है[643] तो कोई विशेष बात नहीं है। इस विवरण से प्रश्नगत ग्रन्थ को रामायण का उत्तरकालीन सिद्ध किया जा सकता है। लंका के राक्षसों द्वारा रक्षित होने की बात राजावली कथा में भी बतायी गयी है।[644] ऐसा ही उल्लेख महाभारत में भी प्राप्त होता है[645] तथा कालदिास के विवरण[646] में भी द्रष्टव्य है। परन्तु इसी सन्दर्भ में जब कालिदास[647] तथा रामायणोत्तर कालीन अन्य विद्वानों के विवरण लंका के सन्दर्भ में उल्लेख प्रस्तुत करते हैं, तब उस सन्दर्भ में विद्वानों का मत ऐसा है कि वे रामायणकालीन राक्षसों से रक्षित लंका का उल्लेख नहीं करते हैं, अपितु वर्तमान लंका का उल्लेख करते हैं।[648] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तकाल तक आते–आते रामायणकालीन लंका उसकी स्थिति तथा उसमें रहने वाले लोगों के प्रति विचार में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। ऐसा परिवर्ती वर्णन लंका की एक नवीन राजनैतिक एवं भौगोलिक स्थिति का दिग्दर्शन कराता है। परन्तु वास्तव में योगवासिष्ठ महारामायण में दक्षिण के देशों के अन्तर्गत राक्षस समूहों से रक्षित जिस स्मरण की गई लंका के लोगों का युद्ध में सम्मिलित होने की बात कही गई है वह रामायणकालीन राक्षसों से रक्षित पूर्व में जानी जाने वाली सुदूर दक्षिण में स्थित लंका ही है। यहाँ प्रश्न उठता है कि परवर्ती युग में जिन राक्षसों को बुरी आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया[649], क्या वह रामायण कालीन कोई जाति थी? इसके उत्तर में विहंगम दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि संभवतः वे अनार्य थे जो दक्षिण भारत एवं लंका के जंगली ऐसे लोग थे जो सभ्यता की

638. Mitra, V.L., op. cit., p. 405/39.

639. William, M.M., op. cit., p. 860.

640. Ibid., p. 1272.

641. Keith, A.B., "History of Sanskrit Literrature", pp. 479-480.

642. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 55.7–9, सुन्दरकाण्ड, सर्ग 1. 2. 48–50, 3. 2–3, 54. 8–9 तथा सर्ग 14 आदिकाण्ड 177. 3–179, युद्धकाण्ड, सर्ग 3 तथा 125, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग 41. 4.27, 42–46.

643. यो. महा. 3.36.39.

644. Dey, N.L., op. cit., p. 114.

645. महाभारत, वनपर्व, 31, 53.23, 274. 16, 291.5.

646. कालिदास, रघुवंशम्, 6.62, 12.63, सर्ग 66, 13. 2–18, 22, 34.

647. वहीं.

648. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 84, Vol. 3, pp. 11, 12, 169, 244, 261, 284-90, 381-386, 393, 413, 596, 598, 599, 600-610, 613-621 and 642, Vol. 4, pp. 157-169 and 177, 269, 210, "Struggle for Empire", pp. 10, 33, 68, 172, 172, 177, 234, 248, 251-259, 261-268, 304-309, 319, 339-342, 518, 650 & 672.

649. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 261.

ओर उन्मुख होकर भी रामायण काल में सशक्त हो गये थे।[650] ये वही लोग थे, जिन्होंने आर्यों का घोर विरोध किया था, यद्यपि इनका उल्लेख महाभारत तथा पुराणों में भी प्राप्त होता है, परन्तु उस विवरण में ये एक निस्तेज एवं अन्तर्हित हुई शक्ति के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, जो रामायणकालीन वर्णन से भिन्नता रखता। वाल्मीकि रामायण में राक्षसों के तीन उपवर्गों का उल्लेख विराध, दानव एवं राक्षस के नाम से है तथापि सामान्य रूप से ये सभी राक्षस नाम से जाने जाते थे।[651] तृतीय वर्ग अर्थात् राक्षस दुष्ट प्रकृति के एवं लंका निवासी थे। आख्यानों के अनुसार ब्रह्मा से उत्पन्न हो जिन्होंने रक्षा करने की बात कही वे राक्षस कहलाए[652] और दक्षिण के समुद्री किनारों पर जा बसे। कुछ स्थानों को छोडकर रामायणकार ने इनका वर्णन पौराणिक विवरण के विपरीत सामान्य मनुष्यों की तरह ही किया है, परन्तु जहाँ कहीं भी इस विवरण में अमानवीयता दृष्टिगोचर होती है उसका कारण उनका अनार्य होना तथा आर्यों के प्रति घृणा करना है। ग्रिफित महोदय के अनुसार भी राक्षस नाम ऐतिहासिकता नहीं रखता है, अपितु कवि का ऐसा उल्लेख करना उनके घृणास्पद तथा आर्यों के शत्रु होने की बात स्पष्ट करता है। आज के दक्षिण भारतीयों की ही भांति वे काले बताये गये हैं[653] रामायण के अनुसार जो लोग अपने कर्तव्य से अर्थात् स्वधर्म से च्युत हो गये उन्हें आर्यत्व निम्न मानकर राक्षस कहा गया।[654] यही लोग दक्षिण में जा बसे और एक शक्तिशाली सभ्यता का स्थापन किया तथा आरम्भ में दक्षिण भारतीय क्षेत्रों तथा लंका में बसने वाले ये लोग जब रामायण काल में शक्ति सम्पन्न हुए तो इन्होंने अपने मूल वन्य जीवन को छोडकर एक सम–सामयिक सभ्यता स्थापित की तथा इन्हीं का वंशानुक्रम रूप में वैदिक कालीन दस्युओं से तादात्मय स्थापित किया जा सकता है, जिनका आर्यो से संघर्ष हुआ था। इन्हीं राक्षसों को एक स्थान पर मछुवारों की सन्तान भी बताया गया है।[655] इसी की पुष्टि करते हुए जॉन फ्रेशर (John Fraser) महोदय लिखते हैं कि लंका 'की आरम्भिक जनसंख्या आर्यों से पूर्ववर्ती काले रंग वाली द्रविड़ों की सन्तान थी, जिसे जब पूर्वी द्वीप की ओर भगाया गया तो वे आज भी मलेशिया के रहने वालों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।[656] इस प्रकार इन्हीं मूल द्रविड़–दस्यु अर्थात् राक्षसों ने समूह के रूप में लंका की रक्षा की थी, जिसका स्मरण योगवासिष्ठ–महारामायणकार करता है।[657]

अब इस वर्णन के आधार पर अनुमान रूप में हम इतना ही कह सकते है कि प्रश्नगत ग्रन्थ का रचनाकाल सम्भवतः गुप्तकाल के मध्य काल का रहा होगा क्योंकि वाल्मीकि रामायण गुप्त काल के पूर्व की रचना है[658], कालिदास के पूर्ववर्ती समय में प्रश्नगत ग्रन्थ को नहीं रखा जा सकता[659] और कालिदास के समय से ही राक्षसों को बुरी आत्मा के रूप में प्रस्तुत करते हुए एक धार्मिक एवं दार्शनिक आवरण प्रदान किया जा सकता है।[660]

पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित देश

गिरिमति, वेणुपति, नरपति, फल्गुणक, माण्डव्य, अनेकनेत्रक, पुरुकुन्द, पार, भानुमण्डल, भावन, वन्मिल, नलिन,.

---

650. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1, pp. 294, 317-319.

651. Vyas, S.N., 'India in the Ramayan Age', Delhi, 1988, p. 27.

652. विष्णु पुराण 1.5.43 मार्कण्डेय पुराण 48.20 वायु पुराण, पूर्व 9.27. लिंग पुराण 70.225.227

653. Vyas, S.N., op. cit., pp. 13, 28.

654. वही, पृ. 43.

655. वहीं.

656. Vyas, S.N., op. cit., pp. 43-44.

657. यो. महा., पूर्वोक्त.

658. Keith, A.B., op. cit., pp. 12, 13, 17, 20, 42-45, 56, 59, 63, 70, 85, 90, 91, 99, 133, 137, 159, 266, 270, 276, 480.

659. Atreya, B.L., op. cit., pp. 26f.

660. Upadhyaya, B.S., op. cit., p.70 महाभारत, वनपर्व, 23.50. वायु पुराण, उत्तर, 8.98. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 89, 92, 231, 247, 248, 262, Vol. 2, pp. 3, 137. Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', p. 13.

दीर्घ, रंग, स्तनिक, गुरूह, लुह, स्त्रीराष्ट्रः इत्यादि पश्चिमोत्तर के देशों का वर्णन करते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ का रचयिता वेणुपति देश का उल्लेख करता है[661], जिसकी सम्भावना यदि सत्य और पौराणिक विवरण प्रकाश में वेणुग्राम या बेलगांव से करने का प्रयास किया तो उसकी स्थिति महाराष्ट्र में मुम्बई के समीप अनुमानित होती है।[662] परन्तु तथ्यों को सही मापदण्ड पर मापित करने पर हम इस समीकरण के विषय में न कोई तर्कसंगत प्रकाश ही डाल सकते हैं और न ही उक्त आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ मत प्रस्तुत कर सकते हैं।

आलोच्य ग्रन्थ में फल्गुणकों को उत्तर–पश्चिम में बताया गया है।[663] मार्कण्डेय पुराण में कच्छप–पुच्छ पर फल्गुणकों की स्थिति बतायी गयी है।[664] पार्जिटर महोदय मार्कण्डेय पुराण के उक्त विवरण को अन्यत्र अप्राप्य बताते हुए उसके समीकरण के प्रति अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं।[665]

एकमात्र योगवासिष्ठ महारामायण के अतिरिक्त मार्कण्डेय पुराण के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को उक्त विवरण दृष्टि में रखते हुए नवीं शताब्दी के पूर्व तथा तृतीय शताब्दी के पश्चात् कभी भी विचार किया जा सकता है, क्योंकि जैसा कि उल्लेख किया ही जा चुका है, कि मार्कण्डेय पुराण की तिथि कभी भी तृतीय शताब्दी से पूर्व तथा नवीं शताब्दी के पश्चात् नहीं मानी जा सकती है[666] और योगवासिष्ठ महारामायण का सार–संक्षेप गौड अभिनन्द द्वारा नवीं शताब्दी के मध्य में ही प्रस्तुत कर दिया गया था।[667]

आलोच्य ग्रन्थ में उत्तर–पश्चिम के देशों के परिगणन में माण्डव्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[668] मारवाड़ की जोधपुर से पहले की राजधानी मंडौर थी। मंडौर नामक वर्तमान ग्राम का प्राचीन नाम मंडोवर या मांडव्यपुर है। कहा जाता है कि यहाँ मांडव्य ऋषि का आश्रम था, जिनका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के दसवें अध्याय के अन्त में तथा वृहदारण्यक उपनिषद् के छठवें अध्याय[669], महाभारत[670], पुराणों[671] तथा अल्वरूनी के वृत्तों[672] में प्राप्त है। स्थानीय रूप से यह जनश्रुति है कि नगर का नाम रावण के रानी मंदोदरी के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था और यह स्थान जहाँ लंकापति

661 पश्चिमोत्तरदिग्भागे देशो गिरिमति स्थितः।
तथा वेणुपतिश्चैव ततो नरपतिर्मही।।
तथा फल्गुणकाश्चैव माण्डव्यानेकनेत्रकाः।
पुरुकुन्दाश्च पाराश्च भानुमण्डलभावनाः।।
वन्मिला नलिना दीर्घा दीर्घकेशाङ्गबाहवः।
रङ्गाश्च स्तनिकाश्चान्या गुरुहाश्चलुहास्तथा।।
ततः स्त्रीराष्ट्रमतुलं गोवृषापत्यभोजनम्।
अथोत्तरस्यां हिमवान्क्रौञ्चोऽथ मधुमान्गिरिः।।
(यो. महा. 3.36. 51–54)

662. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 134. Dey, N.L., op. cit., pp. 29, 195.

663. यो. महा. 3.36. 52

664. मार्कण्डेय पुराण 58.36.

665. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 373n.

666. Pargiter, F.E., 'Markandeeya Purana', Introduction, pp. 13-20.

667. Kono, Stein, 'Karpoormanjari', Delhi, 1963, p. 197.

668. यो. महा., 3.36.52, 37.5

669. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 46

670. महाभारत, आदिपर्व, 107.16, उद्योगपर्व 186

671. मत्स्य पुराण, 195.21 भागवत पुराण, 3.5.20 ब्रह्माण्ड पुराण, 2.27.25

672. Sachau, E.C., 'Alberuni's India', p. 157.

के साथ मंदोदरी का विवाह हुआ था, आज भी मंडोर में स्थित बताया जाता है। सातवीं शती के पश्चात् गुर्जर–नरेशों ने मंडोर में अपनी राजधानी बनाई थी। मांडव्य ऋषि के आश्रम के समीप स्थित मांडव्य दुर्ग की गणना राजस्थान के महत्त्वशाली दुर्गों में की जाती है। मंडोर में प्राप्त एक शिलालेख में इस स्थान को मांडव्याश्रम कहा गया है और इसके निकट एक पुण्यशालिनी नदी का उल्लेख है जो सम्भवतः नागोदरी है–

स्वयं च संस्थितस्तात (:) शुद्धं धर्म्मं (ं) समाचरन्।
माण्डव्यस्याश्रमे पुण्ये नदी–निर्झ्झर–शोभिते।।[673]

दुर्ग के अंदर विष्णु तथा जैन मन्दिर के खंडहर हैं। बारहवीं–तेरहवीं शतियों की कई मूर्तियाँ यहाँ से प्राप्त हुई हैं। मन्दिर यद्यपि खंडहर की अवस्था में है किन्तु उसकी दीवारों पर बेल–बूटे, पशु–पक्षी, कीर्तिमुख आदि का वर्णन बडी सुन्दर रीति से किया गया है। आधुनिक मंडौर ग्राम तथा दुर्ग के मध्यवर्ती भाग में खुदाई में मिट्टी के कुम्भ मिले हैं, जिनमें से एक पर गुप्तलिपि में विखय (=विषय) शब्द खुदा है। दुर्ग के नीचे पंचकुंडा की ओर नरेशों की छतरियां, चुंडा जी का देवल तथा पंचकुंडा दर्शनीय है। परमारों की कलाकृतियाँ मंदौर में भी प्राप्त होती है। दसवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की राजकूट कलाकृतियाँ यहीं से प्राप्त हुई हैं परन्तु साज–सज्जा, बनावट तथा उनकी संस्कृति का इतिहास दसवीं शताब्दी से भी प्राचीन है।[674] वराहमिहिर की बृहत्संहिता के आधार पर अरब यात्री अल्बरूनी ने एक स्थान पर इन्हें उत्तर–पश्चिम में तथा दूसरे स्थान पर उत्तर में स्थित बताया है[675] तथा मोनियर–मोनियर विलियम्स के संस्कृत–अंग्रेजी कोश में उक्त आधार लेते हुए इनकी स्थिति मध्य में बताई गई है।[676] मार्कण्डेय पुराण के वर्णन के आधार पर[677] पार्जिटर यह मानते हैं कि माण्डव्य लोग एक जनजाति हो सकते हैं, जो माण्डव्य ऋषि की सन्तति थे[678] जिनके लिए विदेह के शासक जनक ने प्रशस्तिपूर्ण गीत गाये थे तथा इन्हीं माण्डव्य ऋषि के आश्रम की स्थिति वे अवध तथा उत्तरी बिहार में मानते हैं और महाभारत के वनपर्व के विवरण के आधार पर, जिसमें माण्डिका एवं विमाण्डिका का उल्लेख हुआ है, माण्डव्यपुर की स्थिति वे गोदावरी नदी के क्षेत्र में मानते हैं[679] परन्तु वास्तव में अधिकतर आधुनिक विशेषज्ञों ने जिस माण्डव्यपुर का तादात्म्य राजस्थान के मंदौर से किया है, उसका आधार बृहत्संहिता आदि में उपरिनिर्दिष्ट वर्णन प्रतीत होते हैं, जो पारजीटर महोदय के विवरण से साम्य नहीं रखते हैं।[680]

हरिचंद नाम के ब्राह्मण ने छठी शताब्दी ई. के मध्य में गुर्जर–प्रतिहार वंश की नींव डाली थी और सर्वप्रथम उसी के चार पुत्रों ने माण्डव्यपुर को दुर्गरक्षित कराया था।[681] आठ सौ सैंतीस ई. में बाउक (Bauka) नाम के गुर्जर भोज प्रथम के सामन्त ने अपनी भुजाओं से माण्डव्यपुर के दुर्ग को जीतकर अपनी कीर्ति का अभिवर्द्धन एवं प्रसारण प्रत्येक दिशा में किया।[682] झांवरिया प्रस्तर दान लेख स्पष्ट करता है कि ग्यारह सौ बासठ ईसवी में माण्डव्यपुर पर

673 बाउक (Bauka) भोज प्रथम के सामन्त (837 ई.) का जोधपुर प्रस्तर लेख, सं. 9, पंक्ति 15

674 Majumdar and Pusalker, 'Struggle for Empire', pp. 660 & 662 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, 'ऐतिहासिक स्थानावली', पृ. 687–688

675 Sachau, E.C., 'Albberuni's India', pp. 300-303.

676. Williams, M.M., op. cit., p. 806.

677. मार्कण्डेय पुराण, 58.38 एवं 46

678 भास्करवर्मन् (600–650 ई.) का ताम्रपत्र लेख, सं. 1 पंचप्लेट, द्वितीय पटल, पंक्ति 116 निधनपुर ताम्रपत्र लेख (भास्करवर्मन्, 600–650 ई. सं. 2, पंचम प्लेट, द्वितीय पटल, पंक्ति 125, भास्करवर्मन् का दूबी प्रस्तर लेख (600–650) सं. 1, पंचम प्लेट, द्वितीय पटल, पंक्ति 116

679 Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 374n.

680 Ibid. Sircar, D.C., 'Select Inscription', Vol. 2, p. 240 n.

681. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 65

682 गुर्जर शासक भोज प्रथम के सामन्त बाउक का जोधपुर प्रस्तर अभिलेख, सं. 9, पंक्ति 10

महाराजपुत्र महन्त गजसिंह का एक सेनानायक (General) जशधवल, जो दामोदर सोलंकी का पुत्र था यहाँ शासन कर रहा था।[683] भिनमन प्रस्तर अभिलेख से सिद्ध होता है कि महंत गजसिंह के वंशज जालौर चाहमान शाखा के उदय सिंह ने विक्रमी संवत् बारह सौ छह से बारह सौ उन्चास तक अर्थात् बारह सौ बासठ से तेरह सौ छह ई. तक यहाँ शासन किया था।[684] इसके पूर्व नाडोल की चाहमान शाखा सहजपाल ने बारहवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में यहाँ शासन किया था।[685] अल्लहनदेव, जिसकी पत्नी अन्नल्लदेवी राष्ट्रकूटवंशीया थी तथा जिसे केल्हन (Kelhan) भी उल्लिखित किया गया है, उसने कुमारपाल चालुक्य की सहायता से ग्यारह सौ चौव्वन ईसवी में माण्डव्यपुर पर अधिकार कर लिया था।[686] दिनेशचन्द्र सरकार एवं अवध बिहारी लाल अवस्थी महोदय माण्डव्यों की स्थिति वामन एवं स्कन्द पुराणों के आधार पर बृहत्संहिता एवं योगवासिष्ठ महारामायण के विवरणों के समकक्ष ही उत्तर में बताते हैं।[687]

सार रूप में वामन पुराण तथा बृहत्संहिता के साथ योगवासिष्ठ महारामायण के उक्त संदर्भित साम्य को माण्डव्यों के सम्बन्ध में स्वीकार करने पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ में उल्लिखित माण्डव्यों की स्थिति पाँचवी छठी शताब्दी ई. में रही होगी, क्योंकि न केवल बृहत्संहिता अपितु वामन पुराण भी इन्हीं शताब्दियों की रचनाएं मानी जाती हैं।[688] इसी प्रकार छठी शताब्दी ई. में गुर्जरों ने माण्डव्यपुर का दुर्गकरण.कर इसे अपनी राजधानी बनाया तदनन्तर यह अधिकृत क्षेत्र अपनी स्वायत्तता को खोकर आने वाली शताब्दियों में अनेक अन्य शासकों के सामन्तों के अधीन बना रहा। इसीलिए यदि माण्डव्यों ने किसी युद्धक संघ में भाग लिया होगा तो यह उनकी स्वतन्त्र एवं शक्तिमय स्थिति में ही सम्भावित हुआ होगा, जो तिथिक्रम की दृष्टि से छठी शताब्दी का मध्यकाल सम्भाव्य है। अतः ऐसी दशा में उक्त आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल का विचार इसी समय किया जा सकता है।

योगवासिष्ठ महारामायण में पारा की स्थिति उत्तर–पश्चिम में बतायी गई है।[689] विजयेन्द्र कुमार माथुर पारा का समीकरण महाराष्ट्र के 'बार' से करते हैं।[690] एक दूसरे स्थल पर वायुपुराण तथा नासिक अभिलेख के उद्धरण के आधार पर उन्होंने इसे पारदा माना है।[691] डे, सरकार, श्याम नारायण पाण्डेय, भगवान् सिंह सूर्यवंशी, पार्जिटर तथा मुज़फ्फर अली के अनुसार मालवा की पार्वती नदी, जो नरवर से होती हुई विजयनगर के निकट चम्बल में गिरती है, वह 'पार' नदी है। यह पूर्व तथा पश्चिम दो शाखाओं में 'पार्वती' नाम से विभक्त हो जाती है।[692] यदि इस नदी के तटवर्ती

---

683. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1916, pp. 101-102.

684 भिनमल प्रस्तर अभिलेख (Epigraphia Indica, Vol. 11, pp. 55-57) Majumdar Pusalker, op. cit., p. 88. Ray, H.C., 'The Dynastic History Northern India', Vol. 2, p. 1129.n2

685. Majumdar, R.G. Journal of the Department of Letters, University of Calcutta, 1923, Vol. 10, pp. 21-22. Epigraphia Indica, Vol. 11, p. 69 n 1.

686. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 86-87. झांवरिया प्रस्तर लेख, प्राचीन वैष्णव मंदिर के स्तम्भ की प्रतिमा के अन्तरिम भाग में उत्कीर्ण लेख (Journal of Asiatic Society of Bengal). 1916. Vol. 12, N.S. pp. 103-104.

687. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Mediaeval India', p. 36n. Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skand Purana', Vol. 1, pp. 233-234.

688. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 317 and 292, 295, 296.

689 यो. महा. 3 36 52

690 माथुर, विजयेन्द्र कुमार पृ. 621

691 वही. पृ. 549

692 Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Mediaeval India', p. 53n. Pandey, S.N. 'The Historical Geography of the Mahabharat', p. 133. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 65n. Ali, S.M., 'Geography of the Puranas', p. 177.

क्षेत्र में कोई पारा राज्य रहा होगा तो उसका प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जबकि दक्षिणी अमरीका में अमेजन नदी के तटवर्ती क्षेत्र में वर्तमान काल में भी एक पारा राज्य है।[693]

अब जब तक इस विषय पर कोई निश्चित मत प्राप्त न हो, आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में उक्त आधार पर कोई विचार प्रस्तुत नहीं किये जा सकते।

आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित दीर्घ देश, जिसमें रहने वालों को विशाल बाहु एवं चरणवाला बताया गया है तथा जिसे उत्तर पश्चिम में स्थित कहा गया है[694], उसका समीकरण राजस्थान के भरतपुर में स्थित दीर्घपु, डीग अथवा दीर्घवती या दीर्घनदी के तटवर्ती क्षेत्र[695] से करना सम्भाव्य हो, तो भी उक्त आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों से दीर्घदेश अथवा इसी नदी के तटवर्ती क्षेत्र पर इसी नाम का देश अपनी स्वतन्त्र स्थिति में कब था? यह स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता।

आलोच्य ग्रन्थ में रंग को भी उत्तर–पश्चिम में बताया गया है।[696], जिसके सम्बन्ध में समीकरण हेतु विजयेन्द्र कुमार माथुर ने एक स्थान पर उत्तरी बंगाल के पुड्रवर्धन[697], जिसे बुद्धगुप्त के समय तक गुप्तों का एक भुक्ति कहा जाता था तथा एक अन्य स्थान पर उस रंगपुर को जहाँ 1935 तथा 1947 ईसवी में उत्खनन द्वारा सिन्धु सभ्यता के अवशेष मिले हैं[698] जिन वर्णनों का तादात्म्य प्रश्नगत ग्रन्थ के विवरण से किया जा सकता है[699] तथा अन्यत्र आन्ध्र प्रदेश के पास स्थित होने के सन्दर्भ में विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं, परन्तु इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता है।[700]

सम्भवतः उत्तर–पश्चिम के स्तनिकों[701] से योगवासिष्ठ महारामायणकार का अर्थ स्तान अथवा कुस्तान में रहने वाले लोगों से है, जो भारत के उत्तर में स्थित बताया गया है तथा जिसका उल्लेख गरुड पुराण में मिलता है[702] और जो चीनी तुर्किस्तान के पूर्व में स्थित बताया गया है जहाँ कि फाह्यान तथा ह्वेन–त्सांग नामक चीनी यात्री आये थे और इत्सिंग नामक परवर्ती चीनी यात्री को भी इसके विषय में ज्ञान था। भारतीय नरेशों में कुषाण तथा तक्षशिला के नरेशों ने यहाँ विजयश्री का झंडा गाड़ा था। अशोक के पश्चात् सम्प्रति के काल में आठवीं शताब्दी तक यहाँ अनेकानेक हिन्दू एवं बौद्ध धर्मो के अवशेष प्राप्त हुए हैं[703] परन्तु स्तनिकों के उल्लेख के आधार पर अस्पष्ट स्थिति होने के कारण हम प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई मत प्रतिपादित नहीं कर सकते हैं।

योग वासिष्ठ महारामायण में उत्तर–पश्चिम के देशों के अन्तर्गत गुरुह का उल्लेख प्राप्त होता है[704] जिसके

---

693 सिंह, कैलाशनाथ लेख 'पारा राज्य', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 7, पृ. 193–94

694. यो. महा. 3.36.53

695. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 439, 381 Dey, N.L., op. cit., p. 57. Pargiter, F.E., Markandeya Purana', p. 292. Ali, S.M., 'The Geography of the Puranas', pp. 115, 136. Pnadey, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharat', p. 42. Sircar, D.C., 'Geography of Ancient and Mediaeval India', p. 50 n.

696. यो. महा. 3.36.53

697. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पृ. 773, 563

698. वही, पृ. 773

699. यो. महा., पूर्वोक्त.

700. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पृ. 773, 563.

701. यो. महा. 3.36.53.

702. गरुड पुराण 1.55.

703. Dey, N.L., op. cit., pp. 194 and 112.

704. यो. महा. 3.36.53.

एक उल्लेख की प्राप्ति मार्कण्डेय पुराण में भी होती है।[705] पार्जिटर इसका अपभ्रंश गुडुह (Guduha), गुलह (Gulaha) तथा गुलुह (Guluha) बताते हुए इसकी स्थिति मध्य-देश में अनुमानित करते हैं[706] विजयेन्द्र कुमार माथुर के अनुसार यह कहा जा सकता है कि कौरव-पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य के नाम पर यह स्थान गुरुग्राम या गुड़गाँव कहलाता है। ऐसी जनश्रुति है कि यहाँ उनका आश्रम था। द्रोणाचार्य का मंदिर भी गुडगांव में है।[707] इन वर्णनों की समता योगवासिष्ठ महारामायण के वर्णन से करने पर मार्कण्डेय पुराण एवं महाभारत के उल्लेखों के आधार को लेते हुए 'गुरुह' के उल्लेख के अनुसार प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि कभी भी गुप्तकाल से लेकर नवीं शताब्दी ई. तक विचार की जा सकती है।

आलोच्य ग्रन्थ में स्त्रीराष्ट्र को पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित बताया गया है।[708] इसी वर्णन में ग्रन्थकार इस देश में अत्यधिक गो, वृषभ तथा सन्ततियों तक के भोजन किये जाने का उल्लेख करता है।[709] हूण और तंगण जातियों के साथ हिमालय के उत्तर एवं कभी-कभी उत्तर-पश्चिम के उल्लेख में इसी देश की स्थिति का वर्णन वाल्मीकि रामायण[710] महाभारत[711], पुराण[712], हर्षचरित[713], विक्रमांकदेवचरित[714] एवं विमलाचरण लॉ के अनुसार महिला द्वीप के समानार्थी शब्द के रूप में महावंश में[715], ललितादित्य मुक्तापीड तथा जयपीड के विजयाभियानों के सन्दर्भ में राजतरंगिणी[716] और चीनी यात्रियों[717] तथा अरबयात्री अल्बरूनी[718] के विवरणों में प्राप्त होता है। मजूमदार एवं पुसल्कर महोदय इसे पुराणों में वर्णित एक ऐसा राज्य मानते हैं, जिसे कश्मीरी ग्रथों के उल्लेख में स्थान प्राप्त हुआ है, किन्तु जिसकी वास्तविक पहचान नहीं है।[719]

स्पष्टतः योगवासिष्ठ महारामायण में जिस स्त्रीराष्ट्र का उल्लेख है, उसके व्यवहार को वन्य जीवों की भाँति पशु एवं सन्ततियों के मांसाहारियों के रूप में उल्लिखित किया गया है। यदि महाभारत आदि के विवरणों से इसकी समता की जाय तो मात्र उल्लेख एवं दिशाक्रम के उचित मानदण्ड के आधार पर उक्त राष्ट्र के सन्दर्भ को दृष्टि में रखते हुए हम आलोच्य ग्रन्थ को अन्तिम रूप में दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी तक रचे जाने से सम्बन्धित विचार पर मनन कर सकते हैं, क्योंकि अन्तिम उल्लेख के रूप में प्राचीन स्त्री राज्य का पता हमें अल्बरूनी तथा विक्रमांकदेवचरित के विवरण में प्राप्त होता है[720], जिनकी तिथि दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी मानी जाती है।[721] महाभारत के आधुनिक पुनरीक्षित संस्करण "जैमिनी भारत" का उल्लेख देते हुए विजयेन्द्र कुमार माथुर तत्र वर्णित स्त्रीराज्य में प्रमीला नाम की शासिका का वर्णन

---

705 मार्कण्डेय पुराण, 58.36

706 Pargiter, F.E., 'Markandeya-Purana', p. 373.

707 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 289-290

708 यो. महा. 3.36.54

709 वहीं

710 वाल्मीकि रामायण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 43.31 तुलना करें – वही, गोरेसियों (Gorresio's) संस्करण, 43.20

711 महाभारत, वनपर्व 41/25, शान्तिपर्व 4.7

712 मार्कण्डेय पुराण 58.20 Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skanda Purana', pt. 1, pp. 48, 68. स्कन्दपुराण, 1.2.39, 153.

713. Bhatta, Bana, 'Harshacharta', Cowell, E.N. and Thomas, F.E., London, 1997, p. 214.

714. Law, B.C., 'Geography of Early Buddhism', New Delhi, 1979, p. 58.

716. Kalhan's Rajtarangini, E. tr., Stein, 1. 40.170-174, 185. 587, 666.

717. Beal, S., 'Buddhist Records of the Western Wrold', 1,p. 199. Watters, Thomas, 'On Yuan Chwang's Travels in India', 1, p. 330. Srivastava, B.N., "Alberuji's India", p. 65.

718. Sachau, E.C., 'Alberuni's India', 1, p. 302.

719. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 134. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 116.

720. Sachau, E.C., op. cit., p. 302. Bilhana, 'Vikramankadevacharita', 18.57.

721. Sachau, E.C., op. cit., VII ff. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 176.

करते हैं और उक्त राज्य की वास्तविकता पर संदेह व्यक्त करते हैं। मात्र साहित्यिक वर्णन के कारण उक्त उल्लेख को आधार स्वीकार करके प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में सापेक्ष रूप में तब तक कोई निर्णीत तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जब तक कि उक्त उल्लेख के कोई ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त न हो जाय।

उत्तर दिशा में स्थित विविध देश

भद्र, वारेव, यौधेय, मालव, शूरसेनिक, राजन्य, अर्जुना–तनय, त्रिगर्त, एकपाद, क्षुद्र, स्वस्तवासी, अबल, प्रखर, शाक क्षम, धूर्ति दशधानागा, अवसन्य, हन्यसनाः, धानदा, सरका, वाटधाना, अन्तरद्वीप, गान्धार, अवन्ति, सुरा, तक्षशिला, वीलव, गाधनी, पुष्करावर्त देश, नाभिमती भूमि, तिक्षाभूमि, कालवराभूमि, काहक, सुरभूतिपुर, रतिकादर्श, अन्तरादर्श, पिंगल, पाण्डव्य, यामुनेयातु धानका, मानव, नांगना, हेमताला, स्वरवमुखा इत्यादि स्थलों का नामसङ्कीर्तन करने के पूर्व ही आलोच्य ग्रन्थ में उत्तर दिशा के हिमवान्, क्रौञ्च, मधुमान्, वसुमान कैलास, मेरु आदि पर्वतों का उल्लेख करके उनके चरण में दोनों ओर स्थित विभिन्न जनों का वर्णन करते हुए उपर्युक्त देशों का उल्लेख किया गया है।[722]

आलोच्य ग्रन्थ में उत्तर के देशों में मद्र का उल्लेख प्राप्त होता है[723], जिसके प्राचीनकाल में दो भाग थे– उत्तर मद्र जो ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार हिमवान् पर्वत के उस पार उत्तर कुरु देश के समीप कश्मीर में स्थित था[724] और दक्षिण मद्र, जो पंजाब के मध्वर्ती प्रदेश में था।[725] पुराणो के अनुसार यह व्यास और चिनाब के बीच में स्थित था।[726] रामायण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है तथा महाभारत में माद्री तथा सावित्री की स्थली के रूप में तथा कर्ण और अर्जुन के विशेष उल्लेख के प्रसंग में मद्र देश का वर्णन प्राप्त होता है।[727] पाणिनी तथा पतञ्जलि ने भी इसका उल्लेख

722 ततः स्त्रीराष्ट्रमतुलं गोवृषापत्यभोजनम्।
अथोत्तरस्या हिमवान्क्रौञ्चोऽथ मधुमानगिरिः।।
कैलासो वसुमान्मेरुस्तत्पादेषु जना उभे।
मुद्रावारेव यौधेया मालवाः शूरसेनिका।।
राजन्याश्च तथा ज्ञेया अर्जुनातनयस्तथा।
त्रिगर्त एकपात्क्षुद्रामबलास्वस्तवासिनः।।
अवलः प्रखलः शाकाः क्षेमधूर्तय एव च।
दशधानागावसन्यदण्डाहन्यसनास्तथा।।
धानदाः सरकाश्चैव वाटधानस्तथैव च।
अन्तरद्वीपागान्धारास्तथावन्तिसुरास्तथा।।
अथ तक्षशिला नाम ततो वीलवगोधनी।
पुष्करावर्तदेशस्य यशोवतिमही ततः।।
ततो नाभिमतिर्भूमिस्तिक्षा कालवरास्तथा।
काहकं नगरं चैव सुरभूतिपुरं तथा।।
तथैव रतिकादर्शा अन्तरादर्श एव च।
ततः पिङ्गलपाण्डव्यं यामुने यातुधानकाः।।
मानवा नांगना हेमतालाः स्वरवमुखास्तथा।
हिमवान्वसुमान्क्रौञ्चकैलासावित्यगास्तथा।। (यो. महा. 3.36 54-62)

723 यो. महा. 3.36 55

724 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1, p. 652. रायचौधरी, हेमचन्द्र "प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास", पृ. 59 कल्हण, राजतरंगिणी, अष्टम तरंग, पंक्ति, 1531 Stein, M.A., Kalhan's Rajtrangini", Vol. 2, p. 120n. Suryavamshi, B.S., "Geography of the Mahabharat", p. 176. Sirccar, D.C., "Geography of Ancient and Medieval India", p. 78.

725 माथुर विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 705-706

726 मत्स्य पुराण, 48 10. 20. 115.7. 118.48. 77. 114.41. 206.5 वायुपुराण, 2. 12-23. 99. 23-24 Sircar, D.C., "Studies in the Geography of Ancient and Medneval India", pp. 47 n, 32 n and 33. ब्रह्माण्ड पुराण, 3.74. 191. 23 भागवत पुराण, 12.1.36. 10.72.13. 9.23. 3 विष्णु पुराण, 4.18.10

727 वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड 43.11 महाभारत, भीष्मपर्व 61.12, आदिपर्व 121.36, कर्णपर्व 45. 40 24 30 उद्योगपर्व, 8, वनपर्व 292, 293.5) गोरखपुर संस्करण), सभापर्व, पंक्ति 1195 1.2033 (कलकत्ता संस्करण).

किया है।[728] रायचौधरी के अनुसार गांधार जनपद का ही प्राचीन नाम माद्रा था।[729] समुद्रगुप्त के इलाहाबाद प्रस्तर अभिलेख में भी इनका दक्षिण–पश्चिम के काबाइली देशों में उल्लेख हुआ है।[730] इसके पूर्व मिलिन्दपञ्ओं में भी इनका उल्लेख मेनाण्डर के शासक के रूप में भी होता है।[731] राष्ट्रकूटों की काल्पनिक विजय का उल्लेख करते हुए लगभग छह सौ दो ईसवी के महाकूट प्रस्तर अभिलेख में वर्णित अनेक देशों के अन्तर्गत मद्रों का भी उल्लेख है।[732] बौद्धग्रन्थों के आधार पर बिम्बसार की एक पत्नी क्षेमा को मद्र देश की राजकुमारी बताया गया है।[733] ऐसा ज्ञात होता है कि मेनाण्डर तथा गुप्तों के अतिरिक्त ये लोग सिकन्दर के काल में पेरु के अधीन थे और इस प्रकार कई शताब्दियों तक अधीनस्थ राज्य के रूप में रहने के पश्चात् जब इन्होंने राजनैतिक महत्ता प्राप्त की तब उन्हें गुप्तों का वशवर्ती होना पडा।[734] मौखरियों को इन्हीं की सन्तति माना जाता है।[735] आठवीं शताब्दी में पालों के अधीनस्थ मुख्यों के रूप में इनका उल्लेख प्राप्त होता है।[736] विजयसेन के देवपाड़ा अभिलेख (लगभग बारहवीं शताब्दी ई.) में मद्रों को सेनों का वशवर्ती बताया गया है।[737] अपनी प्रबल ख्याति के कारण आधुनिक सियालकोट का क्षेत्र सत्रहवीं शताब्दी के गुरु गोविन्द सिंह के समय तक मद्र नाम से विख्यात रहा।[738]

इस प्रकार मद्र के मात्र उल्लेख के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है। सम्भवतः ऐसा उल्लेख इसके प्राचीन ख्याति प्राप्त जनपद होने के कारण अथवा रामायण के एक परिशिष्ट होने के कारण अनेक अन्य ग्रन्थों की ही भाँति प्रश्नगत ग्रन्थ में हुआ हो।

आलोच्य ग्रन्थ में युद्ध में सम्मिलित हुए देशों में यौधेयों का भी उल्लेख मिलता है[739], जो प्राचीन गण जाति थी। साहित्य में पाणिनि की अष्टाध्यायी वह पहला ग्रन्थ है, जिसमें इनका उल्लेख प्राप्त है[740] और जहाँ यह बताया गया है कि यौधेय नाम की उत्पत्ति "योध" शब्द से हुई है।[741] इस प्रकार यौधेय शब्द की उत्पत्ति एवं इन्हें आयुधजीवी संघ कहे जाने के कारण लड़ाकू क्षत्रिय जाति माना जाता है, जिन्हें त्रिगर्तों के साथ उल्लिखित किया गया है[742] तथा जिनका सन्दर्भ अवशीनर रूप में पुराणों[743] के अन्तर्गत एवं अन्यत्र महाभारत[744] में अनेकानेक उल्लेखों में युद्धरत जाति के सन्दर्भ

---

728. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.1.176, 177, 4.2.131, 107–108. पतञ्जलि, महाभाष्य, 1.1.8 तथा 3.2, 2.1.2.

729. रायचौधरी, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 219.

730. वही, पृ. 487. इलाहाबाद प्रस्तर अभिलेख सं. 2, पंक्ति 22.

731. Millindapanha, pp. 1-2.

732. Majumdar and Pusalker, op. cit. Vol. 3, pp. 232-233.

733. Ibid, op. cit., Vol. 2, p. 19.

734. Ibid., p. 160. Majumdar and Pusalker, 'The Classifical Age', p. 9.

735. Ibid., p. 67.

736. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, pp. 46 and 47. खालिमपुर ताम्रपत्र अभिलेख (See Sircar, D.C., 'Select Inscriptions' Vol. 2, pp. 63, 65-66).

737. देवपाडा अभिलेख, सं. 24, पंक्ति 20.

738. Raichaudhari, H.C., Political History of Ancient India, pp. 54f.

739. यो. महा. 3.36.55

740. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.1.178, 5.3. 116–117.

741. Misra, S.N., op. cit., p. 24.

742. पाणिनि, पूर्वोक्त, 5.3.178

743. गरुड़ पुराण, 55. ब्रह्माण्ड पुराण, 3.74. मार्कण्डेय पुराण, 58.47. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 380 n also 'Ancient Indian Historical Traditions', p. 264.

744. महाभारत, आदिपर्व 95.76, सभापर्व 52. 14–15, द्रोणपर्व 18, 162, 157, 158, 159.5, 19.16, कर्णपर्व 5.48, 44.7.

में प्राप्त होता है। टॉलमी द्वारा बताये गये पाण्डोई (Pandoui) अथवा पांडव से इनका सम्बन्ध करने का प्रयास किया गया है।[745] निश्चित रूप से झेलम और सिन्धु नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र तथा सतलज नदी के दोनों किनारों पर बहवलपुर (Bahavalpur) की सीमाओं पर जोहियाबार (Johiyabar) के राजपूतों की स्थिति के कारण इन्हें पंजाब का निकटवर्ती माना जाता है[746] तथा इनकी राजधानी रोहतक बताई गई है[747] साथ ही पंजाब के अनेकानेक क्षेत्रों से यौधेयों की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं।[748] यौधेयों ने अपने को मोर्य साम्राज्य की बढ़ती हुई शक्ति से बचाये रखकर मछेवेलियों (Machiavellian) के मगध साम्राज्य को बनाये जाते समय अपने स्थन को बनाये रखा।[749] यही नहीं, उन्होंने शुंग, शक और कुषाणों की भी महत्त्वाकांक्षा के क्रियान्वयन में बाधा पहुंचाई तथा उनके पतन का एक कारण बने[750] कुषाणों के पश्चात् एक बार फिर इनके पूर्वजों का स्थान बहुधान्यक पुनः अपनी स्वच्छन्द सत्ता स्थापित करने में सफल हुआ, जिसे समुद्रगुप्त के काल में एक स्वायत्तशासी राज्य के रूप में रहना पड़ा[751] देहरादून और सहारनपुर से लेकर होशियारपुर तक के क्षेत्र तक यौधेयों की विभिन्न मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इनके तीन प्रकार के सिक्के तो इन्हें तीन प्रकार की जनजातियों में विभक्त प्रदर्शित करते हैं, परन्तु विद्वानों ने इनकी मुद्राओं को छह भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग, जो सामान्य धातु का है, वह द्वितीय से प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में इनकी राजतन्त्रीय स्थिति को स्पष्ट करता है। द्वितीय भाग, जो द्वितीय से प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का है, उसमें पोटीन (Potin) एवं ताम्र (Copper) धातु का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। तृतीय भाग में रजत एवं ताम्र–निर्मित द्वितीय शताब्दी की मुद्राएं हैं। चतुर्थ भाग में द्वितीय शताब्दी की तथा पंचम प्रकार के प्रथम शताब्दी की तथा षष्ठ भाग में तृतीय एवं चतुर्थ शताब्दी की ऐसी ताम्र मुद्राएं प्राप्त हुई, जिनमें स्वतन्त्रता का उद्घोष तो प्रदर्शित होता ही है साथ ही बनावट में कुषाणों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। द्वितीय शताब्दी की मुद्राओं में प्राकृत के स्थान पर संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है[752] जो यह बात स्पष्ट करता है कि उस समय तक आते–आते यौधेय अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने में सफल हो चुके थे, परन्तु इनकी बढ़ती हुई शक्ति को समुद्रगुप्त के समय अवरोध सहना पड़ा और उसके पश्चात् इतिहास के पृष्ठों पर केवल वराहमिहिर की बृहत्संहिता (छठी शताब्दी) में ही इनका उल्लेख उत्तर एवं उत्तर–पश्चिम के देशों में प्राप्त होता है।[753] विद्वानों का यह मानना कि विभिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों

---

745. Indian Antiquary, Vol. 13, pp. 331-349.

746. Dey, N.L., op. cit., p. 215. Archaeological Survey Report of India, Vol. 14, pp. 140-179 and 245. Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', pp. 281-282.

747. Misra, S.N., op. cit., p. 25.

748. Ibid., pp. 25, 27. 'The Tribal Coins of North India', Journal of the Asiatic Society of Bengal (Numismatic Supplement), Vol. 46, p. 34n. Cunningham, A.A., 'Coins of Ancient India From the Earliest Times Down to the Seventh Century A.D., ', London, 1891, pp. 75-80. Journal of Royal Asiatic Society, 1900, p. 107. Smitch, V.A., 'Catalogue of the Coins in the Indian Museum' Calcutta, Vol. 1, Oxford, 1906, pp. 165, 175-180. Catalogue of the Coins of Ancient India in the British Museum, London, 1936, CXLVII-CLII, 265-278. Journal of the Numismatic Society of India, Bombay, Vol.13, pt. 1, pp. 45-46, 109-112, pt. 2, pp. 160 ff, Vol. 18, pt. 1, 46-58, Vol. 27, pt. 2, pp. 131 ff., Vol. 5, pp. 29 ff., Vol. 2, 109 ff.

749. Misra, S.N., op. cit., pp. 24 f.

750. Ibid. Junagarh Rock Inscription of Rudradaman, 1, No. 67, V. 12. Epigraphia Indica, Vol. 8, pp. 36 ff. Bijayagadh Stone Inscription, Fleet, J.F., Corpus Inscriptionum Indicarum , Vol. 3, pp. 250-251. Raichaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', 4th Edition, Allahabad, p. 457. Journal of Royal Asiatic Society, 1897, p. 30. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 21-22.

751. प्रयाग प्रशस्ति, सं. 2, पंक्ति 21–22 Raichaudhari, H.C., op. cit., 2nd Edition, Allahabad, p. 342.

752. Misra, S.N., op. cit., pp., 25, 223-228.

753. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.26, 17.19, 10.1., 16.22. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 168.

जैसे कुषाण आदि के पतन में यौधेयों का हाथ रहा होगा, एक दोधारी तलवार के रूप में सन्देह की भूमिका यौधेयों के सम्बन्ध में प्रस्तुत कर देता है।[754]

चाहे जो भी स्थिति रही हो, योगवासिष्ठ महारामायण की भाँति बृहत्संहिता एक ऐसा ग्रन्थ है, जो यौधेयों का उल्लेख करता है और उनकी स्थिति उत्तर में बताता है इसे एक आधार मानकर ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में छठी शताब्दी के उत्तरार्ध से विचार किया जा सकता है।

प्रश्नगत ग्रन्थ में उपर्युक्त यौधेयों की भाँति ही मालवों का भी उल्लेख मिलता है।[755] भारत का प्राचीन गणराज्य मालव, जिस मल्लोई नाम से भी जाना जाता था और जिसकी स्थिति सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय (327 ई. पू.) पंजाब (रावीचिनाब के संगम के निकट) फिरोजपुर–लुधियाना में थी[756], यवनराज की सेनाओं का बड़ी वीरता से सामना किया था।[757] महाभारतकाल में इसे सेक और अपर सेक कहते थे।[758] रघुवीर सिंह महोदय के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में मालवा में निषाद और द्राविड संस्कृतियाँ फैली हुई थीं, जिनके अवशेष महेश्वर, नागदा औरे उज्जैन आदि स्थानों पर की गई खुदाई में मिले हैं। वैदिक आर्यों ने द्रविड़ों को पराजित कर इस प्रदेश पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, परन्तु पराजित द्रविड़ों से भी आर्यों ने बहुत कुछ पाया। आर्यों के विश्वासों और भावनाओं के साथ द्राविड़ी परम्पराओं का समन्वय वैदिक काल में ही होने लगा था। तब मालवा की आदिम आर्य संस्कृति का विकास पुण्यसलिला क्षिप्रा, चंबल, नर्मदा आदि नदियों के तटों पर हुआ अवंतिका माहिष्मती (महेश्वर), विदिशा, पद्मावती, दशपुर (मंदसौर) आदि नगर सहस्रों वर्षों से भारत भर में विख्यात रहे। माहिष्मती के हैहय साम्राज्य के समय मालवा में राजनीतिक संगठन के साथ ही सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की नींव पड़ी। महाजनपदों का उदय होने पर अवंतिका के प्रद्योतों और उनके बाद विदिशा और पद्मावती पर शासन करने वाले नागों के समय में मालवा में सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा व्यापारिक परम्पराओं का बहुत विकास हुआ। अशोक के धर्म प्रचार में दूर देशों तक जाने वाले भिक्षुओं तथा बाद में वहाँ पहुँचने वाले बौद्धधर्मावलम्बी प्रकाण्ड विद्वानों में मालवा के निवासियों की भी संख्या अत्यधिक थी। महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग और बड़े–बड़े सार्थवाह उज्जैन और माहिष्मती में ही होकर गुजरते थे तथा वहाँ बने माल को दूर–दूर तक पहुंचाते थे। तब मालवा दो विभागों में विभक्त था, पूर्वी भाग दशार्ण अथवा आकर क्षेत्र कहलाता था और पश्चिमी भाग अवंतिका क्षेत्र। कुछ ही शताब्दियों के बाद शकों ने मालवा पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। तब तक रावी और चिनाव के दोआब से दक्षिण की ओर बढ़ते मालगण टोंक मेवाड़ के प्रदेश में आ पहुंचे थे। पड़ोसी शक्तियों के साथ मिलकर वे अब शकों का सामना करने लगे और अन्त में सन् 225 ईसवी के लगभग उन्होंने शकों के अधीनस्थ गणराज्य की स्वाधीनता घोषित की, जो लगभग सवा सौ वर्षों तक अक्षुण्ण रही। संभवतः इसी काल में मालवगण इस सम्पूर्ण पठार–प्रदेश पर फैल गये जिससे आगे चलकर यह प्रदेश उन्हीं के नाम से मालव प्रदेश कहलाया।[759] कालिदास के मेघदूतम् में इसे चम्बल के किनारे स्थित बताया गया है।[760] रघुवीर सिंह महोदय द्वारा ऊपर वर्णित मालवा को महाभारत काल में अवन्ति नाम से जाना जाता था।[761], जिसके विषय में हम पहले

---

754. Misra, S.N., op. cit., pp. 25-27. cf. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 168 n-1.

755 यो. महा. 3.36.55. 64

756. Agrawala, V.S., 'India as Known to Panini', p. 77.

757. Ibid., p. 453.

758. Dey, N.L., op. cit. p. 245.

759. सिंह, रघुवीर, लेख–'मालवा', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 9, पृ. 258.

760 कालिदास, मेधदूतम्. 1.47

761. Pandey, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharat', p. 129.

ही विरतृत वर्णन कर चुके हैं।[762] यहाँ प्रश्नगत ग्रन्थकार ने जिस मालव का उल्लेख किया है, वह वही प्रतीत होता है, जिसे हम प्राचीनकाल के मालवगण नाम से जानते हैं, जिन्होंने यूनानी सिकन्दर का डटकर सामना किया था और जिसका उल्लेख जैन ग्रन्थ "भगवती सुत्त" में छठी शताब्दी ईसा पूर्व के सोलह महा जनपदों में किया गया है।[763] पाणिनि की अष्टाध्यायी के काशिका खण्ड में मालवों को आयुध–जीवी संघ में परिगणित किया गया है।[764] महाभारत काल में इन्हें एक लडाकू जाति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[765] लगभग एक सौ उन्नीस से एक सौ चौबीस ई. के शक क्षत्रप नहपान के नासिक गुहा लेख में उल्लिखित मालय[766] को मालव मानते हुए उनकी स्थिति राजस्थान में बतायी गयी है, जहाँ पर उनकी मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं।[767] सम्भवतः पंजाब की मालव जन–जाति नहपान के काल तक प्रवर्जित होकर राजस्थान में बस गयी थी और इस प्रकार तत्कालीन समय तक इसके दो भाग हो गये थे। स्मिथ महोदय के अनुसार मूल रूप से ये झेलम और चिनाब के संगम के निचले भाग पर झांग और मोंटगोमरी (Montgomery) जिले में बसे थे[768] मैकक्रिंडल (McCrindle) इनकी भूमि को चिनाब और रावी के दोआब में बताते हैं एवं सिन्धु और चिनाब के संगम पर मुल्तान और मोंटगोमरी जिले में इनके अस्तित्व पर वे प्रकाश डालते है[769] तथा इसी प्रकार राय चौधरी महोदय इनकी स्थिति रावी नदी के दोनों तटों पर स्पष्ट करते हैं।[770] पुराणों में इन्हें दक्षिण भारत के पारियात्र में अन्यान्य जातियों के साथ स्थित बताया गया है।[771] समुद्रगुप्त ने जिन मालवगण जातियों को वशवर्ती बनाया था, उनका उल्लेख यौधेयों के साथ आता है तथा वे आर्यावर्त के पश्चिम तथा दक्षिण–पश्चिम में स्थित थे।[772] पतञ्जलि के महाभाष्य में उत्तर के मालवों का उल्लेख प्राप्त होता है।[773] उत्तरकालीन अभिलेखों में भी सप्त मालव राज्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।[774] सम्भवतः सिकन्दर के काल में इनका क्षुद्रकों के साथ संघ बना तथा अपनी वीरता, स्वतन्त्रता एवं देश प्रेम अनुरक्त मालवों ने मकदूनिया की सेना को अत्यन्त कठिनाई में डाल दिया। इतिहास इस बात के साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि सिकन्दर ने यहाँ वीभत्स नरसंहार किया था और इस समय तक यह मालव पंजाब के क्षेत्र में ही निवास करते थे।[775] जायसवाल महोदय यह मानते हैं कि नाग और मालव एक दूसरे के पर्याय हैं[776], जबकि दो सौ छब्बीस ई. के नंदसा अभिलेख में मालवों ने स्वयं को इक्ष्वाकुवंशीय बताया है।[777] चक्रवर्ती तथा डगलस महोदय इनके आदि पुरुष को मलराज

---

762 प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ. 99 एवं आगे

763 रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 86

764 पाणिनि, अष्टाध्यायी, काशिका खण्ड, 5.3.117

765 महाभारत, द्रोणपर्व, 19.16, 10.17, सभापर्व 32.7

766. Nasik Cave Inscription of the time of Nahapana No. 59, Verse - 3.

767 गोयल, श्रीराम, पूर्वोक्त, पृ. 308, टिप्पणी 10, Misra, S.N., op. cit., p. 79.

768. Smith, V.A., 'Journal of Royal Asiatic Society', 1903, p. 631.

769. Misra, S.N., op. cit., p. 79.

770. Rai Chaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', 4th Edition, p. 202.

771 भागवत पुराण, 12.1.36, विष्णु पुराण, 2.3, ब्रह्माण्ड पुराण, 19.17.

772 समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख, पूर्वोक्त

773. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 110.

774. पतञ्जलि, महाभाष्य, 4.1.68. Epigraphia Indiaca, Vol. 5, p. 229. Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. 13, Pts., 3-4, 1931-32, pp. 229 ff.

775. Misra, S.N., op. cit., p. 80.

776. Ibid.

777. Ibid.

मानते हैं।[778] ऐसा भान होता है कि शक–पार्थियों के आक्रमण के कारण ये भटिंडा (पंजाब) के क्षेत्र को छोड़कर राजस्थान में जा बसे और पंजाब में फिरोजपुर से भटिंडा तक के क्षेत्र में बोली जाने वाली मालवी लोक भाषा के चिह्न छोड़ गये।[779] दो सौ अड़तीस ई0. से पहले ही एक सौ अट्ठारह से एक सौ तेईस ई. तक अपने मूल स्थान से प्रवर्जित हो राजस्थान में बसने तक के समयान्तराल में ही मालवों ने अपना सम्वत् भी आरम्भ किया।[780] इनके गुप्तों से पराजित होने का उल्लेख छठी शताब्दी का वराहमिहिर करता है।[781] अन्यत्र परवर्ती वर्णनों में ऐसा उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। धीरे–धीरे मालवों की राजनैतिक अस्थिरता में अनेक परिवर्तन तथा परिवर्धन हुए[782] पर ऐसा लगता है कि योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को बृहत्संहिता में मालवों के वर्णन के आधार पर सातवीं शताब्दी का माना जा सकता है।

जिन शूरसेनिक को योगवासिष्ठ महारामायण उत्तर के देशों में परिगणति करता है, पूर्व की भाँति वुञ् प्रत्यय के आधार पर उन्हें भी जनपदवाची शब्द मानते हुए बहुवचन में प्रयोग होने के कारण हम शूरसेनी कह सकते हैं[783], जिसका अर्थ शूरसेन से लगाया जा सकता है, जिसे संस्कृत में शूरसेनक तथा शूरसेनज भी कहा गया है।[784] इस प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ में उल्लिखित शूरसेनिक उस शूरसेनक के निवासी हुए, जो प्राचीनकाल में पुराणानुसार शूरसेन नामक राजा के नाम से जाना जाता था, जिसकी राजधानी मथुरा थी तथा जिसके पुत्र वसुदेव थे, जिनके पुत्र श्रीकृष्ण ने यादवों और वृष्णियों को नेतृत्व प्रदान किया था।[785] पाणिनि के अष्टाध्यायी में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है[786] रामायण एवं महाभारत के उल्लेख इनका सम्बन्ध इक्ष्वाकुवंशियों से भी बताते हैं।[787] बौद्धकाल में इसे सोलह महाजनपदों में से एक परिगणित किया गया था, जिसकी राजधानी मथुरा का समीकरण वर्तमान मथुरा से पाँच मील दक्षिण–पश्चिम में महोली नामक स्थान से किया जाता है।[788] पतञ्जलि के महाभाष्य में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[789] भगवान् बुद्ध के समय शूरसेन का शासक अवन्तिपुत्त था।[790] कालिदास परम्परागत रूप में शूरसेन के उद्भव की कथा को वर्णित करते हुए

---

778. Chakraborty, S.K. Journal of Asiatic Society of Bengal, Numismatic Supplement, Vol. 46, p. 48n. Douglas, R.O., Journal of Asiatic Society of Bengal, Numismatic Supplement, Vol. 37, p. 45n.

779. Misra, S.N., op. cit., p. 81.

780. Sircar, D.C., 'Select Inscription', Vol. 1, p. 91.

781. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14. 27–28.

782. देखिए, सिंह, रघुवीर, पूर्वोक्त,

783. यो. महा. 3.36.55, 37.4.

784. Williams, M.M., op. cit., p. 1086.

785. श्रीमद्भागवत पुराण, 10.1. 27–28, 9.24.24, 1.10.34. विष्णु पुराण 2.3.16. देवी भागवत पुराण 4.20. हरिवंश पुराण 58.7. मत्स्य पुराण 46. 46–49. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 30.

786. पाणिनि अष्टाध्यायी, 4.1.177.

787. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 43.11, उत्तरकाण्ड, 70.6 Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', p. 706. महाभारत, आदिपर्व 67, 109 तथा 110. अनुशासन पर्व 147.29, सभापर्व 31.1, 14.26, 52.13, विराटपर्व 5.4. भीष्मपर्व 18.12, 9.52, 52. 19, 56.7. द्रोणपर्व 19.37, 141, 9, 157.29, 11.8, 169.4, कर्णपर्व 47.16.

788. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 51. Rhys-Davids, T.W., "Buddhist India", p. 51. Rhys-Davids, T.W., 'Buddhist India', p. 12-14. विस्वास, अत्रेयी, 'प्राचीन भारत का राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास', नई दिल्ली, 1982. पृ. 103

789. पतञ्जलि, महाभाष्य 1.2.48

790. रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 173.

उस देश में वृन्दावन तथा गोवर्धन का भी उल्लेख करते हैं।[791] बृहत्संहिता में भी इनके विषय में उल्लेख प्राप्त होता है।[792] यूनानी अनुवृत्तों में भी इनका उल्लेख शूरसेनोई (Surasenoi) मिलता है और सापेक्ष रूप में इनकी स्वतन्त्र स्थिति मेगास्थनीज़ के उल्लेख के आधार मौर्यकाल तक निर्धारित की जा सकती है परन्तु यह मूल्यांकन उन्हें मौर्यों के स्वायत्तशासी राज्य होने की ओर भी संदेहास्पद मन्तव्य प्रकट करने हेतु साक्ष्य प्रदान करता है।[793] अरबयात्री अल्बरूनी का ग्रन्थ ही नहीं अपितु परवर्ती शक्तिसंगम तंत्र में भी इनका उल्लेख करता है।[794] वात्स्यायन के कामसूत्र में भी शूरसेन का उल्लेख प्राप्त होता है।[795] सातवीं शताब्दी के ह्वेन–त्सांग नामक चीनी यात्री ने मथुरा का उल्लेख किया है।[796] कनिंघम महोदय के अनुसार यह शूरसेनक जिले का एक क्षेत्र था जहाँ से बौद्ध स्मृति–चिह्न प्राप्त होते हैं।[797]

इस प्रकार प्राचीन शूरसेन मथुरा क्षेत्र तक ही सीमित था परन्तु कालान्तर में साहित्यिक उल्लेखों में इसकी विस्तृत सीमाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[798] इतिहास में शूरसेन की स्वतन्त्र सत्ता का अनुमान हम शुंगकाल के समीपवर्ती समय में पतञ्जलि के उल्लेख के आधार पर कर सकते हैं, परन्तु इसके पश्चात् जिन परवर्ती ग्रन्थों ने, जैसे प्रश्नगत ग्रन्थ ने इसका उल्लेख किया है, वह उक्त जनपद की प्रभावशाली स्थिति की स्मृति मात्र रही होगी। अतः उक्त आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में विचार प्रस्तुत नहीं किये जा सकते।

आलोच्य ग्रन्थ में उपर्युक्त की भाँति ही राजन्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[799] इनका उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि की अष्टाध्यायी में प्राप्त होता है[800] जहाँ पाणिनि उनको देश का राजन्यक कहते हैं। इनका उल्लेख महाभारत[801] तथा मार्कण्डेय पुराण[802] मे भी प्राप्त होता है तथा कात्यायन और पतञ्जलि ने भी अपने ग्रन्थों में इनका उल्लेख किया है।[803] पाणिनि का आधार लेकर शिवनन्दन मिश्र महोदय कहते हैं कि अन्धक–वृष्णि संघ की केवल स्वपलक (Svapalaka) चैत्रक (Chaitraka) सिनि (Sini) तथा वसुदेव (Vasudeva) सञ्ज्ञक सन्ततियाँ ही राजन्यक सम्बोधित की जा सकती हैं तथा अन्य दूसरी क्षत्रिय जातियों को राजन्य कहते थे, जिन्हें अभिसिक्त वंश्य क्षत्रिया कहा जाता था।[804] पंजाब के होशियारपुर से इनकी मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं।[805] इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि अन्धक–वृष्णि संघ के सभी लोगों

---

791. कालिदास, रघुवंश, 6. 45–51.

792. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.3, 4.26, 16.17.

793. McCrindle, John W., 'Ancient India as Described in Classical Literature', p. 108 रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 129. Beal, S., 'SI-YUKI Buddhist Records of the Western World', p. 179. Watters, Thomas, 'On Yuan Chawang's Travels in India', p. 301.

794. Sachau, E.C., op. cit., pp. 299, 300, 302. Sircar, D.C., 'Geography of Ancient and Medieval India', pp. 86 & n.

795. वात्स्यायन, कामूसत्र, 6.9.28.

796. Beal, S., 'SI-YUKI Buddhist Records of the Western World' p. 179.

797. Cunningham, A.A., 'Archaeological Survey Report of India', Vol. 1, pp. 231 ff, Vol. III, pp. 13 ff. Indian Antiquary, Vol. VI, pp. 216 f.

798. Sircar, D.C., 'Geography of Ancient and Medieval India', p. 109.

999. यो. महा. 3.36.56.

800. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.2.53, 2.39, 1.112, 6.2.34.

801. महाभारत, सभापर्व 52.14.

802. मार्कण्डेय पुराण 58.47

803. Agrawala, V.S., 'India as Known to Panini', p. 451.

804. Misra, S.N., op. cit., pp. 122, 165-67.

805. Chakrraborty, S.K., 'The Tribal Coins of Northern India', Journal of Asiatic Society of Bengal (Numismatic Supplement), 46, p. 34n.

को राजनैतिक शक्ति प्रयोग करने का अधिकार नहीं था। केवल शासक वर्ग में ही यह अधिकार निहित था। इस प्रकार के अग्रदूत क्षत्रिय जो शासक वर्ग में आते थे, जब उनकी सन्ततियों ने किसी विशेष स्थान पर अपना जनपद स्थापित कर लिया तो उन्होंने राजनैतिक सम्प्रभुता को अपना विशेषाधिकार माना जो उनकी सन्ततियों और पीढ़ियों में स्थानान्तरित होता है। जनसंख्या के अभिवर्द्धन के साथ–साथ राजनैतिक सत्ता केवल क्षत्रियों के हाथ में ही रही। इन्हीं क्षत्रियों ने एक संघ में 'राजा' की उपाधि धारण की, जो हर कुल के उन प्रमुखों के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द था, जो संघ की सभा में इन क्षत्रियों का प्रतिनिधित्व करते थे। वृष्णि संघ के लिच्छवियों की ही भाँति अन्धक–वृष्णि संघ में राजन्य भी 'अभिसिक्त क्षत्रिय' जाति थे।[806] स्मिथ महोदय राजन्य का अभिप्राय ऋग्वेद के आधार पर क्षत्रिय बताते हैं।[807] परन्तु, एक राजकीय गण जाति के रूप में, जो उत्तर में स्थित थी, हमें उनका सर्वप्रथम उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में प्राप्त होता है।[808] इसके पश्चात् इनका उल्लेख वराहमिहिर की बृहत्संहिता तथा अरबयात्री अल्बरूनी के ग्रन्थों में प्राप्त होता है।[809] मजूमदार तथा पुसल्कर द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल' के अनुसार राजन्य जनपद की मुद्राएं उत्कीर्ण कथानकों के साथ, जो ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों में मुद्रित हैं तथा जिनका तिथिक्रम प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है, उनकी स्थिति उन लिपियों के प्रयोग के आधार पर उत्तर–पश्चिमी राजस्थान में मानी जा सकती है।[810] जबकि नवीं शताब्दी में गुर्जरों द्वारा दिये गये दान के उल्लेख में राजन्य शब्द सम्मानितों के लिए प्रयुक्त हुआ है एवं उस समय वह जनपदवाची नहीं था।[811]

चाहे जो भी हो, यह माना जा सकता है कि पाणिनि के काल से शुंग काल तक यह जनपद उत्तर में होशियारपुर में स्थित रहा होगा और कुषाणों के समय में विदेशी आक्रमणों के कारण विभिन्न जातियों के प्रवर्जन की ही भाँति ये भी राजस्थान में बसे हों, किन्तु बाद में वराहमिहिर एवं अल्बरूनी ने इनके पूर्व स्थान का ही उल्लेख किया हो और इसीलिए योगवासिष्ठ महारामायण में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है। स्पष्ट स्थिति का मूल्याँकन न होने के कारण अनुसंधानात्मक विषय में हम इतना ही कह सकते हैं कि सम्भवतः प्रश्नगत ग्रन्थ में इनका उल्लेख इनकी पूर्व की यशोगाथा का स्मरण मात्र ही रहा हो, जैसा कि बृहत्संहिता तथा अल्बरूनी ने किया है। अतः आलोच्य ग्रन्थ में प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रस्तुत इनके उल्लेख के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं प्रस्तुत किया जा सकता।

इसी प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित अर्जुनों (अर्जुना)[812] के विषय में शिवनन्दन मिश्र महोदय के उल्लेख को सार्थक मानते हुए यह कहा जा सकता है कि उक्त वर्णन अर्जुनायन के सन्दर्भ में ही है। उनके अनुसार भाषा विज्ञान के आधार पर 'अर्जुनायन' की निष्पत्ति अर्जुन शब्द से हुई हैं अर्जुन व्यक्तिवाचक संज्ञा है, जो पाण्डव राजकुमार अर्जुन तथा हैहय कार्त्तवीर्य अर्जुन के सन्दर्भ में प्रयोग में लायी जाती है। सम्भवतः अर्जुनायन राज्य का अर्जुन शब्द उक्त से ही संदर्भित है। महाभारत, पाणिनि तथा पतञ्जलि के मूल उल्लेखों में इनके विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, परन्तु पाणिनि के अष्टाध्यायी के गणपाठ में, जो परम्परागत रूप से पाणिनि की अष्टाध्यायी के रचनाकाल से एक हजार वर्षों तक रचा जाता रहा है, उसमें सर्वप्रथम इनका उल्लेख राजन्यादि गण–समूह में प्राप्त है।[813] के.पी. जायसवाल के अनुसार ये अर्जुनायन एक राजनैतिक शक्ति के रूप में शुंग काल में उभरे। विद्वानों ने

806. Agrawala, V.S., 'India as Known to Panini', pp. 428-429.

807 Smith, V.A., 'The Oxford History of India', pp. 42, 43n, 62, 63n, 66, 74-77, 83, 93, 190-2, 199, 241.

808 पाणिनि, अष्टाध्यायी, पूर्वोक्त,

809 Sachau, E.C., op. cit., p. 303.

810. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 159-160 n.5.

811. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 241

812 यो. महा. 3.36.56

813 Misra, S.N., op. cit., p. 110. Agrawal, V.S., 'India as Known to Panini', pp. 26, 492, 494.

इनकी स्थिति पंजाब में बताई है।[814] समुद्रगुप्त के काल में ये गुप्त साम्राज्य की सीमा पर उन्हीं के स्वायत्तशासी राज्य के रूप में अवस्थित थे।[815] वराहमिहिर की बृहत्संहिता में इन्हें उत्तरी राज्यों में परिगणित किया गया है।[816] इनकी भौगोलिक स्थिति के विषय में विद्वानों में मत–वैभिन्य है। विद्वानों का एक वर्ग (विन्सेंट ए. स्मिथ तथा बिमला चरण लॉ महोदय) इन्हें भरतपुर और अलवर, राजस्थान में मानता है[817] तो दूसरा वर्ग इन्हें कल्चुरियों से समीकृत करता है।[818] इनकी लगभग प्रथम शताब्दी पूर्व अथवा प्रथम शताब्दी ईसवी की ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण तीन प्रकार की मुद्राएं दिल्ली–जयपुर–आगरा आदि स्थलों से प्राप्त हुई हैं।[819]

चाहे जो भी स्थिति रही हो, परन्तु यदि अर्जुना शब्द से अजुर्नायन का तादात्म्य स्थापित करना उचित है तो यह स्वीकार करना होगा कि सिकन्दर के समय ये लोग एक राजनैतिक शक्ति के रूप में उभर रहे होंगे और उसके प्रयाण के पश्चात् उन्होंने एक कबाइल राजनैतिक गण सत्ता के रूप में अपनी स्थिति सम्भाली होगी तथा विभिन्न कुषाणादि विदेशी आक्रमणों के कारण और गुप्त काल में भी सार्वभौमिकता स्थापित न रख पाने के कारण ये विभिन्न स्थानों में प्रवर्जित हुए हों, जो एक मूल कारण रहा होगा कि इनका उल्लेख न केवल वराहमिहिर अपितु योगवासिष्ठ महारामायणकार उत्तर के देशों में करते हैं। यदि यह परिकल्पना यथार्थ के किसी मोड़ पर औचित्य रखती है तो बृहत्संहिता के अन्तिम उल्लेख के आधार पर, जिसमें इन्हें उत्तर के देशों में परिगणित किया गया है, हम योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को छठी शताब्दी ई. के अनन्तर विचार कर सकते हैं, किन्तु तथ्यों के ऐतिहासिक रूप में निर्णायक न होने के कारण एक ओर तो हम शिवनन्दन मिश्र के इस विचार से सहमति व्यक्त करते हैं कि अजुर्नायन गणों का इतिहास अन्धकारमय है[820] तथा दूसरी ओर बहुवचन में जनपद नामोल्लेख में अर्जुना शब्द के योगवासिष्ठ महारामायण में प्रयोग के उचित भाषा वैज्ञानिक आधार पर अर्जुनायन से समीकरण स्थापित करने में संदेहास्पद स्थिति होने के कारण उक्त आधार पर हम अनुसंधानात्मक विषय में कोई निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं कर सकते। यह सम्भव है कि अर्जुनों का जनपद मत्स्य पुराण में उल्लिखित अर्जुन नामक तीर्थस्थल हो[821], जिसका ऐतिहासिक अन्वेषण प्राप्त होने पर और उस अन्वेषण से प्रश्नगत ग्रन्थ के उल्लेख के साथ तादात्म्य स्थापित होने पर ही शोध विषय में कोई निर्णयात्मक तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है।

योगवासिष्ठ महारामायणकार जहाँ तनय को उत्तर में स्थित बताता है[822], वहीं महाभारतकार इन्हें दक्षिण के देशों की सूची में परिगणित करता है[823] वायु पुराण तनय को मद्र देश का एक जनपद बताता है[824], जिस देश की स्थिति कहीं मध्यदेश में[825] और कहीं भारत के उत्तर में[826] बतायी गयी है। इनके इतिहास के विषय में अन्य प्रमाणों का अभाव

---

814. Misra, S.N., op. cit , p. 110.

815. Fleet, J.F., 'Gupta Inscriptions', Allahabad Pillar Inscription of Samudragupta; Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. 3, pp. 8-14. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 1, p. 265; Allahabad Stone Pillar Inscription of Samudragupta, No.2, verse 22.

816. वराहमिहिर, बृहसंहिता, 14.25. 16.22.

817. Misra, S.N., op. cit., p. 111 and note.

818. Ibid.

819. Ibid.

820. Ibid.

821. मत्स्य पुराण 22.43.

822. यो. महा. 3.36.56

823. महाभारत, भीष्मपर्व 9.64

824. वायु पुराण 43.21.

825. ब्रह्माण्ड पुराण 2.16.42.

826. वही, 2.16.48, 18.46.

है, अतः जो उपलब्ध साक्ष्य हैं, उनमें ब्रह्माण्ड पुराण ही ऐसा ग्रन्थ है, जो उक्त जनपद के उल्लेख में योगवासिष्ठ महारामायण के वर्णन के कुछ सन्निकट है।

अतः इसे एक आधार मानते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को पाँचवीं–छठी शताब्दी के पश्चात् अर्थात् ब्रह्माण्ड पुराण की रचना के पश्चात्[827] किसी समय स्वीकार किया जा सकता है।

योगवासिष्ठ महारामायणकार उत्तर के जनपदों में त्रिगर्तो[828] का उल्लेख करके पुनर्जन्म के दर्शन को बताते हुए त्रिगर्त देश में सूकर का उल्लेख करता है।[829] इस प्रकार का उल्लेख दो प्रकार की विशेषताएं प्रकट करता है; प्रथम, त्रिगर्तों का उत्तर में स्थित होना तथा द्वितीय, वहाँ सूकर की प्राप्ति होने की ओर संकेत। समालोचनात्मक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि पाणिनि द्वारा त्रिगर्त में छह देशों का (त्रिगर्त–षष्ठ) सम्विलीयन बताया गया है तथा इन्हें आयुधजीवी संघ वर्णित किया गया है।[830] शिवनन्दन मिश्र महोदय उपर्युक्त काशिका के वर्णन पर अधिक विश्वास इसलिए नहीं करते, क्योंकि यह पाणिनि के काल से एक सहस्र वर्ष तक रचा गया।[831] इसके समीकरण के सम्बन्ध में ऐसा माना जाता है कि यह जनपद रावी, व्यास और सतलज की घाटियों में, कांगरा जिले में, उत्तरी कनारा में तथा आधुनिक पर्वतीय कोटोंच (Kotoch) के क्षेत्र, जिसे आज भी "त्रिगर्त मुल्क" कहते हैं, में स्थित था।[832] एक ओर तो पुराण इन्हें बड़े सिर वाले पहाड़ी जाति के रूप में सम्बोधित करते हैं[833] तो दूसरी ओर महाभारत में इन्हें एक लड़ाकू जाति के रूप में उद्धृत किया गया है।[834] वराहमिहिर तथा कल्हण भी त्रिगर्तो का उल्लेख करते हैं।[835] लगभग आठ सौ तिरासी ई. में त्रिगर्त देश का राजा पृथ्वीचन्द्र था।[836] दसवीं में त्रिगर्त के शासक ने मूषण (Mushana) शासक साहिल्लवर्मन् से पराजय के पश्चात् एक संघ बनाया।[837] कश्मीर के लोहर वंशीय अनन्त ने दस सौ अट्ठाइस ईसवी में त्रिगर्त पर विजय प्राप्त की थी।[838] रे महोदय इस कथन पर अविश्वास व्यक्त करते हैं।[839] वैजनाथ प्रस्तर अभिलेख (लगभग तेरहवीं शताब्दी) में कीरग्राम (Kiragram) के राजा लक्ष्मणंचद्र तथा त्रिगर्त के राजा जयचंद्र का उल्लेख प्राप्त होता है।[840]

---

827 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 298.

828 यो. महा. 3 36 56

829. यो. महा. 4 30 14

830 पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4 2 137 Agrawal, V.S., 'India as Known to Panini', p. 53.

831. Misra, S.N., op. cit., p. 23 n. 5.

832 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 415 Dey, N.L., op. cit., p. 205. Misra, S.N., op. cit., pp. 22-25, 32, 36, 75, 79, 103-105, 109, 162, 194. Cunningham, A.A., 'Arcaheological Survey Report', Vol. 5, p. 148. Epigraphia Indica, Vol. I, pp. 102, 116.

833 मार्कण्डेय पुराण, 57.57 वायु पुराण, 45 136 भागवत पुराण 1 15 16, 10 50 11, 7 मत्स्य पुराण 114 56 Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Meddieval India', p. 46 and n. Ali, S.M., 'The Geography of the Puranas', pp. 169, 138. Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skanda Purana', Part 1, p. 36.

834 महाभारत, आदिपर्व 155.2, सभापर्व 27.18, 32 7, 52 14–15, 8 20, 34.7–12, उद्योगपर्व 166 9, 57 18, 162 9, वनपर्व 271, 12, 18, विराटपर्व 32 1–30, भीष्मपर्व 56 4, 102 22, 20 15, 81 3, 82 13, 72 7, 96.17, 104 8, द्रोणपर्व 11 17, 70 12, 18, 19

835 Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', Vol. 2, p. 56. Stein, M.A., op. cit., Book 5, verse 144.

836. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 118.

837. Ibid., p. 122.

838. Stein, M.A., op. cit., Book 7 and verses 218, 588, 1512. Majumdar and Pusalker, op cit., Vol. 5, 98.

839. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Vol. 1, p. 118.

840. Baijnath Stone Inscription of the Time of Jaychchandra (Laukika) year 80, Saka (1126) expired (1204 A.D.) No. 39-40. Sircar, D.C., "Select Inscription", pp. 413-418.

इस प्रकार से लगभग चौथी से तेरहवीं शताब्दी तक त्रिगर्तो का उल्लेख प्राप्त होता है पर इन उल्लेखों के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल का मूल्यॉकन सम्भव नहीं है, क्योंकि उल्लेखों में एवं योगवासिष्ठ महारामायण में एक ही विषय में कुछ साम्य प्रदर्शित होता है और वह है– उनकी भौगोलिक स्थिति, परन्तु उनके देश में सूकरों के मिलने के विषय में कोई अन्य उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

शकों के उल्लेख में आलोच्य ग्रन्थ का विवरण न केवल उन्हें उत्तर के देशों में परिगणित करता है[841] अपितु दशकों के साथ केशाकेशि युद्ध करते हुए[842] आकाश के समान नील वर्ण शक कदम्बों का धवल वर्णीय पारसीकों से युद्धरत होने[843] के साथ ही साथ शकों द्वारा लौह वाणों का सहन न कर पाने का अन्यत्र उल्लेख[844] तथा उन्हें विपशिचत् (काल्पनिक राजा) द्वारा पूर्व सागर की तटभूमि की एला (इलायच) वन श्रेणियों में पहुंचा कर एक दिन तक बाँधकर छोड दिये जाने[845] एवं विपश्चित पूर्व में शाकद्वीप के उदय पर्वत के वनों में सोये रहने[846], पुनः पश्चिम दिशा में शाक द्वीप में उसे एक अप्सरा द्वारा काम किये जाने[847] तथा पुनः उसे उत्तर की ओर नीलगिरि पर्वत श्रेणी में अन्धे कूप में मेढक बनकर निवास किये जाने[848] का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार एक सजीव विवरण और दर्शन प्रस्तुत करता है। इस प्रकार की सूचनाएं, जो शकों के विषय में ग्रन्थ में सुरक्षित हैं, उनका ऐतिहासिक मूल्यॉकन ही आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर कुछ प्रकाश उक्त आधार पर डाल सकता है।

शकों के विषय में अष्टाध्यायी[849], रामायण[850], महाभारत[851], पतञ्जलि का महाभाष्य[852], मनुस्मृति[853], पुराण[854] तथा

---

841 यो. महा. 3 36 57

842 केशाकेशिकृतारम्भा विनेदुर्दाशकाः शकाः।
दशार्णाः पाशनिर्मुक्तश्रृङ्खलाजाल भीरवः। (वही, 3 37 17)

843 आकाशगार्णवप्रख्यो वहच्छककदम्बकः।
अकरोत्पारसीकानां घननैशतमो भ्रमम्।। (वही, 3 37 25)

844 नाराचनिकर नीलं निमेषं नाऽसहञ्छकाः।
रमठा नलिनीषण्डा इव ताण्डवितासवः।। (वही, निर्वाण उत्तरार्ध 112 9)

845 तीरैलावनलेखासु शकाः पूर्वपयोनिधेः
नीता बद्ध्वा दिनं मुक्ता न गता यमसादनम्।। (वहीं, 28)

846 शाकद्वीपोदयगिरितटे सप्तवर्षाणि सुप्तम्।
पूर्वेणाऽन्तर्विदलगहने यक्षसंमोहितेन।।
पाषाणम्बु प्रसभममुनैवाऽत्र पीत्वा दृषत्ता–
मागत्वाऽन्तः स्थितमथ समाः सप्त जात्येन भूमः।। (वही, 124 17)

847 शाकद्वीपेऽस्तशैलस्य शिरस्यभ्रगुहागहे।
पिशाचाप्सरसा मासं पाश्चात्यः कामुकीकृतः।। (यो. महा., 124 18)

848 कौमारं वर्षमासाद्य श्यामाद्रेरुत्तरस्तटम्।
शाकद्वीपेऽन्धकूपेऽन्धो न्यवसच्छरदां शतम्।। (वही, 124 22)

849 पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4 1 175

850 वाल्मीकि रामायण, आदिकाण्ड 54 2, किष्किंधाकाण्ड 43 12

851 महाभारत, सभापर्व 332 17, 51 30, उद्योगपर्व 4 15, 19 21, भीष्मपर्व 11 2, 8–40, 9 51, द्रोणपर्व 119 45, कर्णपर्व 7 18 अनुशासनपर्व 33 21

852 Indian Antiquery, 1875, p. 244. Agrawala, V.S., 'India as Known to Panini', p. 78.

853 मनुस्मृति, 10 44

854 अग्नि पुराण, 108 1-2 भागवत पुराण, 8 13 2, 9 1 12, 19 22 ब्रह्माण्ड पुराण, 3 60 3 मार्कण्डेय पुराण 53, 17–19 Awasthi, A.B.L., 'Studies in Skanda Purana', Pt. 1, p. 82 n. Sircar, D.C., Sircar in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 33n, 67 and 68 and n.

बृहत्संहिता[855] आदि ग्रन्थों से कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है। सूर्यवंशी महोदय महाभारत के आधार पर शकों के देश में बड़े एवं तीक्ष्ण गर्दभों का उल्लेख करते हैं।[856] पाणिनि तथा दारावहों प्रथम के काल में शकों का निवास तथा प्रभाव क्षेत्र ऑक्सस घाटी (Oxus-Valley) समर–कन्द (Samarr-Kand), खो–कन्द (Kho-Kand) चिम–कन्द (Chim-Kand) ताश–कन्द (Tash-Kand), पॉज–कन्द (Panj-Kand), यार–कन्द (Yar-Kand) आदि क्षेत्र में बना हुआ था।[857] शुंग काल में शकों का परिगणन शूद्रों में था तथा वे इस समय भी आर्यावर्त के बाहर ही थे।[858]

ऐतिहासिक दृष्टि से यह ज्ञात होता है कि शक लोग सर्वप्रथम हखामनी (Achae-Menian) साम्राज्य की प्रजा थे। तीन अलग–अलग प्रकार के शकों के निवास स्थान के विषय में हमें प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त होता है। उनमें से एक वह स्थल था, जो ज़क्सारटस (Jaxartes) नदी की घाटी, या सर–दरिया (Syr-Dariya) और ऑक्सस (Oxus) या आमू–दरिया (Amu-Dariya) के मध्य एशिया के मैदानी भाग में स्थित था। ऐसा माना जाता है कि परवर्तीकाल में वे ईरान में हेलमुंड (Helmund) की घाटी में बस गये। ये दोनों प्राचीन एवं नवीन शकों के स्थल सीमिया के नाम से विख्यात हुए जबकि पूर्वी ईरान के क्षेत्र को सीस्तान (Seistan) या शकस्तान (Sakastan) नाम से जाना गया, इसे मध्यकाल में पारसीकों द्वारा सीजिस्तान (Sijistan) नाम से जाना जाने लगा। प्राचीन भारतीयों ने इसका ही नामोल्लेख शकद्वीप के रूप में किया है। इस सन्दर्भ से मध्य एशिया में ऑक्सस (Oxus) तथा जक्सारटस (Jaartus) घाटियों में शकों के निवास के विषय में परिज्ञान प्राप्त होता है।[859] दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य एशिया में होने वाली नवीन क्रांति के परिणाम स्वरूप, उद्‌भूत नवीन पल्लव साम्राज्य के फ्रेटस (Phrates) द्वितीय (138–128 ईसा पूर्व) ताबनुस (Tabanus 128-123 ईसा पूर्व) तथा मिथ्रिडैटस (Mithridatus) द्वितीय (123–88 ईसा पूर्व) के सम्पर्क में आने के पश्चात् शक अन्ततोगत्वा द्रंग्याना (Drangiana) प्रदेश, सीस्तान (Seistan) या शकस्थान (Sakasthan) में जा बसे। तदनन्तर वे अपनी शक्ति का प्रसार भारत की ओर करने में संलग्न हो गये। इस कार्य के लिए उन्होंने सीस्तान से होते हुए दक्षिण अफगानिस्तान और बलूचिस्तान (Baluchistan) से घुसते हुए सिंधु की घाटी के निचले भाग, जिसे सम्भवतः भारतीय साहित्य में शकद्वीप नाम दिया गया, (उसी मार्ग) का अनुसरण किया। इस प्रकार भारत में उनके साम्राज्यवादी अधिग्रहण का काल अठत्तर ईसा पूर्व माना जाता है और प्रथम स्वतन्त्र शासक की उनकी स्थिति अट्ठासी ईसा पूर्व से मानी जाती है। इन्होंने भारत में एक नवीन प्रशासनिक प्रणाली, जिसे क्षत्रिय शासन प्रणाली के नाम से जाना जाता है, लागू कराया तथा शकों का शक्तिशाली राज्य इतिहास में उठती–गिरती यवनिका की भाँति चार सौ पन्द्रह ईसवी तक पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा।[860] जीन प्रेज़ीलुस्की (Jean Przyluski) के अनुसार हखामनियों के

---

855. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.21.

856. Suryavanshi, B.S., 'Geography of the Mahabharat', p. 180.

857. Agrawal, V.S., "India as Known to Panini", p. 68. Persepolis Inscription (E) of Darayavaush (Darius), No 2, verse 18.

858. Agrawal V.S., op. cit., p. 78.

859. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 120. Dey, N.L. op. cit., pp. 172f. Sircar, D.C., op. cit., pp. 24-25.

860. Mookerji, R.K., 'Ancient India', pp. 141, 195-186, 210-218, 222-224, 226-228, 250-251, 265, 279, 232, 259, 279, 504.
रायचौधरी, हेमचन्द्र, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास', पृ. 5,27, 376, 380, 383ए 416–427, 431, 451, 489, 560 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 41, 95, 97, 107, 103, 108, 113, 144, 154, 158, 166, 178, 221, 120-3. मिराशी, वा.वि., 'सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख', लखनऊ, 1982, पृ. 11, 38, 42–43, 51, 53, 78, 81, 93, 95, 98, 103, 74, 67 बिस्वास, अत्रेयी, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास', दिल्ली, 1982, पृ. 272 एवं आगे राय, उदयनारायण, 'गुप्त सम्राट और उनका काल', पृ. 27, 132–133, 135, 185, 190 Mookerji, R.K., 'The Gupta Empire', Delhi, 1973, pp. 3-5, 15, 26-28, 48, 55, 57, 64, 70, 93, 140. Basham, A.L., 'The Wonder that India', Delhi, 1967, pp. 62-63. Smith, V.A., 'The Oxford History on India', pp. 37, 114n, 144n, 147-148, 157, 162, 167n, 266, 158. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', pp. 7, 7, 11, 91, 103, 117, 206, 474, 485, 520, 524, 181, 184-186, 188, 519.

पंजाब के एक क्षेत्र पर अधिकार करने के समय शकों की एक शाखा, जो हिमालय के पार के क्षेत्र (Trans Himalayan region) में रहती थी तथा तत्कालीन समय में पंजाब के अधिकृत क्षेत्र में आयी थी, उसके साथ शाकल अथवा आधुनिक सियालकोट का तादात्म्य स्थापित किया जाता है।[861] भारत में यवनों के साम्राज्य का अन्त शकों के बढ़ते हुए दबाव के कारण माना जाता है और यह भी विश्वास किया जाता है कि ये लोग आक्रामकों के रूप में भारत में उस क्षेत्र से आये थे, जिसे बड़े सिर वाली जातियों ने अधिकृत कर रखा था और सम्भवतः अपनी आरम्भिक स्थिति में वे भी उन्हीं में से एक थे। आज भी पश्चिमी पंजाब के दक्षिणवर्ती क्षेत्र के समीपवर्ती भाग में ऐसी जातियों की प्राप्ति है, जिनमें हमें शकों के चिह्न तब तक प्राप्त नहीं होते, जब तक उन्होंने पूर्व के कूर्ग (Coorgs) क्षेत्र तक प्रयाण नहीं कर लिया। यदि हम यह मान लें कि पूर्वी भारत में रहने वाली बड़े सिर वाली जाति शकों के सम्मिश्रित रक्त का परिणाम है तो लेवी (Levi) महोदय के मतानुसार यह मानना होगा कि अपने प्रारम्भिक प्रव्रजन एवं स्थापन काल में शक और मुरुण्ड पूर्वी भारत में स्थित थे, जिसका समर्थन जैन, चीनी तथा टॉलमी के वृत्तान्त एवं आभिलेखिक सामग्री से प्राप्त होता है[862] तथा इसी क्रम में ज़ीन प्रज़ीलुस्की महोदय का यह विचार भी महत्त्वपूर्ण है कि यूनानी सिकन्दर के भारत में प्रवेश से पहले ही शकों की घुसपैठ निरन्रता से यहाँ आरम्भ हुई।[863] परवर्ती इतिहास यह स्पष्ट करता है कि शक, यू–ची (Yuch-Chis), आभीर, हूण तथा गुर्जर सभी मध्य एशिया की खानाबदोश जंगली जातियाँ थी और जब पाँचवीं–छठी शताब्दी ईसवी में हूण शक्ति सम्पन्न होकर सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य की माला के धागे को विवर्ण तथा विवर्जित करने में सफल हुए तो शक भी इस उथल–पुथल से स्वयं को बचा न सके।[864] दसवीं शताब्दी तक सम्भवतः सामन्तशाही स्थिति आ गयी थी।[865] छठी शताब्दी ईसवी के प्रथम चरण में विक्रमादित्य हर्ष द्वारा शकों का उन्मूलन किया गया।[866]

इस प्रकार राजनैतिक इतिहास के प्रकाश में यह दृष्टिगोचर होता है कि लगभग छठी शताब्दी ईसवी तक शकों की राजनैतिक सत्ता निष्प्राण हो चली थी तथा दसवीं शताब्दी तक आते–आते उनकी स्थिति सामन्तों सी हो गयी थी और ग्यारहवीं शताब्दी तक इतिहास के पृष्ठों में उनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

इस स्थिति को ध्यान में रखने पर एक ओर तो यह मत प्रस्तुत किया जा सकता है कि आलोच्य ग्रन्थ में शकों की पराजय एवं भय के वर्णन का उल्लेख तभी सम्भव है, जबकि वे अपनी सार्वभौमिक शक्ति खो चुके थे। उपर्युक्तानुसार यह स्थिति छठी शताब्दी के प्रथम चरण में आती है। दूसरी ओर महाभारत में वर्णित शकद्वीप, नीलगिरि पर्वत तथा शकों के नील वर्ण का तुलनात्मक अध्ययन जब आलोच्य ग्रन्थ के उक्त उद्धरण से किया जाता है, तो उन वर्णनों में लगभग साम्य दृष्टिगोचर होता है।[867] केवल एक ही अंश ऐसा है, जो शक पारसीक युद्ध का वर्णन आलोच्य ग्रन्थ में करता है। इससे सिद्ध होता है कि आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल का चिन्तन तभी से किया जा सकता है, जब शकों की क्षीण शक्ति तथा पारसीकों की उद्‌भूत शक्ति में टकराव पैदा हुआ हो। इस स्थिति का अनुमान उस समय से लगाया जा सकता है जब महाभारत के सभापर्व एवं भीष्मपर्व की रचना हो चुकी होगी और इसीलिए उसके उक्त पर्वों के रचनाकाल के पश्चात् तथा शकों के राजनैतिक सत्तात्मक अस्तित्व के समापन के पश्चात् अर्थात् छठी शताब्दी ईसवी के अनन्तर

861. Chatopadhyay, Sudhaker, 'Racial Affinities of Early North Indian Tribes', New Delhi, January 1, 1973, p. 29.

862. Ibid., p. 35-36.

863. Ibid., p. 94.

864. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, pp. 677-78. Raichaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', 2nd Edition, p. 274.

865. Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Vol. 1, pp. 139, 986.

866. Kalhan's Rajtarangini, op. cit., Vol. 1, Book 3, p. 83, Book 2, p. 56.

867. यो. महा., निर्वाण उत्तरार्ध 124.22, उत्पत्ति प्रकरण 37.25, तुलना करें– महाभारत, भीष्मपर्व 11.2. 8-40. यो. महा., निर्वाण उत्तरार्ध, 112.28, तुलना करें– महाभारत, सभापर्व 32.17

कभी भी प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में विचार किया जा सकता है।

इसी क्रम में ग्रन्थकार वाटधानों का भी उल्लेख उत्तर के देशों में करता है।[868] महाभारत में इस देश[869] की स्थिति पश्चिम[870] तथा पूर्वोत्तर[871] दिशा में बतायी गयी है। इस वर्णन के आधार पर एक ओर तो इसका समीकरण पुष्करावर्त और चित्तौड़ से किया गया है[872] तथा दूसरी ओर वेठद्वीप और भटिंडा के क्षेत्र से भी किया गया है।[873] मार्कण्डेय आदि पुराणों में भी इस देश का उल्लेख मिलता है।[874] पार्जिटर और पाण्डेय ने इसकी स्थिति फिरोजपुर से दक्षिण की ओर बतायी है।[875] मोतीचन्द्र के वाटधानों के शुगों से समीकरण को भगवान सिंह सूर्यवंशी ने अनुचित ठहराया है।[876] वराहमिहिर वाटधान का उल्लेख 'ग्रामराष्ट्रनी' में करता है।[877]

इस प्रकार उक्त वर्णन आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की स्थिति पर इतना प्रकाश डालता है कि वाटधानों के उल्लेख के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को पुराण एवं महाभारत के प्रचलन के समय से तथा बृहत्संहिता के पूर्व से विचार किया जा सकता है, क्योंकि वराहमिहिर के अतिरिक्त इनके जनपद सार्वभौम्य रूप का दर्शन महाभारत एवं पुराणों में ही दिखाई देता है।

गांधार का उल्लेख उत्तर के देशो में किया गया है साथ ही एक स्थल पर उनको गौडों द्वारा पराजित किये जाने का भी उल्लेख मिलता है।[878] इनका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में मिलता है।[879] शतपथ ब्राह्मण में इसे उदीच्य के देशों में परिगणित किया गया है।[880] गंधार निवासी पाणिनि ने इसकी राजधानी तक्षशिला का उल्लेख किया है।[881] वाल्मीकि रामायण में गंधार को एक विषय (जिला) माना गया है।[882] महाभारत[883], पुराणों[884] तथा कालिदास के ग्रन्थों[885] से इसके विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। वेदोत्तरकाल में गंधारवासियों के प्रति आर्यजनों का दृष्टिकोण

---

868 यो. महा. 3.36.58

869 महाभारतत, उद्योगपर्व 19.31, द्रोणपर्व 11.17, भीष्मपर्व 27.4, कर्णपर्व 73.17

870 महाभारत, सभापर्व 32.8

871 वही, भीष्मपर्व 9.45–70

872 माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 839

873 अग्रवाल, वासुदेवशरण, कादम्बिनी, अक्टूबर, 1962, नई दिल्ली Journal of Asiatic Society of Bengal, 1902, p. 161

874. मार्कण्डेय पुराण 57.35 Sircar, D.C., "Studies in the Geography of Ancient and Medieval India", p. 32. Ali, S.M., op. cit. pp. 142, 163.

875. Pargiter, F.E., Markandeya Purana, p. 312. Pande, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharat", pp. 128-128.

876. Suryavanshi, B.S., op. cit., pp. 15-20.

877 वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 16.22

878. यो. माह. 3.36.58, 3.37.24

879 उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणिमन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गंधारीणामिवाविका।। (ऋग्वेद 1.126.18. एवं 7)
'गंधारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यः प्रैष्यन्
जनमिव शेवधिं तक्मान परिदद्मसि' (अर्थवेद 5.22.14)

880 शतपथ ब्राह्मण, 1.2.4.1

881 पाणिनि, अष्टाध्यायी 4.3.93, 4.1.169

882 वाल्मीकि, रामायण, उत्तरकाण्ड 101.11, 111.14, 213.11, 114.11

883 महाभारत, आदिपर्व 109.5–17, भीष्मपर्व 9.53

884 मत्स्य पुराण 48.6–7, 114.41, 121.46, 144.57 वायु पुराण 48.6–7, 114.41, 121.46, 144.57, वायु पुराण 99.9–10 भागवत पुराण, 9.23.15 ब्रह्माण्ड पुराण 3.74.9–10, 2.16.47, 18.47, 31.83, 3.63.190, 73.108, 74.9–10 विष्णु पुराण 4.17.4 हरिवंश पुराण 2.98.48

885 Upadhyaya, B.S., 'India in Kalidasa', p. 67.

बदल गया था और गंधार में बड़े–बड़े विद्वान् और पंडित जाकर बसने लगे थे। बौद्धकाल से पूर्व तक्षशिला गंधार की लोकविश्रुत राजधानी थी जो अपने विद्याकेन्द्र के कारण भारत भर में सर्वमान्य समझी जाती थी। छांदोग्योपनिषद् में उद्दालक आरुणि ने सद्गुरु वाले शिष्य के अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुंचने के उदाहरण के सम्बन्ध में गंधार का उल्लेख किया है। इससे विदित होता है छांदोग्य के रचयिता का गंधार विशेष रूप से परिचित देश था। ऐतिहासिक जनश्रुति में कौटिल्य चाणक्य को तक्षशिला महाविद्यालय का ही रत्न बताया गया है। केकय जनपद इसके पूर्व की ओर स्थित था। जातकों में कश्मीर और तक्षशिला प्रदेश दोनों की ही स्थिति गंधार में बतायी गयी है। तक्षशिला के अनेक उल्लेख जातकों में है। इस समय यह नगरी एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के केन्द्र के रूप में दूर–दूर तक प्रख्यात थी। जैन उत्तराध्ययन सूत्र में गंधार के जैन नरेश नग्गति या नग्नजित् का उल्लेख है। बुद्ध तथा पूर्व बुद्धकाल में गंधार उत्तरी भारत के सोलह महाजनपदों में परिगणित था।[886] सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय गंधार में कई छोटी–छोटी रियासतें थी जिनमें तक्षशिला और अभिसार प्रमुख थी।

मौर्य साम्राज्य में सम्पूर्ण गांधार देश सम्मिलित था[887] कुषाण साम्राज्य का भी यह अभिन्न अंग था। इसी समय यहाँ नयी राजधानी पुरुषपुर या पेशावर में बनायी गयी थी। इस काल में तक्षशिला का पूर्वगौरव समाप्त हो गया था। गुप्तकाल में गंधार सम्भवतः गुप्त साम्राज्य के बाहर था क्योंकि उस समय यहाँ यवन, शक आदि विदेशी जातियों का प्रभुत्व था। सातवीं शती में गंधार में अनेक भागों में बौद्धधर्म पर्याप्त उन्नत था। आठवीं–नवीं शती में मुसलमानों के उत्कर्ष के साथ धीरे–धीरे यह देश उन्हीं के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव के अन्तर्गत आ गया। आठ सौ सत्तर ईसवी में अरब सेनापति याकूब एलेस ने अफगानिस्तान को अपने अधिकार में कर लिया, किन्तु इसके बाद भी यहाँ के हिन्दू तथा बौद्ध अनेक क्षेत्रों में रहते रहे, जैसे वे आज भी रह रहे हैं। अलप्तगीन और सुबुक्तगीन के हमलों का भी उन्होंने डटकर सामना किया था। नौ सौ नब्बे ईसवी में लमगान (प्राचीन लपाक) का किला उनके हाथ से निकल गया और इसके बाद काफिरिस्तान को छोड़कर सारा अफगानिस्तान मुसलमान धर्म में दीक्षित हो गया।[888]

वीरपुरुषदत्त्त के नागार्जुनीकोंड अभिलेख (तृतीय शताब्दी का द्वितीय चरण) में भी गंधारों का उल्लेख मिलता है।[889] पाँच सौ बाइस से चार सौ छियासी ईसा पूर्व के दारावहो प्रथम के बेहिस्तून (Behistun) तथा परसीपोलिस अभिलेखों में एक अधीनस्थ राज्य के रूप में इनका उल्लेख प्राप्त होता है[890] इसी प्रकार का उल्लेख उसके सूसामहल अभिलेख में भी प्राप्त होता है।[891] अशोक के पंचम शिलालेख में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।[892] ह्वेन–त्सांग के समय में भी यह देश स्वतन्त्र स्थिति में था और चीनी यात्री ने इसके क्षेत्रफल तथा सीमाओं का वर्णन किया है।[893] यहाँ से अनेक रजत, स्वर्ण, नागर एवं नैगम सिक्कों की भी प्राप्ति हुई है, जो इनके मौर्योत्तर युगीन सिमटते ऐतिहासिक

---

886 Woodward, F.L., 'Anguttara Nikaya', London, 1932-36, Vol. 1, p. 213, Vol. 2, pp. 252, 256 and 260. Jatak, 3, p. 365. Law, B.C., 'Geography of Early Buddhism', New Delhi, 1979, pp. XVI, 3, 26, 49-50. Rhys-Dvais, T.W., op. cit., pp. 14-15.

887 Misra, S.N., op. cit., p. 99.

888 माथुर, विजयेन्द्रकुमार, लेख 'गंधार, गांधार', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 3, पृ. 350

889. वीरपुरुषदत्त का नागार्जुनीकोंड अभिलेख, सं. 101, पंक्ति।

890 Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', pp. 4 ff.

891 अशोक का मानसेहरा पंचम शिलालेख, पंक्ति 4

892 Tola, Fernando and Carmen, Dragonetti, 'India and Greece Before Alexander', Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Vol. 67, 1986, p. 159 & n.

893. Watters Thomas, 'On Yuan Chwang Travels in India', 1, pp. 198-199, 202, 214. Beal, S., o. cit., 1, pp. 15, 31, 32, 78, 99, 102, 103, 106, 56, 57, 63, 97, 98n. 109n., 136n, 151, 153n., 156n

राजनीतिक परिवेश का अंकन कराते हैं।[894] मिनेण्डर का साम्राज्य गंधार तक विस्तृत था क्योंकि यहाँ से भी उसके सिक्के प्राप्त हुए हैं[895] इतिहास यह भी स्पष्ट करता है कि उत्तर की पहाड़ी जातियों में तीन सौ अट्ठाइस–उन्तीस ईसा पूर्व के यूनानी शासक सिकन्दर के अभियान का घोर प्रतिरोध गंधार एवं बक्त्रियाना में किया था। इसी यूनानी शासक के काल में गंधार दो भागों में विभक्त था, जिसे अभिसार और तक्षशिला कहते थे।[896] सर औरल स्टीन (Sir Aural Stein) कहते हैं कि पाँचवीं शताब्दी के मध्य में हूणों ने गंधार के क्षेत्र को अधिकृत कर लिया।[897] खलिमपुर ताम्रपत्र अभिलेख गौड–शासक धर्मपाल के अधीनस्थों में गंधारों का परिगणन करता है।[898]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण की समालोचना यह स्पष्ट करती है कि ह्वेन–त्सांग की क्यानतोलो (Kiantolo), स्ट्रेबो (Strabo) आदि का कुंदार, (Gandhrideo) हल्टज़ (Hultzsch) के शब्दों में यूनानी, काबुली तथा उत्तर–पश्चिमी पंजाब के निवासियों का समूह जहाँ रहता था तथा आइने अकबरी में पुकेली जिले से लेकर कश्मीर एवं अटक (Attock) तक विस्तृत प्राचीन वैदिक समय से उत्तर देशों में परिगणित इसी गंधार का क्षेत्र, आधुनकि पेशावर एवं रावलपिंडी, स्वागत, होती मुर्दन (Hoti Murdan) सिंधु तथा पंजकोरा (Panjkora) का मध्यवर्ती क्षेत्र रानीघाट, संघाव (Sanghao) नुट्टू (Nuttu) तथा ज़माल गिरि अर्थात् सिंधुनदी के पूर्व और उत्तर–पश्चिम की ओर स्थित प्रदेश, वर्तमान अफ़गानिस्तान के पूर्वी भाग में फैला हुआ था।[899] जिसको योगवासिष्ठ महारामायणकार गौडो द्वारा पराजित बताता है[900] और जिसकी पुष्टि खालिमपुर अभिलेख[901] में वर्णित भय भीत, अधीनस्थ गंधारों से करने पर हम प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को उक्त उल्लेख के आधार पर आठवीं–नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में विचार कर सकते हैं।

तक्षशिला को भी योगवासिष्ठ महारामायणकार उत्तर के देशों और जनपदों में गिनता है।[902] जहाँ तक जानकारी प्राप्त है गंधार देश की राजधानी तक्षशिला थी। अष्टाध्यायी रामायण, महाभारत, पुराण तथा रघुवंश में इसका उल्लेख मिलता ही है साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इसके संस्थापक भरत के पुत्र तक्ष थे, जिसके दूसरे पुत्र पुष्कल ने गांधार की दूसरी राजधानी पुष्कलावती को स्थापित किया था।[903] सिंध पर हुए पारसीक आक्रमण लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लगभग दो सौ वर्षों तक तक्षशिला पर पारसीकों का ही अधिकार रहा। सिकंदर के आक्रमण के समय (327–326 ईसा पूर्व के लगभग) यहाँ वैसिलियस, टैकिसलिज़ और आम्भी राज्य कर रहे थे, जो सिकंदर के प्रभाव में रहे[904] किन्तु, लगभग तीन सौ तेईस ईसा पूर्व में मौर्य वंशीय चन्द्रगुप्त ने उत्तर–पश्चिम के ऐसे अनेक यूनानी सामन्तों को पराजित

894 सिंह, आनन्द शंकर, 'भारत की प्राचीन मुद्राएं', पृ. 35–40. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', pp. 112, 147.

895. Ibid., p. 48.

896. Misra, S.N., op. cit., p. 21.

897. Upadhyaya, B.S., 'India in Kalidasa', p. 58.

898. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 26, 35, 36, 38. Khalimpur Coppeer-plate Inscription fo Dharmapla (C. 775-812 A.D.), No. 15, verse 12. Majumdar and Puslaker, op. cit., Vol. 4, p. 46. Majumdar, R.C., 'The History of Bengal', pp. 107-108, cf. p. 279.

899 Journal of Asiatic Society of Bengal, Vol. 15, 1846, 1852, p. 606. Archaeological Survey Report, Vol. 5. Misra, S.N., op. cit., p. 99. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Vol. 1, pp. 283, 306, 311, 313, 324, 332, Vol. 2, pp. 13, 14, 39, 41, 45, 79, 80, 393-96, 492, Vol. 3, 26, 35, 36, 38, 53, 56-59, 97, 98, 111, 164, 357, 358, 382, 383, 384, 395, 398, 599, 607, 622, 623, Vol. 4, pp. 46, 111, 333.

900 यो. महा. 3.37.24

901 खालिमपुर अभिलेख, पूर्वोक्त।

902 यो. महा. 3.36.58

903 पाणिनि, अष्टाध्यायी 4.3.93. वाल्मीकि, रामायण, उत्तरकाण्ड, 101.10–11. महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व 5.34, आदिपर्व 3.20. 172 वायु पुराण 88.190. ब्रह्माण्ड पुराण 3.63.191 कालिदास, रघुवंशम् 15.88–89. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Vol. 1, p. 324.

904. Ibid., Vol. 2, pp. 44, 45, 47, 48, 49, 53.

कर अपना शासन स्थापित किया। उसी समय से तक्षशिला मौर्यों के उत्तर–पश्चिमी प्रान्त की राजधानी चन्द्रगुप्त मौर्य के वंशज कुषाण के काल (लगभग 186 से 184 ईसा पूर्व) तक बनी रही।[905] इसके पश्चात् दो सौ बत्तीस – एक सौ नब्बे ईसा पूर्व से प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व तक यहाँ हिन्द–यूनानियों मुख्यतः दिमित्र यूक्रेटाइड्स और मिनेण्डर का शासन बना रहा।[906] फिर पहली शताब्दी ईसवी तक यहाँ शकों और सीथियों का राज्य रहा।[907] पार्थियनों और कुषाणों ने प्रथम और तृतीय शताब्दी तक इस क्षेत्र पर शासन किया।[908] इसका तथा इसके विद्या केन्द्र का ह्रास भारत में शक, यूची और हूणों के आक्रमण (78 ईसवी से लेकर पाँचवीं शताब्दी) से हुआ, यद्यपि चौथी शताब्दी ईसवी में इस पर गुप्तों का अधिकार माना जा सकता है। पाँच सौ उन्चास से चार सौ अड़सठ ईसा पूर्व के एक उल्लेख से ज्ञात होता है कि गंधार देश में कश्मीर का क्षेत्र भी आता था, उस समय भी उसकी राजधानी तक्षशिला ही थी।[909] ऐसा प्रतीत होता है कि फाह्यान तथा ह्वेनत्सांग के समय अर्थात् चौथी शताब्दी के द्वितीय चरण से सातवीं शताब्दी तक यह स्थान केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण का केन्द्र बिन्दु था।[910]

प्राचीन तक्षशिला के खंडहरों को खोज निकालने का प्रयत्न सबसे पहले जनरल कनिंघम ने प्रारम्भ किया था, किन्तु ठोस काम 1912 के बाद ही भारतीय पुरातत्त्व विभाग की ओर से सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में शुरू हुआ और अब उसके कई स्थानों पर छितरे हुए अवशेष खोद निकाले गये हैं। लगता है, भिन्न–भिन्न युगों में नगर विदेशी आक्रमणों के कारण ध्वस्त होकर नई बस्तियों के रूप में इधर–उधर सरकता रहा। उसकी सबसे पहली बस्ती पाकिस्तान के रावलपिंडी जिले में भीर के टीलों से, दूसरी बस्ती रावलपिंडी से 22 मील उत्तर सिरकप के खंडहरों से और तीसरी बस्ती उससे भी उत्तर सिरसुख से मिलायी गयी है। ये बस्तियाँ क्रमशः पाँचवीं और दूसरी शती ई. पूर्व के बीच, दूसरी और पहली शती ईसवी पूर्व के बीच (यूनानी बाखत्री युग) तथा पहली शती ईसा पूर्व और पहली ईसवी शती के मध्य (शक–कुषाण युग) की मानी जाती हैं। खुदाइयों में वहाँ अनेक स्तूपों और विहारों (विशेषतः कुणाल विहार) के चिह्न मिले हैं।[911] वैदिक काल की कुछ अंतिम शताब्दियों के पूर्व उसकी ख्याति बहुत नहीं हो पायी थी, किन्तु बौद्ध युग में तो वह विद्या का सर्वप्रमुख क्षेत्र थी। जातकों में भी तक्षशिला का उल्लेख मिलता है।[912] यही यूनानियों का टेक्सिला (Taxila) टैक्सिलन्ज़ (Taxilans) तथा टैक्सील्ज़ (Taxiles) था, जिसका उल्लेख स्ट्रेबो (Strabo, 64-3) ईसवी पूर्व से

---

905. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Vol. 1, p. 103, Vol. 2, pp. 56, 58, 70, 73, 77, 91. Taxila Fragmentary Aramaic Inscription of a Maurya King, No. 44.

906. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 98, 115, 116, 118. Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. 23, pp. 104 ff. Besnagar Garuda Pillar Inscription of the time of Bhagabhadra, No. 2, Part 1, line 3. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 1, pp. 104n-4, 108n-1.

907. Ibid., p. 111. Taxila Copper Plate Inscription of Patika, No. 27, line 2.

908. Taxila Silver Scroll Inscription of a Kushana King, No. 34, Line 3. Taxila Silver Vase Inscription of Jihonika, No. 36.

909. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Vol. 2, p. 14.

910. Beal, S., op. cit., Vol. 1, pp. 32n 136 f., 137n., 138, 140n, 143n., 145n, 145, Vol. 2, 302, 303, 309. Watters, Thomas, op. cit., Vol. 1, pp. 240-248, Vol. 2, p. 151. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Vol. 3, pp. 111, 132, 382, 395, 410. Mookerji, R.K., "The Gupta Empire", pp. 58, 138.

911. Archaeological Survey Report of India, 1912-13, 1923-24, 1928, vol. 5, p. 66, Vol. 2, pp. 6, 111, 112, 125, Vol. 14, p. 8. Engiraphia Indiaa, Vol. 4.

पुरातत्त्व विभाग की बुलेटिन, 1947-48 पृ. 41 तथा आगे। Cunningham's Arcchaeological Survey Report, Vol. 2, p. 135. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Vol. 1, pp. 60, 68-70, 72, 103, 262, 324. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 289.

912. जातक, फॉसबॉल तथा कॉवेल संस्करण, सख्या – 252, 378, 489, 336, जिल्द प्रथम, पृ. 239, 259, 317, 402, तृतीय, पृ. 18, 235. Altekeer, A.S., 'Education in Ancieent India', 1944, p. 106-107. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian', Vol. 3, pp. 385 उपाध्याय, वासुदेव, 'गुप्त साम्राज्य का इतिहास', भाग 2, पृ. 31

लगभग 21 ईसवी), फिलस्ट्रेटॅस (Philostratos, लगभग 172 ई.), डायनीसियस (DionysioS), लगभग तृतीय शताब्दी ईसवी) तथा डायोडोरस (Diodorus, 100-43 ईसा पूर्व) के वर्णनों में प्राप्त होता है।[913] मार्कण्डेय पुराण में भी प्रश्नगत ग्रन्थ की ही भाँति तक्षशिला को उत्तर की स्वतंत्र जातियों की सूची के वर्णन में उल्लिखित किया गया है।[914] पार्जिटर महोदय के अनुसार सामान्य रूप से तक्षशिला नाम का सम्बन्ध नागराज तक्षक से जोड़ा जाता था परन्तु वर्तमान समय में तक्कश (Takkas) नाम के क्षेत्र की राजधानी, जिसे पंजाब के शाह–देरी या ढेरी–शाह से समीकृत किया जाता है, उसी का अपभ्रंश रूप था।[915]

इस प्रकार साहित्य में तक्षशिला का उल्लेख कभी स्वतन्त्र राज्य के रूप में हुआ है, कभी गांधार के एक भाग के रूप में और कभी उर्शा (Urasa) अर्थात् वर्तमान हज़ारा जिला, पश्चिमी पाकिस्तान के उत्तर–पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र के एक क्षेत्र के रूप में हुआ है।[916] हम यह भलीभाँति जानते हैं कि साहित्य अपने सृजन के आस–पास के समय की घटनाओं का प्रतिबिम्बन कराता है। इस दृष्टि से उक्त वर्णन यह स्पष्ट करता है कि तक्षशिला का स्वतन्त्र उल्लेख योगवासिष्ठ महारामायण तथा मार्कण्डेय पुराण में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी ऐसी स्थिति तीसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में हुई होगी, क्योंकि उस समय भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था तथा उसके पश्चात् ही अन्य राज्यों की भाँति तक्षशिला भी चौथी शताब्दी तक गुप्तों के अधिकार में आ गया था और उसके पश्चात् आगे जाने वाली शताब्दियों में उसके स्वतन्त्र अथवा परतंत्र अस्तित्व का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, अपितु उसके प्राचीन स्मृति चिह्न एवं गौरव का गाथा रूप में वर्णन प्राप्त होता है। इसीलिए इस आधार पर आलोच्य–ग्रन्थ के रचनाकाल को तीसरी शताब्दी से विचार किया जा सकता है, जो मार्कण्डेय पुराण की तिथि का आरम्भिक काल है[917], क्योंकि इसके बाद छह सौ चौंतीस ईसवी में तक्षशिला कर्कोटक वंशियों के अधीन कश्मीर का एक अंग बन गया था।[918] यदि वराहमिहिर के उक्त देश के उत्तर में स्थित होने का आधार ले, जिसकी जानकारी दसवीं शताब्दी के अरब यात्री अल्बरूनी को थी[919] तो आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को लगभग छठी शताब्दी के समय में विचार करना उपयुक्त होगा, क्योंकि जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक यह कश्मीर का एक अंग हो गया था और यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि छठी शताब्दी ईसवी में भारत की राजनैतिक स्थिति विच्छिन्न थी, जिस समय यदि तक्षशिला एक स्वतंत्र राज्य के रूप में था तो कोई विचित्र बात नहीं है। स्पष्टतः उक्त आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि छठी शताब्दी के पूर्व विचार नहीं की जा सकती।

योगवासिष्ठ महारामायणकार पिंगल देश को भी उत्तर के देशों की सूची में उल्लिखित करता है।[920] मार्कण्डेय पिंगल देश को भी उत्तर के देशों की सूची में उल्लिखित करता है।[920] मार्कण्डेय पुराण में इसे उत्तर–पश्चिम में बताया गया है।[921] पार्जिटर महोदय इसी नाम के एक पर्वत का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में बताते हैं और वे इस उल्लेख को कपिल नामक पर्वत के स्थान पर मानते हैं।[922] वायु पुराण के अनुसार इस नाम का एक पर्वत पश्चिम दिशा में था।[923] विजयेन्द्र कुमार माथुर एक ओर तो ढोलामाढ की कथा के आधार पर इसकी पहचान राजस्थान के किसी स्थान

913. McCrindle, op. cit., pp. 22, 32, 33, 34, 36, 39, 68, 69, 189, 192, 202

914. मार्कण्डेय पुराण, 58.45

915 Pargiter, F.EE., Markandey Purana, p. 379 and n.

916. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 246.

917. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 298.

918 Ray, H.C., 'The Dynastic History of Northern India', Vol. 1, pp. 61, 71, 112.

919. Sachau, E.C., 'Alberuni's India', Vol. 1, p. 302.

920. यो. महा. 3.36.61

921 मार्कण्डेय पुराण 58.46

922 Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 279 n.

923. वायु पुराण, 36.27

से करते हैं[924] तो दूसरी ओर, पुराणो का आधार लेते हुए वे पिंगल देश को उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में स्थित मानते हैं।[925] परन्तु पार्जिटर पिंगल का अर्थ 'हल्का भूरा' रंग करते हुए उसे रामायण तथा महाभारत के उल्लेख के आधार पर हूण मानते हैं।[926]

इस प्रकार पार्जिटर के तर्क एवं पुराणों के उल्लेख के आधार पर यदि योगवासिष्ठ महारामायण के द्वारा पिंगल देश को उत्तर में बताए जाने का साम्य उक्त विवरणों से किया जाय तो इसके रचनकाल को रामायण एवं पुराणों के पश्चात् अर्थात् गुप्तकाल के अनन्तर तथा हूण आक्रमण के पश्चात् अर्थात् पाँचवी शताब्दी के पश्चात् विचार करने के प्रति असमंजस नहीं होगा।

इसी प्रकार आलोच्य ग्रन्थ में उत्तर में यमुना के क्षेत्र में यातुधान बताये गये है[927], जिनकी स्थिति पौराणिक गाथाओं पर ही आधारित प्रतीत होती है। ये राक्षसों तथा भूतों आदि का समूह माने गये हैं[928] पर अनुमानतः ये अनार्यों का समूह रहे होंगे, जो यमुना के क्षेत्र में उस समय बसे गये होगें। यथार्थ का परिज्ञान न होने के कारण योगवासिष्ठ महारामायण के उक्त आधार पर शोध विषय में कोई विवेचना प्रस्तुत नहीं की गई है।

शान्तिक :

आलोच्य ग्रन्थ में युद्ध वर्णन में शान्तिकों के पराभूत होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[929] मार्कण्डेय पुराण में भी शान्तिकों का उल्लेख मिलता है।[930] दसवीं शताब्दी के अरब यात्री अल्बरूनी को पश्चिम के शान्तिक देश की जानकारी बृहत्संहिता के आधार पर थी[931], परन्तु पार्जिटर महोदय को शान्तिकों का उल्लेख किसी कोश में नहीं प्राप्त हुआ और उन्होंने इसके समीकरण के लिए महाभारत के 'शान्शिक' शब्द का आधार लेकर अनुमानित विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।[932] इस प्रकार शान्तिक के बृहत्संहिता में उल्लेख होने के कारण उक्त आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल का विचार छठी शताब्दी के पश्चात् किया जा सकता है।

दरद :

आलोच्य ग्रन्थ के अनुसार जिन्होंने अपने शत्रुओं का दलन कर दिया था ऐसे दरद लोग हाथियों के दाँतों से विदीर्ण होके ऐसी दशा को प्राप्त हुए जैसे रक्त की महानदी के वृक्षों का नवीन पल्लव अर्थात्, पराजित हुए एवं मार

---

924 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 556

925 वही.

926 Pargiter, F.E., op. cit., p. 379 n.

927 यो. महा. 3.36.61

928 Williams, M.M. "A Sanskrit-English Dictionary", p. 849. Vettam Mani, M., op. cit. p. 895. Pargiter, F.E., "Markandeya Purana", p. 262 and n. Pargiter, F.E., "Ancient Indian Historical Tradition", pp. 82, 209, 235, 242, 319. शर्मा, राणाप्रसाद, पौराणिक कोश'', पृ. 438

929 दीर्णोदरविनिर्यातरवान्त्रतन्त्री नियन्त्रिता।
शान्तिकाः शान्तसञ्चाराः पिशाचैश्चर्विता निशि।। (यो. महा. 3.37.11)
तथा
जनः पञ्चजना नाम काशब्रह्मचयान्तकाः।
तथैव भारक्षतथाः पारकाः शान्तिकास्तथा।। (वही, 3.36.46)

930 मार्कण्डेय पुराण 58.35

931. Sachau, E.C., op. cit., p. 302.

932. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 372.

दिये गये।[933] इस देश का उल्लेख महाभारत[934] तथा पुराणों[935] में प्राप्त होता है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार दरदपुरी इस देश की राजधानी थी।[936] मेगास्थनीज़ (Megasthenes) मौर्य बिन्दुसार के काल में भारत आया था। उस यूनानी दूत ने भी इस देश का उल्लेख दर्दिस्तान (Dardai, Dardistan) नाम से किया है।[937] इस देश का उल्लेख संस्कृत साहित्य में दरद, प्रथम शताब्दी के यूनानी भूगोलवेत्ता टॉलमी (127–151 ईसवी) ने दरदाय (Dardai), स्ट्रेबो (64–63 ईसा पूर्व से लगभग 21 ईसवी) ने देरदाय (Derdai), प्लिनी (23–19 ईसवी) ने दरदेई (Dardae) डायनी सियाका (Doinysiaka) ने दरदानोई (Dardanoi) तथा चीनी यात्री फाह्यान (चौथी–पाँचवी) ने टो–ली (To-Li) देश बताया है, जहाँ सर्वास्तिवादी हीनयानी बौद्ध रहते थे, उसी का वर्णन पाँचवी शताब्दी के नोन्नोस (Nonnos) के महाकाव्य डायोनीसियाका (Dionysiaka) में प्राप्त होता है।[938] आठवीं शती के ह्वेन–त्सांग ने इसे ता–ली–लो (Ta-Li-Lo) नाम से उल्लिखित किया है।[939] इसे कौशम्बी नरेश उदयन का राज्य क्षेत्र बताया गया है।[940] इसका समीकरण सिंध के पर्वतीय क्षेत्र, जिसे दर्दिस्तान कहा जाता है तथा जहाँ से परिमाणित स्वर्ण प्राप्त होता था, उस स्थान से किया गया है।[941] दसवीं शताब्दी के अरबयात्री अल्बरूनी को भी मत्स्य पुराण के आधार पर इस देश की जानकारी थी।[942] पाँचवी शताब्दी के चीनी यात्री सुंग–युन के अनुवृत्तों में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[943] कश्मीर का परिवर्तनीय राजनैतिक इतिहास उसकी भौगोलिक सीमाओं को उसके संक्षिप्तीकरण एवं परिवर्द्धन में सदा ही प्रभावित करता रहा है। इसी क्रम में टॉलमी के उस उल्लेख को उदाहरण के रूप में ले सकते हैं, जिसमें कश्मीर को दरद भूमि तथा सिंध के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित बताया गया है।[944] आठवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में मुम्मनी (Mummuni) के विरुद्ध की गयी विजय, जिसका वर्णन राजतरंगिणी में प्राप्त है, उसमें इस विजय के पूर्व उत्तर के क्षेत्रों में कम्बोजों तुखारों को हराने के पश्चात् भूटों (Bhauttas) और दरदों का उल्लेख प्राप्त होता है।[945] शंकरवर्मन् (883–902 ईसवी) के विषय में ज्ञात होता है

---

933 दन्तिदन्तविनिर्भिन्ना दरदा दलितारयः।
नीता रक्तमहानद्या द्रुमाणां पल्लवा इव।। (यो. महा. 3.37.14)

934. महाभारत, सभापर्व 27.23, भीष्मपर्व 9.67, द्रोणपर्व 121.42, अनुशासनपर्व 35.17.

935. हरिवंश पुराण 5.115.6440–42. मार्कण्डेय पुराण 57.38, 58.32. शर्मा, राणा प्रसाद, 'पौराणिक कोश', पृ. 216. Sircar, D.C., 'Studies in the Ancient and Medieval India', pp. 34, 68.

936 मार्कण्डेय पुराण 57.38

937. McCrindle, J.W., op. cit., pp. 3, 51, 198, 318.

938. McCrindle, J.W., op. cit., p. 196-8. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 381-382.

939. Watters, Thomas, 'On Yuan-Chawang's Travels in India', p. 239.

940. Ibid. Vol. 1, p. 368, Vol. 2, pp. 298-303. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 119–121, 178, 180. Mookerji, R.K., 'Ancient India', p. 98. Awasthi, A.B.L., op. cit., p. 16. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 9-10.

941. McCrindle, J.W., op. cit., p. 198 n 2. Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', pp. 81-82. Dey, N.L., op. cit., p. 53. Pandey, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharat' pp. 14, 63 and 160. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 34 n 4, 68n 9. Beal, S., 'SI-YU-KI Buddhist Records of the Western World', Vol. 1, p. 13. Indian Antiquery, Vol. 1, p. 505, Vol. 3, p. 138. Journal of Asiatic Society of Bengal, Vol. 17, pt. 2, p. 19.

942 Sachau, E.C., op. cit., 1, p. 261, and Introduction.

943. Beal, S., op. cit., Book 1, pp. 13, 15 ff, 81.

944. Mookerji, R.K., 'Ancient India', pp. 305, 390. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 2, pp. 400-402. Archaeological Department Gwalior State, Samvat 1986, No. 43, Gwalior Rajya Abhilekh No. 616. Fleet, J.F., Corpus Inscriptionum Indicarum, III, No. 37, pt. 236, p. 161. Stein, M.A., Kalhan's Rajtrangini", Book 2, pp. 351 and n. 435, Book 1, pp. 317, 152, verses.

945. Saxena, K.S., 'Political History of Kashmir', New Delhi, 1974, p. 73. Stein, M.A., op. cit., Book 1, verse 312-315.

कि उसका वैवाहिक सम्बन्ध सिंहराज (स्वामिराज) नामक दरद के शासक की पुत्री सुगन्धा से हुआ था।[946] दरदों के दस सौ अट्ठाइस से तिरसठ ईसवी में उन्नत अवस्था और उनके इस्लाम में परिवर्तित शकों से एक राजनैतिक संघ बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[947] कश्मीरी शासक विजयमल्ल (1089–1101 ई. में) ने अपनी रानी के साथ भागते हुए दरद भूमि पार की थी[948] इसके पूर्व हर्ष द्वारा दामरों से दरद का किला छीन लिया गया था।[949] 1101 ईसवी के पश्चात् दरद प्रमुख द्वारा भीम के हर्ष की मृत्यु के पश्चात् गददी के लिए किये गये षड्यन्त्र के कारण अपने क्षेत्र को छोड़ना पड़ा था।[950] 1228 ईसवी में यशोधर राज की मृत्यु के पश्चात् उसके मंत्री विड्ढासिहा (viddhasihaa) द्वारा सम्पूर्ण दरद क्षेत्र को अधिग्रहण करने के कारण तत्कालीन काश्मीरी शासक जयसिंह द्वारा दखलन्दाज़ी की गयी।[951] तेरहवीं शताब्दी में जब राजनैतिक अस्थिरता का शिकार कश्मीरी शासक भोज को होना पड़ा तब वह दरद देश पहुंचा, वहाँ पर दुग्धघाट किले के सैन्य प्रमुख ने उसे आदर पूर्वक स्थान प्रदान किया और उसे कश्मीर में पुनः अभियान के लिए दरदों का सहयोग प्राप्त हुआ।[952]

इस प्रकार कश्मीर का उत्तरकालीन राजनैतिक इतिहास दरदों का महत्त्व स्पष्ट करता है परन्तु यह प्रश्न गम्भीर चिन्तन का विषय है कि जिन सदा विजयी वायव्य[953] दरदों को आलोच्य ग्रन्थ में पराभूत बताया गया है, इतिहास की दृष्टि में वैसा तिथिक्रम कौन सा हो सकता है? इतिहास से यह स्पष्ट है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में इसके पूर्व कि यह क्षेत्र वत्सराज उदयन का राजनयिक प्रभाव क्षेत्र बना, सम्भवतः यहाँ पारसीक दारावहो प्रथम का अधिकार था क्योंकि उसे स्वर्ण की प्राप्ति यहीं से होती थी।[954] परन्तु कालान्तर में इतिहास के रंगमंच की यवनिका जब उठती है तो ज्ञात होता है कि आठवीं शताब्दी में जब कश्मीरी शासक ललितादित्य मुक्तापीड ने बिना किसी सहायता के तिब्बतियों को पराजित किया था, तभी उसने अपने साम्राज्य की उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम क्षेत्र की सीमा में आने वाले दरद देश पर भी अधिकार कर लिया था,[955] जहाँ के रहने वालों को दस्यु कहा जाता था।[956] रे महोदय के अनुसार कल्हण के वर्णन से ज्ञात होता है कि कश्मीरी दरबार क्षेत्र में हिन्दू–शाहियों का प्रभुत्व रुद्रपाल (लगभग 1028–1063 ई.) द्वारा दरदों के आक्रमण को विफल करने से स्पष्ट होता है, जिसने दरद शासक का शीश विच्छिन्न कर दिया था और इस प्रकार उसने शाही शक्ति की चकाचौंध की पुनः स्थापना की, किन्तु शीघ्र ही मानसिक व्याधिग्रस्त हो उसका परलोकवास हो गया।[957] इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ के दरदों की पराजय के वर्णन के आधार पर उसके रचनाकाल को आठवीं शताब्दी अथवा ग्यारहवीं शताब्दी में विचार किया जा सकता है परन्तु उचित यही होगा कि आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को उक्त आधार पर आठवीं शताब्दी में माना जाय, जबकि दरद देश का उन्मूलन कश्मीरी शासक ललितादित्य मुक्तापीड

---

946. Ibid., Book 5, verse 157 and note, p. 207.
Saxena, K.S., 'Political History of Kashmir', pp. 115-124, Ray, H.C., op. cit., Vol. 1, p. 75.

947 Stein, M.A., op. cit., Vol. 2, 7. 166-167. Saxena, K.S., op. cit., pp. 119, 172. Vaidya, C.V., 'History of Medieval Hindu India', Poona, 1926, Vol. 3, p. 310. Indian Antiquery, Vol. 1, pp. 498 ff.

948. Saxena, K.S., op. cit., p. 203.

949. Ibid., pp. 214-56.

950. Ibid., pp. 230-231.

951. Ibid., p. 265.

952. Ibid., pp. 267-268.

953 यो. महा., 3.36.65

954. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 41.

955. Saxena, K.S., 'Political History of Kashmir', p. 51. Majumdar and Pushalker, op. cit. Vol. 3, pp. 133-134.

956. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', pp. 318-319.

957. Ray, H.C. op. cit., Vol. 1, p. 100. Stein, M.A., op. cit., Book 7, verse 134-180.
Saxena, K.S., 'Political History of Kashmir', pp. 169-170.

ने किया था, क्योंकि उसके पश्चात् दरद भूमि कश्मीर का एक अंग मानी जाती थी।[958]

कीकट तथा वाह्लीक :

आलोच्य ग्रन्थ में कीकट[959], जिसका उल्लेख संस्कृत साहित्य में बहुधा किया गया है[960] उससे अनुसंधानात्मक विषय में कोई प्रकाश नहीं पड़ता क्योंकि यहाँ भी उसी क्रम की पुनरावृत्ति का परिणाम है।

वाह्लीकों की स्थिति ग्रन्थकार दक्षिण में बताता है।[961] शतपथ ब्राह्मण के आधार पर हॉग (Hog) इन्हें भारत से बाहर ईरान में स्थित बताते हैं।[962] रामायण का आधार लेते हुए भण्डारकर मेहरौली स्तम्भ लेख में उल्लिखित इस देश को व्यास नदी के पूर्व में बताते हैं।[963] महाभारत[964], मत्स्य, वायु, भागवत, विष्णु, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, वामन और स्कन्द आदि पुराणों में भी वाह्लीक का उल्लेख मिलता है।[965] विभिन्न विद्वान् इस प्रकार के उल्लेख के आधार पर वाह्लीक को बल्ख (Balkh) मानते हैं।[966] परवर्ती उल्लेखों में इस सन्दर्भ के लिए अरब यात्री अल्बरूनी तथा शक्तिसंगम तंत्र को उद्धरण के रूप में रखा जा सकता है।[967] शॉफ के अनुसार बरक्का (Baraca) की घाटी की आधुनिक कच्छ (Kutch) की घाटी में, जो वह वाह्लीक प्रतीत होती है जिसका सन्दर्भ रामायण, महाभारत तथा विष्णु पुराण में सुराष्ट्र के साथ प्राप्त होता है।[968]

इतिहास से स्पष्ट होता है कि 224 ई. में वाह्लीक कुषाणों के अधीन थे तथा हूणों ने अपने विस्तृत साम्राज्य का क्षेत्र वाह्लीक क्षेत्र को बनाया था।[969] यह क्षेत्र छठी शताब्दी ईसा पूर्व में पारसीक साम्राज्य का अंग था।[970] चिआनिदी

---

958. Dey, N.L., op. cit., p. 53. Misra, S.N., op. cit., pp. 102, 103, 104, 105, 162.

959 कीकटाः सिद्धखण्डख्यास्तथा कालिरुहा अपि।
अत्र हेमगिरिः शैलस्तथा रैवतको गिरिः।। (यो. महा. 3.36.41)

960 ऋग्वेद 3.53.14. अथर्ववेद 5.22.14,7. यास्क, निरुक्त 6.32. वायु पुराण, 105. 108. 73. Dey, N.L., op. cit., p. 100. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', pp. 331, 382. Law, B.C., 'Some Ancient Indian Tribes', Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. 17, 1936, Part 1, p. 95.

961 अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्यसुराष्ट्रकाः।
सिन्धुसौवीरशूद्राख्या..... द्रविडास्तथा।।
कीकटाः सिद्धखण्डाख्यास्तथा कालिरुहा अपि।
अत्र हेमगिरिः शैलस्तथा रैवतको गिरिः।।
जयकछा मयवरो यवनास्तत्र जन्तवः।
वाह्लीका मार्गणावन्ता धूम्रास्तुम्बकनामकाः।। (यो. महा. 3.36. 40–42)

962. Hog, Shatpath Brahman, English Translation, 12, 9.3, 3.

963 वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड 68. 18–19. Mihrauli Pillar Inscription of Chandra, Verse 2, (Epigraphia Indica, Vol. 14, p. 367). Bhandarkar, D.R., Journal of the Andhra Historical Research Society, Vol. 10, 868 f.

964 महाभारत, भीष्मपर्व 9.92. उद्योगपर्व 3.74. 77. आदिपर्व 67.7.

965 शर्मा, राणाप्रसाद, "पौराणिक कोश", पृ. 353. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 32. स्कन्द पुराण, 1.2.39. 155. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 203. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 311. Cunningham, A.A., 'Archaeological Survey Report', Vol. 2, pp. 6, 14, 17, 195. Agrawal, V.S., 'India as Known to Panini', p. 447. Chatopadhyay, Sudhaker, 'Racial Affinities Early North Indian Tribes', pp. 98-99. Dey, N.L., op. cit., p. 15.

967. Sachau, E.C., op. cit., p. 300.

968. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 78.

969. Schoff Wilfed H., 'The Periplus of the Erythraean Sea', p.174.

970. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 35, 51, 55. Ibid., p. 52.

(Chionites) जन–जाति ने, जिसने कि रोम तथा मेसोपोटामिया में भी विध्वंस किया था, चौथी शताब्दी ईसवी में कुषाणों को वाह्लीक प्रदेश छोड़ने पर विवश किया और परिणामस्वरूप वे कावुल के क्षेत्र में जा बसे।[971] वाह्लीक प्रदेश में कुमकुम और केसर पाये जाने का उल्लेख ग्यारहवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में अमराकोष के भाष्यकार धीरस्वामी, के उद्धरणों में प्राप्त होता है।[972] 79 ईसवी के तक्षशिला रजत लेख में वाह्लीक का उल्लेख 'वहलिएण' शब्द के रूप में बौद्ध धर्म के संदर्भ में प्राप्त होता है।[973] अभिधानरत्नमाला तथा उपमितिभवप्रपञ्चकथा नामक दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी के संस्कृत ग्रन्थों में उच्चकोटि के अश्वों की प्राप्ति वाह्लीक प्रदेश से बतायी गयी है।[974] इसी शताब्दी में प्राग्ज्योतिष के ब्रह्मपाल के पुत्र रत्नपाल ने बाह्लीकों से युद्ध किया था।[975]

स्पष्ट रूप से वाह्लीकों का उल्लेख ऋग्वेद काल से लेकर उनके इसी नामोल्लेख से ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी तक प्राप्त होता है। इनका राजनैतिक महत्त्व सीमान्त क्षेत्र में होने के कारण अधिक था परन्तु उसमें व्यापकता नहीं थी। इसी कारण से ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी तक होने वाले भयावह राजनैतिक षड्यन्त्रों, कुचक्रों एवं विभिन्न आक्रमणों में विभिन्न घटनाक्रमों से इनका प्रतिभागी रूप में प्रदर्शन होता है। इनके प्रति विभिन्न अन्य तथ्यों के विपरीत प्रश्नगत ग्रन्थ का रचयिता दक्षिण दिशा में उल्लिखित करता है। हमें इस विषय में भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है और तत्सम्बन्धित अन्य स्रोतों का अभाव अनुसंधानात्मक विषय में वाह्लीकों के उल्लेख के आधार कोई निष्कर्ष प्रस्तुत करने में एक बहुत बड़ी बाधा है अर्थात् इस आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

नाग, यक्ष :

आलोच्य ग्रन्थ में जब नागों का उल्लेख किया गया है, तो उसमें प्राचीन धार्मिक भावना ही विद्यमान है[976], जो इस देश में सिन्धु–सभ्यता के काल से प्रचलित थी[977], परन्तु इस नाम की जाति की ऐतिहासिक जानकारी हमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है[978], जिसकी अनुसंधानात्मक विषय में अनुपयुक्तता होने के कारण योगवासिष्ठ महारामायण के

---

971. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 57.

972. Biswas, Atreyai, 'Political History of Hunas in India', pp. 41-42.

973. Taxila Silver Scroll Inscription, No. 34. verse 2.

974. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 405.

975. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 42. Ray, H.C., The Dynastic History of Northern India, Vol. 1, p. 249.

976. नागाः श्वसन्ति विचलन्ति नगाः पतन्ति
वैमानिका जलधिवारिधराः प्रयान्ति।
शोषं दिशोऽर्कसहिता मलिनी भवन्ति
सूच्याः सुरेन्द्र तपसा क्षयमायेव।। (यो. महा. 3.72.31) तथा –
शाकद्वीपास्पदः कश्चिन्नागलोकजिगीषया।
विरत्यब्धिजठरे सर्वदिग्विजयोद्यतः।। (वही, 6ब, 183.60)

977. Thaplyal, K.K., 'Studies in Ancient Indian Seals', pp. 200, 153-54, 203, 219.

978. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड 1.73, 137.84, 12.22, युद्धकाण्ड 7.9, उत्तरकाण्ड 23.5, अरण्यकाण्ड 32.14 Dikshitar, V.R., 'South India in the Ramayana', Proceedings of the Seventh Oriental Conference, 1933.
महाभारत, आदिपर्व 31.6, 53 तथा अध्याय 52, वनपर्व 66.1, मार्कण्डेय पुराण 2.11, 8.233, 20.8–22, 21.22, 45–53, 23. 24-28, 51–115 24.1–43, 40.28, 49, 16, 55, 18, 61.39, अध्याय 71, 72, 85.62, 91.30, 96.25, 99.37, 104.4–7, 106.55, 126.40–45, 127.39, अध्याय 128, 129.30 अध्याय 130, 131, 132.31, विष्णु पुराण 4.3.6–12
वायु पुराण 64.27–36 Awasthi, A.B.D., 'Studies in Skanda Purana', Vol. 1, p. 215.
Dash, N.K., 'An Encylopaedic Dictionary of Indian Culture', p. 266. गोयल, श्रीराम, 'प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह', पृ. 296 Journal of Royal Asiatic Society of Bengal, Vol. 47, pp. 23-50. Motichand Stone Sculpture, Bombay in the Prince of Wales Museum, 1974, Bombay figures Nos. 35, 36, 134. Rhys Davids, T.W., op. cit., pp. 100-101. Kern, H., 'A Manual of Indian Buddhist', Delhi, 1974, p. 59. Beal, S., 'Buddhist Records of the Western World', Vol. 1, pp. 5n, 66 ff, 149 ff, 159, 201; Vol. 2, pp. 27, 321. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 344, Vol. 2, pp. 120, 197-98. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 1, p. 161. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, pp. 67, 270-271.

उक्त उल्लेख के आधार पर इस सम्बन्ध में यहाँ कोई भी विचार प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

ग्रन्थकार पूर्व में उदयगिरि पर्वत पर मोहिनी विद्या में निष्णात यक्षों का उल्लेख करते हुए उनकी रहस्यमयी स्थिति का उल्लेख करता है[979] स्वर्ग में रहने वाले ब्रह्मा अथवा पुलत्स्य की सन्तान तथा राक्षसों के भ्राता इन रहस्यमय पराशक्ति का उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं पुराणों में करते हुए इनकी विशेष पूजा एवं अर्चना का विधान बताया गया है।[980] इसी क्रम में वेद भी उनके उल्लेख से रहित नहीं हैं।[981] सम्भवतः राक्षसों के अभिवर्द्धित प्रभाव के कारण यक्ष जाति को दक्षिण से भाग कर उत्तर में शरण लेनी पड़ी।[982] स्पष्ट अर्थों में यक्ष शब्द का उल्लेख जैमिनीय ब्राह्मण से मानां जा सकता है।[983] सम्भवतः इसकी उपासनात्मक परिकल्पना सूत्रकाल से अधिक प्रचलित हो चली थी।[984] बौद्ध ग्रन्थ में एवं पुराणों में इसी क्रम का दिग्दर्शन होता है।[985] सर्वप्रथम कलात्मक शैली में इनका दिग्दर्शन अमरावती स्तूप में होता है।[986] यह बात उल्लेखनीय है कि विशालकाय यक्ष–प्रतिमा सर्वप्रथम भारतीय ऐतिहासिक कलात्मक दर्शन है, जिससे यह ज्ञात होता है कि यक्ष कलात्मक शैली का विकास निरन्तर रूप से मौर्य–काल से गुप्त–काल से गुप्त–काल तक होता रहा, जिसके परिणामस्वरूप गुप्तकालीन टेराकोटा कलात्मक कृतियों में इनके चित्र दर्शनीय हैं[987] भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार यक्षों की कल्पना सामान्य मानव के रोमांस और उत्तेजक क्षणों का पर्याय है, जिसकी मृग–मरीचिका में फंसकर मनुष्य मृत्यु की गोद में चला जाता है।[988] इसी लिए कालिदास की साहित्यिक कृतियों में यक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है।[989] न केवल कालिदास अपितु चीनी अनुवृत्तों[990], प्रथम शताब्दी के एक अभिलेख[991], तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी के यादव शासक रामचन्द्र के अभिलेख[992], प्रथम शताब्दी के द्वितीय चरण के

---

979 शाकद्वीपोदयगिरितटे सप्तवर्षाणि सुप्तं
पूर्वेणाऽन्तर्विदलगहने यक्षसंमोहितेन।
पाषाणाम्बु–प्रसभममुनैवाऽत्र पीत्वा हयत्तामा
गत्याऽन्तः स्थितमथ समाः सप्तजात्येन भूमेः।। (यो.महा. 6 ब. 124.17)

980 वाल्मीकि, रामायण, उत्तरकाण्ड 4.30, 11.7, 31-32, अरण्यकाण्ड 11.97 महाभारत, आदिपर्व 66.7, 1.108, सभापर्व 10.18, 11.56, वनपर्व 16.57, 111.10, 208.7, 258.27-28, शान्तिपर्व 171.52 अग्निपुराण, अध्याय 19 मत्स्य पुराण, 189.4-11, 141.85 वायु पुराण, 69.11 मार्कण्डेय पुराण, 5.7, 8.108, 21.22, अध्याय 48, 53.9, 55.18, 86.4, 99.34, 104.6, 106.55, 109.62, 127.28, 125.8 Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 69n, 264, 316.

981 ऋग्वेद, 10.81.4 यजुर्वेद, 33.9 अथर्ववेद, 10.2.28-33 Griffith, Ralph, T.H., "The Hymns of the Regveda", Delhi, 1991, p. 600.

982. Vaidya, C.V., 'The Riddle of the Ramayana', Bombay, 1906, p. 99.

983. Coomarswami, A.K., 'Yakshas', Edn. 2, 1980, p. 5.

984. Ibid., pp. 5 ff.

985. Ali, S.K., op cit., pp. 20, 53, 57, 65, 75, 82, 94, 96, 103. Kern, H.C., 'A Manual of Indian Buddhism', p. 59 Coomarswami, A.K., op. cit., p. 8.

986. Ibid., pp. 6, 8.

987. Thaplyal, K.K., op. cit., p. 186. Upadhaya, B.S., 'India in Kalidas', p. 319. Coomarswami, A.K., op. cit., p. 8. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 1, pp. 17 n, 157.

988. Upadhyaya, B.S., 'India in Kalidas', p. 319.

989 कालिदास, कुमारसम्भवम्, 4.39 कालिदास, मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 3.5, 12, 23, 43

990 Beal, S., op. cit., Vol. 1, pp. 59, 99, 110 and n., 127, 153, 156, Vol. 2, 36 n, 190-191, 213.

991. Patna Image Inscription, Patna Bihar, No. 8.

992. Epigraphia Indica, Vol. 25, pp. 765ff.

परखम अभिलेख[993] तथा प्रथम शताब्दी के कोसम प्रस्तर अभिलेख[994] में यक्षों के देव–स्वरूप के दर्शन होते हैं। जैन तथा बौद्ध दोनो ही इनका चित्रण देव रूप में करते हुए इनके अच्छे और बुरे गुणों के विषय में बताते हैं[995] यह बात स्पष्ट की गई है कि कोई भी मनुष्य यक्ष तथा कोई भी यक्ष मनुष्य के रूप में उत्पन्न हो सकता है।[996]

उपर्युक्त वर्णन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि केवल योगवासिष्ठ महारामायण में यक्षों की स्थिति पूर्व में बतायी गयी, परन्तु उनके दैवी स्वरूप के वर्णन के आधार–प्रश्नगत–ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई विचार प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं, क्योंकि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भारतीय परम्परा में उनका उल्लेख वैदिक–काल से है। इसीलिए आलोच्य ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख होना एक प्राचीन पुनरावृत्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

सुराष्ट्र :

आलोच्य ग्रन्थ यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार से एक सेवक द्वारा यह बताया गया कि दक्षिण दिशा में युद्ध प्रारम्भ हो गया है और कर्णाट शासक द्वारा पूर्व देश के लिए जो क्रियाक्रम अर्थात् मर्यादा एवं व्यवहार रचे गये थे, उन्हें उत्तरापथ मलेच्छादि के लिए सुराष्ट्र के शासक ने निश्चित किया। माल (मालदा) देश के शासक द्वारा पश्चिम दिशा के तंगणों पर आक्रमण किया गया।[997]

इस देश में साम्राज्यों का आविर्भाव एवं तिरोभाव हुआ किन्तु उत्तर के कोसल, मगध, गौड, वंग, अवन्ति, लाट

---

993. Parkham Image Inscription, No. 7.

994. Kosam Stone Inscription, No. 10A.

995. Coomarswami, op. cit., p. 11.

996. महावंश, 7. Shastri, H.K., 'The Sculptured Pillar on the Indrakilla Hill at Bezwada', Annual Report of the Archaeological Survey of India, 1915-16.

997. उत्तरद्वारगासंख्यरथहस्त्यश्वसङ्कुलम्।
एकभृत्यविनिर्णीतदक्षिणापथविग्रहम्।।
कर्णाटनाथरचितपूर्वदेशक्रियाक्रमम्।
सुराष्ट्राधिपनिर्णीतसर्वम्लेच्छोत्तरापथम्।।
मालदेशासमाक्रान्तसर्वपाश्चात्यतङ्गणम्।
दक्षिणाब्धितटायातलङ्कादूतविनोदितम्।। (यो. महा. 3.17.21–23)
एकभृत्यवचसा विनिर्णीतो दक्षिणापथे विग्रहो युद्धप्रसङ्गो येन।। 21।। सर्वदेशराजानां तद्वश्यतां दर्शयति – कर्णाटेति। क्रियाक्रमो व्यवहारमर्यादास्थापनम्। निर्णीताः निगृह्य वशीकृताः ।। 22।। मालदानामीशेन राज्ञा सम्यगाक्रान्ता – स्तङ्गणा देशविशेषाः ।।23।।

(आनन्दबोधेन्द्र की टीका, यो. महा. चौखम्बा संस्करण, पृ. 171)

उत्तर के द्वार पर असंख्य रथ, हाथी, और घोड़ों से व्याप्त, एक सेवक के वचन से दक्षिण देश में युद्ध को निर्णय करने वाले (21) जिसके लिए कर्णाट देश के राजा ने पूर्व देश की व्यवहार मर्यादा को रचित किया है और जिसके लिए गुजरात देश के राजा ने सम्पूर्ण म्लेच्छ और उत्तरदेश को जीतकर वशीभूत कर लिया है (22) माल देश के राजा ने सम्पूर्ण पश्चिम देश के तंगण नामक देशों पर आक्रमण कर लिया है और जिनके सम्मुख दक्षिण के समुद्र तट से दूत आकर लंका के वृतान्त को निवेदन किया (23)

(यो. महा., हिन्दी अनुवाद ज्ञान सागर मन्त्रालय, भाग 1, पृ. 194)

The Chief of Karnatic made an attack on the eastern frontier. The chieftain of Surat had brought to subjection the barbarous tribes on the north. The ruler of Malwa had beseiged the city of Tokan on the west. Then there was the reception of the ambassador from Lanka, coming from the coast of the southern sea.

(Mitra, V.L., op. cit., Book III, Ch. 17, 22-23, p. 311)

और सुराष्ट्र तथा दक्षिण के कलिंग, आंध्र, महाराष्ट्र, कर्णाट, चेर, चोल और पाण्ड्य आदि निरन्तर अपनी स्वायत्तता बनाये रहे। सूत्र साहित्य[998], रामायण[999], महाभारत[1000], पुराण[1001] तथा अर्थशास्त्र[1002] ही नहीं अपितु शक[1003], सातवाहनों[1004] के उद्धरणो में सुराष्ट्र तथा यूनानी स्ट्रेबो, टॉलमी, पेरिप्लस, प्लिनी इनका उल्लेख सेरोस्टॉज़ (Sarrostos) सीरेस्ट्रीन (Syrastrene) तथा होरेट्टेई (Horatae) नाम से करते हैं, जो पश्चिम में स्थित थे[1005] और अशोक के काल में यह क्षेत्र मौर्यो के अधीन था।[1006] यूनानी बक्त्रियों या हिन्द–यूनानी के सम्भाव्य अधीनस्थ रहने के पश्चात् यह सीथिया, शकों, सातवाहनों तथा कुषाणों के अधीन रहा।[1001] तृतीय शताब्दी ई. के अन्तिम चरण में सम्भवतः सुराष्ट्र पर सैसेनियों (Sassanians) के सामन्त शासन कर रहे थे।[1008] तत्पश्चात् यह क्षेत्र गुप्तों के अधीन रहा।[1009] स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी यहाँ अपनी शक्तिमयता बनाए रखने में अक्षम रहे एवं परिणामस्वरूप यह वल्लभी के मैत्रकों के हाथ में चला गया।[1010] जूलियन ने चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग के विवरण में सू–ल–चा (Su-La-Ch'a) को सुराष्ट्र माना है जिसके विषय में चीनी यात्री विवरण स्पष्ट करता है कि इस समय भी मालवा का यह क्षेत्र वल्लभी के मैत्रकों के अधीन था।[1011] लगभग आठवीं शताब्दी में नेपाल के लिच्छवि शासक जयदेव ने यहाँ शासन किया।[1002] छह सौ नब्बे से सात सौ सत्तर ईसवी तक यहाँ वल्लभियों का शासन बना रहा और सात सौ सत्तर ईसवी के अन्तिम चरण में अरबों ने यह क्षेत्र आक्रान्त किया। सात सौ पच्चीस ईसवी में मालवा के तत्कालीन शासक तथा लाट के चालुक्य शासक द्वारा उन्हें पीछे ढकेल दिया गया, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वल्लभी शासक इसके पश्चात् भी चैन की सांस न ले सके क्योंकि ऐतिहासिक सामग्री यह स्पष्ट करती है सुराष्ट्र अथवा सौराष्ट्र पर सम्भवतः जयकदेव नामक शासक (738ई.) शासन कर रहा था।[1013] जबकि आठवीं शताब्दी के मध्य में वल्लभी के मैत्रकों का शासन सुराष्ट्र में समाप्त हो गया। सम्भवतः उसी समय ताज़िकों के हाथों यहाँ विनाश लीला दृष्टिगोचर होती है। ऐसा सम्भव है कि इसी समय जबकि अरबों ने सिन्ध के क्षेत्र को अधिकृत कर लिया था तो आस–पास के राज्यों पर भी आक्रमण किया हो। गुजरात चालुक्य, पुलकेशिराज (आठवीं शतब्दी ई.) के नौसारी ताम्रपत्र लेख से यह विदित होता है कि ताज़िकों को पराजय

---

998 बौधायन धर्मसूत्र, गोविन्दस्वामी का भाष्य, सम्पादित द्वारा शास्त्री, चिन्नास्वामी, बनारस, 1934, 1.1.29.

999 वाल्मीकि, रामायण, आदिकाण्ड, 12. 7.3. अयोध्याकाण्ड, 10. किष्किन्धाकाण्ड, 41.

1000. महाभारत, विराटपर्व 1.12, आदिपर्व 31.62.

1001 मार्कण्डेय पुराण 57.52 विष्णु पुराण 2.3. 132--135.

1002 कौटिल्य, अर्थशास्त्र, पृ. 378

1003. Junagadh Rock Edict Inscription of Rudradaman 1, Saka Year 72, i.e. 150 A.D., No. 67, verse 11.

1004. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 152, 201, 226. Nasik Cave Inscription of Vasisthiputra Pulumavi, No. 86, verse 2.

1005. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', Vol. 2, pp. 23-25. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1, p. 102.

1006. Mookerji, R.K., 'Asoka', Delhi, 1972, p. 51.

1007. Law, B.C., 'Ancient Indian Tribes', Vol. 2, p. 24.

1008. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, p. 152, Vol. 3, p. 52.

1009. Fleet, J.F., 'Gupta Inscriptions, Corpus Inscriptions, INdicarum', Vol. 3.

1010. Ray, H.C. Maitrakas of Valabhi', Indian Historical Quarterly, September, 1928. Cunningham's Ancient Geography of India, S.N. Majumdar's Edition, pp. 372-74, 697-98.

1011. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 112. Watters, Thomas, op. cit., Vol. 2, p. 248.

1012. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 138.

1013. Indian Antiquery, Vol. 12, p. 155.

का मुंह देखना पड़ा था परन्तु इसके पूर्व उन्होंने सुराष्ट्र पर अधिकार किया था।[1014] उसी समय काठियावाड का दक्षिण--पश्चिमी क्षेत्र सैन्धवों के हाथ चला गया था। ये सैन्धव, जो अपने को जद्रथ का वंशज कहते थे, भूमिलिक, भूताम्बिलिक वर्तमान भूमिलि अथवा घूमिलि से इस इस क्षेत्र पर शासन कर रहे थे। इनका प्रारम्भिक ज्ञात शासक आठवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में पुष्यदेव था, जिसके समय में अरबों का आक्रमण हुआ था, उसके पुत्र तथा पौत्र कृष्णराज तथा महासामन्त अग्गुक प्रथम (Agguka 1) ने आक्रमण का सामना किया। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण द्वारा अरबों के अभियान को विफल कर दिया गया था। ऐसी ही विजय का उपहार ऐतिहासिक स्रोत अग्गुक प्रथम को भी प्रदान करते हैं। उसके पुत्र रण को नवी शताब्दी ईसवी में गुर्जर–प्रतिहारों के हाथों पराजित हो सुराष्ट्र उन्हें सौंपना पडा। नवीं शताब्दी ईसवी से सैन्धव गुर्जर–प्रतिहारों के सामन्त के रूप में पश्चिमी सौराष्ट्र पर शासन करते रहे।[1015] यदि वीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव महोदय के विचारों में झांकने का प्रयास किया जाय तो ज्ञात होगा कि पूर्व काल में अर्थात् सातवीं ईसवी में सुराष्ट्र का क्षेत्र वर्धन–वंशियों के अधीन था।[1016] सातवीं शताब्दी के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह प्रदेश मालवा की सीमाओं से संलग्न था। नवी–दसवीं शताब्दियों के लेखों से यह भी विदित होता है कि जोधपुर, जयपुर, अलवर और राजस्थान के अन्तर्गत मेवाड़ का उत्तरी भाग गुर्जर प्रदेश में स्थित था। आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में गुहिलवंश ने मालवा के प्रतिहार वत्सराज का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इसी कारण वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय का उल्लेख एक राष्ट्रकूट अभिलेख में गुर्जरेश्वर के रूप में मिलता है।[1017] साहित्यिक और अभिलेखीय प्रमाणों से यह अवश्य स्पष्ट है कि प्रतिहारों की मूल राजनीतिक इकाइयाँ मालवा, राजपूताना और भडौंच के आसपास वाले गुजरात क्षेत्र में प्रस्फुटित हुई, जो वांशिक दृष्टि से एक ही थी और इसी जाति के वंश में जैसा कि ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट करते हैं, लगभग आठवीं शताब्दी के द्वितीय–तृतीय चरण में एक परम प्रतापी शासक नागभट्ट प्रथम राज्य कर रहा था, जो ब्राह्मण हरिचंद का वंशज था और जिसने अरबों को पराजित कर अपने साम्राज्य की सीमा को मालवा, गुजरात एवं भड़ौच तक विस्तृत किया।[1018] प्रायः उसी समय अवन्ति के ठीक दक्षिण में दन्तिदुर्ग (733–758 ई0) ने चालुक्यों को अपदस्थ कर राष्ट्रकूटों की महान् सत्ता की नींव डाली। यही नहीं, उसने उत्तर–पूर्व की ओर बढ़कर नागभट्ट को भी हराया। प्रथम अमोघवर्ष के संजन ताम्रपट्टाभिलेख (871 ई.) से यह ज्ञात होता है कि दन्तिदुर्ग ने उज्जयिनी में क्षत्रियों (राजन्यों) द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले हिरण्यगर्भ नामक महादान (यज्ञ) में गुर्जर आदि राजाओं

1014. Bombay Gazetteer, Vol 1, Part 1, p 109. Majumdar and Pusalker, op cit., Vol 3, p. 161 Annals of the Bhandarkar, Research Institute, Poona, Vol. 10, p. 31.

1015 Majumdar and Pusalker, op cit., Vol. 4, pp. 99-100.

1016. Srivastava, B.N., 'Harsha and His Times', pp. 43 and 73. Indian Antiquery, Vol 2, pp. 312 ff and 196, 200. Junagadha Rock Inscription, No. 25.

1017. Campbell J., 'The Gurjaras', Bombay Gazetteer, Vol 9. Ganguli, D.C., 'History of the Gurjara Country', Indian Historical Quarterly, Vol 10. Majumdar, R.C., 'The Gurjara Pratiharas', Journal of the Department of Latters, Vol 10.

1018 तद्वन्शे प्रतिहार–केतन–भृति त्रैलोक्य–रक्षास्पदे
देवो नागभटः पुरातन–मुनेर्भूत्तिर्व्व (र्ब्व) भूवाद्भत (तम्)।
येनासौ सुकृत–प्रमाथि–व (ब) लवन्म्लेच्छाधिपाक्षौहिणीः
क्षुन्दानस्फुरदुग्र–हेति–रुचिरेदर्दोर्भिश्चतुर्भिर्व्व(र्ब्व) भौ।।
[Gwalior Stone Inscription of Bhoja 1, (c. 836-85 A.D.), No. 10, verse - 4]
तुलना करें– चाहमान सामन्त भर्तृवडढ (द्वितीय) का हासोट अभिलेख (Epigraphia Indica, Vol 12, pp. 197 ff and also 203, 204, line 34.) Elliot and Dawson, 'History of India as Told by its Own Historians', Vol 1, London, 1867-77, Reprinted in India, Kitab Mahal, Allahabad, p. 126. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 21.

को प्रतिहारी का कार्य करने को विवश किया।[1019] अपने प्रारम्भिक काल में इस राष्ट्रकूट वंश के वंशज महाराष्ट्र और कर्नाटक में राज्य कर रहे थे।[1020] उनकी भाषा और लिपि कन्नड़ होने के कारण भी इस मत की पुष्टि होती है।[1021]

इसके अतिरिक्त अनेक अभिलेखों में उनके 'लट्टलूरपुरवराधीश' अर्थात् 'सुन्दर नगर लट्टलूर के स्वामी' लिखा हुआ है। लट्टलूर (लातूर) निज़ाम की रियासत में बीदर जिले में कन्नड़ भाषा–भाषी एक प्रदेश को व्यक्त करता है। इसमें सन्देह नहीं कि ये तर्क सार्थक हैं और उन विद्वानों के मत के सबल विरोधी हैं जिनका कहना है कि मालखेड के राष्ट्रकूट महाराष्ट्र के निवासी थे।[1022]

योगवासिष्ठ महारामायण के उक्त उद्धरण से उपर्युक्त विवरण का साम्य स्थापित करने पर स्पष्ट होता है कि जिस घटना–क्रम का वर्णन प्रश्नगत ग्रन्थ के उल्लिखित श्लोकों में दिया गया है, उसे नागभट्ट प्रथम के काल में लिया जा सकता है, क्योंकि इसी समय अरबों अर्थात् म्लेच्छों पर किसी उत्तर भारतीय शासको को विजय प्राप्त हुई थी तथा जिसे किसी दक्षिण भारतीय शासक का वशवर्ती होना पड़ा था। सम्भवतः इसी कारण उस उत्तरापथ के शासक अर्थात् नागभट्ट प्रथम गुर्जर ने दक्षिण भारतीय कर्नाट अर्थात् राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग के द्वारा स्थापित आचार–व्यवहार अपनाये थे, जिनको म्लेच्छों अर्थात् अरबों से भी उसने पालन कराया था, जिसका उल्लेख योगवासिष्ठ महारामायण करता है।[1023] इस आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को आठवीं शताब्दी ईसवी का माना जा सकता है।

माध्यमिक[1024], धर्मारण्य[1025], पाञ्चाल[1026], कुरुक्षेत्र[1027], सारस्वत[1028], पौरव[1029], माथुर[1030], पाञ्चनद[1031], तथा केकय[1032]

आलोच्य ग्रन्थ में इन देशों और जनपदों का उल्लेख मिलता है। इनके प्रति प्राप्त तथ्यों की समालोचना जो

1019. हिरण्यगर्भं राजन्यैः उज्जयिन्यां यदासितम्।
प्रतीहारीः कृतं येन गुर्जरेशादिराजकम्।।
- Epigraphia Indica, Vol. 18, p. 235, verse 9. cf. - Sharma, Dashratha, 'Rajasthan Through the Ages', Vol. 1, Bikaner, 1966 p. 120, Note 1.

1020. Altekar, A.S., 'Rastrakutas and their Times', Poona, 1934, pp. 19-21.

1021. Ibid., pp. 21-22.

1022. Altekar, A.S., 'Rastrakutas and Their Times', pp. 21-22.

1023. यो. महा. 3.17. 21–23

1024. अत्रान्ये मध्यदेशीया जना नोदाहृता मया।
तानिमाञ्छृणु वक्ष्यामि पक्षांल्लीलामहीभृतः।। (यो. महा. 3.37.3)
तद्देहिकाः शूरसेना गुडा अश्वघनायकाः।
उत्तमज्योतिभद्राणि मदमध्यमिकादयः।। (वहीं, 4)

1025. पाञ्चाला धर्मारण्याश्च तथैवोत्तरदक्षिणः।

1026. पाञ्चालकाः कुरुक्षेत्रास्तथा सारस्वता जनाः।। (वहीं, 7)

1027. वहीं

1028. वहीं

1029. कौसलाः पौरवारावमसहन्तोऽन्तका इव।
तैरुन्मुक्तगदाप्रसशरशंक्त्यतिवृष्टयः।। (यो. महा. 3.37.43)

1030. पारियात्राः कुराष्ट्राश्च यामुनोदुम्बरा अपि।
राज्याह्वा उज्जिहानाश्च कालकोटिकमाथुराः।। (वहीं, 6)

1031. अवन्तीस्यन्दनश्रेणी कुन्तिपाञ्चनदेरितैः।
स्पन्दमाना विद्रवन्ती निपपात महाभृगौ।। (वहीं, 8)

1032. वीरासवसमाक्रन्दकारिणः केकयैः कृताः।
कङ्कैः कङ्ककुलाक्रान्तव्योमोद्धूलितमस्तकाः।। (वहीं, 29)

निष्कर्ष प्रदान करती है उसका अवलोकन इस प्रकार किया जा सकता है:–

ग्रन्थ में मध्यप्रदेश के अन्तर्गत परिगणित माध्यमिका[1033] को महाभाष्य शुंगकाल में यवनों द्वारा आक्रान्त किया गया वर्णित किया गया है तथा वहीं से गुप्तकालीन अवशेष भी प्राप्त होते हैं[1034] और इसी क्रम में ग्रन्थ के अन्तर्गत वर्णित धर्मारण्य[1035], जो एक अरण्य था, उसका उल्लेख महाभारत, बौद्ध–ग्रन्थों, वराह, स्कन्द, वायु, मार्कण्डेय तथा गरुड आदि पुराणों में मिलता है।[1036] इसकी पहचान बलिया तथा गाजीपुर के समीपस्थ स्थलों से की गई हैं अल्बरूनी को धर्मारण्य की जानकारी, बृहत्संहिता के आधार पर थी।[1037] ग्रन्थ में उल्लिखित पाञ्चाल[1038] के संदर्भ में ज्ञात होता है कि पौराणिक परम्पराओं के अनुसार इस क्षेत्र के राजा भृम्यश्व या हर्यश्व के पाँच कुमारों में राज्य के बंट जाने के कारण इसकी संज्ञा पांचाल हुई, परन्तु विभिन्न पुराणों में इन पाँच राजपुत्रों के नामों मे पूर्ण–रूपेण साम्य नहीं है।[1039] उत्तर वैदिक काल तक पाञ्चाल एक प्रमुख जनपदीय राज्य बन चुका था और यजुर्वेद में 'कांपीलवासिनी' शब्द का प्रयोग पंचाल की राजधानी कांपील या कांपिल्य (कंपिला, जिला फर्रूखाबाद) का स्पष्ट परिचय देता है।[1040] शतपथ ब्राह्मण में परिचक्रा (परिवक्रा) नामक दूसरे पांचाल नगर का भी उल्लेख है।[1041] वैदिक वाङ्मय[1042] तथा महाभारत[1043] में भी इनका उल्लेख मिलता है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक इसी पाञ्चाल की गणना तत्कालीन भारत के षोडश महाजनपदों में होने लगी थी और गंगा नदी से विभाजित इसके दो खण्ड उत्तर तथा दक्षिण पांचाल कहलाते थे। उत्तरी भाग का शासन केन्द्र अहिच्छत्रा (रामनगर, जिला बरेली) तथा दक्षिणी भाग का कांपील या कांपिल्य नगर था। डॉ बिमलाचरण लॉ अहिच्छत्रा को ही वैदिक युग का परिचक्रा मानते हैं।[1044] पालि तथा संस्कृत बौद्ध साहित्य से अनुमान होता है कि बुद्ध के जीवनकाल में यह एक सम्पन्न और सुसंस्कृत जनपद था।[1045] कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार पाञ्चाल का शासन एक संघ द्वारा

1033. यो. महा. 3.37.4

1034. महाभारत, सभापर्व, 32.8 तथा 29.7. Smitch, V.A., "Early History of India", pp. 199 f. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 337, 342, टिप्पणी 4. माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 709–710 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 2, pp. 96, 107, 113.

1035. यो. महा. 3.37.7

1036. महाभारत, वनपर्व 82. 45–46 तथा अध्याय 84. माथुर, विजयेन्द्रकुमार, पूर्वोक्त, पृ. 465–466. वायु पुराण 83.23, 111.23 मार्कण्डेय पुराण, 58.7 शर्मा, राणा प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 248. गरुड पुराण, अध्याय 83. स्कन्द पुराण, ब्रह्मकाण्ड, धर्मारण्य खण्ड 3–37. Archaeological Survey Report Vol. 22.

1037. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 300.

1038. यो. महा. 3.37.7

1039. विष्णु पुराण 4.19.59. भागवत पुराण, 1.10.34, 9.21.32–33, मत्स्य पुराण, 50.3, 4. 121.50 हरिवंश पुराण, 1.32.65. 66. 20. 74.-45. ब्रह्मपुराण, 13.94. Pargiter, F.E., Markandeya Purana, pp. 308, 309, 350-355, 382.

1040. Vedic Index, Vol. 1, p. 149.

1041. "The Śatapatha-Brahman", Edited by Weber, Albrecht, London, 1855. 13.5, 4.7.

1042. Vedic Index, Vol. 1, pp. 149, 187, 469. ऐतरेय ब्राह्मण, 8.14. छान्दोग्य, पूणे, 1958. 5.3.1

1043. महाभारत, आदिपर्व 137.76, 165.21. 24, सभापर्व 29.3–4

1044. 'Law, B.C., 'Panchals and their Capital Ahichhatra, Memories of the Archaeeological Survey', No. 67, p. 3.

1045. 'Divyavadana, Cambridge, 1886, p. 435. Jataka, 3.230, No. 505, Nos. 323, 513, 520. No. 408. Therigatha (Pali Text Society), p. 27. Rhys, Davids, T.W. and Oldenberg, H., Vinay Texts, Oxford, 1881-85, Sacred Books of the East, Vol. 3, p. 233. For details vide - Raichaudhari, H.C., 'Political History of Ancient India', pp. 84 f. Cunningham, A.A., "Ancient Geography of India", 1924, p. 413.

किया जाता था और सम्भवतः इसका उच्छेद ईसा पूर्व चौथी शती में महापद्मनंद ने किया। मौर्य साम्राज्य के शिथिल होने तक पाञ्चाल मगध राज्य के अन्तर्गत रहा, किन्तु ईसा पूर्व तीसरी शती के अंत में पाञ्चाल का स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व फिर स्थापित हो गया था। प्रथम शती ईसवी के अन्तिम चरण में पाञ्चाल कुषाण साम्राज्य का कुछ काल तक अंग बना।[1046] परवर्ती पाञ्चाल नृपों में अंतिम नृप शायद अच्यु या अच्युत था, जिसे समुद्रगुप्त (320–75 ई.) ने पराजित किया। गुप्तयुग में पाञ्चाल प्रदेश अहिच्छत्रा भुक्ति के अन्तर्गत था।[1047] मध्ययुगीन महाकवि राजशेखर ने मधुर काव्य रचना और नाटकों में नेपथ्य विधि के प्रयोग के लिए पाञ्चाल का उल्लेख किया है।[1048] चीनी यात्री ने सातवीं शताब्दी में उत्तर पाञ्चाल को एक कस्बे के रूप में देखा था तथा उसने उसका विशद वर्णन किया है।[1049] इसकी राजधानी अहिछत्र, अधिछत्र, छत्रावती, अहिक्षेत्र, यूनानियों के अदिसद्र के इतिहास के जानकारी लगभग बारह सौ ईसा पूर्व से होती है[1050] और गहड़वालों के समय अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी तक इसी अहिच्छत्र अथवा पाञ्चाल का राजनैतिक लोप हो गया था।[1051]

इसी प्रकार ग्रन्थ में उल्लिखित कुरुक्षेत्र[1052] के विषय में वैदिक साहित्य[1053], अष्टाध्यायी[1054], रामायण[1055], महाभारत[1056], पुराण[1057] तथा कालिदास के ग्रन्थ[1058] से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। ऐतिहासिक काल में नन्द के

1046 रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 26, 122, 136, 205, 345

1047 Mookerji, R.K., 'The Gupta Empire', p. 19.

1048. Raja-cekhara, 'Kapuramanjari', English Translation by Kane, S., Lanman, C.R., Delhi, 1963, III.5.

1049 Smith, V.A., 'Early History of India', 4th Edition, pp. 391-392. Watters, Thomas, op. cit., Vol. 1, p. 331. Beal, S., op. cit., Vol. 1, p. 200 and note.

1050. Luders' List of Brahmi Inscriptions, Index. Dey, N.L., op. cit., pp. 2-3. McCrindle, J.W., 'Ancient India as Described by Ptolemy', Calcutta, 1927, pp. 133-134. Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', p. 412. Epigraphia Indica, Vol. 2, p 432.

हिन्दी विश्वकोश, खण्ड–7, पृ. 146–147

Epigraphia Indica, Vol. 26, pt. 2, April. 1941, p. 90. Law, B.C., Historical Geography of Ancient India, pp. 63-64. Pabhosa Cave Inscription of the Time of Vdaka, No 10, (1st Century B.C.)

1051 पुरी, बैजनाथ, "अहिच्छत्र", हिन्दी विश्वकोश, भाग 9, पृ. 319–320 Epigraphia Indica, Vol. 14, p. 193, lines", Vol. 1, pp. 552, 553, Vol. 2, p. 765.

मनुस्मृति, 9.84 Majumdar and Pusalker, op cit., Vol. 5, pp. 50, 51, 52, 172. Knowledge for Panchal Through Vayu, Matsya Purana and Brihtsamhita of Varahmihir : Sachau, E.C., op. cit, Vol. 1, pp. 133, 262, 298, 299.

1052. यो. महा. 3.37.7

1053 ऐतरेय ब्राह्मण, 4.1.5.13, 11.5.1.1.4, तैत्तिरीय आरण्यक, कलकत्ता, 1872, 5.1.1

1054 पाणिनि, अष्टाध्यायी, अयोध्याकाण्ड, 70.12

1055 वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 70.12

1056 महाभारत, शल्यपर्व, 53.2, 39.33-34, आदिपर्व 80.43, स्त्रीपर्व 52.2, वनपर्व 83.4.9, 15, 25, 40, 52, 195, 200, 205–208, 83.6

1057 भागवत पुराण, 9.14.33, 3.3.12, 7.14.30, 1.1.17, 1.10.34, 3.13.12.65, विष्णु पुराण, 6.8.29, 4.21.6.7, 4.19.77, मत्स्य पुराण, 223.18, 50.66, 78 अध्याय 191, वायु पुराण, 77.64, 91.31, 99.214, 259 तथा अध्याय 258, 270, वामन पुराण, 39 6–8, 20, 23, 37.210, 34.3, 32.3–4, 6–22, नारदीय पुराण, 11.64, 23–24, कूर्म पुराण, पूर्व भाग, 30.45–48 पदम पुराण, उत्तरकाण्ड, 35–38, ब्रह्माण्ड पुराण, 2.18.50, स्कन्द पुराण, 1.19–23, मार्कण्डेय पुराण, 2.35

1058 कालिदास, 'मेघदूतम', पूर्वमेघ, 48–50

समय यह मगध के साम्राज्य के अन्तर्गत आया। मौर्यों के शासनकाल में यह मौर्यवंशीय राजाओं के राज्य में रहा।[1059] मौर्यों के पतन पश्चात् गुप्तों के काल तक कुरुक्षेत्र का इतिहास पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं है। गुप्तों के बाद थानेश्वर के पुष्यभूतिवंशीय राजाओं ने कुरुक्षेत्र पर राज किया। उनके बाद यह क्षेत्र गुर्जर प्रतिहारों और गाहड़वालों के आधिपत्य में रहा। महमूद गजनवी ने थानेश्वर पर आक्रमण कर कुरुक्षेत्र की चक्रस्वामी नामक विष्णुमूर्ति को ध्वंस कर दिया। उसके बाद दिल्ली के नरेश पृथ्वीराज ने उसे मुसलमानों से मुक्त कर दिया था। पृथ्वीराज तृतीय चाहमान के बाद इसका धार्मिक महत्त्व कम हो गया। कुरुक्षेत्र की सीमा में ही इतिहास प्रसिद्ध पानीपत का मैदान है, जहाँ भारत के भाग्यपरिवर्तक तीन महायुद्ध हुए।[1060]

इस प्रकार ग्रन्थ में उल्लिखित सारस्वत[1061] वे प्राचीनकालीन ब्राह्मण थे[1062] जिनके महाभारत तथा वायु पुराण के उल्लेख के आधार पर बिमलाचरण लॉ पंजाब में सरस्वती नदी के किनारे बसे होने की बात कहते हैं।[1063] मार्कण्डेय, स्कन्द, वामन, मत्स्य तथा वायु पुराणों का आधार लेते हुए डॉ. सरकार भी अपरान्त के सारस्वतों को पंजाब में सरस्वती नदी के किनारे बताते हैं।[1064] इसकी जानकारी अरब यात्री अल्बरूनी को भी थी।[1065] चापस शासकों ने लगभग नवीं–दसवीं शताब्दी में गुजरात के पाटन क्षेत्र को अपनी राजधानी बनाते हुए सरस्वत–मंडल पर राज्य किया था।[1066] दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में चालुक्य मूलराज प्रथम ने सारस्वत क्षेत्र को अधिकृत किया।[1067] वराहमिहिर बृहत्संहिता में ग्रामराष्ट्रनी के अन्तर्गत सरस्वत को भी परिगणित करते हैं।[1068]

योगवासिष्ठ महारामायण में उत्तर–दक्षिण के देशों की सूची में प्राचीन पौरवों[1069] का नामोल्लेख भी प्राप्तत होता है, जिनका उल्लेख ऋग्वेद काल से मिलता है[1070] इनका महाभारत में प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है।[1071] इसी प्रकार पुराण भी इनके उल्लेख से अस्पृष्ट नहीं हैं[1072] हर्षचरित में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।[1073] वराहमिहिर की

1059. Archaeological Survey Report, Vol. 14, pp. 86-104. Rapson, E.J., 'Cambridge History of India', Vol. 1, pp. 308-309. Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', pp. 76, 200, 262, 268, 281, 313, 326. Smith, V.A., 'The Oxford History of India', pp. 6, 56. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 101.
पांडे, चन्द्रभान, 'कुरुक्षेत्र', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 3, पृ. 72

1060. Smith, V.A., op. cit., pp. 211, 234. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 129, Vol. 4, pp. 85, 122, 323, 367. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 308, 316, Vol. 2, p. 147. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 49n, 83, 86, 98-99, 110, 201-202, 204, 239, 303 and n, 337.

1061. यो. महा. 3.37.7

1062. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 16.

1063. Law, B.C., Annals of the Bhandarker, 'Oriental Research Institute, Vol. 17, July 1936, Part 4, p. 326.

1064. Sircar, D.C., op. cit., p. 42, 129.

1065. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 2, pp. 158, 300, 398.

1066. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.4, pp. 102-103.

1067. Ibid., p. 104.

1068. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 16.22.

1069. यो. महा. 3.37.43.

1070. ऋग्वेद, 10.33.4, 3.19.3, 4.38.1.

1071. महाभारत, सभापर्व 27.17-17, अध्याय 26, आदिपर्व 89.31-43, 105. 7-22, अध्याय 172, 138, 186, शान्तिपर्व 49.

1072. मत्स्य पुराण, 24.70, 34.31, अध्याय 49, हरिवंश पुराण, 20.10, 60-73, 30.1604, 1619. मार्कण्डेय पुराण, 58.52.

1073. बाणभट्ट, हर्षचरित, वाराणसी, 1958, षष्ठ उच्छ्वास, पृ. 347.

बृहत्संहिता[1074] के आधार पर अरबयात्री अल्बरूनी को भी इसकी जानकारी थी।[1075] ऋग्वेद काल में इनका राज्य बड़ा विस्तृत था और सरस्वती नदी के तट पर बसा हुआ था। मुख्य पौरवों के राज्य का नेतृत्वकर्ता पौरव–वंश तब तक आहत रहा जब तक प्रतीप का शासनकाल नहीं आया।[1076] रायचौधरी महोदय के अनुसार यह विशाल राज्य महाभारत काल में गंगा नदी से सरस्वती नदी तक तथा उत्तरी गंगा के दोआब, जिसमें आधुनिक थानेश्वर और दिल्ली के क्षेत्र शामिल थे, तक विस्तृत था।[1077] इतिहास के आधार पर यद्यपि वे मूल रूप से झेलम के निकट रहने वाले थे, परन्तु परवर्ती युग में या तो वे पूर्व की ओर अथवा पश्चिम की ओर बिखर गये थे। कौशम्बी के गौरव राजवंश का इतिहास रहस्य के घेरे में है। जो भी जानकारी प्राप्त होती है उससे ज्ञात होता है कि शतानीक और उसके पुत्र उदयन इसके महत्त्वपूर्ण शासक थे तथा शतनीक ने दधिवाहन के राज्यकाल में अंग की राजधानी चंपा पर आक्रमण किया था।[1078] जिस पाण्डु अथवा पाण्ड्य देश की स्थिति काम्बोज के दक्षिण तथा इन्द्रप्रस्थ के पश्चिम में बताई गई है, जिसकी स्थिति पंजाब में झेलम अर्थात् आधुनिक सियाकोट में थी, जहाँ का शासक सिकन्दर कालीन पौरव वंशीय पुरु था।[1079] अल्मोड़ा के ब्रह्मपुर से प्राप्त तालेश्वर दानपत्र लेख के उत्तरकालीन कुमाऊँ और गढ़वाल के शासक पौरव वंशीय थे, जिसकी जानकारी सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री तथा छठी शताब्दी के वराहमिहिर से होती है[1080], जो स्पष्ट करता है कि पुराण और महाभारत का पौरब राज्य, जो उत्तर और दक्षिण में था, वह अन्यत्र भी फैल गया।[1081]

प्रश्नगत ग्रन्थ के इसी क्रम में उल्लिखित "माथुरा"[1082] से तात्पर्य मथुरा से है[1083], जो रामायण के अनुसार समृद्धिशाली मथुरा, मधुपुर[1084] तथा शूरसेन जनपद का एक प्रमुख नगर था।[1085] पुराण के काल तक इस प्रकार मथुरा का नाम परिवर्तित होकर मथुरा हो गया था।[1086] इतिहास की दृष्टि से बुद्धकाल में यह ब्राह्मण धर्म का प्रमुख केन्द्र था। मौर्यकाल से शुंग काल तक यह मगध का अभिन्न अंग रहा तथा शुंग एवं कुषाणकाल में इतिहास इसके वैभव की पराकाष्ठा के गीत गाता है। पाँचवी शताब्दी ईसवी में यह जैनियों का भी एक केन्द्र रहा। सातवीं शताब्दी का चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग भी इसका वर्णन करता है। शक–क्षत्रपों का प्रमुख केन्द्र मथुरा गुप्तकाल में उन्हीं के अधीन रहा। कुषाण और गुप्त काल में यहाँ कला का विकास हुआ, जिसके अवशेष आज भी पुरा–संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गज़नवी के आक्रमण के आये झंझावात से यह नगर भी न बच सका और परिणामतः विध्वंस का ताण्डव यहाँ के देवालयों को क्षत–विक्षत कर दिया। उसके बाद सुदीर्घ काल तक यह नगरी उपेक्षित रही। बाद में औरंगजेब के द्वारा "इस्लामाबाद" के रूप में सम्बोधित यह नगरी 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली के नर–संहार

1074. वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.27.
1075. Sachau, E.C., op. cit., Vol.1, p.303
1076. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.1, p. 299. Pargiter, F.E., 'Ancient Indian Historical Tradition', p. 113, n 9.
1077. Rai Chaudhari, H.C., op. cit., p. 20.
1078. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1914, p. 321. रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 218
1079. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 101.
1080. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, pp. 124-125.
1081. Dey, N.L., op. cit., p. 155.
1082. यो. महा. 3.37.6
1083. William, M.M., 'A Sanskrit-English Dictionary', p. 808.
1084. वाल्मीकि, रामायण, उत्तरकाण्ड, 62.16-18, 61.18, 70.5, 11-13
1085. महाभारत, सभापर्व 14.67 कालिदास, रघुवंश, 6.48
1086. भागवत पुराण, 10.41, 20-23, 58 हरिवंश पुराण, 1.54 विष्णु पुराण, 4.5, 101, 5.19.9

का ऐसा केन्द्र बनी कि सात दिनों तक यमुना नदी का पानी लाल बना रहा। इसके बाद 1803 ई. में अंग्रजों ने मराठों से इसे हरतगत किया।[1087]

ग्रन्थ में उत्तर–दक्षिण दिशा के देशों की सूची में पांचनद का उल्लेख प्राप्त होता है।[1088] इस विषय पर अन्य ग्रन्थ भिन्न–भिन्न धारणाएं प्रस्तुत करते हैं। महाभारत[1089] तथा पुराणों[1090] के आधार पर पाँचनद को आधुनिक पंजाब माना गया है।[1091] इसी प्रकार महाभारत के एक अन्य उल्लेख से विदित होता है कि पांचनद प्रदेश कुरुक्षेत्र में एक तीर्थ स्थान था[1092], जिसका उल्लेख पुराणों में भी प्राप्त होता है।[1093] लिंग, कालिका, कूर्म, वराह पुराणों के अनुसार संयुक्त रूप से जानी जाने वाली कामरूप सागर, श्लेषमातक तथा गोकर्ण के समीपवर्ती पाँच नदियों जातोदक (Jatodaka) त्रिस्रोत (Trisrota), वृषद्वनी (Vrishadvani), स्वर्णोदक (Svarnodaka) जम्बूनदी (Jambunadi) से सिञ्चित क्षेत्र पंचनद कहलाता था।[1094] विष्णुसंहिता में दक्षिण भारत की पाँच नदियों कृष्ण, वेणा, तुंगा, भद्रा तथा कोना के संगम को पंचनद कहा गया है।[1095] इस प्रकार ग्रन्थकार ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि यह पंचनद उत्तर–पश्चिम अर्थात् पंजाब है अथवा पूर्व एवं दक्षिण का उल्लिखित प्रदेश है, जिसकी समीक्षा प्रस्तुत की जा सके।

केकय के उल्लेख में भी ग्रन्थकार ने दिशा–निर्देश को स्पष्ट नहीं किया है। वह उसका उल्लेख भी उत्तर–दक्षिण के देशों की सूची में ही करता है।[1096] प्राप्त जानकारी[1097] केकय जनपद की स्थिति उत्तर–पश्चिम क्षेत्र में पंजाब के शाहपुर में इंगित करती है[1098], जिसकी राजधानी गिरिव्रज अर्थात् आधुनिक जलालाबाद में थी।[1099]

1087. 'Sacred Books of the East', Vol. 45, p. 112. Archaeological Survey Report, Vol. 3, p. 42. Epigraphia Indica, Vol. 3, p. 8. रमेश चंद्र, 'मथुरा' हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 9, पृ. 128. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1, pp. 73, 311, 329, vol. 2, pp. 100, 106, 118, 327, 394, 484, 485, 517, 518, 525-528, 531, 533, Vol. 3, pp. 8, 115, 190, 296, 382, 393, 397, 398, 409, 410, 415, 521, 522, 523, 525-527, 540, 592, 594, Vol. 4, pp. 46, 215, 290, 333, Vol. 5, pp. 13, 14, 55, 60, 74, 146, 196, 197, 403, 653, 655, 658. Smith, V.A., 'The Oxford History of India', pp. 37, 42, 72 n, 83, 92, 124, 138, 140, 150 n., 154-155, 173, 207, 262, 394, 401, 407-408, 416, 417 n., 437.

1088. यो. महा., 3.37.8.

1089. महाभारत, कर्णपर्व 45, सभापर्व 32.11.

1090. विष्णु पुराण, 5.38.12.

1091. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 30-31, 48n, 87, 109, 113, 115, 182, 241, 243, 282.

1092. महाभारत, वनपर्व 83.16.

1093. ब्रह्माण्ड पुराण, 3.13.57 वायु पुराण, 77.56.

1094. लिंग पुराण, 1.43.

1095. विष्णु संहिता, 85 (The Sacred Books of the East, Vol. 7, p. 259 note).

1096. यो. महा. 3.37.29.

1097. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 7.3.2. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 2, 35, 37, 70, 67.7, 68.19, 21, 71.18, आदिकाण्ड, 69.7, अध्याय 12.74, 87. महाभारत, स्त्रीपर्व 25.25, सभापर्व 48.13, कर्णपर्व 13. भीष्मपर्व 61.12, द्रोणपर्व, 19.7. पतञ्जलि, महाभाष्य, 7.2.3. मार्कण्डेय पुराण, 58.37 ब्रह्माण्ड पुराण, 3.74.23, 2.16.41. मत्स्य पुराण, 48. 19–20. वायु पुराण, 99. 23–24. विष्णु पुराण, 4.18.10, 4.14.41. भागवत पुराण, 10.82.13, 54.58, 86.20, 71.29, 72.13, 74.41, 75.12, 84.55 तथा 9.23. गरुड पुराण, 1, 39. अग्नि पुराण, 276.

1098. Dey, N.L., op. cit., p. 98. Pargiter, F.E., "Ancient Indian Historical Tradition", pp. 109, 264.

1099. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1895, p. 250 ff. "The Sacred Books of the East", Vol. 13, p. 150. Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', 1924, p. 188, Archaeological Survey Report, Vol. 2.

राजशेखर ने भी केकय देश को शक, हूण आदि के साथ उत्तर में ही स्थित बताया है।[1100] यूनानी शासक सिकंदर के आक्रमण के समय यहाँ पुरु का राज्य था[1101] और उस समय इसकी संकुचित सीमा पूर्व में गुजरात और झेलम तक ही थी। जैन लेखकों के अनुसार केकय देश का आधा भाग आर्य था। जैन ग्रन्थों में केकय के 'सेयविया' नामक नगर का उल्लेख है।[1102] केकय का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण तथा छान्दोग्य उपनिषद् में मिलता है।[1103] दक्षिण भारत में इक्ष्वाकुओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के कारण सम्भवतः इन्हीं की एक शाखा मैसूर में जा बसी थी और इसीलिए वहाँ पर भी केकय के होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[1104] इतिहासकार एरियन केकय देश को सारंग (रावी की सहायक) नदी का तटवर्ती भाग बतलाता है।[1105] शतपथ ब्राह्मण में भी केकय को उदीच्य या उत्तरापथ के देशों में परिगणित किया गया है।[1106] उत्तर–मध्य कालीन ग्रन्थों के आधार पर सरकार महोदय केकय की स्थिति बंगाल तथा कामरूप में भी बताते हैं और बंगाल के केकयों को उत्तर–पश्चिम के केकयों से मूल रूप में वे सम्बद्ध करते हैं[1107] वराहमिहिर की बृहत्संहिता के आधार पर अरब यात्री अल्बरूनी को भी उत्तरापथ के केकय की जानकारी थी।[1108]

इसी प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ में माध्यमिका का जो वर्णन मिलता है, उसकी यह विशेषता है कि माध्यमिका मध्य देश अर्थात् चित्तौड़ (राजस्थान) में बताया गया है। विजयेन्द्रकुमार माथुर के अनुसार स्थूल रूप में मध्य देश के अन्तर्गत आधुनिक उत्तर प्रदेश का अधिकांश भाग, पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली का परिवर्ती क्षेत्र आता था।[1109] ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य देश की भौगोलिक सीमाओं में समयानुसार संकुचन, परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा है। सारांश रूप में नंदूलाल डे महोदय लिखते हैं कि सरस्वती नदी, जो कुरुक्षेत्र में बहती थी, उसका भूभाग इलाहाबाद, हिमालय और विन्ध्य पर्वत माला के क्षेत्र, गंगा–यमुना का दोआब, पूर्व में बंगाल और इसके आगे गोदावरी नदी के क्षेत्र तक दक्षिण में अर्थात् वास्तव में पूर्वी सीमा काम्पिल्य तक, सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य के क्षेत्र, जिसमें प्रमुख रूप से पंचाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर (अर्थात् दक्षिणी पंजाब और उत्तरी राजस्थान के बीच का क्षेत्र[1110]), कुन्ती और शूरसेन आदि के क्षेत्र, उसी मध्य देश में सम्मिलित थे।[1111]

इस प्रकार स्पष्टतः माथुर के पूर्वोल्लिखित तर्क को योगवासिष्ठ महारामायण के माध्यमिका के प्रति विवरण से और अधिक निर्देशात्मक बल सा प्रतीत होता है। साथ ही मध्य देश की सीमा में योगवासिष्ठ महारामायणकार के समय तक चित्तौड़ तक अभिवर्द्धन दृष्टिगत होता है। दूसरी ओर माध्यमिका का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होना तथा गुप्तकालीन पुरातात्त्विक सामग्री का मिलना यह सूचित करता है कि प्रश्नगत ग्रन्थ में इसका उल्लेख महाभारत के

1100. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 98
1101 रायचौधरी, हेमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 218, टिप्पणी 2
1102. Indian Antiquary, 1891, p. 375.
1103. शतपथ ब्राह्मण, 10.6.1.2 छान्दोग्य उपनिषद्, 5.2.4.
1104. Archaeological Survey of South India, Vol. 1, pp. 110-111. Nagarjunikonda Inscription, edited by Vogel in Epigraphia, Vols. 20, 21.
1105. Indian Antiquary, Vol. 5, p. 332.
1106. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol 1, p. 258.
1107. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 109
1108. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 302.
1109 माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 709
1110 वही, पृ. 520
1111 Dey, N.L., op. cit., p. 116.

प्रचलन तथा गुप्तकाल के पश्चात् हुआ होगा। इस ऐतिहासिक परिकल्पना के विश्वास पर हमें ग्रन्थ के रचनाकाल के सन्दर्भ में लगभग छठी शताब्दी के आस–पास का काल वह उपयुक्त समय अनुमानित होता है, जबकि आलोच्य ग्रन्थ का रचनाकाल उसमें उल्लिखित माध्यमिका के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है, परन्तु वही योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित धर्मारण्य के प्रति अरब यात्री अल्बरूनी को ज्ञान होने के कारण तथा उसका उल्लेख गरुड पुराण और बृहत्संहिता में होने के कारण हम अनुमान रूप में आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को नवीं शताब्दी के लगभग विचार कर सकते हैं।

इसी क्रम की निरन्तरता में आलोच्य ग्रन्थ में उल्लिखित पाञ्चाल का जब ग्रन्थकार मध्य देश के अतिरिक्त उत्तर–दक्षिण के देशों की सूची में भी उल्लेख करता है, तो उसकी इस देश के सम्बन्ध में विशद जानकारी प्रकट होती है, किन्तु इस उल्लेख के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में कोई तथ्य संगत तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

इसी प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण में उत्तर–दक्षिण के देशों की सूची में कुरुक्षेत्र के तथ्यों की समालोचना पर भी हम अनुसंधानात्मक विषय में कोई तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकते, क्योंकि उपर्युक्त विवरण उसके सन्दर्भ में यह स्पष्ट कर देता है कि इसके इतिहास की जानकारी ने केवल प्राचीन है, अपितु भारत के झंझावात एवं दासता की कहानी भी इसी में सन्निहित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर–दक्षिण के इसी क्रम में जहाँ आलोच्य ग्रन्थ सारस्वत देश का उल्लेख करता है, वहीं वराहमिहिर के काल से इसे ग्राम–राष्ट्रनी तथा लगभग दसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक उल्लेख इसे 'सारस्वत मंडल' से सम्बोधित करते हैं। इस प्रकार के दिये गये वर्णन उसके राजनैतिक पराभव का द्योतन करते हैं। ऐसी दशा में अनुमानतः उक्त आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को पाँचवी शताब्दी के अन्तिम चरण में रखा जा सकता है।

आलोच्य ग्रन्थ में प्राप्त पौरवों का आधार लेकर भी अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ग्रन्थकार इस उल्लेख में युद्ध में आहत होने वाले गौरवों के द्वारा कोसल देशवासियों के अतिरिक्त उनकी कोई अन्य विशेषता प्रस्तुत नहीं करता और न ही उपर्युक्त प्रस्तुत तथ्यों में हम कोई ऐसा घटनाक्रम प्राप्त कर सके, जिसके आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की कोई अनुमानित तिथि ही प्रस्तुत की जा सके।

माथुरों अर्थात् मथुरावासियों का उल्लेख ग्रन्थकार मध्य देश में करता है, यद्यिप समस्त ऐतिहासिक स्रोत लगभग इसी बात पर प्रकाश डालते हैं, प्रत्युत तत्सम्बन्धित ऐतिहासिक गवेषणा शोध विषय को कोई निश्चित सारगर्भित एवं निष्कर्षपूर्ण आयाम नहीं प्रदान करती।

उत्तर–दक्षिण के देशों की सूची के क्रम में यद्यपि आलोच्य ग्रन्थ पांचनद[1112] का उल्लेख करता है, किन्तु तथ्यों के आधार पर तथा इस उल्लेख के बल पर भी शोध विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता, क्योंकि ग्रन्थकार का इस सम्बन्ध में दिशा–निर्देशन अस्पष्ट है और अन्य स्रोत पाञ्चनद का उल्लेख न केवल उत्तर–पश्चिम में करते हैं, अपितु कुरुक्षेत्र, पूर्व दिशा में तथा दक्षिण दिशा में भी करते हैं।

इसी प्रकार इतिहास में केकय देश ने वास्तव में केवल यूनानी सिकन्दर के समय अपनी वीरता का परिचय दिया था, परन्तु उनकी किसी विजयश्री का उल्लेख उसे ऐतिहासिक काल में भी प्राप्त नहीं होता हैं। अतः ग्रन्थ की कल्पित घटना के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में उक्त उल्लेख का कोई महत्त्व प्रतीत नहीं होता।

1112 यो. महा. 3378

आन्ध्र[1113], द्रविड[1114], काश्मीर[1115] तथा पारसीक[1116] :

दाम, व्याल, कट नामक राक्षसों के पौराणिक कथानक के माध्यम से ग्रन्थकार लोकालोक पर्वत के अन्तरतल में आन्ध्र, द्रविड काश्मीर एवं पारसीक पुरों का उल्लेख करता है।[1117]

लोकालोक किस पर्वत का नाम था, इस पर विशद दृष्टि आगे डाली जायगी, किन्तु जहाँ तक आंध्रों का प्रश्न है, उन पर इस शोध–प्रबन्ध में पहले ही विशद उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ आंध्र–द्रविड़ों का एक साथ उल्लेख मात्र द्रविड़ के दक्षिणावर्ती होने की बात की पुष्टि करता है, किन्तु इन्हीं के साथ काश्मीर एवं पारसीक का उल्लेख होना एक आश्चर्य का विषय है इसलिए इसके समाधान हेतु आवश्यक है कि द्रविड़, पारसीक एवं काश्मीरों की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यात्मक दृष्टि की ओर ध्यान केन्द्रित किया जाय। ऐसा करने पर हमें जो स्पष्ट तथ्य प्राप्त होते हैं, उनकी समालोचना के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ और प्रयास प्रस्तुत किये गये हैं।

भारत में द्रविडों का इतिहास बहुत प्राचीन है। हजारों वर्ष पूर्व सुसभ्य भूमध्यसागरीय (Civilized or Advanced Mediterranean) संकरी ऊँची नाक तथा लम्बे सर वालों (leptorrhine dolichocephals) का मिश्रित स्वरूप ही भारत में द्रविड कहलाया[1118]। इनकी भाषा तमिल थी।[1119] प्राचीनकाल में दक्षिण भारत का ब्राह्मण समाज पाँच भागों में विभक्त था, उसमें से एक द्रविड भी थे। वह विभाजन दिनेश चन्द्र सरकार ने भाषा विज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया है।[1120] यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण वह पहला संस्कृत–ग्रन्थ है, जिसमें सर्वप्रथम समृद्धिशाली

1113 तेषु द्रवत्स भीतेषु सर्वतो दानवादिषु।
दामव्यालकटाख्येषु विख्यातेषु सुरालयें।। (यो. महा., 4.29.22)
लोकालोकाचलान्तेषु पर्वतेषु हृदयेषु च।
आन्ध्रद्रविडकाश्मीरपारसीक पुरेषु च।। (वहीं, 27)

1114 वहीं.

1115 वही, 4.29.22, 27 तथा–
अनुभूयतरामन्यां चित्रां योनिपरम्पराम्।
अद्य मत्स्याः स्थिता राम काश्मीरारण्यपल्वले।। (वही, 4.30.15)
काश्मीरेषु महापदमसरसीतीरपल्वले।
भूयोभूयोऽनुभूयैव मत्स्ययोनिपरम्पराम्।। (वहीं, 4.32.5)
काश्मीरमण्डलस्यान्तर्नगरं नगशोभितम्।
नाम्नाधिष्ठानमित्येव श्रीमत्तस्य भविष्यति।। (वही, 4.32.11)

1116 वही, 4.29.22, 27 तथा–
आकाशगार्णवप्रख्यो वहच्छककदवकः।
अकरोत्पारसी कानांघनैः शतमो भ्रमम्।। (वही 3.37.25)
पर्णवत्प्रोह्य पूरेण पारसीकाः परस्परम्।।
प्रहरन्तो विमोहेन विनष्टा वञ्जुलावने।। (वही, 6ब. 112.2)
पारसीकाः परं पूरैः पारः प्राप्य पयोनिधेः।
निपेतु पवनैः पूताः प्रलये तारका इव।। (वहीं, 21)
तथा–
तालीतमालखण्डेषु पतिताः पातितागकाः।
पारसीका गता मोहं भ्रमाद्वैमानिका इह। वही, 35

1117 वही, 4.29.22, 27

1118 Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1, pp. 143-144, 145 and 157 ff.

1119. Ibid., Vol. 2, 287-289.

1120. Sircar, D.C., Journal of Royal Asiatic Society of Bengal, Letters, Vol. 5, 1939, pp. 407 ff. Apte, V.S., "Sanskrit-English Dicitonary", See 'Dravida' Vol. 2, p. 844. शब्दकल्पद्रुम, देखिए–'द्रविड' द्वितीय खण्ड, पृ. 760. देखिए, 1425 का दक्षिण का एक अभिलेख – Subramanya, Aiyer, K.V., South Indian Inscription, Vol. 1, Madras, 1928, pp. 82-84, 113.

द्रविडों का उल्लेख होता है।[1121] महाभारत के सभापर्व, वनपर्व तथा भीष्मपर्व में द्रविड़ों का उल्लेख प्राप्त होता है।[1122] बिमला चरण लॉ के अनुसार 'जैन–ग्रन्थ' 'बृहत्कल्पभाष्य' में भी इस देश का वर्णन मिलता है[1123]। भागवत, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण से भी इसकी जानकारी प्राप्त होती है[1124] मनु[1125], वराहमिहिर[1126], सोमेश्वर[1127] तथा विल्हण[1128] के उल्लेखों के आधार पर द्रविड का समीकरण के भाग जिसका क्षेत्र मद्रास से श्रीरंगपत्तम तक तथा कन्याकुमारी तथा त्रिपती तक विर्स्त‌िर्ण था, से स्थापित किया जा जाता है।[1129] सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग ने भी दक्षिण के द्रविड देश (Ta-lo-p'it'u, Ta-10-pi-ch'a) का वर्णन किया है।[1130] राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ने द्रविड पर विजय प्राप्त की थी।[1131] लगभग नवीं शताब्दी के मध्य में पाल शासक देवपाल द्वारा यह क्षेत्र विजित किया।[1132] अरब यात्री अल्बरूनी द्रविड देश (Dirwaradesa) का उल्लेख करता है।[1133] कार्कोटकवंशीय जयपीड़ के उल्लेख में ही कल्हण द्रविड देश का भी सन्दर्भ देते हैं।[1134] इसी प्रकार वह अन्यत्र भी द्रविड का उल्लेख है।[1135], जो पूर्व की ही भांति प्रस्तुत अध्ययन में सहायक सिद्ध नहीं होता। मार्कण्डेय पुराण में द्रविडों को कच्छप–अवतार के दक्षिण चरण के पार्श्व भाग में स्थित बताया गया है, किन्तु पूर्व की ही भाँति मार्कण्डेय पुराण की सूची प्रश्नगत ग्रन्थ से ऐक्य नहीं रखती।[1136] यद्यपि द्रविड का उल्लेख हमें नारायणपाल के बादाल अभिलेख (लगभग 855–910), आठ सौ चौब्वन का ललितासूर का ताम्रपत्र

1121 द्राविडाः सिंधुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
वंगागमधामत्स्याः समृद्धाः काशिकोशलाः।। (वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 11.37)

1122 पाण्ड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोण्ड्रकेरलैः।
आन्ध्रांस्तालवनांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्।। (महाभारत, सभापर्व, 31.71)
यत्र सर्वान् महीपालञ्छस्त्र तेजोभयार्दितान्।
सवंगाङ्गान् सपौण्ड्रोड्रान् सचोलद्राविडान्ध्रकान्।। वनपर्व, (वही, 15.22)
तथा –
अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः।। (वही, भीष्मपर्व, 9.58)

1123 Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 150.

1124 भागवत पुराण, 4.28.30, 8.4.7, 8.24.13, 9.1.2 10.79.13, 11.5.39 ब्रह्माण्ड पुराण, 3.35.10, 73.107 मत्स्य पुराण, 227.114–117

1125 मनुस्मृति, 8.350-351, 10.43-44.

1126 वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.19

1127 सोमेश्वर, मानसोल्लास, गायकवाड़, ओरिएन्टल सीरीज, 1939, 1.2 175–76

1128 Bihana, 'Vikramankadevcharita', Edited by Buhler, G., Bombay, 1875, p. 27, Note 7.

1129 Journal of Royal Asiatic Society, 1846, p. 15.

1130. Watter, Thomas, op. cit., Vol. 2, pp. 226-228. Beal,S., op. cit., Vol. 2, pp. 228-231.

1131. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 15.

1132. Ibid., pp. 50, 51.

1133. Sacahu, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 173.

1134. Kelhana, op. cit., Vol. 1, Book 4, verse 594, 604.

1135. Ibid., Vol. 2, Book 8, verse 2444.

1136. cf. 'Markandeya Purana', English Translation, op. cit., p. 370 n.

लेख, नौ सौ उन्तालीस ईसवी से नौ सौ सरसठ ईसवी के राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के चिन्यानी ताम्रपत्र लेख जिसमें यद्यपि आन्ध्र, द्रविड तथा पारसीक का एक साथ उल्लेख आया है, किन्तु प्रश्नगत ग्रन्थ की सूची की भाँति कश्मीर का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, लगभग दस सौ सत्तासी और ग्यारह सौ तेईस ईसवी के मान्यखेट के चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ के नीलगुंडा ताम्रपत्र लेख तथा बारह सौ इकसठ ईसवी के रुद्राम्बा के मलकापुरम् प्रस्तर लेख में प्राप्त होता है[1137] तथापि उक्त सन्दर्भों में भी योगवासिष्ठ महारामायण की सूची का साम्य प्राप्त नहीं होता।

अतः प्रश्नगत ग्रन्थ के अन्तर्गत द्रविड के उल्लेख के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

योगवासिष्ठ महारामायणकार जहाँ एक ओर आंध्र, द्रविड पारसीकपुर और काश्मीर का एक ही सूची में उल्लेख करता है[1138], वहीं अन्यत्र पारसीक भटों के समुद्र के तरंग वेग से परली पार पहुंचकर, वायु से पवित्र होकर प्रलयकाल में तारों के समान गिरने[1139] आकाश में प्राप्त समुद्र के तुल्य नीलवस्त्रधारी महान शकों के समूह के द्वारा इस (पारसीक) देश वालों को रात्रि के अन्धकार के समान भ्रम उत्पन्न किये जाने[1140], ताल और तमला के समूहों में प्रविष्ट होते ही शत्रुओं द्वारा उनके अंग–अंग काट डाले जाने पर मूर्च्छित होने और वहाँ पर भ्रान्तिवश विमानचारी ऐसे हो जाने[1141] तथा उनके अस्त्र प्रवाह से पत्तों की भाँति बहाए जाते हुए मोहवश आपस में प्रहार कर वञ्जुला वन में विनष्ट हो जाने[1142] का वर्णन करता है। साथ ही ग्रन्थकार वेदान्त की गूढतम व्याख्याओं के साथ किरातों के एक राजा सुरघु तथा पारसीक नरेश परिघ का वर्णन प्रस्तुत करते हुए उसके नाम का भारतीयकरण करते हुए उसे अन्यत्र 'पर्णाद' सम्बोधित करता है।[1143] इस प्रकार से पारसीकों के प्रति किए गए उल्लेख जो विशिष्ट तथ्य प्रस्तुत करते हैं, वे इस प्रकार हैंः–

1. पारसीकपुर का उल्लेख आंध्र, द्रविड और कश्मीर के साथ हुआ है।
2. उनके विनाश अथवा पराजय का उल्लेख और भारतीय तथा पारसीक शासकों के मध्य दार्शनिक विचार विनिमय का वर्णन ग्रन्थ में प्राप्त होता है।

इन विशेषताओं के आधार पर की गई समालोचना के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में यहाँ निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया हैं

पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रस्तुत ग्रन्थ, जिसके रचनाकाल के विषय में इस शोध–प्रबन्ध में समालोचना की जा रही है, वह अद्वैत–वेदान्त एवं योग–दर्शन का एक विशिष्ट ग्रन्थ है। उच्च दार्शनिक धारा की गंगा में स्नात इस ग्रन्थ में उन परम्पराओं, जिनमें कुछ न कुछ ऐतिहासिक तथ्य सन्निहित हों, उनसे विलग रहने का प्रयास नहीं किया गया है, इसीलिए किसी न किसी परिकल्पना के विशेषण में इतिहास की झलक यत्र–तत्र देखने को मिलती है। जैसा कि हम पूर्व विवरण में दर्शा ही चुके हैं कि इस प्रकार के उल्लेख कुछ न कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य प्रदान करते हैं, जिनके निदर्शन से प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल पर कुछ न कुछ विचार प्रस्तुत किये जा सके हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में यहाँ भी प्रयास किया गया है।

1137 Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol. 2, pp. 87, 89, 268, 270, 503, 506, 524, 531-32, 575, 584.

1138 यो. महा., 4.29.22. 27

1139 यो. महा. हिन्दी अनुवाद, अच्युत ग्रन्थमाला, निर्वाण उत्तरार्थ, प्रथम खण्ड, पृ. 5349

1140 वही, ज्ञानसागर यन्त्रालय, भाग 1, पृ. 258

1141 वही, हिन्दी अनुवाद, अच्युत ग्रन्थमाला, निर्वाण उत्तरार्थ, प्रथम खण्ड, पृ. 5351

1142 वही, पृ. 5346

1143 यो. महा., 4.61.8 तथा आगे एवं सर्ग 62 और 63

भारत तथा पारसीक सम्बन्ध अति प्राचीन है। ग्रिफिथ के अनुसार पारसीकों का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त है।[1144] मुद्राराक्षस में विशाखदत्त ने पारसियों के सुदृढ अश्वबल की ओर संकेत किया है।[1145] ईरान के सम्राट दारा ने छठी शती ईसा पूर्व में पश्चिमी पंजाब पर आक्रमण करके कुछ समय के लिए वहाँ से कर वसूल किया था। उसके नक्शे–रुस्तम तथा बहिस्तां से प्राप्त अभिलेखों में सिंध को दारा के साम्राज्य का सबसे धनी प्रदेश बताया गया है।[1146] विष्णु तथा ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार यह भारत के पश्चिम का जनपद था और ललिता की सेना के अश्व इसी कक्षा के थे।[1147] पारसीकों का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्राप्त होता है।[1148] शकों के पारसीकों से सम्बद्ध होने की बात को भी इतिहासकार स्वीकार करते हैं।[1149] महाभारत में भी अन्यान्य दक्षिण के जनपदों की भाँति पारसीक का उल्लेख किया गया है।[1150] एच.डी. संकालिया ने रामायण के पुरातत्त्व पर लिखे गये अपने एक लेख में यह मत अभिव्यक्त किया है कि महाभारत के उपर्युक्त उल्लेख वस्तुतः उसमें परवर्ती जोड़ों का कारण है। इसी बात को और अधिक प्रभावी रूप से स्पष्ट करने के लिए उक्त आधार पर ही महाभारत के भीष्मपर्व की रचना तथा उसमें आयी भौगोलिक सूची के कारण अधिक से अधिक सातवीं शताब्दी स्वीकार की गई है।[1151] कालिदास ने रघु की विजय–यात्रा में उनके द्वारा पारसीकों पर भी विजय किये जाने का उल्लेख किया है।[1152] गुप्त सम्राट महाराज समुद्रगुप्त को पारस तथा भारत के पश्चिमोत्तर अन्य प्रदेशों से संबद्ध कई राजा और सामंत कर देते थे तथा उन्होंने समुद्रगुप्त से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए थे।[1153] आठवीं शताब्दी के कन्नौज के यशोवर्मन् की पारसीक विजय का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[1154]

इतिहासकार बीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव के अनुसार भारत तथा ईरान के सम्पर्क–सूत्र प्राचीन हैं और उनके सम्बन्ध निरन्तर एक दूसरे से बने रहे। यही कारण है कि अजन्ता की गुहा संख्या– एक में, जो फ्रेस्को–पेन्टिग है, उसमें स्पष्ट रूप से ईरानी प्रभाव दृष्टिगत होता है और इसकी तिथि अनुमानतः सातवीं शताब्दी ईसवी मानी जाती है। इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि भारत तथा ईरान के प्राचीन एवं निरन्तर वैचारिक तथा सांस्कृतिक सम्विलीयन होते रहे तथा भारत के पश्चिमी सामुद्रिक क्षेत्र में पारसीक सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण में बस गये[1155] सम्भवतः इसीलिए आठवीं शताब्दी के कन्नौज के यशोवर्मा को पारसीकों से भयावह युद्ध करना पड़ा और उसने उन्हें पराजित किया।[1156] गौडवहो

1144. Griffith, Ralph H., op. cit., p. 375 n-1. Journal of the Royal Asiatic Society, Vol. 15, pp. 101, 103.

1145. विशाखादत्त, 'मुद्राराक्षस', 1.20.

1146. Bisutun (Behistum) Column (No. 1) Inscription of Darayavahush (Darus, c. 522-486 B.C.), No. 1, Lines 15-17. Naqsh-i-Rustam Inscription (A) Darayavahush (Darius), No. 4, Lines 24-30.

1147. विष्णु पुराण, 2.3. 17–18. ब्रह्माण्ड पुराण, 4.6. 16.

1148. कौटिल्य, 'अर्थशास्त्र', शाम शास्त्री द्वारा अनुवाद, पृ. 86.

1149. Indian Historical Quarterly, 1933, pp. 37 ff.

1150. महाभारत, भीष्मपर्व, 9.66.

1151. Sankalia, H.D., An Article on Ramayan Archaeology; The Times of India, Ahemdabad, Edition, Dated October 19, 1975.

1152. कालिदास, रघुवंश, 4.60. 62, 65.

1153. Allahabad Stone Pillar Inscription of Samudragupta (c. 335-76 A.D.), No. 2, Lines 23-24.

1154. Buhler, G., Indian Antiquary, Vol. 3, pp. 129-130.

1155. Srivastava, B.N., "harsh and His Times", p. 83.

1156. देखिए – वाक्यपतिराज, 'गउडवहो', पूणे, 1927, श्लोक 439. एस.पी. पण्डित के अनुसार यशोवर्मा के समय में सिन्ध अथवा काठियावाड के समय में सिन्ध अथवा काठियावाड़ के किसी भाग पर पारसीकों का राज्य था, जिनको यशोवर्मा ने पराजित किया था (देखिए – गउडवहो, पण्डित, शंकर पाण्डुरंग, पृ. civ.)

के इस विवरण की तुलना योगवासिष्ठ महारामायण में पारसीकों की पराजय के उल्लेख से की जा सकती है[1157], किन्तु प्रश्नगत ग्रन्थ के इस विवरण में उनकी पराजय वञ्जुलावन में बतायी गयी है।

सम्भवतः यह वन वञ्जुला अर्थात् मन्जेरा (Manjera) नदी के तटवर्ती क्षेत्र में था, ऐसा अनुमान, वञ्जुला अथवा मञ्जुला, एक दक्षिण भारतीय नदी जो गोदावरी की एक शाखा थी, उसके आधार पर किया जा सकता है। इस तथ्य का आधार मानने पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल की तिथि आठवीं शताब्दी ईसवी मानी जा सकती है।

शूद्र :

योगवासिष्ठ महारामायण, मार्कण्डेय, विष्णु, कूर्म, वायु, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण में आये शुद्ध जनपद[1158] को नंदू लाल डे, पार्जिटर तथा राय चौधरी शूद्रक मानते हुए उसका समीकरण मुल्तान के दक्षिणी क्षेत्र से करते हैं, जिसका उल्लेख महाभारत तथा प्लीनी और टॉलमी के उद्धरणों में प्राप्त होता है।[1159] परन्तु दक्षिण और पश्चिम दिशा के इन शूद्रों के आधार पर हम अनुसंधानात्मक विषय में इसके अतिरिक्त कि ग्रन्थ की रचना गुप्तकाल के अनन्तर (पाँचवी से नवीं शताब्दी तक) होनी चाहिए[1160], अन्य तथ्यों के अभाव में कोई स्पष्ट मत प्रस्तुत नहीं कर सकते।

योगवासिष्ठ महारामायण में काश्मीर के उक्त उल्लेखों पर आधारित[1161] रचनाकाल के निर्धारण से सम्बन्धित चर्चा इस शोध–प्रबन्ध के अग्रिम अध्याय में किये जाने के कारण यहाँ तत्सम्बन्धित तथ्यों पर आधारित तर्क प्रस्तुत नहीं किये जा रहे हैं। सारांश रूप में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आलोच्य ग्रन्थ काश्मीर–पुर, उससे सम्बन्धित पर्वत तथा वहाँ के एक ऐतिहासिक राजा यशस्कर का उल्लेख करता है, जिसके आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण में एक नया मोड़ तथ जिज्ञासा हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है।

इस प्रकार देशों के नामोल्लेखों के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में विभिन्न आयामों के प्रस्तुतीकरण के साथ ही यह भी आवश्यक हो जाता है कि योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित उन अनेक जनपदों के नामो की सूची यहाँ प्रस्तुत कर दी जाय जिनके विषय में कोई अन्य तथ्य उपलब्ध नहीं होते–

तालिका

जनपदीय नाम	*योगवासिष्ठ महारामायण*
मालदेश	3.17.23
पृथग्दीपक	3.36.28
हेमकुड्यश्मश्रुधर	3.36.29

1157. यो. महा., 3.37. 25. 6 व. 112.2. 21. 35.

1158. अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्यसुराष्ट्रकाः।
सिंधुसौवीरशूद्राख्या अभीराद्रविडास्तथा।। (यो. महा., 3.36.40)
मार्कण्डेय पुराण, 57.36. 58.31. विष्णु पुराण, 4.24. Sircar, D.C., "Studies in the Geography of Ancient and Medieval India", pp. 32, 46 and n.

1159. Dey, N.L., op. cit., p. 195. Pargiter, F.E., Markandeya Purana, pp. 313-314, 368 n. Raichaudhari, H.C., op. cit., p. 205.

1160. काणे, पाण्डुरंग वामन, पूर्वोक्त, खण्ड–1. पृ. 15, खण्ड 4. पृ. 424. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 3, p. 298.

1161. यो. महा. 4.29.22. 27. 4.30.15. 4.32.5. 11.

वलिग्रीव	3.36.29
मुद्र	3.36.22
संग्राम शौण्डक	3.36.22
मुख्य	3.36.23
हिम	3.36.23
वाजिमुख	3.36.23
पुरुषादक	3.36.23
वर्णकोष्ठ	3.36.24
विश्वोत्र	3.36.24
आममीनाशन	3.36.24
व्याघ्रवक्र	3.36.26
कुसुमापीड	3.36.30
दर्दुर	3.36.30
सूर्यवान्	3.36.31
राज्यसमृद्ध	3.36.31
शाम्बवती	3.36.31
नृराष्ट्र	3.36.33
साह	3.36.33
शव	3.36.33
वनबिम्बिल	3.36.33
कैरक	3.36.34
कर्कवीर	3.36.34
स्वेरिक	3.36.34
यासिक	3.36.34
पञ्जिक	3.36.34
तृष्णखल्लूल	3.36.35
याद	3.36.35
दीनपत्तन	3.36.35
दम्भराकीर्ण	3.36.36
सहकार	3.36.36

ऐणक	3.36.36
वैतुण्ड	3.36.36
तुम्बवनाला	3.36.36
दीपकर्णिका	3.36.36
कर्णिकाभा	3.36.37
कोंकण	3.36.37
महाकटकी	3.36.37
विचेरिक	3.36.38
महाराज्य	3.36.40
सिद्धखण्ड	3.36.41
कालिरूह	3.36.41
धूम्र	3.36.42
तुम्बक	3.36.42
तांकनि	3.36.43
अन्तकपंचजन	3.36.46
भारक्षत	3.36.46
शैव्य	3.36.47
आरमरकाय	3.36.47
अच्छू	3.36.47
अगुहुत्व	3.36.47
अनियम	3.36.47
गाय	3.36.47
औव्हणक	3.36.48
कर्क	3.36.48
गिरिपर्ण	3.36.48
वम	3.36.48
गिरिमिति	3.36.51
नरपति	3.36.51
अनेकनेत्रक	3.36.52
पुरुकुन्द	3.36.52

भानुमण्डल	3.36.52
भावन	3.36.52
वन्मिल	3.36.53
नलिन	3.36.53
लुह	3.36.53
वारेव	3.36.55
राजन्य	3.36.56
क्षुद्र	3.36.56
बला	3.36.56
स्वरस्तवासी	3.36.56
अबल	3.36.57
प्रखल	3.36.57
क्षेम	3.36.57
धूर्ति	3.36.57
दशधानागा	3.36.57
अवसन्य	3.36.57
हन्यसना	3.36.57
धानदा	3.36.58
सरका	3.36.58
अन्तरद्वीप	3.36.58
सुरा	3.36.58
बीलव	3.36.59
गोधनी	3.36.59
पुष्करावर्त देश	3.36.59
नाभिमती भूमि	3.36.60
तिक्षाभूमि	3.36.60
कालवराभूमि	3.36.60
काहक	3.36.60
सुरभूतिपुर	3.36.60
रतिकादर्श	3.36.61

अन्तरादर्श	3.36.61
पाण्डव्य	3.36.61
मानवा	3.36.62
नांगना	3.36.62
हेमताला	3.36.62
स्वस्वमुखा	3.36.62
कालुत	3.36.64
ब्रह्मपुत्र	3.36.64
कुणिद	3.36.64
खदिन	3.36.64
रन्ध्रराज्य	3.36.64
वन	3.36.64
राष्ट्र	3.36.64
केडव	3.36.65
सिंहपुत्र	3.36.65
वामन	3.36.65
सावकच	3.36.65
चापलवह	3.36.65
कामिर	3.36.65
अभिसासद	3.36.66
जाव	3.36.66
अर्क	3.36.66
पलोल	3.36.66
कुवि	3.36.66
गुड	3.37.4
अश्वघ	3.37.4
नायक	3.37.4
उत्तम	3.37.4
ज्योतिभद्र	3.37.4
मद	3.37.4

सालूक	3.37.5
कोघमालास्य	3.37.5
दौर्झेय	3.37.5
पिप्पलायन	3.37.5
पाण्डुनगर	3.37.5
सौग्रीव	3.37.5
गुरुगृह	3.37.5
पारियात्र	3.37.6
कुराष्ट्र	3.37.6
यामुन	3.37.6
उदुम्बर	3.37.6
राज्याव्ह	3.37.6
उज्जिहान	3.37.6
कालकोटिक	3.37.6
नलद	3.37.16
दाशक	3.37.17
पाश	3.37.18
निगड	3.37.20
भासक	3.37.23
कंक	3.37.29
काश	3.37.31
नार्मद	3.37.32
साल्व	3.37.33
भासक	3.37.33
कुन्ति	3.37.34
अहीन	3.37.35
पाण्डनगर	3.37.35
तंदेहक	3.37.36
ब्रह्मावत्सनक	3.37.37
नीप	3.37.37

भद्र	3.37.38
काष्ठयोध	3.37.39
मतंगजा	3.37.39
मित्रगर्त	3.37.40
वलिन	3.37.41
कन्दाकरस्थल	3.37.47
तांजिगीषवन	3.37.53
तुषाकामेखल	3.37.54
कच्छलन	3.37.54
प्रस्थवास	3.37.55
कौन्त	3.37.55
द्विपि	3.37.56
बाहुधान	3.37.56
क्षुद्र खर्वग	3.37.58

अध्यायोपसंहार

पूर्व प्रस्तुत विशद विवेचन के पश्चात् जब हम इस अध्याय की समीक्षा करते हैं तो विभिन्न जनपदों और जातियों के नामोल्लेख के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्धारण में जो तथ्य सामने आते हैं, उनसे स्पष्ट होता है हूण, हैहय, ताजिक, चीन, किरात, तंगण एवम् गुर्जर, पिंगल और सरस्वत के सन्दर्भों की राजनैतिक एवं ऐतिहासिक समीक्षा योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में पाँचवीं से सातवीं शताब्दी ईसवी की समीक्षा निर्धारित करने में सहायक होती है। गौड, गंधार, एकपाद, फल्गुणक, गुरुह तथा धर्मारण्य के उल्लेखों के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल की सीमा नवीं शताब्दी तक आ ठहरती है। आभीर, अवन्ति और वटक का आधार लेकर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को चौथी शताब्दी ईसवी से आठवीं शताब्दी तक अथवा गौण रूप से सभी विद्वानों के अनुसार ग्रन्थ के कालिदासोत्तर स्वीकार किये जाने के कारण इसे छठी से आठवीं शताब्दी ईसवी की रचना स्वीकार करना तर्कसंगत प्रतीत होता है। इसी क्रम में वत्स, दाशार्ण, प्राग्ज्योतिष तथा वनवास का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ को पाँचवी–छठी शताब्दी ईसवी के सन्धि–प्रकाशकाल में रचे जाने से सम्बन्धित विचार को सम्पुष्ट आधार प्रदान करता है, क्योंकि यही वह काल था, सिजके तुरन्त पश्चात् उत्तर गुप्तकाल का प्रारम्भ होता है तथा इतिहास में इसी सन्धि–प्रकाश काल के तुरन्त पूर्व गुप्तकाल का पराभव दृष्टिगोचर होता है।[1162] इसी क्रम में जठर, मेखल, कंटक–स्थल, कोमल, रुद्रमुख्य, सौवीर, दशपुर, कर्कोट, शिवि, यौधेय, मालव, तनय, शक, तक्षशिला, शान्तिक तथा माध्यमिक ग्रन्थ के रचनाकाल को छठी–सातवीं शताब्दी ईसवी निर्धारित करते हैं। इसी सन्दर्भ में महाग्रीव तथा नालिकेरि का उल्लेख ग्रन्थ के रचनाकाल को तीसरी से ग्यारहवीं शताब्दी तक विचार करने की अनुमति देता है। उत्कल का उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनकाल की सीमा को बारहवीं शताब्दी के पूर्व निर्धारित करने का आयाम प्रदान करता है। कर्कर तथा वाटधान के सन्दर्भ पर विचारानुगमन आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को महाभारत के जन–मानस में प्रचलन के पश्चात् विचार करने की

1162. Mookerji, R.K., 'The Gupta Empire' पाठक, विशुद्धानन्द, 'उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास', लखनऊ 1977

सम्भावना प्रकट करता है। इसी प्रकार काशिका का उल्लेख साहित्यिक तादात्म्य के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ की रचनाकालीन तिथि का आकलन छठी शताब्दी ईसवी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक करने का मानदण्ड प्रस्तुत करता है, यद्यपि इस तिथि के प्रति विवाद सम्भाव्य हैं, क्योंकि मत्स्य पुराण की तिथि की एक अन्य अवधारणा उसे तीसरी से छठी शताब्दी ईसवी तक रचे जाने की मान्यता प्रस्तुत करती है।'[1163] इसी क्रम में गोनर्द का आधार रचनाकाल की सीमा को पाँचवीं से दसवीं शताब्दी तक निश्चित करता है। इसी प्रकार ताम्रीक का उल्लेख ग्यारहवीं शताब्दी में ग्रन्थ के रचे जाने की बात की पुष्टि करता है। ग्रन्थ में लंका का उद्धरण उसके रचनाकाल की तिथि को गुप्तकाल के मध्याह्न काल अर्थात् पाँचवी शताब्दी की आरम्भिक सीमा में विचार करने के लिए बल प्रदान करता है। इसी क्रम में ग्रन्थ में माण्डव्यों का उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को छठी शताब्दी का मध्य काल वामन पुराण की रचना के आधार पर सर्जित करता है परन्तु यह तथ्य उसके रचनाकाल की तिथि को पूर्णतया स्पष्ट इसलिए नहीं करता है क्योंकि इस पुराण की तिथि विवादास्पद है, परन्तु इस विवाद के होते हुए भी प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को वामन पुराण के साम्य से अधिक से अधिक नवीं शताब्दी के मध्यकाल तक माना जा सकता है, क्योंकि वामन पुराण की अन्तिम तिथि नवीं शताब्दी ईसवी निर्धारित की गई है।'[1164] अब यह विद्वानों के लिए गहन चिन्तन का विषय है कि वामन पुराण के किस काल के प्रक्षिप्त अंश से प्रश्नगत ग्रन्थ में उल्लिखित माण्डव्य का तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। ऐसा करने पर ही आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि का इस आधार पर स्पष्ट मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा सकता है। यही बात अन्य पुराणों के लिए भी लागू होती है, विशेष रूप से जिनका आधार लेकर प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के प्रति विचारधारा प्रस्तुत की गयी है। स्त्री-राज्य के साहित्यिक उल्लेख के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि का निर्धारण निरपेक्ष रूप से लगभग ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी किया जा सकता है क्योंकि सापेक्ष उल्लेख केवल तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक विवरणों की उपलब्धता पर ही सम्भव है। दरद, सुराष्ट्र और पारसीक के उद्धरणों का उल्लेख लेते हुए उसके समालोचनात्मक अध्ययन द्वारा प्रश्नगत ग्रन्थ का रचनाकाल आठवीं शताब्दी ईसवी हो सकता है। शूद्र जनपद के उल्लेख को एक आधार मानकर पाँचवीं से नवीं शताब्दी ईसवी में प्रश्नगत ग्रन्थ के रचे जाने की बात स्वीकार की जा सकती है।

उल्लेखनीय है कि इस रचनाकाल की समालोचना में उन तथ्यों पर भी विचार किया गया है, जिनका समीकरण एवं घटनाक्रम किसी न किसी रूप में हमारे सामने आता गया। यद्यपि इनसे अनुसंधानात्मक विषय में कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकी, परन्तु अपने ज्ञान की सीमा को संकुचित न रखते हुए विषयगत धारा में ही ताम्र, अंग, वंग, उपवंग, कलिंग, पुण्ड्र, विदर्भ, शबराननवर्ण, कर्णात्रिपुरपूरक, चौलिक, कर्णाध, चार्मण्वत, काकका, किष्किंधा, कोसल, काशी, मगध, मिथिला, हिम, ताम्रलिप्त, अम्बष्ठ, सौवीर, शाम्बवती, नागर, दण्डक, पम्पा, धर्मपत्तन, ताम्रपर्णका, जिन, कनक, कोंकण, कर्णाट, मण्ट, आंध्र, अवन्ति, वेणुपति, पारा, दीर्घ, रंग, स्तनिक, भद्र, शूरसेन, राजन्य, अर्जुना, त्रिगर्त, यातुधान, कीकट, वाह्लीक, नाग, यक्ष, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र, माथुर, पाञ्चनद, केकय तथा द्रविड का आधारत्वेन उल्लेख प्रस्तुत किया गया है।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि उक्त जनपदों एवं जातियों के उल्लेखों के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में जो निष्कर्ष प्राप्त होता है वह स्पष्ट करता है कि ग्रन्थ की रचना कालिदासोत्तर काल में गुप्तकाल के पतन के अनन्तर सम-सामयिक काल की है, परन्तु जैसा कि पहले ही स्वीकार किया जा चुका है कि ग्रन्थ में प्रक्षेप है, जिसके कारण ही, जो उक्त उल्लेख प्राप्त हुए हैं, वे उसके रचनाकालीन सीमा को बारहवीं शताब्दी तक पहुँचा देते हैं। यह तथ्य कितने विश्वसनीय हैं? इसी की विवेचना करने हेतु अगले अध्याय में ग्रन्थ में प्राप्त भौगोलिक उल्लेखों के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में और गहन चिन्तन करने का प्रयास किया गया है।

❑ ❑ ❑

1163 मत्स्य पुराण की तिथि के सन्दर्भ में देखिए- काणे, पाण्डुरंग वामन, 'धर्मशास्त्र का इतिहास', खण्ड-4, पृ. 13

1164 वही, खण्ड-4, पृ. 423-424

पञ्चम अध्याय

पर्वतों, नदियों तथा द्वीपों के उल्लेख के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्धारण

रामायण, महाभारत, पुराण तथा बौद्ध ग्रन्थों सहित संस्कृत–साहित्य के अन्य ग्रन्थों की भौगोलिक पृष्ठभूमि में प्राचीन भारत के पहाडों, नदियों, द्वीपों आदि का विवरण प्राप्त होता है। ऐसे ही सन्दर्भ योगवासिष्ठ महारामायण में देखने को मिलते हैं, जिनकी सहायता से इस ग्रन्थ के रचनाकाल का मूल्याँकन करने का प्रयास किया गया है। ऐसा करने के लिए न केवल प्रश्नगत अपितु अन्य अनेक ग्रन्थों तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने हेतु साधन रूप में प्रयोग किया गया है।

(अ) पहाडों के विवरण :

योगवासिष्ठ महारामायण में अनेक पर्वतों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन उल्लेखों को अन्यान्य साक्ष्यों की कसौटी पर रखने से जो तथ्य सामने आते हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ ऐसे ही तथ्यों को पर्वतों के संदर्भ में रखकर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकार पर कुछ और सूक्ष्म चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया हैः–

हिमालय :

वेद[1] [2], अष्टाध्यायी[3] तथा रामायण[4] में स्मृत नगाधिराज हिमालय का सुन्दर चित्रण योगवासिष्ठ महारामायण में प्राप्त होता है।[5] कालिदास के कुमारसम्भवम् में इसी पर्वत की प्रशस्ति करते हुए उसे पृथ्वी का मानदण्ड माना गया है। इसी प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण के उल्लेख में उसे रत्नों और औषधियों का प्रदाता ही नहीं बताया गया है अपितु

---

1. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (ऋग्वेद 10.121.4)

2. अथर्ववेद 19.39.8

3. पाणिनि, अष्टाध्यायी, वाराणसी, 1981. 4.1.49

4. वाल्मीकि, रामायण, मुंबई, 1964, आदिकाण्ड, 41.18.43.4, किष्किंधाकाण्ड, 43.12

5. जम्बूद्वीपेऽस्ति शैलेन्द्रो हिमवान्नाम सन्नतः।
जामाता यस्य भगवान्साक्षाच्छशिकलाधरः।। (यो. महा. 3.74.13)
ततः स्त्रीराष्ट्रमतुलं गोवृषापत्यभोजनम्।
अथातस्या हिमवान्क्राञ्चाऽथ मधुमान् गिरिः। (वही 3.36.54)
मानव नांगना हेमतालाः स्वस्वमुखारतथा।
हिमवान्वसुमान्कौञ्चकैलासावित्यगारतथा।। (वहीं, 62)
प्रचलितवलिताञ्जनाचलाभा
हिमगिरिपादनिवेशितं सुदेशम्।
तदनुगतवती निशिचरी सा
निशि सुघनान्धत मिस्रमार्ग भूमौ।। (वही, 76.17)

उसके धार्मिक महत्त्व का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है।[6] महाभारत में भी इस पर्वतराज के धार्मिक महत्त्व का वर्णन किया गया है।[7] इस प्रकार प्रश्नगत ग्रन्थ में हिमालय के प्रति धार्मिक भावना का साम्य देखा जा सकता है, यद्यपि जहाँ योगवासिष्ठ महारामायण में ब्रह्मा, कर्कटी राक्षसी की तपस्या, सुरुचि अप्सरा का निवास करना तथा हिमालय के जामाता के रूप में भगवान् शिव का उल्लेख प्राप्त होता है, वहीं महाभारत में बालखिल्य तथा भगवान् शेषनाग द्वारा यहाँ पर की गई तपस्या का वर्णन देखने को मिलता है।[8] हिमालय को जहाँ कालिदास तथा योगवासिष्ठ महारामायण पृथ्वी के मानदण्ड के रूप में स्पष्ट रूप से उल्लिखित करते हैं[9] वहीं महाभारत में इसी बात को हम निरपेक्ष रूप में देखते हैं।[10]

अमरकोष एवं राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय के करहद (Karhad) पत्र में उल्लिखित[11] इस विशाल हिमालय के वर्णन की समता योगवासिष्ठ महारामायण, महाभारत तथा कालिदास के ग्रन्थों में प्राप्त होने के कारण आलोच्य ग्रन्थ की तिथि को कालिदास तथा महाभारत के उत्तरकाल में मान सकते हैं, क्योंकि यह स्वीकृत तथ्य है कि कालिदास के ग्रन्थों की प्रतिकृति प्रश्नगत ग्रन्थ में प्राप्त होती है तथा महाभारत के जनमानस में प्रचलन का काल गुप्तकाल ही था।[12, 13]

रम्याश्चन्दनवीथयो हि मलये विन्ध्ये मदान्धा गजाः।
कैलासे नृपपादजाति कनकं चन्द्रं महेन्द्राचले।।
दिव्याश्चौषधयरतुषारशिखरे सर्वत्र रत्नानि वै।
सन्त्यन्धाखुवदेषजीर्णसदने व्यर्थं जनी जीर्यते।। (वहीं, 6ब. 115 23)
वृद्धानि चन्द्रांशुनवाम्वराणि
गगौघनिर्धूतशिलान्यमूनि।
हिमतातान्युग्रलताजटानि
तुषारशैलेश्वरमरतकानि ।। (वहीं, 47)
मुक्ताशिखर भापुरैर्हिमवत्सानुसुन्दरम्।
काञ्चनाद्रिरथलार्चिभिः काञ्चनरथलभारुरम्।। (वही, 3 24 13)
हिमवान्नामशैलोऽस्ति शरच्चन्द्रांशुनिर्मलः।
यः उत्तराशाहृदये स्पृष्टपूर्वापारर्णवः।। (वही, 3 82 21)
सूच्या वरमहं दातुं गच्छामि हिमवच्छिरः।
ब्रह्मणेति प्रतिज्ञाते शक्रः स्वर्गमुपाययौ।। (वही, 3 74 20)
सुरुचिर्नामः काचित्स्त्रीरप्सरोगण उत्तमा।
उपविष्टा हिमवतः शिखरे शिखिसंवृते।। (वही, 1 1 19)
अस्ति कज्जलपंकाद्रेरिवोग्रा शालभञ्जिका।
हिमाद्रेरुत्तरे पार्श्वे कर्कटी नाम राक्षसी।। (वही, 3 68 2)

6. अस्त्युतरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरो तोयनिधिवगाहय स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।। (कालिदास, कुमारसम्भवम्, मुम्बई, 1.1)

7. महाभारत, गोरखपुर, 1955-88 आदिपर्व 30 19, 36 2-3

8. यो. महा., पूर्वोक्त, महाभारत, पूर्वोक्त.

9. यो. महा., 3 82 21, तुलना करें– कालिदास, 'कुमारसम्भवम्', 1 1

10. प्रामायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ।।
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः।
नीलश्च वैढूर्यमयः श्वेतश्च शशिसंनिभिः।। (महाभारत, भीष्मपर्व 6 3-4)

11. अमरकोश, वाराणसी, 1970, शैलवर्ग, पंक्ति 3 तथा Epigraphia Indica, Vol.4 pp. 284-285

12. Atreya, B.L., 'The Philosophy of Yoga-Vasistha', 1936, Varanasi, pp. 26 ff.

13. Srivastava, B.N., 'Harsh and His times', Varanasi, 1976, pp. 219-220.

कैलास :

आलोच्य ग्रन्थ में इस पर्वत का वर्णन मेरु, वसुमान् तथा क्रौञ्च आदि के साथ किया गया है।[14] कनक–प्राप्ति–स्थल[15] कैलास पर्वत के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए योगवासिष्ठ महारामायणकार उसकी तुलना विष्णु के शयनस्थल, क्षीरसागर में अस्त होते हुए चन्द्र तथा कुमार कार्तिकेय के मुक्ता–क्रीडा–स्थल से करता है।[16] ग्रन्थकार कैलास पर्वत के नीचे जम्बूद्वीप की स्थिति बताता है।[17] सुन्दर आलंकारिक भाषा का प्रयोग करके ग्रन्थकार इस पर्वत की सुषमा का वर्णन करता है।[18]

कैलास पर्वत के सौन्दर्य एवं शोभा का वर्णन वाल्मीकि रामायण तथा मेघदूत के उद्धरणों में द्रष्टव्य है[19], किन्तु जिस सुन्दर आलंकारिक भाषा का प्रयोग प्रश्नगत ग्रन्थ में हुआ है, वह निश्चित रूप से यह भान कराती है कि आलोच्य ग्रन्थ की भाषा वाल्मीकि तथा कालिदास से अन्तर रखती है।[20] [21] महाभारत का वर्णन इसके धार्मिक महत्त्व पर प्रकाश

---

14. कैलासो वसुमान्मेरुस्तत्पादेषु जना उभे।
मद्रावारेवयौधेया मालवाः शूरसेनिकाः।। (यो. महा. 3.36.55)
मानवा नांगना हेमतालाः स्वस्वमुखारतथा।
हिमवान्वसुमान्क्रौञ्चकैलासावित्यगारतथा।। (वही, 3.36.62)

15. यो. महा., निर्वाण उत्तरार्ध, 115.23

16. इतः स कैलासगिरिर्गरीयसा
प्रभाप्रवाहेण मितेन यस्य खम्।
शम्भोरिवाऽऽभाति सुतस्य कुट्टिमं
चन्द्रोऽपि च क्षीरसमुद्रगो यथा।। (वही, 6ब, 115.50) तथा 3.36.62.67.4.8.8

17. कल्पनाम्नि महादेव ह्यस्तने दिवसे तव।
तले कैलासशैलस्य जम्बूद्वीपैककोणके।। (वही, 3.86.1)

18. धुन्वानाः पुष्पितेशानवनकर्पूरवारिदान्।
चालयन्तोऽनिला वान्ति कैलासकमलाकरान्।। (यो. महा., निर्वाण उत्तरार्ध, 115.33 तथा 5.58.3-10)

19. वही, 6ब, 115.33,50, 3.36.81

20. तुलना करें–
तत्तु (तञ्च) शीघ्रमतिक्रम्य कांताररोमहर्षणम्।
कैलासं पांडुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ।। (वाल्मिकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 43.20)
तत्र पांडुरमेघाभं जांबूनदपरिष्कृतम्।
कुबेरभवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा। (वही, 21)
विशाल नलिनी यत्र प्रभूत कमलोत्पला।
हंसकारंडवाकीर्णा अप्सरो गणसेविता।। (वही, 22)
तत्र वै श्रवणो राजा सर्वलोकनमस्कृतः।
धनदो रमते श्रीमान्गुह्यकैः सहयक्षराद।। (वही, 23)

21. गत्वा चांद्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासित प्रस्थ
सन्धेः कैलासस्य त्रिदशवनिता दर्पणस्यातिथिः।
स्याः तुंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्योवितत्य स्थितिः खं
राशीभूतः प्रतिदिशमिवत्र्यम्बकस्याट्टहासः।। (कालिदास, मेघदूतम्, मुम्बई, 1976, पूर्वार्ध, 60)

डालता है परन्तु इन दोनों ही ग्रन्थों की भाषा में अन्तर है।[22] इस प्रकार ऐसा माना जा सकता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में भी कैलास पर्वत एक प्राकृतिक सीमा के रूप में स्वीकार किया जाता था, जैसा कि भोज परमार के अभिलेख से स्पष्ट होता है।[23] आधुनिक मानसरोवर के समीप हिमालय पर्वत स्थित कैलास शिखर अथवा पर्वत[24, 25] का योगवासिष्ठ महारामायण का उपर्युक्त सन्दर्भ प्रश्नगत ग्रन्थ के रचयिता के सुन्दर आलंकारिक भाषा के प्रयोग पर अधिकार का द्योतक तो है ही। साथ ही उक्त उल्लेख उसकी भाषा कालिदास तथा महाभारत की भाषा से स्पष्ट अन्तर दर्शाती है, जो योगवासिष्ठ महारामायण को महाभारत एवं कालिदास के उत्तरकालीन होने के तथ्य की ओर इंगित करता है।

भद्रगिरि :

यदि योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित भद्रगिरि[27] का तादात्म्य दक्षिण भारत के भद्राचलम् से लगाया जाय, जहाँ श्रीराम का मंदिर है तथा जहाँ मेले आदि के आयोजन होते रहे हैं[28], तो उस उल्लेख के आधार पर यद्यपि दिशा के सही निर्देशन के विषय में तो ग्रन्थकार का मन्तव्य स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु उक्त उल्लेख के बल पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता है।

हेमगिरि :

इस पर्वत का जैसा उल्लेख योगवासिष्ठ महारामायण में प्राप्त होता है[29], लगभग उसी प्रकार का वर्णन वराहमिहिर भी करता है[30] यद्यपि दोनों के विवरणात्मक घटनाक्रम में साम्य नहीं है। इतना होते हुए भी यह कहा जा

---

22. अस्यातिक्रम्यं शिखरं कैलासस्य युधिष्ठिरः।
गतिः परमसिद्धानां देवर्षीणां प्रकाशते।। (महाभारत, वनपर्व 159.241)
कैलासः पर्वतो राजन् षड्योजनसमुच्छ्रितः।
यत्र देवा समायन्ति विशाला यत्र भारत।। (वही, 139.11)
हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः।
यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते।। (वही, भीष्मपर्व 6.41)

23. आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादा।
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन।। (Ipigraphia Indica, Vol. 1, p.235)

24. Journal of Asiatic Society of Bengal, 1848, p.158 and note 4.

25. Pande, S.N., 'Geographical Horizen of the Mahabharat', Varanasi, 1980, Map No. 5, p.43.

26. Pargiter, F.E., 'Markandeya-Purana', Varanasi, 1969, p.379 n.

27. अथ लीलापतेरस्य दक्षिणस्यामिमे नृपाः।
विन्ध्योऽथ कुसुमापीडो महेन्द्रो दर्दुरस्तथा।।
....
दशपूरकथाचक्रारेषिकातुरकच्छपाः।
वनवासोपगिरयस्ते भद्रगिरयस्यतथा।। (यो. महा. 3.36.30–32)

28. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, 'ऐतिहासिक स्थानावली', जयपुर 1990, पृ. 657.

29. अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्य सुराष्ट्रकाः।
सिन्धुसौवीरशूद्राख्या अभीरा द्रविडास्तथा।।
कीकटाः सिद्धखण्डाख्यास्तथा कालिरुहा अपि।
अत्र हेमगिरिः शैलस्तथा रैवतको गिरिः।। (यो. महा. 3.36.40–41)

30. वराहमिहिर, 'बृहत्संहिता', अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, 1865, 14.19.

सकता है कि इस उल्लेख के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण को उसके रचनाकाल के सन्दर्भ में बृहत्संहिता के सम–सामयिक काल अथवा उसके अनन्तर अर्थात् पाँचवीं–छठी शताब्दी ईसवी या उसके पश्चात् होना चाहिए।

क्रौञ्च :

स्त्रीराष्ट्र के उत्तर में स्थित इस प्रकार से क्रौञ्च पर्वत को वसुमान्, कैलास आदि के साथ वर्णित करते हुए आगे उसमें पदार्थों के होने तथा पक्षियों के कलरव का भी वह वर्णन करता है, जिसमें उसकी प्रकृति–चित्रण की क्षमता तथा आलंकारिक प्रयोग की अप्रतिम भाषा–शक्ति के दर्शन होते हैं, जो कवि की कल्पनाशील प्रवृत्ति का द्योतन कराता है।[31] वाल्मीकि रामायण[32], महाभारत[23], पुराण[34-36], कालिदास के ग्रन्थ[37-38] तथा बृहत्संहिता[39] में इस पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है। इसे अल्मोड़ा जनपद के हिमालय के उस पर्वतीय क्षेत्र से समीकृत किया गया है, जिसे पार कर पक्षि दक्षिण में जाते हैं।[40] इस प्रकार पुराण, उपपुराण, महाभारत, कालिदास के ग्रन्थों तथा बृहत्संहिता में क्रौंच पर्वत के उल्लेख मात्र के आधार पर प्रश्नगत ग्रन्थ की बृहत्ता को देखते हुए उसके रचनाकाल के प्रति छठीं से नवीं शताब्दी के मध्य विचार करें तो हम सत्य के अधिक निकट होंगे, क्योंकि उक्त उल्लिखित पुराण, उपपुराण, महाभारत, कालिदास के ग्रन्थ तथा बृहत्संहिता के रचनाकाल को पाँचवीं से नवीं शताब्दी के मध्य में विचार किया जा सकता है।[41-46]

---

31 ततः स्त्रीराष्ट्रमतुलं गोवृषापत्यभोजनम्।
अथोत्तरस्यां हिमवान्क्रौञ्चोऽथ मधुमान्गिरिः।। (यो. महा. 3.36.54)
मानवा नांगना हेमतालाः स्वस्वमुखास्तथा।
हिमवान्वसुमान्क्रौञ्चकैलासावित्यगास्तथा।। (वहीं, 62)
एते हिमाद्रिमलयाचलविन्ध्यसह्य–
क्रौञ्चा, महेन्द्रमधुमन्दरदर्दुराद्याः।
दूरस्थिता हशि सिताभ्रपटा बहन्ति
संशुष्कपर्णलवाञ्छितलोष्टलीलाम्।। (वही, 6व.115.2)
कूजत्कुञ्जकठोरगह्वरनदी क्वत्कारवत्कीचक–
स्तम्भाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चालयोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रबलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै–
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहणतरुस्तम्भेपु कुम्भीनसाः।। (वही, 11)

32. क्रौञ्चं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम्।
अप्रमतेः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हितत्स्मृतम्।। (वाल्मीकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 43.25)
क्रौञ्चस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च।
दर्दराश्च नितंवाश्चविचेतव्यास्ततस्ततः।। (वहीं, 27)
स च सर्वैर्विचेतव्यः ससानुप्रस्यभूधरः।
क्रौञ्चगिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः।। (वहीं, 29)

33. महाभारत, वनपर्व, 225.33

34. वामनपुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 58.82

35. शिव पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 23.9.

36. स्कन्द पुराण, कलकत्ता, 1959, 1.2.32, 179,182,4.3.68, 6.58 22–23, 264.33

37. प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्यतांस्तान् विशेषान्।
हंसद्वारं भृगुपति यशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्।। (कालिदास, मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 59)

38 कालिदास, कुमारसंभवम्, 19.3.

39. वराहमिहिर, बहत्संहिता, 14.24

41. देखिए– अग्रवाल, वासुदेव शरण, मासिक पत्रिका कादम्बिनी, अक्टूबर, 1962

42. Archaeological Survey Report, Vol. 8, p.364.

43. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 376n.

44. Raichaudhari, H.C., Studies in Indian Antiquities, Cal., 1932, p.136.

45. काणें, पाण्डुरंग वामन, 'धर्मशास्त्र का इतिहास', भाग–4, लखनऊ, 1996 पृ. 423, 424, 426–27.

46. Majumdar and Pusalker, 'The History and culture of the indian People', Vol. 3, Bombay, 1988, pp. 19,182,183,191,192, 271, 272, 302-307, 309, 310, 311, 312, 321, 324, 326, 341, 421, 553, 573, 577, 592, 600, 601, 602, 291, 317, 318, 322, 328, 423, 513n, 518, 561, 579, 590, 591, 595.

निषध :

यद्यपि प्रश्नगत ग्रन्थ में निषध पर्वत[47] के प्रति धार्मिक भावना ही विद्यमान है, तथापि महाभारत तथा विष्णु पुराण इसकी स्थिति हेमकूट पर्वत तथा हरिवर्ष में बताते हैं, और वहाँ इसके विशाल पर्वत भी कहा गया है।[48-49] महाभारत तथा विष्णु पुराण के उल्लेखों के आधार पर उक्त संदर्भ में आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को छठी से सातवीं शताब्दी में विचार किया जा सकता है, क्योंकि विष्णु पुराण की रचना लगभग पाँच सौ ईसवी[50] और महाभारत के भीष्मपर्व की रचना का काल सामान्य रूप से छठी शताब्दी माना जाता है।[51-52]

कुरार्पण :

इसी प्रकार पश्चिम में वर्णित कुरार्पण गिरि का जो उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में मिलता है[53], उसे यदि बृहत्तसंहिता में उल्लिखित कुरार्पण[54] पढा जाय तभी आलोच्य ग्रन्थ को बृहत्संहिता के बाद का ग्रन्थ होने के कारण उसकी रचनाकाल का तिथिक्रम छठी शताब्दी के लगभग या उसके कुछ पश्चात् माना जा सकता है, किन्तु विषय की स्पष्टता न होने के कारण उक्त उल्लेख के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कोई विचार नहीं प्रस्तुत किये जा सकते।

कोलगिरि :

महाभारत[55], पुराणों[56-58] तथा बृहत्संहिता[59] में वर्णित दक्षिण के कोलगिरि का उल्लेख योगवासिष्ठ महारामायण

---

47 निषधाद्रर्मुनीनां च सानौ सरलसङ्कुले।
उपदिष्टं भगवता ज्ञानं पद्मभुवा बहु।। (यो. महा. 2.2.16)

48 हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसंनिभः।। (महाभारत, भीष्मपर्व, 6.4)
रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः।
सर्वा नागाश्च निषधे गोकर्णे च तपोवनम्।। (वहीं, 51)

49 'हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे.. ...।।" (विष्णु पुराण, 2.2.10 तथा – वही, 2.2.27)

50 काणें, पाण्डुरंग वामन, पूर्वोक्त, खण्ड 4, पृ. 425-426

51 वाजपेयी, पण्डित अम्बिका प्रसाद, लेख– 'महाभारत पर विचार' तथा श्री कन्नोमल, लेख– 'भगवद्गीता कब बनी?', सरस्वती, वाराणसी, 1961

52 Srivastava, B.N., op. cit., pp. 219-220

53 अथ तत्प्रतिपक्षस्थानिमाञ्जनपदाञ्छ्रुणु।
पश्चिमायां दिशि प्रौढा इमे तावन्महाद्रयः।।
मणिमान्नाम शैलेन्द्रः कुरार्पणगिरिस्तथा।
वनोऽर्कहो मेघभवश्चक्रवानरतपर्वतः।। (यो. महा. 3.36.44-45)

54 वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.20

55 कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपत्तनं तथा।
द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा।। (महाभारत, सभापर्व 31.68)

56 मार्कण्डेय पुराण, 58.23

57 विष्णु पुराण, 57

58 भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो
मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो
वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो
द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः
कामगिरिरिति चान्ये शतसहस्रशः शैलाः।। तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सत्यसंख्याताः।।
(भागवत पुराण, 5.19.16)

59 वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.13

में भी आता है।[60] पार्जिटर महोदय के अनुसार कोलगिरि का सम्बन्ध कोल जाति से हो सकता है। सम्भवतः इसकी स्थिति दक्षिण भारत के कूर्ग (Coorg) क्षेत्र में थी।[61, 63] मेवात के क्षेत्र में आज भी एक पर्वत कोल पर्वत के नाम से जाना जाता है।[64] इस प्रकार महाभारत, पुराण तथा बृहत्तसंहिता के कोलागिरि के संदर्भ में योगवासिष्ठ महारामायण से तादात्म्य स्थापित करने पर हम आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल की तिथि को छठीं से दसवीं शताब्दी ईसवी तक मान सकते हैं।[65]

अस्त पर्वत :

तथ्य तथा कल्पना से अभिमंडित इस पौराणिक पर्वत[66], जिसका कि कोई अस्तित्व नहीं है, उसका विवरण न केवल आलोच्यग्रन्थ में[67] अपितु भोज की उदयपुर प्रशस्ति में भी प्राप्त होता है।[68, 69] इस प्रकार का विवरण आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी तक विचार करने हेतु पर्याप्त तथ्य प्रस्तुत करता है। यह कहा जा सकता है कि जहाँ योगवासिष्ठ महारामायण अस्तपर्वत शब्द का प्रयोग करता है, वहीं अन्यान्य तथ्य उसे अस्त गिरि उद्धत करते हैं, जो अलग शब्द है। इस विषय में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि गिरि और अचल दोनों ही पर्वत के पर्याय हैं और इस प्रकार से यह कोई तथ्य का तोड़–मरोड़ नहीं है। अतः इस आधार पर आलोच्यग्रन्थ के रचनाकाल पर छठी से दसवीं शताब्दी तक विचार किया जा सकता है।

दर्दुर :

ग्रन्थकार चारों दिशाओं में वन, पर्वत, वृक्ष, नदी, समुद्र, वायु, पशु–पक्षि, मेघ आदि के वर्णन में हिमालय आदि पर्वतों के साथ दर्दुर का भी सुन्दर आंलकारिक भाषा में उल्लेख करता है।[70] रघुवंश तथा महाभारत की भाषा में प्रश्नगत

---

60 अथलीलापतेरस्य दक्षिणस्यामिमे नृपाः।
विन्ध्योऽथ कुसुमापीडो महेन्द्रो दर्दुरस्तथा।। (यो. महा. 3.36.30)

....

आन्ध्राश्च कोलगिरयश्चावन्तिकविचेरिकाः।
चण्डायत्ता देवनकाः क्रौञ्चा वाहारस्तथैव च।। (वहीं, 38)

61. Pargiter, F.E., "Markandeya Purana", Delhi, 1969, pp. 363-364.

62. Dey, N.L., op. cit., New Delhi, 1971, pp. 101.

63. Pande, S.N. "Geographical Horizon of the Mahabharat", Varanasi, 1890, p.99.

64 Archaeological Survey Reports, Vol. 20, p.133

65 काणे, पाण्डुरंग वामन, पूर्वोक्त, पृ. 419 तथा Majumdar and Pusalker, op. cit., pp. 291, 317, 318, 322, 328, 423, 513n. 518, 561, 579, 590, 591, 595.

66 भागवत पुराण 8.11.46 ब्रह्माण्ड 2.19.89 वायु पुराण 49.84, 50.107, विष्णु पुराण 2.4.61, क्रमशः

67 मणिमान्नाम शैलेन्द्रः कुरार्पणगिरिस्तथा।
वनोऽर्कहो मेघभवश्चक्रवानस्तपर्वतः।। (यो. महा. 3.36.45)

68 आकैलासान्मलयगिरिरस्तोदयाद्रिद्वयादा।
भुक्ता पृथ्वीं पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन।।
(Udayapur Inscription No. 50, verse 18 - vide Epigraphia Indica, vol. 1, p. 235)

69. Archaeological Survey Report, Musore, 1941, pp. 185-186.

70 अत्रोत्तमाशयलतावलयालयेषु
लीलाविलोलललनाः कलयन्ति गीतम्।
उद्दामभावरसविस्मृतवासरेहा
विश्रम्य किन्नरगणाः कलकाकलीकम्।।
एते हिमाद्रिमलयाचलविन्ध्यसह्य–
क्रौञ्चा महेन्द्रमधमन्दरदर्दुराद्याः।
दूरस्थिता दृशि सित्ताभ्रपटा बहन्ति
संशुष्कपर्णलवलाञ्छितलोष्टलीलाम्।। (यो. महा., निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 115. 1–2 तथा पूर्वाध 107.6.3.36.30)

ग्रन्थ से भिन्नता और दर्द्दर पर्वत के प्रति अधिक विस्तृत उल्लेख है किन्तु इतना होते हुए भी इन दोनों ग्रन्थों में आलोच्य ग्रन्थ के ही समान श्रृंगार रस की प्रधानता परन्तु भाषागत सरलता एक नवीन चिन्तन की ओर अभिमुख करती है।[71-72] मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म तथा लिंग आदि पुराणों तथा बृहत्संहिता में इसका उल्लेख मिलता है।[73] वाल्मीकि रामायण में भी इस पर्वत को उल्लिखित किया गया है।[74] अल्बरूनी भी इसका वर्णन करता है।[75] इस प्रकार दर्द्दर के उल्लेख के अन्यान्य ग्रन्थों के उपर्युक्त संदर्भ प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी तक विचार करने की अनुमति देते हैं।

मैनाक :

निरपेक्ष रूप से वर्णित इस पर्वत पर प्रश्नगत ग्रन्थ देवों, वनों, वृक्षों आदि का उल्लेख करता है।[76] यद्यपि साहित्य में मैनाक पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।[77-81], तथापि यह उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ के उल्लेख की भाँति नहीं है। ये उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई ठोस विचारशील तर्क प्रदान नहीं करते।

---

71. दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्य प्रतापं न विषेहिरे।।
ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम्।।
स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलो मलयदर्द्दरौ।।
असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत्।। (कालिदास, रघुवंशम्, सम्पादित द्वारा जोशी, यू. पी., पूर्वोक्त, 4.49–52)

72. तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत्।
सुरभींश्चन्दनरसान् हेमकुम्भसमास्थितान्।।
मलयाद् दर्द्दराच्चैव चन्दनागुरुसंचयान्।
मणिरत्नानि भास्वन्ति काञ्चनं सूक्ष्मवस्त्रकम्।। (महाभारत, सभापर्व, 52.33–34)

73. मार्कण्डेय पुराण, 52.2, 57.12–13 वायु पुराण, 45.10 ब्रह्माण्ड पुराण 16.2 ब्रह्म पुराण 27.2 लिंग पुराण, 49.42 देवी भागवत पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 8.17.8 वराहमिहिर, बृहत्तसंहिता, 14.1.

74. मलयं दर्द्दरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः।
उपस्पृश्य ववौ युक्त्यासुप्रियात्मासुखं शिवः।। (वाल्मिकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 91.24)

75. Sachu, E.C., alberuni's India, Delhi, 1989, Vol. 1, p.301.

76. यो. महा. निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध, 107.11 तथा वही, हिन्दी अनुवाद, अच्युत ग्रन्थमाला, तृतीय भाग, निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्ध, 107. 11, पृ.4088

77. तैत्तिरीय आरण्यक, कलकत्ता, 1872. 31.2.

78. स च सर्वैर्विचेतव्यः ससानुप्रस्थभूधरः।
क्रौञ्चगिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः।।
मयस्यभवनं तत्र दानवस्य स्वयं कृतम्।
मैनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकंदरः।।
(वाल्मीकि, रामायण किष्किंधाकाण्ड, 43.29–30)

79. वेदव्यास, अध्यात्मरामायण, गोरखपुर, संवत् 2017, सुन्दरकाण्ड, 1.26

80. उत्तरेणं तु कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति।
यियक्षमारेषु पुरा दानवेषु मया कृतम्।। (महाभारत, सभापर्व, 3.2)
इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थ प्रागुदीचीं दिशं गतः।
अथोत्तरेण कैलासान्मैनाकं पर्वतं प्रति।। (वहीं, 9)
उशीरबीजं मैनाकं गिरिं श्वेतं च भारत।
समतीतोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पार्थिव।। (वही, वनपर्व, 139.1)

81. भागवत पुराण 19.16 पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 13.173 मत्स्य पुराण, 163.81 Sachau, E.C., op. cit., Vol. 2, p.101.

चक्रवान् :

इस पर्वत को प्रश्नगत ग्रन्थ में पश्चिम दिशा में बताया गया है।[82] वाल्मीकि रामायण, पद्मपुराण तथा मत्स्य पुराण में इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[83-84] इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में इस पर्वत का विशद वर्णन प्राप्त होता है और सम्भवतः रामायण का परिशिष्ट होने के कारण योगवासिष्ठ महारामायण में इसी का सन्दर्भ मात्र प्राप्त है। अतः मात्र सन्दर्भ से ही अनुसंधानात्मक विषय में कोई मत प्रस्तुत करना अनुचित सा प्रतीत होता है, यद्यपि केवल पुराणों में इसका परिज्ञान यह अनुमान करने पर विवश कर देता है कि सम्भवतः प्रश्नगत ग्रन्थ का विचार नवीं शताब्दी तक किया जा सकता है, क्योंकि पद्म पुराण और मत्स्य पुराण की तिथि क्रमशः नवीं–दसवीं शताब्दी सम्भावित है।[85]

कालञ्जर :

इस पर्वत का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार भास और विलास के कथानक में पुनर्जन्म का दर्शन बताते हुए इस पर्वत के करञ्ज और घुंघची के वन में हाथी तथा सिंह के होने की बात कहता है।[86] महाभारत में भी इस पर्वत का उल्लेख मिलता है।[87-88] पुराणों से भी इस पर्वत की पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है।[89] सम्भवतः यह पर्वत रवि–चित्र नाम से जाना जाने वाला बुन्देलखण्ड के बांदा जिले के उपक्षेत्र बदौसा में स्थित कालिञ्जर किले के समीप का पर्वत था, जिस किले का निर्माण तृतीय शताब्दी ईसवी में हुआ माना जाता है और जहाँ उत्तर भारत के राजनैतिक इतिहास में उतार–चढ़ाव लगभग बारहवीं शताब्दी तक देखने को मिलता है।[90] यहाँ कालञ्जर पर्वत के विषय में जो अन्य साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हुए तथा कालञ्जर नामक दुर्ग के इसी पर्वत के समीप तीसरी शताब्दी से होने के कारण तथा आलोच्य ग्रन्थ में इस पर्वत का उल्लेख होने के कारण प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को अधिक से

82. यो. महा., 3.36.45

83. चतुर्मार्गेसमुद्रस्य चक्रवान्नामपर्वतः।
तत्र चक्रं सहास्रारं निर्मितं विश्वकर्मणा।। (वाल्मीकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 42.27)

84. पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड, 13.173. मत्स्य पुराण, 163.81

85. काणे, पाण्डुरंग वामन, पूर्वोक्त, खण्ड 4, पृ. 415–416, 419–421.

86. कालञ्जरे मञ्जरिते करञ्ज गुञ्जावने जम्बुकतां गतोऽहम्।
गजेन पिष्टे हरिणा हेतौऽसौ हस्ती मयाऽत्रार्द्धमृतेन दृष्टः।। (यो. महा., निर्वाण उत्तरार्ध, 131.46)

87. अत्र कालञ्जरे नाम पर्वतं लोकविश्रुतम्।
तत्र देवहृदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।। (महाभारत, वनपर्व, 85.56)
योः स्नातः साधयेत् तत्र गिरौ कालञ्जरे नृप।
स्वर्गलोके महीयेत नरो नास्त्यत्र संशयः।। (वहीं, 57)
हिरण्यविन्दुः कथितो गिरौ कालञ्जरे महान्।
आगस्त्यपर्वतो रम्यः पुण्यो गिरिवरः शिवः।। (वही, वनपर्व, 87.21)

88. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारत सावित्री, नई दिल्ली, 1957, आरण्यकपर्व, तीर्थयात्रा–1.

89. पद्मपुराण, आदिखण्ड, 39.53, सृष्टिखण्ड, 10.61 मत्स्य पुराण 13.32, स्कन्द पुराण, रेवाखण्ड, 98.70, नारद पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, उत्तरार्ध 30.26, भागवत पुराण, 5.8.30, 9.22.15–16, अग्निपुराण, 109.23, वामन पुराण, 6.55.90, वायु पुराण, 23. 192, कूर्म पुराण, उत्तरार्ध 36.2 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, 2.22.150, शिव पुराण, 3.5.33

90. Journal of the Asiatic Society of Begal, 17 (1848), p. 171. Ipigraphia Indica, Vol.1, p.218, Mookerji, R.K., "Ancient India", Allahabad, 1956, pp. 405-406, Archaeological Survey Report, 21., Law, B.C., Historical Geographical of Ancient india, Calcutta, 1954, pp. 313ff., Pandey, S.N., " Geographical Horizon of the Mahabharat", Varanasi, 1980, p.99., माथुर, विजयेन्द्र कुमार, ''ऐतिहासिक स्थानावली', जयपुर, 1990, पृ. 179,181., शर्मा, दशरथ, लेख– 'कालञ्जर' हिन्दी विश्वकोष, वाराणसी, 1975, खण्ड–2, पृ. 563., Barah Copper-plate Inscription of Bhoja 1, (836 A.D.) No. 8, Line 6., Kajuraha stone Inscription of Dhanga of the time of Vinayapala (954 A.D.) No. 14, verses 31, 45., Garra Copper-plate Inscription (No.1) of Trailokyavarman (Vikrama) (1205 A.D.), No. 25, Line 5.

अधिक ग्यारहवीं शताब्दी ई0 तक रख सकते हैं, क्योंकि इस पर्वत के सन्दर्भ में उद्धृत पुराणों की तिथि लगभग दसवीं शताब्दी ईसवी तक आ ठहरती है।[91]

लोकालोक :

अमरकोष, विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण, रघुवंशम् तथा महाभारत में वर्णित लोकालोक पर्वत को विद्वानों द्वारा एक अवास्तविक पर्वत के रूप में स्वीकार किया गया,[92] जिसका सन्दर्भ योगवासिष्ठ महारामायण में भी एक पर्वत के रूप में प्राप्त होता है।[93] इस प्रकार हम मात्र उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को गुप्तकाल के अनन्तर कभी भी मान सकते हैं।

महेन्द्र :

समुद्र के पूर्वी तट पर अनेकानेक गुहाओं से अभिमंडित, राशि–राशि जलप्रवाहक, सिद्ध–गंधर्वों का निवास स्थान, हीरा धारण करने वाले सुन्दर पर्वत के रूप में महेन्द्र पर्वत का उल्लेख योगवासिष्ठ महारामायणकार अनेक स्थलों पर करता है।[94] ब्राह्मण ग्रन्थ, रामायण, महाभारत तथा पुराणों में भी इस पर्वत के उल्लेख प्राप्त

---

91. काणे, पाण्डुरंग वामन, पूर्वोक्त, खण्ड 4, पृ. 412–428, Srivastava, B.N., op. cit., p. 219

92. अमरकोश, शैलवर्ग, 2.2, विष्णु पुराण, 4.6, Pargiter, F.E., "Markandeya Purana", p. 275, For details see- William, M.M., " A Sanskrit-English Dictionary", New Delhi, 1986, p.907.

93. नानामाणिक्यशिखरकह्लारकुमुदाब्जया।
लोकालोकाचलोत्तालविपुलोद्दाममालया।। (यो. महा. 3.25.27)
भूमेः सप्तसमुद्रान्ते निबद्धां विपुलस्थलीम्।
लोकालोकाद्रिरसनां ततो मणिमयोपमम्।। (वही, 3.73.52)
लोकालोकाचलान्तेषु पर्वतेषु ह्रदेषु च।
आन्ध्रद्रविडकाश्मीरपारसीकपुरेषु च।। (वही, 4.29.27) तथा– निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध 107.6,4.8.10

94. पूर्वाब्धितटमाहेन्द्रसिद्धोक्तगगनापगम्।
उत्तराब्धितटायातदूतवर्णितगुह्यकम्।। (यो. महा., 3.17.24)
ततो जनपदा भूमिर्योजनानां शतद्वयम्।
ततो महेन्द्रशिखरौ मुक्तामणिमयावनिः।। (वही, 3.36.49)
अस्त्यस्य जम्बूद्वीपस्य कस्मिंश्चिद्गिरिकुञ्जके।
वनव्यूहमहोत्तसो महेन्द्रो नाम पर्वतः।। (वही, 5.19.3)
श्रवणाभोगश्रृङ्गाग्रो महेन्द्रोऽद्रिर्दिवि व्रजैः।
विद्वतैर्वलितो नीलैर्जालैर्जलमुचामिव।। (वही, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध 112.10)
महेन्द्रो मन्द्रगर्जाभिरभिक्षिपति गर्जतः।
पर्जन्यानूर्जितो जन्यः प्रतिजयान्यथा जडैः।। (वही, 114.9)
महेन्द्राद्रेर्गुहागेह परावृत्तार्णवाध्वनाम्।
भाकारिण्यो भुवः सिद्धसाध्यानां सुसुरवावहः।। (वहीं, 25)
एते हिमाद्रिमलयाचलविन्ध्यसह्य–
क्रौञ्चा महेन्द्रमधुमन्दरदर्दराद्याः।
दूरस्थिता दृशि सित्ताभपटा बहन्ति
संशुष्कपर्णलवलाञ्छितलोष्टलीलाम्।। (वही, 115.2 तथा वही, 23)
एवं महेन्द्रदर्या तावुभौ कुम्भाशिखिध्वजौ।
स्वयं विवाहिताविष्टौ सम्पन्नो देवदम्पती।। (वही, निर्वाण प्रकरण पूर्वाध, 107.2)
सह्यदर्दरकैलासमहेन्द्रमतयेषु च।
गन्धमादननिन्ध्याद्रिलोकालोकतटेषु च।। (वहीं, 6)
मासमेकं महेन्द्राद्रौ रम्ये सरलसंकुले।
रत्नकुड्ये गुहागेहे पूजितौ सुरकिन्नरैः।। (वहीं, 9)

होते हैं।[95] कालिदास तथा वराहमिहिर ने भी इस पर्वत का उल्लेख किया है।[96] गुप्तों तथा पूर्वी गंगों के अभिलेखों में भी इसी पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।[97] सम्भवतः चीनी यात्री युवान–च्वांग ने भी इस पर्वत का उल्लेख किया है।[98] चौधरी, गुप्त, के0के0 श्रीचन्द्र के पश्चिम भाग ताम्रपत्र लेख (लगभग 225–75 ईसवी) की श्लोक संख्या सात में आए 'देवपर्व्वत' को महेन्द्र पर्वत कहते हैं।[99] ग्यारह सौ अट्ठारह ईसवी के अनन्तवर्मन् चोडगंगदेव के विशाखापट्टनम ताम्रपत्र लेख में भी महेन्द्रपर्वत का उल्लेख आता है।[100] इसी बारह सौ तीस से इक्तीस ईसवी के अनंगभीम के नागरी ताम्रपत्र लेख में भी महेन्द्र पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।[101] यदि केवल उल्लेखों का ही आधार लिया जाय तो योगवासिष्ठ महारामायण को उसके रचनाकाल के सन्दर्भ में बारहवीं शताब्दी तक माना जा सकता है।

माल्यवान् :

न केवल आलोच्य ग्रन्थ[102] अपितु रामायण[103], महाभारत[104], पुराणों[105] ने भी माल्यवान् पर्वत को पूर्व में स्थित बताया है। आधुनिक विद्वान् इसका समीकरण तुंगभद्रा नदी के अनागुडी पहाड़ियों के समीप स्फटिक शिला अथवा प्रर्षवण–गिरि से अर्थात् मैसूर में हम्पिया के समीप अथवा खोतान नदी की पर्वतीय श्रेणियों, जो पीरुपाक्ष मंदिर से चार मील दूर है, समीकृत करते हैं।[106] उपलब्ध साहित्यिक प्रमाणों के बल पर प्रश्नगत ग्रन्थ में आए माल्यवान् पर्वत के सन्दर्भ के आधार पर इन ग्रन्थों के रचनाकाल को दृष्टि में रखते हुए आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को सातवीं शताब्दी ईसवी से विचार कर सकते हैं।[107]

---

95. ऐतरेय ब्राह्मण (English Translation by Hang, M.) दिल्ली, 1977, 2.31., शतपथ ब्राह्मण, लंदन, 1855, 1.6.3., रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 67.37–42.,
महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसैरुपशोभितम्।
समुद्रतीरेण शनैर्मणिपूरं जगाम ह।। (महाभारत, आदिपर्व, 214.13) तथा वही, वनपर्व 87.22, 114.30, 117.14, भीष्मपर्व, 9–11, कर्णपर्व वायु पुराण, 48.88, शिवपुराण, उमाखण्ड, 3.30, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 1.10.2., नारद पुराण, उत्तरार्ध, 47.8, स्कन्द पुराण, रेवाखण्ड, 103.84, सेतुखण्ड, 2.20, गरुड पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 55.6, भागवत पुराण, 19.16, देवी भागवत पुराण, 8.17.9, मार्कण्डेय पुराण, 57.10, मत्स्य पुराण, 113.67, ब्रह्म पुराण, 27.20, अग्नि पुराण, 118.3., वामन पुराण, 13.4, Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', p. 290n.
96. कालिदास, रघुवंशम्, 4.39, वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 48.81
97. Fleet, J.F., Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. 3, p.7, 146., Sicrcar, D.C., 'Select Inscriptions', Delhi, 1991, Vol. 1, p.486., law, B.C., "Mountains of India", Calcutta, 1944, pp. 21-22., Dey, N.L., op. cit., pp. 90-91 (see map 10.), Rai Chaudhari, " Studies in indian Antiquities", Calcutta, 1932, pp. 108-109., Tinnevelly District Gazzeteer, 1, p.4.
98. Beal, S., 'SI-YU-KI Buddhist Records of the Western World', Delhi, 1981, Vol.2, p.209.
99. Chaudhury Gupta, K.K., Nalinikanta Bhattasali Commoration Volume, Dacca, 1966, pp. 166ff.
100. Visakhapatnam Copper-plate Inscription of Anantvarman Chodaganga, No. 33, Second Plate, Second Side, verse 19, Third Plate, first Side - Line 54-55.
101. Nagri Copper-plate Inscription of Anangabhin III, No. 34, verse 11.
102. पूर्वस्यां ....।। यो. महा., 3.36.22
माल्यवान्नाम शैलोऽत्र शिविराञ्जन एव च।
वृषध्वजपद्माद्यास्तथोदयकरो गिरिः।। वहीं, 25.
103. सतदावालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च।
वसन्माल्वतः पृष्ठे रामोलक्ष्मणमब्रवीत्।। (वाल्मीकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 28.1)
104. पुण्यं पद्मसरो युक्तं सपल्वलमहावनम्।
उपतस्थुर्महाभागा माल्यवन्तं महागिरिम्।। (महाभारत, वनपर्व, 158.37 तथा भीष्मपर्व, 7.28–32)
105. वायुपुराण, 34.33–3, 42.19.42, विष्णु पुराण, 2.2.27.39, भागवत पुराण 5.16.10,17.7, मत्स्य पुराण 113.35, ब्रह्माण्ड पुराण, 2. 15.38, 17.18, 3.13.7, 13.
106. अग्रवाल, वासुदेवशरण, 'भारतसावित्री', 2, पृ. 106., Pandey, S.N., op. cit., p. 100, Dey, N.L., op. cit., p. 269., Journal of Royal Asiatic Sociaty, 1894, pp. 267-8., माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 741.
107. काणे, पाण्डुरंग वामन, पूर्वोक्त, खण्ड 4, पृ. 417–422, 424–426.

चित्रकूट :

दक्षिण दिशा के इस पर्वत की तीन चोटियों– शिलाक्षार, नन्दमर्दन और मलय का उल्लेख आलोच्य ग्रन्थ में किया गया है।[108] साहित्य में इसके अनेकशः उल्लेख के आधार पर दक्षिण भारत के गंगा के प्रदेश अर्थात् बुन्देलखण्ड क्षेत्र के कामतानाथ गिरि से इसका समीकरण किया गया है।[109] प्रश्नगत ग्रन्थ ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें चित्रकूट पर्वत की तीन श्रेणियों– शिलाक्षार, नन्दमर्दन तथा मलय का उल्लेख प्राप्त होता है। संस्कृत के अनुसार शिलाक्षार का अर्थ उत्खनित लेख अथवा वेणी है एवं मलय पर्वत मालाबार पहाड़ियों की ओर संकेत कराता है।[110] जहाँ तक नन्दमर्दन शृंखला का प्रश्न है, हमें इस संदर्भ में कोई भी जानकारी प्राप्त न हो सकी। अतः इस चित्रकूट पर्वत के सन्दर्भ में मात्र इतना कहा जा सकता है कि आलोच्य ग्रन्थ का इसके प्रति वर्णन इसकी विशालता का द्योतन मालाबार की पहाड़ियों तक कराता है, किन्तु विषयगत वर्णन अन्य साहित्यिक उल्लेखों से तादात्म्य स्थापित करके भी हमारे समक्ष वे तथ्य प्रस्तुत नहीं करता, जिनके आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई परिकल्पना भी प्रस्तुत की जा सके।

मलय :

जिसके तल भाग को सागर का जल सिञ्चित करता है और जो सुन्दर लताओं में आवेष्टित है, उस चन्दन एवं सर्प–चर्चित मलयाचल का सौन्दर्यपूर्ण आंलकारिक भाषा में दर्द्दर आदि पर्वतों के साथ उल्लेख प्रश्नगत ग्रन्थ में प्राप्त होता है।[111] रामायण, महाभारत तथा पुराणों में भी इस पर्वत के विषय में जानकारी प्राप्त

---

108. कर्णिकाभाश्च शिवयः कोंकणाश्चित्रकूटकाः।
कर्णाटमण्टवटका महाकटकिकास्तथा।। (यो. महा. 3.36.37)
शिलाक्षारोद भोनन्दमर्दना मलयाभिधाः।
ते चित्रकूटशिखरा लङ्कारक्षोगणाः स्मृताः।। (वहीं, 39)

109. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 55. 56. 94. 54.28.39. 56.7–8. 78. 94. 84.4–6. सुन्दरकाण्ड, 54.28. महाभारत, अनुशासनपर्व 25.29. भागवत पुराण, 5.19.16.20.14. मार्कण्डेय पुराण, 35.23. कालिका पुराण, 81.142. ब्रह्माण्ड पुराण 2.16. मत्स्य पुराण 13.39.52.65. वेदव्यास, अध्यात्म रामायण, 2.9.77., कालिदास, रघुवंशम्, 12.15. 13.47. 9.15., कालिदास, मेघदूतम्, पूर्वमेघ, 19., William, M.M., op. cit., p. 239, वराहमिहिर, बृहत्तसंहिता, 14.13
विस्तार के लिए देखें– Dey, N.L., op. cit., p. 239, Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of ancient and Medieval india', Delhi, 1971, p. 236; Upadhyay, B.S., " India in Kalidas", Allahabad, 1947, p. 10; Law, B.C., "historical Geography of Ancient India" Calcutta, 1954, p. 20. Archeaological Survey Report 12 and 21., Journal of Royal Asiatic Sociaty, 1894, p. 239., Journal of Royal Asiatic Society of Begal, Vol. 15, 1949, No. 2, p. 129.

110. Willaim, M.M., op. cit., p. 1073. Ibid, p. 792.

111. कदाचिद्विमवद्वासी कदाचिन्मलयाचलः।
कदाचित् प्राक्तनेनैव सन्निवेशेन भूधरम्।
चूतवृक्षे च शाखायां प्राप्य नीडं करोम्यहम्।। (यो. महा. निर्वाण पूर्वार्द्ध. 22.40)
चन्दनारुषितः श्रीमाञ्जेतुं जलधिवेल्लनाः।
समुद्यतः इवोच्चोऽसौ मल्लो मलयपर्वतः।। (वही, उत्तरार्द्ध, 114.10)
एते हिमाद्रिमलयाचलविन्ध्यसह्य–
क्रौञ्चा महेन्द्रमधुमन्दरदर्द्दराद्याः।
दूरस्थिता दृशि सित्ताभ्रपटा बहन्ति
संशुष्कपर्णलवलाञ्छितलोष्टलीलाम्।। (वही, 115.2)
एषोऽसौ मलयोऽलयोऽग्रलवलीवल्लीलसच्चन्दन–
स्फीतामोदमदाद्रसेन तरवो वक्रे क्रियन्ते त्रिभिः।
सज्वालोदहनाक्षसंस्थितकपोलोष्मोदयोत्ताण्डवे
अंगुष्ठांगुलिभिर्यथोष्णककणास्तप्ता यथा योषिताम्।। (वहीं, 9)
तथा–
एषोऽब्धिधौतकलधौतजटाधिरूड
भोगीन्द्रभोगपरिवेष्टितचन्दनोऽगः।
विद्याधरीवदनपंकजदीप्तिपुञ्ज–
हेमीकृतारिवलखिलो मलयाभिधानः।। (वहीं, 10)

होती है।[112] यूनानी[113] एवं चीनी यात्री युवान–च्वांग[114] के विवरण भी इस पर्वत के विषय में वर्णन प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत भाषा में मलय पर्वत का जो उल्लेख प्राप्त होता है, वहाँ प्रमुख 'मलय' शब्द की व्युत्पत्ति द्रविड भाषा के शब्द 'मल्ला' तथा 'मल्लाई' से मानी जाती है।[115] पर्वत के चन्दन–चर्चित होने का पुनः उल्लेख कालिदास के ग्रन्थ में भी देखने को मिलता है।[116–117] भवभूति ने भी इस पर्वत का उल्लेख किया है।[118] विद्वान् इस पर्वत का समीकरण, दक्षिणी भाग के पश्चिम घाट से, जिसका विस्तार कुन्दईबारी दर्रे (Kundaibari Pass) से होते हुए कन्याकुमारी (Cape-Kommorin) जिसके अन्तर्गत एक हजार मील तक विस्तृत क्षेत्र अथवा मालाबार घाट आता था अर्थात् सामान्यरूप से सम्भवतः वह अलग हुआ घाटों के भूखण्डों का क्षेत्र, जिसमें दक्षिण के कोयम्बटूर–अन्तरीय क्षेत्र तथा नीलगिरि पहाड़ियों की टूटी हुई शृंखलाएं हैं, जिसके अन्तर्गत अन्नामलाई (Annamalai) तथा इल्लामलाई (Elamalai) की पर्वत मालाएं सम्मिलित हैं, उसी से करते हैं।[119] लगभग एक सौ उनन्चास ईसवी के वासिष्टी–पुत्र पुलुमावी के नासिक गुहालेख में सातवाहनों की कीर्तिपताका मलय पर्वत तक विस्तीर्ण होने की बात कही गई है।[120] श्रीचन्द्र के पश्चिम भाग ताम्रपत्र लेख (लगभग 925–75 ईसवी), में गौडीय बंगाल के चन्द्रवंशीय त्रैलोक्यचन्द्र की विजयों का उल्लेख करते हुए उसे मलयपर्वतीय क्षेत्र का विजेता बताया गया है।[121] भोज प्रथम के नवीं शताब्दी के अभिलेख में भी उसे मलय पर्वतीय क्षेत्र का विजेता बताया गया है।[122] इस प्रकार यदि इस संदर्भ में मलय पर्वत के चन्दन–चर्चित होने के विषय में साहित्यिक साम्यता के आधार पर ही विचार किया जाय तो हम योगवासिष्ठ महारामायण की भाषा को कालिदास तथा महाभारत की भाषा से अधिक परिष्कृत एवं आंलकारिक तथा सौष्ठवपूर्ण देख सकते हैं। यदि केवल इसी मन्तव्य को आधार माना जाय तो आलोच्य ग्रन्थ को कालिदास तथा महाभारतोत्तर कालीन विचार किया जा सकता है।

---

112. रामायण, अयोध्याकाण्ड 91.24, युद्धकाण्ड, 26.42, महाभारत, सभापर्व, 10.32, 52.33, द्रोणपर्व, 54.26, भीष्मपर्व, 9.11, अग्रवाल, वासुदेवशरणं, भारत सावित्री, पृ. 247, 257, 301, भागवत पुराण, 5.19.16,11.2, मार्कण्डेय पुराण 57.5, 14.2

113. Schoff, Willfred H., "The Periplus of the Eryhraean Sea", Delhi, 1974, p. 201.

114. Beal, S., op.cit., Vol. 2, 232, 233,252n.

115. Indian Antiqudry, 1889, pp. 240-244.

116. भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम्।
नास्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीच्छेदिनामपि।।
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणोऽस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।।
ताम्रपर्णीमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम्।।
स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ।।
असह्य विक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता।
वितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत्।। (कालिदास, रघुवंश, 4.48–52)

117. तस्य जातु मलयस्थलीरते धूतचन्दनलतः प्रियाक्लमम्।
आचचाम सलवंगकेसरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः।। (कालिदास, कुमारसम्भव, 8.25)

118. भवभूति, 'महावीर–चरित', श्लोक–3.

119. Sircar, D.C., "Studies in the Geography of the Ancient and Medieval india", pp. 173 and 286., Agarwala, V.S., " Vamana Puarna- A study", Varanasi, 1964, p. 30., Law, B.C., "Mountains of India", p. 20., Pargiter, F.E., " Markandeya- Purana" p. 285n.

120. Nasik Cave Inscription of Vasisthiputra or Pulumavi", No. 86, Line - 2.

121. Paschimbhag Copper-plate Inscription of Srichandra No. 19, verse -8.

122. Udaypur inscription No. 50, verse 18 - vide - Epigraphia Indica, vol. 1, p. 235.

गन्धमादन :

कदम्बों के वृक्ष केसर तथा कर्पूर की सुगन्धि का प्रदाता, धार्मिक भावनाओं से अभिमण्डित गन्धमादन पर्वत का उल्लेख योगवासिष्ठ महारामायणकार करता है।[123] संस्कृत तथा बौद्ध साहित्य में इसका अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है।[124] इसका समीकरण हिमालय के उत्तर–पश्चिम के एक अभिन्न भाग के रूप में किया गया है, जो कि कराकोरम (Karakoram), लद्दाख (Laddakh) तथा जस्कर (Zeskar) श्रेणियों तक अर्थात् उत्तर–पूर्वी कश्मीर में हिमालय की गढ़वाल श्रेणी तक विस्तृत है।[125]

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित गन्धमादन पर्वत के सन्दर्भ का आधार लेकर उसके रचनाकाल पर कोई विचार नहीं कर सकते, क्योंकि यद्यपि विद्वानों द्वारा किये गये समीकरण, इस पर्वत के कश्मीर में होने के कारण वहाँ के पहाड़ी क्षेत्रों में प्राप्त सुगन्धित द्रव्यों की उपस्थिति को स्पष्ट करते हैं, तथापि आलोच्य ग्रन्थ के विवरण की समता यहाँ सन्दर्भित किसी अन्य ग्रन्थ में प्राप्त न होने के कारण आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर इस आधार पर कोई विचार प्रस्तुत करना उचित नहीं है।

अञ्जन गिरि :

आञ्जन गिरि को पूर्व में स्थित बताया गया है।[126] अन्य साहित्यिक वर्णनों के आधार पर पंजाब की सुलेमान पर्वत श्रेणी से इसका समीकरण किया गया है।[127] किन्तु ग्रन्थ में वर्णित अञ्जन गिरि के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

---

123. वीतरागः स धर्मात्मा निर्ययौ तपसे वनम्।
तपश्चरत्यसौ राजा पर्वते गंधमादने।। (यो. महा., 1.1.24)
गन्धमादनमन्दारमन्दिरे मदनातुराः।
पातिताः पादयोः पूर्वं विद्याधरकुमारकाः।। (वही, 3.27.57)
गन्धमादनशैलस्य विश्रम्योपरि सानुषु।
सा तेन कनकाम्भोजैरापादमभिमण्डिता।। (वही, 4.8.9)
गन्धमादनशैलेन्द्रनाम्नि काचित्किल स्थली।
विद्यते कीर्णकुसुमा द्रुमकपूरकेसरा।। (वही, 5.51.9)
गन्धमादनपुन्नागवनगुञ्जेषु पुञ्जिताः।
विद्याधरकुमारीभिर्गान्धाराः परिरक्षिताः।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 112.16)
चूतनीयकदम्बाद्यगन्धमादनकन्दरान्।
विशन्ति मेघहरिणास्तडिन्तरललोचनाः।। (वही, 114.27)

124. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 76., माथुर, विजयेन्द्र कुमार, 'ऐतिहासिक स्थानावली', पृ. 266–267. शर्मा, राणाप्रसाद, 'पौराणिक कोश', वाराणसी, 1986, पृ. 144. 'Puranic Encyclopaedia', Delhi, 1979] p.274., Upadhyaya, B.S., 'India in Kalidasa', Allahabad, 1947, pp. 1,3,5,6,16., गुप्त, परमेश्वरीलाल, 'गंधमादन पर्वत', हिन्दी विश्वकोष, खण्ड 3, पृ. 348., Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 9,13,18n,61n,62n,236., Dey, N.L., op. cit., p. 60., Sachau, E.C., 'Alberuni's India', Vol. 1, pp. 248, 249., Watters, Thomas, 'On Yuan-Chawang's Travels in India', Delhi, 1973, Vol. 1, p. 33.

125. Dey, N.L., op. cit., p.60., law, B.C., Historical Geography of Ancient India, p. 76., माथुर, विजयेन्द्र कुमार पूर्वोक्त, पृ. 266–267., Law, B.C., Mountains of India, p. 3., Archaeological Survey Report, Vol. 11, Article No. 10., Indian Historical Quarterly, Vol. 12, pp. 534-40.

126. मध्यदेशादिसंख्याने प्राग्दिभ्योऽभ्यागतानिमान्।
लीलानाथस्य पद्मस्य पक्षे जनपदाच्छृणु।। (यो. महा. 3.36.21)
माल्यवान्नाम शैलोऽत्र शिबिराञ्जन एव च।
वृषध्वजःपद्माधास्तथोदयकरो गिरिः।। (वही, 25)
कदास्याम जनमहाशैलपुत्रकरूपिणी।
द्यावापृथिव्योर्वैधुर्ये स्तम्भतामनुतिष्ठति।। (वही, 71.22)

127. वाल्मीकि, रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 37.5; महाभारत, कलकत्ता संस्करण, आदिपर्व 5.291.2732; Jatakas, 5, pp. 133, 186-190; Dey, N.L., op. cit., p. 258; Law, B.C., 'Mountains of india', p. 8; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 4., Sachau, E.C., op. cit., p. 300.

मन्दर :

पुराणों और धार्मिक साहित्यों में वर्णित मन्दर पर्वत का योगवासिष्ठ महारामायण में भी उल्लेख हुआ है।[128] पुराण[129] महाकाव्य[130] तथा कालिदास के ग्रन्थों[131] में इसे चार विस्खम्बा पर्वतों की सीमा में इलावर्त के पूर्व तथा हिमालय के पूर्वी क्षेत्र में स्थित बताया गया है। सातवीं शताब्दी के कन्नौज के यशोवर्मन् के विजयाभियान के अन्तर्गत हिमालय के निचले क्षेत्र में मन्दराचल पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।[132] इस पर्वत का समीकरण लगभग दो या तीन मील बंसी के उत्तर में तथा तीस मील उसके दक्षिण में भागलपुर जिले में बंक उपक्षेत्र के एक छोटे पर्वत से तथा हिमालय की पहाड़ियों अथवा बर्मा के सामुद्रिक तट के हिम क्षेत्र से किया गया है।[133] महाभारत तथा पुराणों की सागर मन्थन कथा का जो साम्य योगवासिष्ठ महारामायण में दिये गये वर्णन के अन्तर्गत उक्त पर्वत के प्रति प्राप्त होता है तथा साथ ही मन्दर पर्वत का उल्लेख सातवीं शताब्दी तक प्राप्त होने के कारण आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को इसी शताब्दी के समीपवर्ती काल में इस उल्लेख के आधार पर अनुमानित किया जा सकता है।

मणिमान् :

पुराणों[134] के मणिशैल तथा महाभारत[135] में हिमालय के क्षेत्र के मणिमान् पर्वत का उल्लेख योवासिष्ठ महारामायण[136] में भी प्राप्त होता है। मात्र संदर्भ के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को महाभारत तथा पुराणोत्तर युगीन विचार किया जा सकता है।

---

128 मन्दराहन्नोद्धूतं क्षीरार्णवपयो यथा।
कल्लोलकलितावर्त मायाम्करमालितम्।। (यो. महा. 1.16.6)
मन्दारहननोड्डीनस्वच्छक्षीरार्णवोदरे।
वनानीवायुधान्यासञ्छत्रुप्रालेयसानुनि। (वही, 3.37.26)
पुरा मन्दरशैलस्य सानौ कुसुमसंकुले।
अतप्यत तपो घोरं कस्मिंश्चिद्भगवान्भृगु।। (वही, 4.5.8)
मनः प्रसादमायाति शरदीव महत्सरः।
परं साम्यमुपादत्ते निर्मन्दर इवार्णवः।। (वही, 2.18.12)
न कृतेनाकृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः।
निर्मन्दर इवोम्भोधिः स तिष्ठति यथास्थितम्।। (वही, 2.19.11)
आकाशमात्रमेतेषामिदं पश्य वपुः पुनः।
मेरुमन्दरकोटीनां कोटयस्तेष्ववस्थिताः।। (वही, 3.27.28)
एते हिमाद्रिमलयाचलविन्ध्यसह्य–
क्रौञ्चा महेन्द्रमधुमन्दरदर्द्वराद्याः।
दूरस्थिता हशि सित्ताभ्रपटा बहन्ति
संशुष्कपर्णलवलाञ्छितलोष्टलीलाम्।। (वही, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध, 115.2)
मन्दराऽद्रौ मृदुतले मन्दारतरुमन्दिरे।
किंनरी मन्दरीनाम्नी दिनमेकमसेवत।। (वही, 123.17)

129. मत्स्य पुराण, 113.; वायु पुराण 35.35.; विष्णु पुराण, 2.2.16,1.9.77–91; कूर्म पुराण, 1.1.; वामन पुराण, 90.; Pargiter, F.E., Markandeya Purana, p. 287

130. महाभारत, आदिपर्व, 18.6.17,13,26. वनपर्व, 139.5. सभापर्व, 10.81. द्रोणपर्व, 80.33. 202.76. अनुशासनपर्व, 19.54. वाल्मीकि, रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 40.25.

131. कालिदास, कुमारसम्भव, 8.23.

132. गउडवहो, वाक्पतिराज, पूणे, 1927. श्लोक 484. Smith, V.A., journal of Royal Asiatic Society, 1908, p. 784.

133. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 80–81. 688. Willaim, M.M., 'A Sanskrit-Engliswh Dictionery', p. 788.; Dey, N.L., op. cit., pp. 124-125.; Law, B.C., 'Mountains of India', p.10.; Parigeter, F.E., Markandeya Purana, p. 287.; Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and medieval India', pp. 9,13,151,221 & 236.

134. वायु पुराण, 37.16–22.

135. महाभारत, द्रोणपर्व, 80.24.

136. मणिमान्नाम शैलेन्द्रः कुरार्पणगिरिस्तथा।
वनोऽर्कहो मेघ भवश्चक्रवानस्तपर्वतः।। (यो. महा. 3.36.45)

मेरु :

धार्मिक कल्पना से अभिमंडित मेरु पर्वत को जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित बताया गया है[137] तथा उत्तर में कैलास, वसुमान्, हिमवान्, क्रौञ्च तथा मधुमान् के साथ विकसित कमलों की झीलों वाले इस पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है[138], इसके दोनों ओर अनेक जनपद तथा निचले क्षेत्र में विदेह जनपद की स्थिति बताई गई है।[139] इस पर्वत का सन्दर्भ पुराणों में भी प्राप्त होता है।[140] एरियन नामक यूनानी लेखक इसे मेरोस (Meros) उल्लिखित करते हुए निषध पर्वत के समीप बताता है।[141] जातक[142] तथा मिलिन्द–पञ्ओ[143] नामक बौद्ध ग्रन्थ में भी इसे हिमालय में स्थित बताया गया है। पुराणों तथा बृहत्संहिता के वर्णनों पर आधारित इस पर्वत की जानकारी अरबयात्री अल्बरूनी को भी थी।[144] कतिपय विद्वान् इसका समीकरण उत्तरी साइबेरिया अथवा रुद्र हिमालय तथा कतिपय पामीर के पठार से करते हैं।[145] आलोच्य ग्रन्थ के इस पर्वत के सन्दर्भ से अनुसंधानात्मक विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

पारियात्र :

ग्रन्थकार भयंकर महासमुद्र के तट पर इस पर्वत की स्थिति का उल्लेख करता है।[146] विन्ध्य पर्वत माला के

---

137. क्षाराम्भोराशिपरिघं सान्तस्थविषयान्तरम्।
जम्बूद्वीपे महामेरुं कुलपर्वतसंकुलम्।। (वही, 3.73.59)
वीतशोकभयायासो निरीहश्छिन्नसंशयः।
जगाम शिखरं मेरोः समाध्ययर्थमनिन्दितम्।। (वही, 2.1.43)
मेरुश्रृङ्गशिखारत्नकृतवातायनस्थितः।
एकदा चिन्तयामास स्वयं संसारसंस्थितिम्।। (वही, 5.22.27)
यदा समन्ततो मेरुः कालनेमिभुजान्तरे।
किञ्चिदुन्मूलितो तिष्ठत्तदा नाऽकम्पत द्रुमः।। (वही, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध, 21.9)
गौरीसरस्वतीलक्ष्मीगायत्र्याघासु भूरिषु।
मेरुमन्दरकैलासहिमवद्दर्दुरादिपु।। (वही, 22.3)
कल्पवृक्षवने मेरोरुत्तरेऽप्सरसा सह।
उवास दश वर्षाणि नालिकेरफलाशनः।। (वही, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध, 123.14)
तत एते कथोपाया भरद्वाजेन धीमता।
कस्मिंश्चिन्मेरुगहने ब्रह्मणोऽग्र उदाहृता।। (वही, 1.2.6)

138. बालहेमलताजालजटालासु नदीषु च।
भ्रान्तमुन्मन्तनागेन भैरवीष्वब्जिनीष्विव।। (यो. महा. 4.8.7. तथा वही, 3.36.54–55)

139. पित्रेत्युक्ते शुकः प्रायात्सुमेरोर्वसुधातले।
विदेहीनगरीं प्राप जनकेनाभिपालिताम्।। (वही, 2.1.19)

140. स्कन्द पुराण, विष्णु खण्ड, 3.7; पद्म पुराण, 128.; ब्रह्माण्ड पुराण, 1.1.69, 8.28, 2.15.16, 442–51, 17.19,34.84, 21.14, 28–34, 9.17; मत्स्य पुराण, 11.38; विष्णु पुराण, 2.1.20–22, 2.39–41, 8.19, 5.1.12,66, 38.72.

141. McCrindle, J.W., 'Ancient India as Described in Classical Literature', New Delhi, 1901, p. 126.

142. जातक, 3, पृ. 247.

143. Millindpanha, Oxford, London, 1890-94, p. 129.

144. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 243, 257, 265, 271, 274, 302, 303, 308, 316, 326, 327, 329, Vol. 2, pp. 82, 96, 129, 142.

145. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 759.; Pande, S.N., 'Article', 'Hinduskush or Hindukasa', Summary published in All india Oriental Conference, 1978, Dharvad Karnataka & The Full Length Paper Published in Northen India, partika, Allahabad, Oct. 17-18, 1976.; Law, B.C., 'Mountains of India', P.2; Dey, N.L., op. cit., p.130; अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत–सावित्री, 2, पृ. 107; Beal, S., op.cit., p. 10n.; Vettam mani, op. cit., pp. 462-463.; कौल, कैलाशनाथ, प्रातःकालीन संस्करण, स्वतंत्र भार, हिन्दी दैनिक, दिनांक फरवरी 6, 1980, लखनऊ; Kaul, Kailasnath, Conference of The Bhartiya Gyanvithika, Lucknow, U.P., Lecturer Read on 'Truth of the Sumeru Mountain', at Hindi Bhavan, Lucknow, 1980-1981; Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 9n, 11-13.

146. यतु महीधरशतैरयाश्वो नाम पर्वतः।
ततो महार्णवो भीमः पारियात्रगिरिस्तटे। (यो. महा., 3.36.50)

पश्चिमी भाग, जिसका विस्तार चंबल और बेतवा नदी के स्रोत से कम्बात की खाड़ी तक था तथा जिसके अन्तर्गत अरावली और राजपूताना की पहाड़िया विद्यमान थीं, जिसमें उसी का पठारी क्षेत्र तथा इसे और स्पष्ट रूप से कहे तो विन्ध्य पर्वतमाला की शाखा, जिसका विस्तार भोपाल के पश्चिम से राजस्थान के अरावली जिसमें सतपुडा की पहाडियाँ भी शामिल थीं जो नर्मदा नदी के दक्षिण तक फैली हुई थीं और अवन्ति जनपद की पश्चिमी सीमा प्राकृतिक रूप से निर्धारित करती थीं तथा उत्तर–पूर्व में राजपूताना तक बढ़ते हुए जिसे अन्तर–गिरि कहा जाता था– अर्थात् वह भूक्षेत्र जो कभी सौवीर तथा सिन्धु के भाग से होता हुआ द्वारावती तक जाता था और अपने प्रारम्भिक रूप में राजस्थान की मरुभूमि से आरम्भ होते हुए अरावली के किनारे–किनारे छोटी–छोटी पहाडियों को गुजरात तक चुम्बित करते हुए विस्तृत था, उसी सम्पूर्ण क्षेत्र का समीकरण रामायण[147], महाभारत[148], पुराण[149] तथा निरपेक्ष रूप से रघुवंश[150] में उल्लेख के आधार पर प्राचीन काल में पारियात्र पर्वत के नाम से किया गया है।[151] इस पर्वत का सर्वप्रथम उल्लेख बौधायन धर्मसूत्र में प्राप्त होता है, जिसमें उसकी दक्षिणी सीमा आर्यावर्त क्षेत्र में बतायी गयी है।[152] मत्स्य और वायुपुराण तथा बृहत्संहिता के आधार पर अरब यात्री अल्बरूनी भी इस पर्वत का उल्लेख करता है।[153]

इतना होते हुए भी इस सम्पूर्ण विवरण अर्थात् पारियात्र पर्वत के उल्लेख के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल पर कोई प्रकाश नहीं डालता है।

प्रद्युम्न शिखर :

ग्रन्थ में भविष्य काल का प्रयोग करते हुए ग्रन्थकार कहता है कि हे राम जी ! काश्मीर मण्डल के अन्तर्गत वृक्ष तथा पर्वतों से शोभित सर्वथा लक्ष्मी–सम्पन्न अधिष्ठान नामक उसका नगर होगा उस नगर के मध्य में प्रद्यम्न नाम शिखर होगा, जिसका श्रृङ्ग लंघन के योग्य होगा और उसका उदर कमल की कणिका के समान होगा। उस शिखर के सिर पर सब ग्रहों का राजा बड़ी–बड़ी शाला युक्त पर्वत के श्रृङ्ग पर दूसरे श्रृङ्ग के समान अर्थात् अति उच्च सब गृहों में श्रेष्ठ गृह वहाँ है। इस गृह के ईशान कोण में भित्ति के ऊपर एक फटी इुई शिला के मध्य संधि स्थान में एक नीड है उसके निकट निरन्तर वायु से सदा कम्पित निकस्थ तृणयुक्त नीड में अल्प शास्त्रज्ञ ब्राह्मण के समान निरर्थक शब्द करने वाला व्याल नामक दानव चटक होगा। उसी नगर में उस समय स्वर्ग में दूसरे इन्द्र के समान श्री यशस्कर देव नामक राजा होगा। इसी प्रकार पुनः प्रद्युम्न के शिखर के निकट का निवासी वह चटक वहाँ के निवासियों से उस कथा को सुनकर परम निर्वाण को प्राप्त होगा एवं प्रद्युम्न श्रृङ्ग से वह चटक, राजमंदिर के मशक और रत्नावली विहार से क्रकर (सारिका) ये तीनों मोक्ष को प्राप्त होगें। ईश्वर की मूर्तरूपता तथा उसमें व्याप्त मानवीय अवगुण अंहकार की

147. वाल्मीकि, रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 42.20.

148. महाभारत, वनपर्व, 188.115, भीष्मपर्व, 9.11.

149. मार्कण्डेय पुराण, 57.17–30, 34–59; वायु पुराण 45.94–107; मत्स्य पुराण, 114.20–32, 34–59; वामन पुराण, 13.20–23, 36–58; कूर्म पुराण, 66.28–39; विष्णु पुराण, 1.10.3–9, 2.3.3.

150. कालिदास, रघुवंश महाकाव्यम्, वाराणसी, 1983, श्लोक 78, पृ. 394.

151. Mani, Vettam, op. cit. p. 438; William, M.M., op. cit., p. 295; Dey, N.L., op. cit., p. 149.; Asiatic Researches, Vol. 8, p. 1 and Map 14, p. 151.; अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत सावित्री, 2, पृ.117–118 तथा 3, दिग्विजय अध्याय 14; Law, B.C., Mountains of india, p. 19, River of India, pp. 4&37.; Pargiter, F.E., "Markendeya Purana", p. 286n.; Agarwal, V.S., "Matsya Purana : A Study", p. 194.

152. बौधायन धर्मसूत्र, बनारस, 1934, 1.1.25.

153. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 247, 257, 259 and 300.

154. काश्मीरमंडलस्यांतर्नगरं नगशोभितम्।
नाम्नाधिष्ठानमित्येव श्रीमत्तस्य भविष्यति।।
प्रद्युम्नशिखरं नाम तस्य मध्ये भविष्यति।
शृङ्गं लघुसरोजस्य कोशचक्रमिवोदर।।

उपस्थिति के मूल्यांकन में वह पुनः कहता है कि कहाँ ये सब प्रघुम्न के गिरि के श्रृंग के गृह के भित्ति के छिद्र में पक्षिरूपता सी दृश्यमान है।[154] इसी प्रकार के प्रद्युम्न नामक एक पर्वत का उल्लेख कल्हण भी राजतरंगिणी में करता है, जिसे वह अधिष्ठान अर्थात् पुराने श्रीनगर में स्थित बताता है।[155] हूण मिहिरकुल के वंशीय तुंजीन (Tunjina) या रणदित्य कश्मीरी शासक द्वारा अपनी चोलवंशीया पत्नी रणरम्भा के साथ प्रद्युम्न पर्वत पर दो शिव मन्दिर तथा एक मठ का निर्माण कराया गया।[156] हर्षवर्द्धन द्वारा सातवीं शताब्दी में इस पर्वत को सम्भवतः पार किया गया था।[157] लगभग बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उच्छल (Uchchala) ने पराजित होकर इस पर्वत को पार किया था।[158] प्रद्युम्न नाम से इसी पर्वत का उल्लेख बारहवीं शताब्दी के कविवर बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित्र नाम ग्रन्थ में प्राप्त होता है।[159] जोनराज द्वारा सम्पादित राजतरंगिणी[160] और सोमदेव–कृत कथासरित्सागर में इस पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है। सोमदेव ने प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध और उषा के मध्य पनपे प्रेम का वर्णन किया है जिसमें निरपेक्ष रूप से प्रद्युम्न पर्वत का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है।[161]

इस प्रकार आलोच्य ग्रन्थ में प्रद्युम्न–शिखर का उल्लेख स्टीन के उस सन्देह[162] का निराकरण करने के लिए पर्याप्त है, जिसमें उन्होंने राजतरंगिणी में उल्लिखित प्रद्युम्न शिखर सम्भावित किया है, जिसे सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन द्वारा पार किया गया था। दूसरी ओर यह उल्लेख ऐसे तथ्य अवश्य प्रस्तुत करता है, जिनका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं, उन्हें आधार रूप में स्वीकार करने पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को सातवीं से बारहवीं शताब्दी ईसवी तक विचार करने में संकोच नहीं होता है।

रैवतक :

आलोच्य ग्रन्थ के सन्दर्भ में यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह ग्रन्थ दर्शन का ग्रन्थ है। इसीलिए ग्रन्थकार रैवतक पर्वत का तो उल्लेख करता ही है साथ ही उसका दिशा–निर्देश दक्षिण–पश्चिम में करते हुए न केवल अनेक जनपदों का उल्लेख करता है अपितु वहाँ पराशक्तियों के होने तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए भी

तस्य मूर्ध्नि गिरेर्गेहं कश्चिद्राजा भविष्यति।
अभ्रंकषमहाशालं श्रृङ्गे श्रृङ्गमिवापरम्।
गृहस्येशानकोणेऽस्ति शिरोभित्तिव्रणोदरे।
तस्यानिरामविश्रान्तवाताधूततृणान्तिके।।
आलये दानवो व्यालः कलविङ्को भविष्यति।
प्रथमाल्पश्रुतशास्त्र इवार्थरहितारवः।।
तस्मिन्नेव तदा काले तत्र राजा भविष्यति।
श्री यशस्करदेवाख्यः शक्रः स्वर्ग इवाकरः।। (यो. महा., 4.32.11–16)
प्रद्युम्नशिखरप्रान्तवास्तव्यः कल विकंकः।
तत्रत्यैश्च कथां श्रुत्वा परं निर्वाणमेष्यति।। (वहीं, 23)
प्रद्युम्नश्रृङ्गाच्चटको मंशको राजमन्दिरात्।
विहारात्क्रकरश्चेति मोक्षमेष्यन्ति राघव।। (वहीं, 25)
क्व चपेटभुजामात्रपातितार्केन्दुबिम्बता।
क्व प्रद्युम्नगिरौ गेहे भित्तिव्रणविहंगता। (वहीं, 29)

155. Stien, M.A., Kalhana's Rajtarangini, Delhi, 1961, Book.3, verse 460, Book. 7, verse 1616.

156. Ibid, Book. 3, verse 460.

157. Stien, M.a., Kalhan's Rajtarangini, p. 393.

158. Ibid., vol. 7, verse 1616.

159. vidyapati, Bilhan, 'Vikramankadevcharita', Bombay, 1975, 18.15.

160. Rajtarangini, Edited by Jonaraja, Bombay, 1896, pp. 587, 870.

161. सोमदेव, 'कथासरित्सागर', पटना, 1961. 73.109

162. Stien, M.A., op. cit., p. 393n.

इस पर्वत का वर्णन प्रस्तुत करता है।[163] समीक्षात्मक दृष्टि से देखें तो हम पाएंगे कि इस पर्वत का उल्लेख महाभारत, पुराण तथा बृहत्संहिता में प्राप्त होता है।[164] इसी प्रकार प्रत्यग्दक्षिण के देशों की सूची देते हुए अरबयात्री अल्बरूनी बृहत्संहिता के आधार पर जो वर्णन प्रस्तुत करता है, उसी में रैवतक नामोल्लेख भी है।[165] स्कन्दगुप्त के जूनागढ शिलालेख (455–458 ईसवी) में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[166] ईश्वरवर्मा के जौनपुर अभिलेख के अनुसार यह पर्वत विन्ध्य पर्वतमाला में स्थित था।[167] फ्लीट महोदय ने इसका समीकरण गिरनार पर्वत की दो चोटियों में से एक से किया है।[168] आधुनिक भूगोलवेत्ताओं ने इसका समीकरण जूनागढ के गिरनार पर्वत से किया है जोकि विन्ध्य पर्वतमाला की एक शाखा है जिसका फैलाव पश्चिम में होते हुए उत्तर में जहाँ यमुना नदी है, वहाँ अरावली की श्रेणियों या बरद पर्वत में था, जो कि द्वारका और कुशस्थली के समीपवर्ती पहाड़ियों में स्थित था और जोकि आनर्त की राजधानी थी तथा गुजरात द्वीप की पहाड़ियों में स्थित थी।[169] अल्बरूनी के द्वारा दी गयी सूची तथा योगवासिष्ठ महारामायण में पश्चिम–दक्षिण दिशा के जनपदों की सूची के अन्तर्गत वैसा ही सुन्दर वर्णन एक साम्य दर्शाता है जिसको निम्नलिखित तालिका में यहाँ स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है:–

---

163 अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्यसुराष्ट्रकाः।
सिन्धुसौवीरशूद्राख्या आभीरा द्रविडास्तथा।।
कीकटाः सिद्धखण्डाख्यास्तथा कालिरुहा अपि।
अत्र हेमगिरिः शैलस्तथा रैवतको गिरिः।।
जयकच्छो मयवरो यवनास्तत्र जन्तवः।
वाह्लीका मार्गणावन्ता धूमास्तुम्बकनामकाः।। (यो. महा. 3.36.40–42)
तज्जा रैवतिका रात्रौ रौद्रतोमरताडिताः।
रूपिकाभिः पिशाचीभिर्भुक्ता भागीकृताङ्गका।। (वही, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध, 112.6)
अत्र रैवतके शैले वर्षे जलधारे महागिरौ।
दशरात्रमभूत् सिंहः पूर्वो यक्षवशीकृतः।। (वहीं, 124.20)

164. महाभारत, आदिपर्व, 217.8, 214.6, भीष्मपर्व, 11.18.; भागवत पुराण, 9.22.29.; ब्रह्माण्ड पुराण, 3.71.154, 178.; विष्णु पुराण, 4. 44.35, 20, 40.; वायु पुराण, 12.17–24, 35.28.; मार्कण्डेय पुराण, 75.23., 47.17.; वराहमिहिर, बृहत्संहिता, 14.90.

165. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 302.

166. स्कन्दगुप्त का जूनागढ शिलालेख, सं. 25, श्लोक 28 (Epigraphia Indica, 24.5, jan. 1988, p. 216).

167. Fleet, j.F., Corpus Inscription indicarum, Vol.3, p. 64.

168. Ibid., p.64n.; indian Antiquary, Vol. 6, p. 239.

169. Dey, N.L., op. cit., p. 165.; Wilson, H.H., Vishnupurana, Eng. Tr., Calcutta, 1866, p. 146n 3.; Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', Calcutta, 1904, p.289 & n.; Law, B.C., Mountains of India, pp. 18-19.; Beal, S., op. cit., Vol. 2, p. 269n.

तालिका

पश्चिम–दक्षिण दिशा

Alberuni's india (1.Ch. 29, no. 5)	योगवासिष्ठ महारामायण (उत्पत्ति खण्ड, 36.40–42)
Kamboja	सुराष्ट्र
Sindhu	सिन्धु
Sauvira	सौवीर
Vadavamukha	शूद्र
Aravambashtha	आभीर
Kapila	द्रविड
Parasava	कीकट
Sudra	सिद्धखण्ड
Barbar	कालिरुह
Kirata	हेमगिरि
Khanda	रैवतकगिरि
Kravya	जयकच्छ
Abhira	मयवर
Chancuka	यवन
Hemagiri	वाह्लीक
Sindhu	मार्गण
Kalaka	धूम्र
Ravivataka	तुम्बक
Surashtra	
Badara	
Dramida	
Mahamava	
Narimukha	
Anarta	
Phenagiri	
Yavan	
Marak	
Kamapravarna	

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इस पर्वत के उल्लेख के आधार पर योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल बृहत्संहिता से लेकर अरबयात्री अल्बरूनी के काल तक अर्थात् छठी से दसवीं शताब्दी तक कभी भी विचार किया जा सकता है।

सह्य :

सह्य पर्वत के सुन्दर वर्णन में ग्रन्थकार उसकी विशेषता इस प्रकार स्पष्ट करता है कि ऊंचाई में आकाश को भी जीतने वाला तथा नीचे की भूमि से भूतल और भूमि के मूलभाग के प्रवेश से पताल को जीतने वाला त्रिलोक में विजयी वह पर्वत है। पुनः असंख्य पुष्पों के समूहों से पूर्ण, असंख्य निर्मल झरने सहित, गुह्यकों से रक्षित और रत्नादि की दीप्ति से दृष्टि को निस्तेज करने वाला वह सह्य नाम पर्वत है। मोतियों के समूह से पूर्ण चन्द्रकान्त मणियों की भित्तियों से प्रकाशशील, सुवर्णमय नितंबों से ऐसे शोभित है जैसे गंडस्थल से हस्ती कहीं पुष्पों के समूहों से प्रवाहमय, कहीं हरिताल और मनः शिला आदि धातुओं से व्याप्त, कहीं विकसित पुष्प संयुक्त सरोवरों से रमणीय और कहीं रत्नों की शोभायमान शिलामय, कहीं झरनों के कहीं बांसों के शब्दों से पूर्ण कहीं कंदराओं में वायु की सनसनाहट से शोभित और कहीं भ्रमर गूंज से व्याप्त और कहीं शिखर पर अप्सराओं के समूह के गान से मनोहर और वन में मृग तथा पक्षियों के शब्दों से पूर्ण ऊपर की भूमि में मत्त के समान मेघों की गर्जना से रमणीय और आकाश देश में पक्षियों के शब्द से शोभित वह पर्वत था और उसकी कन्दरा विद्याधरों से आश्रित थी, कमलों की खानि में भ्रमर गूंज रहे थे, उसके अध ोभाग में किरात लोग गान करते थे और उसके वन के वृक्षों में पक्षिगण गान करते थे। स्कंध देशों में देवताओं से वेष्टित, पाद देश में मनुष्यों से और पाताललोक में नागों से सेवित ऐसे भान होता था, जैसे ब्रह्माण्ड का दूसरा गृह और कंदरा के प्रदेशों में सिद्धों से सेवित वह पर्वत था। पुनः गिरे हुए पुष्पों से आच्छादित शरीर सद्यः पतित पुष्पों की रेणु से धूलिमय, उड़ते हुए पुष्प रूप महावायु सहित, मेघों से भ्रमणशील और पुष्पमय वृक्षों से गौरवर्ण अनेक धातुओं की धूलियों से मेघ के सदृश गौरवर्ण और रत्नमय पाषाणों के तल पर मंदार (कल्प) के वृक्षों पर आरूढपुर की अंगनाओं से पूर्ण रीति से आश्रित वह पर्वत था। मेघरूप नीलवस्त्रों से आच्छादित, शब्दरहित रत्नों के भूषणमय, कनकमय वर्ण सुन्दरी शिला वहाँ मानो शिखर रूप पुरुषों की अभिसारिका थी। उस पर्वत पर फलों के भार से नम्र वृक्ष और रत्नमय बावलियों के समूह से जल के झरने बह रहे थे। आम्र के वृक्षों की शाखाओं से गिरे पुष्पों से ऊँचे और दिशाओं के तटों पर विकसित अंकोल, पुनांग और नीलकमल शोभित हो रहे थे। वहाँ लताओं के विस्तार से सूर्य ढका था तथा रत्नों के किरण समूह से प्रकाशमान बहते हुए जंबू रस से पूर्ण और स्वर्ग लोक के समान आनन्ददायक उत्तर के शिखर पर ब्रह्मलोक के सदृश, स्वर्ग के सदृश सुन्दर, शिवपुर (कैलास) के समान, धनधान्य से पूर्ण, सिद्धों के भ्रम को हरने वाला और विशाल अत्रिमुनि का आश्रम था।[170]

---

170. अस्त्युत्सेधजिताकाशः पीठेन जितभूतलः।
तलेन जितपातालस्त्रिलोकविजयो गिरिः।।
असंख्यकुसुमापूरो संख्यनिर्मलनिर्झरः।
गुह्यकारक्षितनिधिः सह्यनामाऽविषह्यभाः।।
मुक्तापटलसंपूर्णैर्भानुभासुरभित्तिभिः।
भासुरः काञ्चनतटैः कटैरिव सुरद्विषः।।
क्वचित्पुष्पभरासारो धातुसाराततः क्वचित्।
क्वचित्फल्लसरः सारो रत्नशालिशिलः क्वचित्।।
इतो रटन्निर्झरवानितः क्वणितकीचकः।
इतो रटगुहावात इतः षट्पदघुंघुमः।।
सानौ गीतोऽप्सरो वृन्दैर्वने मृगखगारवः।
अधित्यकायां मत्ताभ्रो गगनेषु खगारवः।।
विद्याधराश्रितगुहो भृङ्गगीताम्बुजाकरः।
किरातगीतपर्यन्तः खगगीतवनद्रुमः।।
स्कन्धेषु देवैर्वलितः पादेषु वलितो नरैः।
पाताले वलितो नागैर्जगद्गृहमिवापरम्।।
कन्दरेषु श्रितः सिद्धैर्निधानैरन्तराश्रितः।
चन्दनेषु श्रितो नागैः सिंहैः शृङ्गशिखासु च।।
पुष्पाभ्रसंवीतवपुः पुष्परेण्वभ्रपांसुलः।
पुष्पवात्याभ्रहृद्भान्तः पुष्पपादपाडुरः।।
धातुधूल्यभ्रकपिलो रत्नोपलतलस्थितैः।
मन्दारगैरिव पुरस्त्रीगणैरलमाश्रितः।।
अभ्रनीलांशुकच्छन्ना मूकरत्नविभूषणाः।
शिलाः कनकसुन्दर्यो यत्र शृङ्गामिसारिकाः।।

रामायण[171], महाभारत[172], पुराण[173] तथा रघुवंश[174] में इस पर्वत को दक्षिण में स्थित बताया गया है। मत्स्य तथा वायु पुराण के आधार पर अरबयात्री अल्बरूनी को भी इस पर्वत की जानकारी थी।[175] श्याम शिखर कुकुर (Shyam Shikhar Cucur) शब्दों का उल्लेख अलिना (Alina) ताम्रपत्र लेख में प्राप्त होता है, जो कि शिलादित्य षष्ठ अर्थात् वल्लभी–नरेश ध्रूभट्ट गुप्त (766 ईसवी) का है, उसके आधार पर जे0एफ0 फ्लीट यह विचार व्यक्त करते हैं कि यह उल्लेख सह्य विन्ध्य स्थान का है, जो वास्तव में यह स्पष्ट करता है कि उक्त अभिलेख में सह्य पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।[176] इस पर्वत का समीकरण गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के समीप कहीं पर किया जाता है, जिसका विस्तार उत्तर से दक्षिण की ओर बढते हुए पश्चिमी घाट तक जाता था, जिसका घुमाव महाराष्ट्र तथा कोंकण तक होता था जहाँ पर आज भी सह्य नाम प्रचलित है। अधिक सम्भव है कि यह पर्वत पश्चिमी घाट का उत्तरी खण्ड होगा, जिसका फैलाव ताप्ती नदी से होते हुए नीलगिरि पर्वतमाला तक जाता था और इस प्रकार से यह दक्षिण भारत की प्राकृतिक पश्चिमी सीमा बनाता था, जो कि खान देश में कुन्दईबारी–दर्रे (Kundaibari-pass) से एक हजार मील की दूरी तय करता हुआ कन्या कुमारी अन्तरीप तक जाता था।[177]

यदि केवल सन्दर्भ मात्र के आधार पर विचार किया जाय तो अधिक से अधिक यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी तक होना चाहिए, किन्तु यदि तथ्यों के समानान्तर उल्लेखों को तुलनात्मक रूप में खोजने का प्रयास किया जाय तो प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में मात्र सह्य पर्वत के उल्लेख के आधार पर कोई विचार नहीं प्रस्तुत किये जा सकते।

श्री :

ग्रन्थकार कदम्बवृक्ष के नीचे स्थित तपस्वी द्वारा घर में उसके भाइयों का समागम और वर तथा शापों की हेतु–सिद्धि का वर्णन करते हुए श्रीपर्वत का उल्लेख मात्र करता है।[178] कैपलर (Cappeller) महाभारत में इस पर्वत के उल्लेख[179] के आधार पर यह मानते हैं कि प्रचलित रूप में प्रथम शताब्दी के आस–पास श्री पर्वत की जानकारी विद्यमान थी।[180] इसका अधिकतर समीकरण नासिक गुहालेख के सिरितान (Siritana) से किया जाता है, जहाँ पर

तत्रोत्तरतटे सानौ विनम्रफलपादपे।
रत्नपुष्करिणीजालवहन्निर्झरवारिणि।।
चूतद्रुमलतोन्मुक्तपुष्पस्तबकदन्तुरे।
विफुल्लाङ्कोलपुन्नागनीलनीरजदिक्तटे।।
लतावितानच्छन्नार्के रत्नांशुभरभास्वरे।
स्रवज्जम्बूरसस्यूते स्वर्लोकाह्लादकारिणि।।
ब्रह्मलोकसमः स्वर्गरम्यः शिवपुरोपमः।
अत्रेरस्त्याश्रमः श्रीमान्सिद्धभ्रमहरो महान्।। (यो. महा. 5.65.5–20)

171. वाल्मीकि, रामायण, युद्धकाण्ड, 4.94.

172. महाभारत, वनपर्व 282.43, उद्योग पर्व, 11.12, भीष्मपर्व 9.11.

173. विष्णु पुराण, 2.3.3. तथा 12.; मार्कण्डेय पुराण, 57. 10–11.; श्रीमद्भागवत पुराण, 5.19.16.

174 कालिदास, रघुवंश, 4.52–53.

175. Sachau, E.C., op. cit., vol.1, p. 247, 257.

176. Fleet, J.S., Corpus inscription indicarum, Vol. 3, pp. 173f.

177 Sircar, D.C., Studies in the Geography of Ancient and Medieval india, pp. 32, 59, 60n.; Agarwal, V.S., 'Matsya Purana - A Study', Varanasi, 1963, p. 193.; Wilson, H.H., vishnu Purana", p. 141-142.; Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', pp. 283-284.; Law, B.C., Mountains of India, Calcutta, 1944, p. 1.

178. कालेनाऽनन्तरमसावेकः श्रीर्पतं गतः।
स्वामिनं कार्तिकेयं च द्वितीयस्तपसे गतः।। (यो. महा., निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्द्ध, सर्ग 182.8)

179. महाभारत, वनपर्व, 85.18–19.

180. Cappeller Carl, 'A Sanskrit English Diectionary', Varanasi, 1972, p. 561.

मल्लिकार्जुन का प्रसिद्ध मन्दिर स्थित है, जिसे द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक ज्योतिर्लिङ्ग का स्थान माना जाता है।[181] चौथी शताब्दी के मध्य में लिखे गये रुद्रपुर के एक अभिलेख की प्राप्ति इसी पर्वत के पास हुई। श्रीराम गायेल के अनुसार आन्ध्र प्रदेश में इक्ष्वाकुओं ने अपनी एक प्रतिष्ठा सम्भवतः तीसरी तथा चौथी शताब्दी में प्रतिस्थापित की सम्भवतः ये श्री–पर्वतीय लोग थे, जिनकी राजधानी श्री पर्वत के समीप नागार्जुनीकोंड में विजयपुरी के नाम से विख्यात थी। इसी पर्वत का उल्लेख पुराणों में भी आया है[182] जो यह स्पष्ट करता है कि दो सौ उनसठ ईसवी में इक्ष्वाकुओं ने यहाँ अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी।[183] बाणभट्ट ने भी इस पर्वत का उल्लेख किया है।[184] दिनेश चन्द्र सरकार के अनुसार चौदह ईसवी के एक अभिलेख में निरपेक्ष रूप से 'श्रीगि–नंदनः' शब्द श्री पर्वत का पर्याय है।[185] इसी प्रकार से बारह सौ इकसठ ईसवी के रुद्राम्बा के मलकापुरम् प्रस्तर लेख में स्पष्ट रूप से श्री शैल का उल्लेख प्राप्त होता है।[186] यही स्पष्ट उल्लेख विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय के पन्द्रह सौ अट्ठाईस ईसवी के अभिलेख में प्राप्त होता है।[187] वीरपुरुष दत्त के तृतीय शताब्दी के उत्तरार्ध के नागार्जुनी कोंड अभिलेख में श्री पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है।[188] इस क्रम में पाँचवी शताब्दी के शांति वर्मन् के तालगुंडा प्रस्तर लेख का भी उल्लेख किया जा सकता है।[189] इसका समीकरण आन्ध्र प्रदेश में नल्लमलूर (Nallamalur) पर्वत, जिसमें दशार्णक वन विद्यमान था तथा जिसकी श्रृंखला का विस्तार कृष्णा नदी तक फैला हुआ था, जहाँ पर प्रसिद्ध मल्लिकार्जुन का दृश्य विद्यमान है तथा कुछ के अनुसार इसका समीकरण नागार्जुनीकोंड पहाड़ियों के समीप करातोया (Caratoya) नदी के समीपस्थ क्षेत्रों से किया जाता है।[190]

इस प्रकार श्री पर्वत शब्द का प्रयोग हमें पाँचवीं शताब्दी तक अभिलेख में प्राप्त होता है और यदि इसी को एक आधार माना जाय तो योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को इसी शताब्दी में स्वीकार किया जा सकता है।

उदयगिरि :

पूर्व दिशा के उदयगिरि पर्वत का उल्लेख भी ग्रन्थकार दार्शनिक विचारधारा के प्रवाह में करता है।[191] इस पर्वत का उल्लेख महाभारत पुराण, चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग के विवरण तथा अरब यात्री अल्बरूनी के वृतान्तों में प्राप्त

---

181. Sewell, R., 'Archaeological Survey of South India', Vol.1, p.90.
182. अग्नि पुराण, 113.3–4., मार्कण्डेय पुराण, 57.15, कूर्म पुराण, 30.45–48, पद्म पुराण, 21.11–12.
183. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, 1982, पृ. 470
184. Bhatta, Bana, 'Harshacharita', English Translation by Cowell, E.N., and Thomas, F.W., london, 1897, p. 3n.
185. Rajahmindry copper-plate Inscriptions of Raghudeva, Viceroy of kapilesvara (1456 A.D.), No. 35, verse 33.; Cf. Sircar, D.C., 'Select Incription', Delhi, 1983, p. 209
186. Malkapuram Stone Pillar Inscription of the time of Rudramba, No. 15, Second Side, cerse, 85.
187. Kanchipuram Copper-plate Inscription of Krishnadevaraya, No. 16, First Plate, verse 15 and 23.
188. Nagarjunikondo Inscription of Virpurushadatta, No. 101, Line 2.
189. Talagunda Stone-pillar Inscription of the time of Santivarman, No. 69, verse 14.
190. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 336.; Wilson, H.H., Vishnu Purana', p. 146, n-3.; अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारत सावित्री, तीर्थयात्रा; Law, B.C., 'Holy Places of India' (Calcutta Geographical Society), No. 3, p.41
191. माल्यावान्नाम शैलोऽत्र शिविराञ्जन एव च।
    वृषध्वजपद्माद्यास्तथोदयकरो गिरिः।। (यो. महा. 3.36.25)
    शाकद्वीपोदयगिरितटे सप्तवर्षाणि सुप्तं,
    पूर्वेणाऽन्तर्विदलगहने यक्षसंमोहितेन।
    पाषाणाम्बुप्रभममुनैवाऽत्र पीत्वा दृषत्ता–
    मागत्याऽन्तः स्थिमथ समाः सप्त जात्येन भूमेः।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्द्ध, 124.17)

होता है।[192] रैप्सन महोदय के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के लगभग चार सौ दो ईसवी के उदयगिरि अभिलेख के अनुसार वह सम्पूर्ण पृथ्वी की विजय के पश्चात् अजमेर पहुंचा।[193] लगभग द्वितीय शताब्दी के आसपास खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख खारवेल की मुख्य रानी तथा वक्रदेव का मंचपुरी (Machapuri) गुहालेख, उदयगिरि के समीपस्थ भुवनेश्वर के पुरी जिले में उड़ीसा प्रान्त के अन्तर्गत प्राप्त हुए हैं।[194] वाल्मिकि द्वारा रामायण में कमलासिनी केसर पत्र युक्त कमल लिये हुए गजों से घिरी हुई देवी लक्ष्मी का सुन्दर अंकन किया गया है।[195] व्यास महोदय ने गज द्वारा स्नान कराई जाती हुई उस लक्ष्मी की तुलना बोध गया, अमरावती तथा उदयगिरि में प्राप्त प्रारम्भिक कलाकृतियों से करते हुए यह माना है कि यह कलात्मक आविर्भाव महर्षि वाल्मीकि के उक्त वर्णन के निःशेष मात्र हैं। इस पर्वत के विषय में विद्वानों द्वारा विभिन्न विचार व्यक्त किये गये हैं। लॉ महोदय के अनुसार उदयगिरि तथा खण्डगिरि नामक जुड़वां पर्वत की शाखाओं में जो बनावट है, उसमें एक भाग बलुए पत्थर की चट्टान का बना हुआ है, जो ग्रेनाइट पत्थर की पहाड़ियों के कटाव के आधार को ग्रहण करता हुआ औटगर (Autgar) और डैक्कूनल (Dekkunal) से दक्षिण की ओर खुर्द (Khurda) तक बढ़ते हुए चिल्का झील (Cilka-lake) को आलिंगित करके अपना फैलाव प्रदर्शित करता है। खण्डगिरि के उत्तर–पश्चिम खुर्द के उपभाग में, जो कि भुवनेश्वर के पुरी जिले के तीन मील वर्ग क्षेत्र में फैले हुए पहाड़ी क्षेत्र का प्राकृतिक विश्रृंखलन है, उसी में तीन श्रेणियाँ उदयगिरि, नीलगिरि तथा अपने वास्तविक नाम खण्डगिरि के नाम से जानी जाती हैं। इन सब में उदयगिरि की ऊंचाई एक सौ दस फीट है, जिसके निचले भाग पर एक छोटा वैष्णव आश्रम है। इसमें चौव्वालीस गुहाएं हैं जो दो वर्गों में विभक्त हैं, उसमें एक वर्ग छोटी गुहाओं का तथा दूसरा ऊंची एवं बड़ी गुहाओं का है। रानी–गुहा अथवा रानी–महल के अतिरिक्त इस पर्वत पर गणेश–गुहा, जयविजय–गुहा, मंचापुरी–गुहा, बाघ–गुहा (Tigar cave), सर्पगुहा (Snake cave), हाथी गुन्फा तथा अजंता गुम्फा भी स्थित है। वे पुनः मार्शल महोदय के उस मत को अभिव्यक्त करते हैं, जिसमें उन्होंने कहा है कि उन सभी गुहाओं में अपनी कलात्मकता की अभिव्यक्ति को दृष्टि में रखते हुए तथा बनावट एवं सुन्दर कटाव को देखते हुए हाथी गुम्फा प्राचीनतम है और इसीलिए इन सबकी तिथि अधिक से अधिक प्रथम शताब्दी के मध्यवर्ती काल में अनुमानित की जा सकती है।[196] अन्यत्र विचारों की श्रृंखला का दूसरा रूप दिखाते हुए वे कहते हैं कि एशिया की पर्वतमाला की चोटियों का पूर्वतम दिशा में स्थित भाग जो जयपुर परगने से तीन मील उत्तर की ओर गोपालपुर में पत्तमुंदई नहर (Patamundai Canal) पर स्थित है, जहाँ पर दो हाथों वाली बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्थापित है, जिस पर एक लेख का अंकन सातवीं–आठवीं शताब्दी की विशेषताएं लिये नेल्लोर (Nellore) जिले में स्थित है। यहीं पर भगवान् कृष्ण का एक मन्दिर है, जिसका उत्खन्न एक बहुए पत्थर की पहाड़ी पर हुआ।[197] पाटिल के अनुसार इस पर्वत की

---

192 महाभारत, द्रोणपर्व, 20.17; Cf. Pande, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharata', Varanasi, 1980, pp. 102 and 111 note- 183.; मत्स्य पुराण 122.8, 163.69; वायु पुराण, 49.78; विष्णु पुराण, 2.4.62–63; मार्कण्डेय पुराण, 58.11–13; Beal, S., op. cit., Vol. 2, pp. 205n, 237n,; Sachau, E.C., op. cit., Vol.2, p. 301.; cf. Cunningham, A.A., 'Ancient Geography of India', Gauhati, 1971, p. 512.

193. Rapson, E.J., Catalogue, p. 192, No. 907 'Inscription of the Silver Coins of Rudrasimha III (388A.D.) vide- Sircar, D.C., 'Select Inscription' Vol.1, p. 188.

194. Sircar, D.C., 'Select Inscriptions', Vol.1, pp. 220-222, 279 and 188.

195. नियुज्यमानाश्च गजासुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः।
बभूवदेवी च कृता सुहस्ता लक्ष्मीस्तथापद्मिनि पद्महस्ताः।। (वाल्मीकि, रामायण, सुन्दरकाण्ड, 8.14)

196. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', pp. 26, 164, 165, 196, 197, 331, 332.; Rapson, E.J., 'Cambridge History of India', Vol. 1, pp. 639-40.; Archeological Survey Report, Vol. 15, 1824.; Roy, S.N., 'Historical and Cultural Studies in the Puranas', Allahabad, 1978, pp. 137, 141.; Mahtab, Sri Harekrishna, 'The History of Orissa, Lucknow, 1949, pp. 13,20,21,22,35,50,52,53,64,86,88,90,155,167,170.

197. Law, B.C., 'Geographical Essays', No.10, Calcutta Geographical Society.

पहाड़ी की लम्बाई लगभग डेढ़ वर्ग मील है। इसके सामान्य फैलाव का निर्देशन दक्षिण–पश्चिम से लेकर उत्तर पूर्व तक है। वह विदिशा गिरि, जहाँ पर अशोक के पुत्र महेन्द्र श्रीलंका जाते समय अपनी मां के साथ ठहरे थे, वहां पर गुहा संख्या पाँच अपने शिल्प स्थापत्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वहाँ वराह का सुन्दर अंकन है तथा गुहा संख्या छह में दो द्वारपालों का अंकन, विष्णु, महिषमर्दिनी तथा गणेश के चित्र, कला का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत हैं। इन्हीं गुहाओं में प्राप्त चार अभिलेख महत्त्वपूर्ण हैं और यही स्थान उदयगिरि पर्वत कहलाते हैं।[198] पार्जिटर तथा सरकार इस प्रकार के अनेक उदयगिरि पर्वतों के अस्तित्व की सम्भावना व्यक्त करते हुए इसे पौराणिक कल्पना मानते हैं।[199]

इस प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण में मात्र रश्मियों से युक्त उदयगिरि पर्वत का उल्लेख उक्त विवरण के तादात्म्य में कोई भी निश्चित निष्कर्ष अनुसंधानात्मक विषय प्रस्तुत नहीं करता है, यद्यपि इतना तो स्पष्ट ही है कि इस पर्वत का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, भले ही वह पुराणों की कपोल–कल्पना से अभिमंडित ही क्यों न हो।

उपगिरि :

दक्षिण के जनपदों की सूची में ग्रन्थकार उपगिरि का भी उल्लेख करता है।[200] प्राचीन साहित्य में उदयगिरि नाम के एक पर्वत का ही वर्णन प्राप्त होता है।[201] हिमालय के उप–क्षेत्र में इसका समीकरण किया जाता है।[202], परन्तु इस पर्वत का उल्लेख ऐसा कोई ऐसा दिशा–निर्देशन नहीं करता, जिसके बल पर अनुसंधानात्मक विषय में हम कोई तथ्य प्रस्तुत कर सकें।

वसुमान् :

ग्रन्थवार ने जहाँ–जहाँ वसुमान् पर्वत का उल्लेख किया है, वहाँ उसे हिमालय तथा क्रौञ्च आदि के साथ वर्णित किया है।[203] हमें इस नाम के पर्वत का अन्यंत्र उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ, अतः अनुसंधानात्मक विषय में कुछ भी उल्लेख संभव नहीं हो सकता है, परन्तु यदि वह हिमालय का वसुम्त पर्वत है, जिसका वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है[204], तब यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि ग्रन्थ का रचनाकाल पाँचवीं शताब्दी अर्थात् पुराणों के जनमानस में प्रचलन के काल से होना चाहिए।[205]

ऋष्यमूक :

आलोच्य ग्रन्थ में दक्षिण के जनपदों के सन्दर्भ में इस पर्वत का उल्लेख हुआ है।[206] रामायण[207],

---

198. Patil, D.R.,'The mountains of Udaigiri Hills Published in Vikram Volume, edited by Mookerji, R.K., 1948, pp. 377ff.; Laurd Gvaliyer State Gazzeteer, Vol. 1, p. 296.
199. Pargiter, F.E., Markandeya Purana, p. 357n.; Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 9, 12,13 and 184.
200 दशपूरकथा चक्रारेषिकातुरकच्छपाः।
वनवासोपगिरयस्ते भद्रगिरयस्तथा।। (यो. महा., 3.36.32)
201. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 5.4.112.; महाभारत, सभापर्व, 27.3.
202. Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', pp. 325n & 328n.; Agarwal, V.S., 'India as Know to Panini', Lucknow, 1953, p. 39.; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 98.
203. अथोतरस्यां हिमवान्क्रौञ्चोऽथ मधुमान्गिरिः।।
कैलासो वसुमान्मेरुस्तत्पादेषु जना उभे।
मद्रावारेवयौधेयस मालवाः शूरसेनिकाः।। (यो. महा., 3.36.55)
मानवा नांगना हेमतालाः स्वस्वमुखास्तथा।
हिमवान्वसुमान्क्रौञ्चकैलासावित्यगास्तथा।। (वहीं, 62)
204. Pargiter, F.E., Markandeya Purana, p. 376n.
205. शर्मा, राणाप्रसाद, 'पौराणिक कोश', पृ. 459.
206. अथ लीलापतेरस्य दक्षिणस्यामिमे नृपाः।
....
नागरा दण्डकाश्चैव गणराष्ट्रनृराष्ट्रकाः।
साहा शैवार्ष्यमूकाश्च कर्कोटा वनबिम्बिलाः।। (यो. महा. 3.36.30–33)
207. वाल्मीकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 1.128.5.1

महाभारत[208], पुराण[209], उत्तररामचरित[210] तथा अरबयात्री अल्बरूनी के बृहत्संहिता पर आधारित वर्णन[211] आदि के आधार पर विदित होता है कि तुंगभद्रा नदी के किनारे जहाँ से वह पश्चिम की ओर बहती हुई घुमाव लेती है, अनागंडी (Naagandi) पहाड़ी से आठ मील दूर और दक्षिण के विजयनगर के ध्वंसावशेषों तथा विरूपाक्ष मंदिर से थोड़ी दूरी पर जो पर्वत श्रृंखला है, उसे ही ऋष्यमूक कहा जाता था, जहाँ पर तुंगभद्रा नदी से घिरा हुआ चक्रतीर्थ है और उत्तर में भगवान् श्रीराम का मंदिर है, इसी के समीप राम और सुग्रीव की मूर्तियाँ हैं जो किष्किंधा नगरी से लगभग दो मील की दूरी पर है अर्थात् अहमदनगर से नलदुर्ग और कल्याणी के पार की पर्वतमाला, जो मंजीर (Manjira) और भीम (Bhima) नदियों को विभाजित करती है, वही प्राचीन काल का ऋष्यमूक पर्वत है।[212]

परन्तु आलोच्य ग्रन्थ में आये ऋष्यमूक पर्वत के इस वर्णन के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय पर कोई प्रकाश नहीं डाला जा सकता है, क्योंकि जहाँ प्रश्नगत ग्रन्थ इस पर्वत का स्पष्ट दिशा निर्देशन करता है, वहीं अन्य किसी ग्रन्थ से इस सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

विन्ध्य :

ग्रन्थ में भुशुण्ड का भ्रमण स्थान, अलम्बुसा का स्थान, मदमस्त गजों का भ्रमणस्थल, महाभयंकर वनों से आच्छादित, चाण्डालों तथा ऊँटों का स्थान उस विन्ध्य पर्वत का हिमालय, मलयाचल, सह्याद्रि क्रौञ्चाद्रि, महेन्द्र, मधु, मन्दर, दर्द्दर आदि पर्वतों के साथ उल्लेख हुआ है[213], जिसे विभिन्न प्राचीन कथानकों से सम्बद्ध कर निरेपक्ष रूप

---

208. महाभारत, वनपर्व, 25.9, 147.30.

209. भागवत पुराण, 5.19.16; मार्कण्डेय पुराण, 47.17.58.24.

210. Bhavbhuti, Uttar Ramcharita, English Translation by Ray, S.; Calcutta, 1934, p. 121.

211. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 301.

212. Dey, N.L., op. cit., p. 169. ; Journal of Royal Asiatic Society, April, 1894, p. 253.; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, ऐतिहासिक स्थानावली, पृ. 108–109; Wilson, H.H., Vishnu Purana, p. 146n3.

213. एषा हि विषमा दुःखभागिनां गहना गुहा।
घनमोहगजेन्द्राणां ि वन्ध्यशैलमहातटी।। (यो. महा. 1.13.12)
संस्तीर्णगहना भीमा घनजालरजो मयी।
सान्धकारोग्रनीहारा तृष्णा विन्ध्य महातटी।। (वही, 1.17.51)
यथा विन्ध्यवनाभोगे प्रस्फुरन्ति करेणवः।
तथा तस्मिन्पराभोगे ब्रह्माण्डत्रसरेणवः।। (वही, 3.30.15)
विन्ध्याटवीव देहेन शुष्का कार्श्यमुपागता।
महाबलाग्निनयना रोदोरन्ध्रार्धपूरणी। (वही, 3.68.3)
भुक्त्वा पुलिन्दतां विन्ध्ये कृत्वा वंगेषु वृक्षताम्।
उष्ट्रत्वमपि विन्ध्याद्रौ जातोऽहमिह कानने।। (वही, 5.20.25)
तद्भुक्त्वा चरणौ देव्याः पितुश्चैवाऽभिवाद्य च।
विन्ध्यकच्छाद्वयं तस्मात्स्थानादालम्बुसात्प्लुताः।। (वही, निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्ध, 19.43)
एते हिमाद्रिमलयाचलाविन्ध्य सह्य–
क्रौञ्चा महेन्द्रमधुमन्दरदर्द्दराद्याः।
दूरस्थिता दृशि सित्ताभ्रपटा बहन्ति
संशुष्कपर्णलवलाञ्छितलोष्टलीलाम्।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 115.2)
रम्याश्चन्दनवीथयो हि मलये विन्ध्यं मदान्धा गजाः, कैलासे नृपपादजातिकनकं चन्द्रं महेन्द्राचले।
दिव्यश्चौषधयस्तुषारशिखरे सर्वत्र रत्नानि वै सन्त्यन्धाखुवदेष जीर्णसदने व्यर्थं जनो जीर्यते।। (यो. महा., 115.23)
कदाचिदहमेकान्ते विन्ध्यकच्छकृतालयः।
कदाचित् सह्यनिलयः कदाचिद्दर्द्दरालयः।। (वही, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध, 22.39)

से कौषीतकि उपनिषद् एवं रामायण, महाभारत, पुराण, योगिनीतंत्र, रघुवंशम् तथा राजतरंगिणी में इसको विशेष सन्दर्भ में उल्लिखित किया गया है।[214] ऐसा सम्भव है कि आर्यों की सभ्यता विन्ध्य क्षेत्र तक नहीं फैल पायी थी, जिसके कारण प्रारम्भिक साहित्य में विन्ध्य पर्वत का उल्लेख नहीं मिलता है।[215] जब यूनानी सिकंदर भारत में घुसा था, उस समय विन्ध्य पर्वत के दोनों छोरों पर जनपद बसे हुए थे।[216] वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी के नासिक गुहालेख (लगभग 149 ईसवी)[217], तालगुंडा प्रस्तर लेख (लगभग 455–70 ईसवी)[218], पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल प्रस्तर लेख (634 ईसवी)[219], जयवर्द्धन द्वितीय के राघोली ताम्रपत्र लेख (लगभग आठवीं शताब्दी ईसवी)[220], गोविन्द तृतीय के पाटन नेसारिका (Nesarika) ताम्रपत्र लेख (805 ईसवी)[221], देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र लेख (लगभग 812–50 ईसवी)[222], भोज प्रथम के ग्वालियर प्रस्तर लेख (लगभग 836–85 ईसवी)[223], नारायणपाल के काल के बादल प्रस्तर लेख (855–910 ईसवी)[224] अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र लेख (871 ईसवी)[225], श्रीचन्द के पश्चिमी भाग ताम्रपत्र लेख (925–75 ईसवी)[226], युवराज द्वितीय (कलचुरि) के बिल्हरी प्रस्तर लेख (लगभग 980–95)[227] विक्रमादित्य षष्ठ के नीलगुंडा ताम्रपत्र लेख (1087 या 1123 ईसवी)[228] नरवर्मन् के नागपुर संग्रहालय के प्रस्तर लेख (1104 ईसवी)[229] विशाल या विग्रह चतुर्थ के दिल्ली शिवालिक प्रस्तर लेख (1163 ईसवी)[230] आदि में विन्ध्य पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे–धीरे आर्यों ने अपनी संस्कृति और सभ्यता का प्रसार मध्य देश तथा विन्ध्य क्षेत्र तक कर लिया था और कालप्रवाह में जहाँ बड़े–बड़े राज्य उदित एवं अस्त हुए, जिन्होंने उत्तर तथा दक्षिण में अपनी सम्प्रभुता का प्रसार शक्ति–प्राधान्य

---

214. Majumdar and Pushalker, 'The history and Culture of indian People', Bombay, 1988, p. 255.; वाल्मीकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 60.4–7., महाभारत, आदिपर्व, 208.7–10, सभापर्व 10.31, विराटपर्व 6.17.; द्रोणपर्व, 202.71, कर्णपर्व 34.22, शल्यपर्व, 45.50, 45.50, अनुशासनपर्व 25.49, भीष्मपर्व 9.11, वनपर्व 104.1.3.6.9.11.14.15.; विष्णु पुराण, 7.10.10, भविष्य पुराण, 9. भागवत पुराण, 5.19.16.; योगिनीतंत्र, बम्बई, संवत् 1949, 2.9.; कालिदास, रघुवंशम्, 16.32; Stein, m.A., Kalhana's Rajatarangini, Delhi, 1961, Vol.1, Book 3, Line 394, Book 4, Lines 153, 161, Book 5, Line 152.

215. Majumdar and Pushalaker, op. cit., Vol. 1, p. 188.

216. Schoff, Wilfred H., 'The Periplus of the Erythraen Sea', Delhi. 1974, p. 188.

217. Nasik Cave Inscription of Vasisthiputra Pulumavi, No. 86, Line 2.

218. Talgunda Stone Pillar Inscription of the time of Shantiverman, No. 69, Line 2-3.

219. Aihol Stone Inscription of Pulkeshin II, No. 1, verse 24.

220. Ragholi Copper plate inscription of Jaiverdhan II, No. 26, verse 16.

221. Patan Nesarik Copper Plate Inscription of Govind III, No.4 verse - 17..

222. Nalanda Copper Plate Inscription of Devpal, No. 16, verse 13.

223. Gwaliyer Stone Inscription of Bhoj 1, No. 10, verse 16.

224. Badal Stone Pillar Inscription of the time of Narayanpal, No. 18, verse 5.

225. Sanjan Copper Plate inscription of Amoghvarsh I, No. 5, verse 25.

226. Pashchimbhag Copper Plate inscription of Shrichand, No. 19, verse 8.

227. Belhari Stone Inscription of Yuvaraj II, No. 26, verse 16.

228. Nilgunda Copper Plate Inscription of Vikramaditya VI, No. 10, verse 52.

229. Nagpur Musuem Stone inscription Of Narverman, No. 35, verse 39,48.

230. Delhi Shivalik Stone Pillar Inscription of Vishal (Vigrah IV), No. 37, verse 4.

से युक्त हो युद्ध करते हुए किया। परिणामस्वरूप पश्चात् वैदिक साहित्य और अभिलेखों में विन्ध्य पर्वत का उल्लेख हुआ। मौर्यों का विशाल साम्राज्य लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में बिखर गया। द्रविड़ों तथा आंध्रों, जिनका राज्य गोदावरी तथा कृष्ण की घाटी में फैला हुआ था एवं तेलगु लोगों, जिनके राज्य गोदावरी तथा कृष्णा की घाटी में फैला हुआ था एवं तेलगू लोगों, जिनके राज्य दक्षिण में निज़ाम के ब्रिटिशकालीन राज्य तक फैले, तमिलभाषी चोल, पाण्ड्य और चेरों ने, जिन्होंने अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति को विन्ध्य तक विस्तीर्ण किया, उन्हें मौर्यो ने अपने पीछे सशक्त उत्तराधिकारी राज्यों के रूप में छोड़ा, किन्तु विन्ध्य के उत्तर में अराजक स्थिति उत्पन्न हो गई। परवर्ती काल में यह विन्ध्य का क्षेत्र मध्यकाल तक उत्तर एवं दक्षिण भारतीयों की युद्ध–लिप्सा का केन्द्र बना रहा। तदनन्तर हिन्दुओं तथा मुसलमानों और अंग्रेजों तथा भारतीयों के शोंणित को अपने में समेटे यह इतिहास की गाथा दोहराता हुआ[231] आज भी भारत के मैदानी भाग के दक्षिण में एक बड़े पठार के रूप में सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में फैला हुआ अपने दक्षिण के सीमावर्ती छोर पर समुद्र के तटों को छोड़ता हुआ दो पर्वत श्रेणियों के भागों में विभक्त हुआ, जो अपनी चौड़ाई में आर–पार पूर्व से पश्चिम तक विस्तीर्ण है, विन्ध्य नाम से उत्तर में तथा थोड़ा दक्षिण में सतपुड़ा नाम से विख्यात, एक उस संकरी घाटी से पृथक किए हुए जिससे नर्मदा नदी बहती है, मध्य के मुख्य मैदान पर उत्तर को दक्षिण से पृथक् करता हुआ, नर्मदा की घाटी पर अचानक से उठी हुई एक ऊँची चट्टानी दीवार और दक्षिण से देखी जा सकने वाली एक सतत पर्वत–श्रृंखला छोटे–छोटे अनतराल स्पष्ट करती हुई बिना किसी खड़ी ढलान अथवा सुस्पष्ट या अंकित अन्तरालों से मालवा का पठार बनाती हुई, राजपूताना की घाटी तथा बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड की उच्चभूमि और मध्य क्षेत्र के सघन वनों के लिए जाना जाने वाला पर्वत, जिसे प्रथम शताब्दी का यूनानी भूगोलवेत्ता टॉलमी क्विनडोन (Quindon) नाम से जानता है, भूकम्प के कारण धरती की परतों में हुए विश्रृंखलन तथा उठान के कारण ही बना हुआ नहीं जिसका कटान आरम्भिक भूगर्भ विज्ञान के समय में हुआ हो, अपितु अरावली पहाडियों के तलछट से बना हुआ तथा मुख्य चोटियों की बनावट का निर्माण बलुए पत्थर और चूना–कंकड़ के पत्थरों से सम्पन्न तथा अरावली पहाड़ियों में भूतल पर अधिक दबाव पाकर दर्रे और मोड़ से युक्त सागौन वृक्षों के लिए प्रसिद्ध यह विन्ध्य पर्वत उत्तर और दक्षिण भारत की प्राकृतिक सीमा के रूप में खड़ा है।[232]

यद्यपि प्राचीन साहित्यिक परम्परा को प्रश्नगत ग्रन्थ के इस पर्वत के वर्णन में उल्लंघित नहीं किया है तथापि उक्त आधार पर अनुसंधनात्मक विषय में कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

(आ) नदियों के विवरण

योगवासिष्ठ महारामायण में मन्दाकिनी– कालिन्दी– सरस्वती– शतद्रू– चन्द्रभागा तथा

---

231. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.1, p.318.; Schoff Wilfred, H., op. cit., pp. 188-187.; Smith, V.A., the Oxford History of India, New Delhi, 1988, pp. 25,37,42,250,410.

232. Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', pp. 17-20 and 36.; अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत सावित्री, 2, पृ. 117. ; Agarwala, V.S., Matsya Purana - A Study, p. 194. ; Pargiter, F.E., Markandeya Purana, p. 57. Journal of Royal Asiatic Society, 1894, p. 258. ; Wilson, H.H., Vishnu Purana, pp. 141-142.;

इरावती[233] वेणी– कृष्णावेणी–निर्विन्ध्या– सरयू– चर्मण्वती– वितस्ता– विपाशा– बाहुदा[234]– मानस[235]–, उत्तर मानस[236], इन्द्रद्युम्न[237], गंगा[238], जम्बू[239] तथा कावेरी[240] आदि नदियों का उल्लेख प्राप्त होता हे। वेदों के काल से ही आर्यजनों के लिए नदी एवं सरोवर श्रद्धा, अर्चना और उपासन के केन्द्र रहें है। इसीलिए न केवल वेद अपितु लगभग सम्पूर्ण भारतीय साहित्य नदियों की सुषमा के सुरुचिपूर्ण वर्णन, आस्था तथा स्तुतियों से भरा पड़ा है। सुन्दर आलंकारिक भाषा का प्रयोग करते हुए भाषा पर अपना प्रगाढ़ आधिपत्य दर्शाते हुए प्रश्नगत ग्रंथ के रचयिता ने सुषमामयी सरिताओं और सरोवरों का उल्लेख किया है, जिसका वर्णन ग्रन्थ के आधार पर हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। यहाँ उन्हीं सरिताओं के समीकरण तथा अन्य ग्रन्थों में सन्दर्भ–प्राप्ति पर प्रकाश डाला गया है।

मन्दाकिनी :

मन्दाकिनी का उल्लेख अंगुत्तरनिकाय[241], रामायण[242], महाभारत[243], पुराण[244], कालिदास के ग्रन्थों[245] तथा

233. नदीतीराणि पुण्यानि वनान्यायतनानि च।
जंगलानि जनांतेषु तटान्यब्धिमहीभृताम्।।
मंदाकिनीमिंदुनिमां कालिंदीं चोत्पलामलाम्।
सरस्वतीं शतद्रुं च चंद्रभागामिरावतीम्।।
(यो. महा., 1.3.31.32)

234. वेणीं च कृष्णावेणीं च निर्विन्ध्यां सरयूं तथा।
चर्मण्वतीं वितस्तां च विपाशां बाहुदामपि।। (वही, 1.3.33)

235. मानसं च क्रमसरस्तथैवोत्तरमानसम्।
वडवावदनं चैव तीर्थवृदं स सादरम्।। (वही, 1.3.36)

236. यो. महा., 1.3.37

237. अग्नितीर्थं महातीर्थमिंद्रद्युम्नसरस्तथा।
सरांसि सरितश्चैव तथा नदहदावलीम्।। (वही, 1.3.37)

238. जराजहनुसुतोद्युक्ता मूलान्यस्य निकृन्तति।
शरीरतीरवृक्षस्य चलत्यरयुषि सत्वरम्।। (वही, 1.2.24)
आसीद्विपो दशार्णेषु कोसलेषु महीपतिः।
धीवरोऽथ महाटव्यां हंसस्त्रिपथगातटे।। (वही, 4.11.58)
भीमभासदृढक्षुण्णा जाता गीर्वाणवाहिनी।
परिद्रद्राव वेगेन गङ्गेन हिमवच्च्युता।। (वही, 4.34.19)
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
भ्रात्रोस्त्रिपथगातीरे संवादं मुनिपुत्रयोः।। (वही, 5.19.1)
पूर्वो मकरमाक्रम्य यदा गङ्गां निकृत्तवान्।
गङ्गया स तदानीय कान्यकुब्जे समुज्झितः।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 123.6)

239. एते जम्बूनदीतटा रविकरैराभान्ति हेमाखिल–
ग्रामारण्यपुरस्थलीगिरितरुस्थाण्वग्रहारोच्चयाः।
ज्वालालीवलिताम्बरान्तरलिहो मुञ्चन्ति भासोऽभितः।
सर्वां भूमिप भूमिप भूरिहैवभमरासेव्याऽस्ति नो मानुषैः।। (वही, 115.7)

240. मीनावलीसरभसप्लुतिघट्टिताम्बु–
वीचीविलोलविरुवत्कुररीकराला।
कावेर्यहो कुसुमशुक्लपटाऽभाति
निः शंकरंकुकुलसंकुलकूलकच्छा।। (वही, 116.35)

241. Anguttar Nikaya, London, 1932,36, Vol.4, p. 101.

242. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 93.8.95.1–14.

243. महाभारत, वनपर्व 85.58–59, भीष्मपर्व, 9.34, अनुशासनपर्व, 19.32.25.29.

244. भागवत पुराण, 5.19.18, 10.70.44.; मत्स्य पुराण 121.4.22.23.114.25, ब्रह्माण्ड पुराण, 2.18.3.6.30.3.66.6.2.16.30; वायु पुराण, 45.99, 41.14–18.9.16.47.3.105.10; मार्कण्डेय पुराण, 57.21

245. कालिदास, रघुवंशम्, 13.48, कालिदास, कुमारसम्भवम्, 1.29; कालिदास, विक्रमोर्वशीयम्, मुम्बई, 1976, उत्तरार्द्ध, अंक 4. कालिदास, मेघदूतम्, मुम्बई, 1976, उत्तरार्द्ध 4. कालिदास, मालविकाग्निमित्रम्, मुम्बई, 1976, अंक 1.

अरबयात्री अल्बरूनी के उल्लेखों[246] में प्राप्त होता है। मन्द गति तथा मन्द स्रोतों से संयुक्त होने के ही कारण गंगा का नाम मंदाकिनी पड़ा।[247] हिमालय की घाटी में बहने वाली गंगा की एक शाखा वास्तव में मंदाकिनी कही जाती है। परवर्ती समय में हिमालय के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में एक लक्ष्य के रूप में इसका अभिवर्द्धन दृष्टिगोचर होता है। इसका यह नाम स्वर्गिक नदी का द्योतन कराता है। वास्तव में यह एक नदी का, जिसे कालीगंगा, पश्चिमी काली अथवा मन्दाग्नि के नाम से जाना जाता है, उसी का भान कराती है। यह गढ़वाल के केदार पर्वत से उदित होती है। यह अलकनंदा नदी की एक शाखा तथा गंगा की एक उपशाखा है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में यह पयोषिनी की एक शाखा है, जो चित्रकूट पर्वत से होकर गुजरती है। केदार पर्वत से सूर्यरश्मि की भाँति उदित हो यह कालीमठ, चन्द्रपुरी, अगत्स्य मुनि आदि स्थलों से होती हुई रुद्रप्रयाग में गंगा की मुख्यधारा से मिल जाती है और तब यह श्याम गंगा अथवा अलकनंदा कहलाती है।[248] इसी नदी के किनारे नौ सौ ईसवी के एक सामन्त जयसिंह द्वारा दानपत्र जारी किया गया था।[249] तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में रणथम्बौर के राणा हम्मीर का बलवन प्रस्तर लेख यहीं प्रसारित हुआ था।[250]

कालिन्दी :

ऋग्वेद[251], अथर्ववेद[252], ब्राह्मणग्रन्थों[253], श्रौतसूत्रों[254], पालिग्रन्थों[255] रामायण[256], महाभारत[257], पुराणों[258], रघुवंश[259] तथा योगिनीतंत्र[260] आदि ग्रन्थों में कालिन्दी नदी का उल्लेख प्राप्त होता है।[261] मदनपाल तथा राद्र के सेनों के मध्य हुए युद्ध के उल्लेख में पुनः कालिंदी नदी का संदर्भ प्राप्त होता है।[262] धंग चन्देल का साम्राज्य भी कालिंदी नदी के तटवर्ती क्षेत्र को चुम्बित करता था और इसी बात की पुष्टि उसके खजुराहों प्रस्तर लेख (954 ईसवी) होती है।[263] कम्बुज के राजेन्द्र वर्मन् की पुत्री राजलक्ष्मी के पति दिवाकर भट्ट उस कालिन्दी नदी के निकट रहने वाले थे, जो भगवान्

---

246. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 257, Vol. 2, P. 142.
247. William, M.M., op. cit., p. 788.
248. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 389. Dey, N.L., op. cit., pp. 124,246.; Pande, S.N., op. cit., pp. 26,47,56,97.; Suryavanshi, B.S., Geography of the Mahabharat, New Delhi, 1986, p. 131.
249. Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol.2, p. 417.
250. Ray, H.C., "The Dynastic History of Northern india", New Delhi, 1973, Vol. 2, p.1908.
251. Griffith, R.T.H., Rigveda, Benares, 1896-97, 5.52, 8.85.
252. अथर्ववेद, (Oxford, 1897), 4.9–10
253. Haug, M. aitreya Brahman, Delhi, 1977, 8.14.4.; शतपथ ब्राह्मण, (London, 1855), 13.4.5.11. Caland, W., Panchvimsha Brahmana, Calcutta, 1931, 9.4.11,25.10.24, 13.4.
254. शांखायन श्रौतसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, लाट्यायन श्रौतसूत्र तथा आश्वलायन श्रौतसूत्र (vide details contained in India of Vaidik Kalpsutras, by Gopal, Ram, Delhi. 1959, pp. 97, 100 and 263.
255. Mahavastu, Paris, 1882-97] p.167.; Mahavamsa, London, 1912, p. 160.; Anguttarnilaya, 4,p.101.; Dighanikaya, London, 1886, 2, p. 135.; Samyuttanilaya, London, 1917-30, 2.p. 135 and 5.p. 401, 460-61.
256. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 55.4–5, किष्किंधाकाण्ड, 40.21
257. महाभारत, सभापर्व, 9.18, भीष्मपर्व 9.34.36
258. वायु पुराण, 44.21. 46.234, विष्णु पुराण, 5.7.2, 18.34.6.8.36.कालिका पुराण 15.8
259. कालिदास, रघुवंशम्, 6.48
260. योगिनीतंत्र, बम्बई, संवत् 1949. 2.5, 139–40
261. Journal of Royal Asiatic Society, 1883, p. 361.
262. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol 5, pp. 32-33.
263. Khajuraho Stone Inscription of Dhanga of the time of vinayakapala, plate 18, No. 14, verse 39, vide cf. Sircar, D.C., Select Inscription, vol.2, p.259.
264. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.4, p.438.

कृष्ण की बाल्यकालीन क्रीडास्थली थी।[264] सात सौ उन्नासी से सात सौ चौरान्बे ईसवी में राष्ट्रकूटों ने अपने साम्राज्य का विस्तार कालिन्दी के तट तक किया तथा चन्द्रदेव गहडवाल एवं मदनपाल के साथ हुए उनके युद्ध का जो उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होता है उसमें कालिन्दी के श्यामवर्णीय जल का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है।[265] यह नदी बन्दरपुंछ श्रेणी से उदित हो गंगा का आलिंगन पवित्र प्रयाग में करती हुई बहती है। इसके तटवर्ती क्षेत्रों के समीप विविध पवित्र स्थल हैं। बन्दरपुंछ श्रेणी, जहाँ से यह नदी उद्भूत होती है, उसे कालिन्दी गिरि भी कहते हैं और इसी कारण इसका नाम कालिन्दी पड़ा।[266]

सरस्वती :

ऋग्वेद[267] से लेकर रामायण[268], महाभारत[269] तथा पुराणों[270] आदि में वर्णित[271], विभिन्न सरोवरों से सम्मिश्रित सरस्वती नदी यद्यपि आज अपने अस्तित्व में नहीं है, तथापि यह माना जाता है कि यह एक शाखा के रूप में प्रयाग के त्रिवेणी संगम पर मध्यकाल तक विद्यमान थी, जिसका जल रक्तवर्णी था और जो मूल रूप से सिन्धु नदी के समीप अथवा उसी से समीकृत की गई है, जिसके तटवर्ती क्षेत्र में ऋग्वैदिक सभ्यता पुष्पित एवं पल्लवित मानी जाती है, किन्तु विभिन्न सूचनाओं के आधार पर डे तथा रायचौधरी ने इस नदी का समीकरण गुजरात, कुरुक्षेत्र, पंजाब तथा अफगानिस्तान में किया है तथा उन्होंने इसके प्राचीनतम उल्लेख के रूप में जिन्दावेस्ता और बेहिस्तून अभिलेख को ऋग्वेद के साथ सन्दर्भित करते हुए किया है।[272] ऑरेल स्टीन ने राजस्थान से प्राप्त कुछ पुरातात्त्विक अवशेषों की प्राप्ति के आधार पर इस नदी का समीकरण हकरा (Hakra) में माना है।[273]

ऋग्वेद काल में सौ धाराओं वाली शुतुद्रि[274] तथा रामायण[275], महाभारत[276], पुराण[277], एवं चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग के विवरणों[278] में प्राप्त आधुनिक सतलज नदी का उल्लेख इसकी प्राचीन महिमा, गरिमा तथा इसके द्वारा सरस्वती नदी

---

265. Indian Antiquary,Vol. 12, pp. 159-163.; Fleet, J.F., Journal of the Department of Letters, Vol. 10, p.35.; Fleet, J.F., Epigraphia Indica, Vol. 18, p. 239 n-4 and verse 40, p. 244-252, Vol. 9, p. 324-327, verse 14.
266. Law, B.C., Historical Geography of Ancient and Medieval India, pp. 135-136; Pande, S.N., op. cit., p.54.; Dey, N.L., op. cit., p. 215.
267. ऋग्वेद, 10.75.5,7.36.6.
268. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड 71.5
269. महाभारत, शल्यपर्व, अध्याय 35–54, भीष्मपर्व 9.14
270. भागवत पुराण, 5.19.18, स्कन्द पुराण, शिवपुराण, विस्तार के लिए देखें– शर्मा, राणा प्रसाद, पौराणिक कोश, वाराणसी, 1986 पृ. 513
271. कालिदास, मेघदूतम्, मुम्बई, 1976, पूर्वमेघ, 51.; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 939–941.
272. Dey, N.L., op. cit., pp. 180-181; Raychaudhari, H.C., 'Studies in Indian Antiquities', Calcutta, 1932, pp. 47, 50,52,57,101.
273. Majumdar and Pusalker, op. cit., p. 75.
274. ऋग्वेद, 10.75.5, 3.33.
275. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड, 71.2.
276. महाभारत, भीष्मपर्व, 9.15.
277. विष्णु पुराण, 2.3.10; भागवत पुराण, 5.19.8.
278. Beal, S., op. cit., Vol. 1, 167n., 173n., 178n.; Watters, Thomas, 'On Yuan Chwang's Travels in India', Vol.1, p. 300.
279. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 887–888.; Dey, N.L., op. cit., p. 182; Law, B.C., "Rivers of india", Calcutta, 1944, p. 114.

का आलिंगन इसकी विशेष महत्ता प्रदर्शित करता है।[279]

ऋग्वेद, महाभारत, पुराण, मिलिन्द–पञ्ओं, टॉलमी, स्ट्रेबो, प्लिनी, एरियन, युवान–च्वांग तथा अरबयात्री अल्बरूनी आदि सभी के वर्णन के आधार पर किश्तवर (Kishtwar) स्रोत, जो जम्मू से गुजरता है, वितस्ता का दोआब बनाते हुए सिंधु के गंगा से सम्बद्ध होने के स्थान तक उसके प्रस्थान और शिवालिक पहाड़ियों के प्रस्थान, शिवालिक पहाड़ियों के उठान की ओर प्रवाहित रूप में संकेत करते हुए बरलाचा दर्रे के दक्षिण पूर्वी तथा उत्तर–पश्चिमी खण्ड जहाँ पर मिलते हैं, जो क्षेत्र पचहत्तर हजार फीट समुद्र से ऊपर है, उससे चन्द्रभागा नदी और उसका प्रवाहपूर्ण क्षेत्र आधुनिक काल में भी समीकृत किया गया है।[280]

इरावती :

इरावती नदी का नाम 'इरा' शब्द से उद्‌भूत हुआ माना जाता है।[281] यूनानियों ने इसको ह्यारोटिस (Hyarotis), आद्रिस (Adris) या रेओडिस (Rhouadis) नाम से सम्बोधित किया है।[282] अश्वघोष के बुद्धचरित में इसे कुकुथ, अथवा कुकु तथा हिरण्यवती नाम से सम्बोधित किया गया है।[283] यह वाटधान तथा शाकल देशों से होकर बहती हुई बतायी गयी है। यह बंगहाल से उद्‌भूत होती हुई कश्मीर के चंपनगर के दक्षिण–पश्चिमी मैदानी भाग को चुम्बित करती है, जबकि इसके पूर्व पीरपंजल के दक्षिणी ढलान तथा धवलधर के उत्तरी ढलान से होती हुई छम्ब के मध्य एवं पार से होकर पुनः दक्षिण–पश्चिमी दिशा में बहती हुई लाहौर पार करके चिनाब और वितस्ता के संगम से मिल जाती है।[284]

वेणी :

वेणी का उल्लेख पुराणों में मिलता है।[285] इसका समीकरण महाराष्ट्र की एक नदी से किया गया है। इसे बेन्वा (Benva) भी माना गया है और कृष्ण तथा वेणी के संगम पर माहुली नामक एक पुण्यतीर्थ बसा हुआ है।[286] दस सौ बयालीस ईसवी के कल्चुरि कर्ण के अभिलेख में उसके वेणी में स्नान करने की बात कही गयी है।[287]

कृष्णा :

कृष्णा महाबलेश्वर (महाराष्ट्र) की पहाड़ियों से उद्‌भूत दक्षिण भारत की एक प्रसिद्ध नदी है। भीमा और तुंगभद्रा इसकी सहायक नदियाँ हैं। यह बंगाल की खाड़ी में मसुलीपटम् के निकट गिरती है। कृष्णा और वेणी के संगम पर माहुली नामक प्राचीन तीर्थ है। इसका उल्लेख पुराणों में प्राप्त होता है।[288] श्रीमद्‌भागवत पुराण में कृष्णा नाम कालिन्दी

---

280. Griffith, Ralph, H., 'The Hymns of the Rigveda', Delhi, 1991, p. 587 and n.; महाभारत, भीष्मपर्व 9.15., भागवत पुराण, 5.19.18, विष्णु पुराण, 2.3.10, 4.24.69, ब्रह्माण्ड पुराण, 5.12.15, 2.16.25, 3.13.21, वायु पुराण, 45.95, 77.113, 108.78, मार्कण्डेय पुराण, 67. Rhys Davids, T.W., Millindpanha, London, 1890-94.; McCrindle, J.W., 'Ancient India as described in Classical Literature', New Delhi., 1979, pp. 14,22,23,32,120,126,135,189.; Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 1, pp. 87, 95, 246-47.; Watters, Thomas, op. cit., p. 286.; Beal, S., op. cit., p.150n 94.; Law, B.C., Historical Geography of Ancient and Medieval India', p.73.; Law, B.C., Rivers of india, p. 113.; Pande, S.N., op. cit., p. 41; Dey, N.L., op. cit., p. 47.; Suryvanshi, B.S., op. cit., p. 134.; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 318–19.

281. पतञ्जलि, महाभाष्य, द्वितीय संस्करण, मुम्बई, 2.1.2.

282. McCrindle, op. cit., pp. 93, 27, 32.

283. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 80.

284. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 80.; Majumdar andPusalker, op. cit., Vol. 5, p. 13.; Pande, S.N., op. cit., pp. 127, 41-42, 120-26 and 132.; Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient and Medieval India', p.86.

285. भागवत पुराण, 5.19.18. पद्म पुराण, उत्तर, अध्याय 74

286. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 873.; Dey, N.L., op. cit., p.29.

287. Varanasi Copper-plate Onscription of Karna, No. 28, Second Plate, Line 40.

288. वायु पुराण, 45.104.; भागवत पुराण, 5.19.10.; Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 59.

289. भागवत पुराण, 10.16.1.

नदी के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।[289] गौतमी पुत्र शातकर्णी ने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण भारत के पश्चिमी क्षेत्र अर्थात् कृष्णा नदी से आकार तक तथा उत्तर में मालवा तक किया था।[290] सरकार महोदय के अनुसार यह नदी आज भी अपने पूर्ववर्ती नाम से जानी जाती है। पश्चिमी घाट से होकर दक्षिण में बहती हुई यह बंगाल की खाड़ी में गिरती है।[291] मध्यकालीन शक्तिसंगम तंत्र में भी कृष्णा नदी का सन्दर्भ प्राप्त होता है।[292] कलिंग देश की दक्षिण–पश्चिमी सीमा यही नदी निर्मित करती थी।[293] चौथी–पाँचवीं शताब्दी ईसवी में अपनी वेंगी की राजधानी से शालंकायन ने इसके क्षेत्र पर राज्य किया।[294] अल्बरूनी को वायु तथा विष्णु पुराण के आधार पर कृष्णा नदी की जानकारी थी।[295]

कृष्णवेणी :

कृष्णवेणी नदी गुलबर्गा जनपद में बहती हुई बतायी गई है। इसके तट पर कई प्राचीन पुण्य क्षेत्र हैं जिनमें छाया भगवती क्षेत्र प्रसिद्ध है। यह नारायणपुर ग्राम के सन्निकट है। महाभारत तथा पुराण में उल्लिखित कृष्णवेणी, वर्तमान कृष्णा है। वस्तुतः कृष्णा और वेणा की संयुक्त धारा का ही नाम कृष्णवेणी है।[296]

निर्विन्ध्या :

निर्विन्ध्या नदी के विषय में पुराणों तथा कालिदास के वर्णनों से पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।[297] इसका समीकरण नेवाज, कालीसिंध एवं पार्वती नदी से किया जाता है।[298] ऐसा प्रतीत होता है कि निर्विन्ध्यानदी की एक शाखा उज्जयिनी अर्थात् अवंती से सम्बद्ध होने के कारण नर्मदा के उत्तर में प्रवाहित होती थी तथा दूसरी ताप्ती–पयोष्णी नदियों के वर्ग से सम्बद्ध थी, जो विन्ध्यपर्वत माला से निःसृत थी। इसीलिए विद्वानों ने इस सरिता के वर्गीकरण में मत–वैभिन्य प्रस्तुत किये हैं।[299]

सरयू :

सरयू नदी का उल्लेख ऋग्वेद[300], अष्टाध्यायी[301] और रामायण[302] में प्राप्त होता है। बौद्धग्रन्थ मिलिन्दपञ्ओं में इसे 'सरभू' कहा गया है।[303] महाभारत[304], पुराणों[305], कालिदास के वर्णनों[306], योगिनीतंत्र[307], अरबयात्री अल्बरूनी[308] के

290. Sircar, D.C., "Studies in the Geography of Ancient and Medieval India", pp. 14, 193.
291. Ibid., p. 59n.
292. Ibid., p.81.
293. Ibid., p.167.
294. Ibid.,p.168.
295. Sachau, E.C., op. cit., pp. 257. 255.
296. महाभारत, सभापर्व, 9.20. ब्रह्माण्ड पुराण, 2.16.34; मत्स्य पुराण, 22.46.114.29. वायु पुराण, 108.81.. विष्णु पुराण, 2.13.12. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 220–221.; Dey, N.L., op. cit., p. 104.
297. विष्णु पुराण, 2.3.31., भागवत पुराण, 5.19.18.4.1.14–15.; वायु पुराण, 65.102. Vide for details - Sircar, D.C., Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p.57 and n, 63 and n.; कालिदास, मेघदूतम्, पूर्वमेघ, 25–30.
298. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 501–502.; Dey, N.L., op. cit., p. 141.; Sircar, D.C., Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 57n.
299. Raychaudhari, H.C., Studies in Indian Antiquities, Calcutta, 1932, p. 128.
300. ऋग्वेद, 4.30.18, 10.64.9, 5.53.9.
301. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 6.4.174.
302. वाल्मीकि, रामायण, आदिकाण्ड, 14.1–2, 23.5, 5.5–6., अयोध्याकाण्ड 32.17, 63.20–21–36, उत्तरकाण्ड 123.1
303. मिलिन्दपञ्ओं, पृ. 114.
304. महाभारत, अनुशासनपर्व 155.23–24, 165.21, भीष्मपर्व 9.19, आदिपर्व 169.20–21, सभापर्व 20.28, वनपर्व 84.70
305. भागवत पुराण, 5.19.18, 9.8.17, 10.79.9; पद्म पुराण, उत्तरखण्ड, 35–38, कालिका पुराण, 24.139
306. कालिदास, रघुवंशम, 8.95, 13.60–61,63
307. योगिनीतंत्र, 2.5
308. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 259, Vol.2, p.143

उल्लेख में ही नहीं अपितु इसका वर्णन अध्यात्म रामायण[309] में भी प्राप्त होता है। उत्तर और दक्षिण कोसल के बीच में बहने वाली सरयू नदी मानसरोवर से पहले कौड़ियाली नाम धारण करके बहती है, फिर इसका नाम सरयू और अंत में घाघरा या घर्घरा हो जाता है। यह छपरा के निकट गंगा में मिल जाती है। गंगा–सरयू संगम पर चेरान नामक प्राचीन स्थान है।[310]

चर्मण्वती :

पाणिनि की अष्टाध्यायी[311], महाभारत[312], पुराण[313], यूनानी लेखक प्लिनी[314] तथा कालिदास[315] चर्मण्वती नदी का उल्लेख करते हैं। इस नदी का समीकरण अरावली के पहाड़ियों से निःसृत आधुनिक चंबल नदी से किया गया है।[316] ह्वेन–त्सांग के काल में पारियात्र पर्वत के समीप परियात्र देश में एक वैश्य राजा राज्य करता था तथा चर्मण्वती नदी पारियात्र पर्वत से बहती थी।[317]

वितस्ता :

वितस्ता शब्द की व्युत्पत्ति 'तस्' धातु से बताई गई है जिसका अर्थ है– 'उड़ेलना'। इसी क्रम में यह भी कहा जा सकता है कि पानी के अजस्र प्रवाह का नदी रूप में (पर्वत से) नीचे गिरना। अतः यही भाव इस नदी के नाम में निहित माना जा सकता है। वितस्ता नाम का सम्बन्ध वितस्ति से भी जोड़ा जा सकता है जिसका अर्थ है 'विस्तार'। वितस्ता को कश्मीर में स्थानीय रूप से व्यथ और पंजाबी में बेहत या बेहट कहा जाता है। ये नाम वितस्ता के ही अपभ्रंश रूप हैं।[318] ग्रीक लेखकों ने इसे हायडेसपीज (Hydaspes) तथा बिडेसपस (Bidaspes) कहा है जो वितस्ता का रूपान्तरण है।[319] इस नदी का झेलम नाम मुसलमानों के समय का है जो इस नदी के तट पर बसे हुए झेलम नामक

---

309. वेदव्यास, अध्यात्म रामायण, गोरखपुर, संवत् 2017. युद्धकाण्ड 14.13
310. Law, B.C., Geography of Early Buddhism, New Delhi, 1979, pp. 5,6,23,36; Law, B.C., Rivers of India, p.22.; Calcutta Review, 'Aryan Occupation', Oct., 1924, pp. 74, 76.
311. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 8.2.12.; Agarwal, V.S., 'India as Known to Panini', Lucknow, 1953, p. 46.
312. महाभारत, सभापर्व 31.7, वनपर्व 82.54, 308.25–26, 12.29.123, अनुशासन पर्व 66.43, शान्तिपर्व 29.123
313. भागवत पुराण, 5.19.18.; मत्स्य पुराण, 22.30, 163.62; वायु पुराण, 45.98, 108.81, ब्रह्माण्ड पुराण, 2.16.28.; पद्म पुराण, उत्तरकाण्ड 55.35–38, मार्कण्डेय पुराण, 57.19–20.
314. McCrindle, J.W., op. cit., p. 9.
315. कालिदास, मेघदूतम्, पूर्वमेघ, 40.47.
316. Dey, N.L., op. cit., p.48.; Agarwal, V.S., 'Matsya Purana- A Study', p. 195.; Law, B.C., 'Historical Geography of Ancient India', p. 312.; Sircar, D.C., Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', p. 53n4.; Suryawanshi, B.S., op. cit., p.133.; Pande, S.N., op.cit., p.54.
317. Raychaudhari, H.C., 'Studies in Indian Antiquities', p. 129.
318. Williams, M.M., 'ASanskriti-English Dictionary', Delhi, 1986, p. 292.; Cappeller, Carl, 'A Sanskrit-English Dictionary', Varanasi, 1972, p. 493.; cf. for synonyms and other characters of river, see - Stein, M.A., 'Kalhana's Rajatarangini', English Translation, Delhi, 1861. 'Vyati or Jehlam river of Kashmir' Book1, verse - 28, embodiement of Parvati', verse-29, miraculously brought to damodare, verse 163, 'brought to light of Siva Book, 4, verse 301, its reappearance verse - 486, 'Its bed cleared by Suyya, Book 5, verses 88-90, 'Its new course, verses 95-118, Book 6, verses 128, 255, Book 7, verses 500, 1625, Book 8, verses, 579, 3349, 3352, 3356, designation of its source, verses 1023-74n, "Its confluence with Sindhu, see Vitastasindhusamgama; its confluence with Mahasarit, Book-8, verse 339, 'Its cool water, Book -3 verse 362, 'Its water sacred, Book - 7, verses 472, 473, "river Frozen", verse - 592, 'Its Old and modern names", Book-2, verse 411, 'It legendary origin its head-waters, verse 412, "its course through alluvial plain, verse 413, 'course of river above Srinagar, verse - 415, 'confluence with Sindhu, verse -419, 'regulation by suyya, verse - 420, 'river's passage from volue, verse - 424, 'identified with yamuna", verse - 335.
319. See Strabo, Dionysisos, Nonnos, and incidental notices in the classics (vide for details - McCrindle, J.W., Ancient India as described in Classical Literature, pp. 9, 12,22,23,32,189, 197,215).; See Pliny and Ptoamy (vide for details- Law, B.C., Historical Geography of Ancient India, pp. 29, 135.)

कस्बे के कारण हुआ। ऋग्वेद[320], अष्टाध्यायी[321], महाभारत[322], पुराण[323] तथा अल्बरूनी के वर्णनों में[324] में इसका उल्लेख मिलता है। संभवतः राजतरंगिणी में वर्णित वितस्तात्र नगर इसी नदी के तट पर स्थित था और उसका नाम वितस्ता नदी के नाम पर ही पड़ा।[325] इस प्रकार वर्तमान में विश्रुत झेलम नदी का नाम बौद्ध–ग्रन्थों के आधार पर वितम्सा पड़ा।[326]

विपाशा :

विपाशा वैदिक काल से लेकर पुराण काल तक जानी जाने वाली[337] यूनानियों की हाइफेसिस (Hyphasis) और चीनियों की पी–पो–शी (Pi-po-she) या विपात (Vipat)[328] तथा मत्स्य पुराण में उल्लिखित विशाला और विमला नाम से प्रसिद्ध नदी ही सम्प्रति व्यास नदी के नाम से विख्यात है, जो सतलज की एक शाखा है। यह नदी पीपंजल चोटी पर रोहतंग दर्रे (Rohtang Pass) अर्थात रावी नदी के मुहाने से उद्‌भुत हो छम्ब की विभिन्न बर्फीली चट्‌टानों से गुज़रती हुई दक्षिण–पश्चिमी दिशा में सतलज नदी से मिलती है। संभवतः प्राचीनकाल में यह एक स्वतंत्र नदी के रूप में रही हो।[329]

बाहुदा :

महाभारत[330] तथा पुराणों[331] तथा अल्बरूनी[332] के उल्लेखों के आधार पर बाहुदा नदी का समीकरण पार्जिटर[333] के विपरीत नन्दूलाल डे एवं अन्य विद्वानों ने धबला (Dhabala) अथवा धूमेल (Dhumela) या अवध की बुरहा–राप्ती (Burha-Rapti) से किया है।[334]

मानस–सर :

मानस–सर मानसरोवर का ही पर्याय है इसके विषय में पालिग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराण एवं कालिदास के ग्रन्थों तथा अल्बरूनी के विवरण से जानकारी प्राप्त होती है।[335] वर्तमान समय में यह दक्षिण–पश्चिमी तिब्बत में

---

320. ऋग्वेद, 10.75.5
321. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 1.4.31.
322. महाभारत, वनपर्व 130.20, भीष्मपर्व 9.16, सभापर्व 9.19
323. भागवत पुराण, 5.19.18.
324. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 2, p. 181.
325. Stein, M.A., op. cit., Book - 1, verses 102-106.
326. Dey, N.L., op. cit. p. 40; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 853–854; Law, B.C., Geography of early Buddhism, pp. 42, 45.
327. ऋग्वेद, 3.33.3.; पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.2.74.; वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड 68.19.71.2.; महाभारत, वनपर्व 130.8.9, 186.94, अनुशासन पर्व 3.12.13.; आदिपर्व 167.5, सभापर्व 9.19, भीष्मपर्व 10.14, कर्णपर्व 30.35, 44; विष्णु पुराण 2.4.11; भागवत पुराण, 10.79.11; मार्कण्डेय पुराण, 57.18.; पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड, 35–38.
328. Mc-Crindle, J.W., op. cit. XV, pp. 8,9,18,33,32,44,100,189,193.; Beal, S., op. cit. Volume I, p. 165.; Ali, S.M., "the Geography of the Puranas", New Delhi, 1983, pp. 115, 119.
329. Pandey, S.N., "Geographical horizon of the Mahabharata", pp. 42, 44.
330. महाभारत, आदिपर्व 95.40, वनपर्व 84.67,68.95.4,87.27, भीष्मपर्व 9.14, शान्तिपर्व 23.39–40, अनुशासनपर्व 19.28
331. ब्रह्माण्ड पुराण 3.63.67; मत्स्य पुराण, 20.25, 22.55, 114.22.; वायु पुराण 45.96,88.66; शिव पुराण 6.60
332. Sachau, E.C., op. cit., Vol 1, p. 259.
333. Pargiter, F.E., Markandeya-Purana, pp. 291, 354, 383.
334. Dey, N.L., op. cit., p. 16; sircar, D.C., studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 50, n-2.; Agarwal, V.S., "Matsya Purana- A Study", p. 195.; अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत सावित्री, तीर्थयात्रा, 2. Pande, S.N., op. cit., p.52.
335. Ibid., p. 20.; वाल्मीकि, रामायण, बालकाण्ड, 24.8–10, किष्किन्धाकाण्ड, 43.20–22., महाभारत, सभापर्व 8.4, वनपर्व 130. 12–17, भीष्मपर्व 119.98.; मत्स्य पुराण, 70.20, 107.2, 113.46, 121.16, 163, 86, 183.2, 194.8.; ब्रह्माण्ड पुराण, 1.1–76, 2. 18.15, 21.29.33; वायु पुराण, 47.1,14.50.87–90, 11.4,36.16,42.27,77.110–11.45.99ण; विष्णु पुराण, 2.2.26, 4.6.48., भागवत पुराण, 1.5.10, 3.23.40, 6.13.14–15, 5.19.18.; कालिदास, रघुवंशम्, 13.60, 1.19,26,75.; कालिदास, कुमारसम्भवम्, 8.32.; Sachau, E.C., op. cit. Vol. 1, p. 247.

समुद्रतल से पन्द्रह हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है। इसका व्यास पन्द्रह मील और क्षेत्रफल लगभग दो सौ वर्गमील है। पंजाब की सतलज नदी और असम की ब्रह्मपुत्र नदी इसी झील से निकलती है। इस झील के उत्तर में बाइस हजार अट्ठाइस फुट ऊँचा कैलास पर्वत शिखर है।[336] गया में उत्तर मानस नामक तीर्थ स्थान बताया जाता है।[337] इसका उल्लेख राजतरंगिणी में भी प्राप्त होता है। स्टीन इसे हरमुख पर्वत के पूर्वी बर्फीले स्थान के नीचे गंगा झील (गंगा–बल) से समीकृत करते हैं। इसका उल्लेख नीलमत पुराण में भी प्राप्त है।[338]

इन्द्रद्युम्न :

विजयेन्द्र कुमार माथुर के अनुसार हिमाचल के उत्तर में स्थित हंसकूट पर्वत के निकट एक सरोवर को इन्द्रद्युम्न सरोवर कहते हैं। हंसकूट पूर्वत उत्तर कुरु प्रदेश में स्थित शतऋंग–पर्वत के दक्षिण में स्थित था। इसका उल्लेख महाभारत दक्षिणात्य पाठ के अन्तर्गत (38.10) में प्राप्त होता है, जिसका समीकरण गिरनार पर्वत में कहीं पर किया जा सकता है।[339]

गङ्गा :

प्राचीन गङ्गा का सन्दर्भ ऋग्वेद[340], ब्राह्मण ग्रन्थ[341], बौद्ध ग्रन्थ महावंश[342], अष्टाध्यायी[343], रामायण[344], महाभारत[345], पुराण[346], गीता[347], मनुस्मृति[348], कालिदास के ग्रन्थों[349] सहित अरस्तू (Atistotle) का भतीजा, स्यूडो–केलिस्थनीज़ (Pseudo Kallisthenes), स्ट्रेबो (Strabo), प्लूटार्च (Plutarch), एरियन (Aerian), मेगास्थनीज (Megasthenes), आर्टी–मिड्रोज़ (Arte-Midoros), प्लिनी (Pliny), लगभग चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से तृतीय शताब्दी ईसवी तक के सभी यूनानी लेखको[350], छठी शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग[351] तथा दसवीं शताब्दी के अरबयात्री अल्बरुनी[352] आदि सभी के ग्रन्थों में प्राप्त होता है। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में भी इस नदी का उल्लेख प्राप्त होता है।[353]

---

336. Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, 1838, p. 316 & 1848, p. 127, 165.; Asiatic Researches, Vol. 12, p. 375.; Dey, N.L., op. cit., p. 123; खरे, रामसहाय, लेख 'मानसरोवर झील', हिन्दी विश्वकोष, खण्ड–9, पृ. 2236.
337. Suryavanshi, B.S., "Geography of the Mahabharat", New Delhi, 1986, pp. 61,63.
338. Dey, N.L., op. cit., p. 123.
339. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 74, 1006.
340. ऋग्वेद, 10.75.5.
341. The Catapatha Brahman, London, 1855, 11, 13, 4,5.
342. Mahavamsa, English Translation, London, 1912, 1.253, 2.293.
343. Agarwala, V.S., op. cit., p.44.
344. वाल्मीकि, रामायण, अयोध्याकाण्ड 50.12–16, 25–26, 52.86–90 आदिकाण्ड 35.
345. महाभारत, वनपर्व 142.4, भीष्मपर्व 9.14, आदिपर्व 19–20.
346. भागवत पुराण, 7.14.29, 8.4.23, 9.9.14, 15.3.; ब्रह्माण्ड पुराण, 2.16.11,24,3.66.25–26, 73.117.; स्कन्द पुराण, वैशाख महात्म्य 2.1; वायु पुराण, 42.39–49, 71.5, 77.68, 2.17,51.21–46, 58.89, 72.28.32.; विष्णु पुराण, 1.9.103, 2.2.33–34, 8. 108–123, 3.14.18, 4.4.18–35. मत्स्य पुराण, 12.44, 121.26, 106.53; नारद पुराण, पूर्व. 6.12–13, 21,6.24–27, 58, 60.
347. गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 10.31
348. मनुस्मृति, मुम्बई, 1925, 8.92
349. कालिदास, रघुवंशम् 13.51–58
350. McCrindle, J.W., op. cit. pp. 9, 19, 42, 75, 77 & 78, 135.; For more details regarding Aerian and Megasthenes see- Law, B.C., Rivers of India, pp. 11 and 17.
351. Beal, S., op. cit. Vol. 1, pp. 319-20 and 329.
352. Sachau, E.C., op. cit., vol 1, pp. 200, 203, 253, 254, 259, 261, Vol. 2, p. 144.
353. Hathigumpha Inscription of Kharvel, No. 91, Sec. 1, (Left half), Plate No. 38.

पुरुषोत्तमपुर ताम्रपत्र लेख भी यद्यपि इस नदी का वर्णन करता है, तथापि उस वर्णन में इसे कावेरी के साथ उल्लिखित किया गया है।[354] इनके अतिरिक्त त्रिपथगा गंगा का उल्लेख अथर्ववेद, तैत्तिरीय आरण्यक, महाभाष्य, कादम्बरी,बुद्धचरित और योगिनीतंत्र में भी प्राप्त होता है।[355] यह नदी आज भी गढ़वाल में गंगोत्री से उद्भूत हो नीचे की ओर प्रवाहित होती हुई हरिद्वार और बुलन्दशहर पार करती दक्षिण में अपना स्रोत बना कर दक्षिण–पूर्व में घूमती हुई प्रयाग में बहती है। वहाँ यमुना से सम्विलीयन कर प्रवाहित होती यह त्रिपथगा राजमहल की पहाड़ियों तक पहुंचती है। पुनः इसी पहाड़ी से होती हुई पूर्व में बंगाल में प्रवेश कर सागर टापू के समीप यह समुद्र में जा मिलती है। अपने बृहत्तम जलपथ के लिए जानी जाने वाली यह नदी अपने उद्‌गम स्थान के लिए प्राचीन काल से ही 'सप्तगङ्गम्' के नाम से विख्यात थी।

जम्बू :

महाभारत तथा पुराणों में जम्बू नदी का उल्लेख प्राप्त होता है।[356] वासुदेव शरण अग्रवाल महोदय के अनुसार यह नदी एक बड़े जम्बू वृक्ष, जो मेरु पर्वत के समीप है, उसके निकट से प्रवाहित होती हुई जम्बू द्वीप में बहती हुई बतायी गई है, इसीलिए इसे जम्बू नदी कहते हैं।[357] गुप्त संवत् दो सौ चौबीस के दामोदरपुर अभिलेख में भी इस नदी का उल्लेख मिलता है।[358]

कावेरी :

टॉलमी की खाबेरस (Khaberos)[359] संस्कृत भाषा की कावेरी दक्षिण भारत की प्रमुख नदी के रूप में रामायण[360], महाभारत[361], पुराण[362], काव्यादर्श[363], कालिदास[364] तथा वराहमिहिर[365] के उल्लेखों में विद्यमान है। प्रथम शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी में विकसित संगम साहित्य में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[366] सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी यात्री ह्वेन–त्सांग[367] तथा नवीं शताब्दी के कवि नृपतुंग ने भी इसका उल्लेख किया है।[368] सात सौ अस्सी ईसवी के आसपास राष्ट्रकूट साम्राज्य की दक्षिणवर्ती सीमा कावेरी तक फैली हुई थी।[369] देवगिरि के यादवों के काल में सिंहम तक अर्थात् लगभग तेरहवीं शताब्दी ईसवी में भी कावेरी नदी राजनीति का केन्द्र बनी रही।[370] जावा के शैलेन्द्र राजवंशियों

354. Epigraphia Indica, Vol. 25, pt. 5, p. 208.
355. Law, B.C., Historical Geography of Ancient India, pp. 77-78.; माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 261–263.
356. महाभारत, भीष्मपर्व, 6.48, 7.24–26, 9.30.; वायु पुराण, 35.29, 47.66.; लिंग पुराण, 48.30–38.
357. अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत सावित्री, 2, पृ. 107.
358. Damodarpur Copper Plate Inscription of 543 A.D., No. 39, verse -17.; Vide-Majumdar, R.C., 'History of Bengal', Patna, 1971, 1., p.24 and n.
359. Schoff, Wilfred, H., op. cit., p. 242.
360. वाल्मीकि, रामायण, किष्किंधाकाण्ड, 41.21.25
361. महाभारत, सभापर्व, 9.20, भीष्मपर्व 9.20.
362. भागवत पुराण, 5.19.18, 7.13.12, 11.5.40, 10.79.14.; ब्रह्माण्ड पुराण 2.12.14,16.35, 3.7.357.; मत्स्य पुराण, 51.13, 163.61, 189, 2–20, 114.23.; वायु पुराण, 29.13.43.26, 108.79.
363. दण्डी, काव्यदर्श, दिल्ली, 1973, 3.166.
364. कालिदास, रघुवंशम्! 4.45.
365. वराहमिहिर, बृहत्तसंहिता, (B.I., Calcutta), 1865, 14.13.
366. Manimekhalai, 1.9-12, 23,244 (vide for details- Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.3, p. 413.)
367. Beal, S., op. cit., Vol. 2, p. 231n.,
368. Rice, E.P., Kanarese Literature, Calcutta, 1918, 1918, p. 29.
369. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 4, p. 4.
370. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol.5, pp. 189, 290, 257, 258.; Inscriptions in the Central Provinces and Berar, 2nd edn. Nagpur, 1932, pp. 158-159.; Leiden Copper Plate Inscription of Rajraj 1 (985-1016 A.D.) issued by Rajendra 1 (1012-44 A.D.), pl. 4, verses 24-25.; Pashchimbhag Copper Plate of Srichadra (c. 925-75 A.D.) No. 19, verse 30.; Velurpalaiyam Copper Plate Inscription of Nandiverman III (c. 820-45 A.D.), No. 3, verse -17.

तथा चोलों के मध्य जलीय व्यापार सम्बन्ध इसी नदी के मार्ग से होता था।[371] यह कूर्ग की पहाड़ियों अर्थात् पश्चिमी घाट से उद्भूत होकर मैसूर तथा तंजौर के आर–पार फैल कर एक बड़ा डेल्टा बनाती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इसे दक्षिण की गंगा भी कहते हैं।[372]

(इ) द्वीपों को विवरण

इस प्रकार नदियों और पहाड़ों के अतिरिक्त ग्रन्थ में कभी बिखरे हुए रूप में तथा कभी एकाकी उल्लेख में एक साथ द्वीपों का वर्णन भी प्राप्त होता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि आलोच्य ग्रन्थ में उनका जो क्रम प्राप्त होता है, वह महाभारत तथा पुराणों के विवरण से भिन्नता प्रदर्शित करता है।[373] पुराणों में वर्णित द्वीपों की विभिन्न संख्या में योगवासिष्ठ महारामायण के विवरण एक नवीन आयाम की ओर संकेत करते हैं। प्रश्नगत ग्रन्थ में लगभग ग्यारह द्वीपों जम्बूद्वीप[374],

---

371. Majumdar and Pusalker, op. cit., Vol. 5, p. 731.

372. Law, B.C., Historical Geography of Ancient India, p. 38.; हिन्दी विश्वकोष, खण्ड–2, पृ. 572. Dey, N.L., op. cit., p. 97.; Lal, Lakhpat, 'A Sociological Study of R.K. Narain's Novels, Ph.D. Thesis, Department of English, University of Gorakhpur, 1979 (see-Kaveri).

373. यो. महा., 3.25.11–25, 36.36, 58. तुलनीय; महाभारत, शान्तिपर्व 14.23, भीष्मपर्व 12.6–29, अध्याय 11, विष्णु पुराण, 2.2.5, 4.7, 24.30,33.50–51.; वायु पुराण 49.132, मत्स्य पुराण, 123.1–12., कूर्म पुराण, कुमारिका काण्ड 37.76, अग्नि पुराण, 108 1–3. विस्तार के लिए देखें– अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतसावित्री, 2, पृ. 109, Pargiter, F.E., 'Markandeya Purana', 54.8-9, p. 255.; mani, Vettam, Puranic Encyclopediea, Delhi, 1979, p. 690.

374. जम्बूद्वीप इति ख्यातां विपुलां तत्र कर्णिकाम्।
सारित्केसरिकानालां नगरग्रामकेसराम्।।
कुलशैलश्वरो तुंगबीजसप्तकसुन्दरीम्।
मध्यरथोच्चमहामेरुबीजाक्रान्तनभस्थलीम्।।
सरः प्रालेयकणिकां वनजंगलधूलिकाम्।
स्थलेष्वामण्डलान्तस्थजनजालालिमण्डलाम्।।
तां योजनशताकारैः प्रतिराकं प्रबोधिभिः।
सागरैर्भ्रमरैर्व्याप्तां दिक्चतुष्टयशालिभिः।।
दिग्दलाष्टकविश्रान्तससुराम्भोधिषट्पदाम्।
भ्रातृभिर्नवभिर्भूपैर्नवधा परिकल्पिताम्।।
लक्षयोजनविस्तीर्णामाकीर्णां च रजोलवैः।
नानाजनपदव्यूहस्थिरावश्यायसीकराम्।।
द्वीपान्तु द्विगुणं मानं लवणार्णवलेखया।
दधत्यावलिता बाह्ये प्रकोष्ठमिव कम्बुना।। (यो. महा. 3.25.8–14)
मेरुणालंकृतं जम्बूद्वीपं नवदलोदरम्।
गत्वाथ भारते वर्षे लीलानथस्य मण्डलम्।। (वही, 31.10)
जम्बूद्वीपगतान्सर्वान्निगिरामि जनान्यदि।
अनारतमनुश्वासं जलराशिमिवार्णवः।। (वही 3.68.11)
जम्बूद्वीपेऽस्ति शैलेन्द्रो हिमवान्नाम सून्नतः।
जामाता यस्या गवान्साक्षाच्छशिकलाधरः।। (वही, 74.13)
क्षाराम्भोराशिपरिधिं सान्तस्थविषयान्तरम्।
जम्बूद्वीपे महामेररुं कुलपर्वसंकुलम्।।
....
वायुरालोकयन्नद्धा जम्बूद्वीपं निरीक्ष्य च।
तत्प्राय हिमवच्छृंगे यत्र सूची तपस्विनी।। (वही, 73.59–61)
कल्पनाम्नि महादेव ह्यस्तने दिवसे तव।
तले कैलासशैलस्य जम्बूद्वीपैककोणके।।
नानाम्भोधितरंगासु गंगाजलघटासु च।
द्वीपान्तरेषु जालेषु जम्बूखण्डलतासु च।। (वही, 4.29.28)

प्लक्षद्वीप[375] का उल्लेख मिलता है तथा इसी प्रकार क्रमागत रूप में अन्य द्वीपों जैसे कुशद्वीप[376], क्रौञ्चद्वीप[377], श्वतेद्वीप[378], शाकद्वीप[379], पुष्करद्वीप[380], शाल्यमलिद्वीप[381],

---

अयापृच्छत् सुतस्तत्र जम्बूद्वीपे महानिशि।
कदम्बाग्रावचूडस्थं पितरं पावनाशयम्।। (वही, 53.1)
अस्त्यस्य जम्बूद्वीपस्य कस्मिंश्चिदगिरिकुञ्जके।
वनव्यूहमहोत्तंसो महेन्द्रो नाम पर्वतः।। (वही, 5.19.3)
एतास्वन्यासु बहवीषु जनयोनिषु पुत्रक।
जातोऽसि जम्बूद्वीपेऽस्मिन्पुरा शतसहस्रशः।। (वही, 20.22)
ततः प्रभृति पर्णादनामा राजर्षिसत्तमः।
जम्बूद्वीपे बभूवासौ विख्यातो मुनिसद्मसु।। (वही, 61.17)
वृतः कुलाद्रिसामन्तैर्जम्बूद्वीपासने स्थितः।
राजा चन्द्रार्कनयने भ्रमयञ्छैलसंसदि।। (वही, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध, 19.29)

375. ततो गोमेदकद्वीपलेखयैवं प्रमाणया।
इक्ष्वब्धिलेखयाप्येवं हिमवत्सानुशुद्धया।। (वही 3.25.22) 'इसके अनन्तर इससे भी द्विगुण परिमाण वाले गोमेदक नाम मणि विशेष प्रधान प्लक्षद्वीप से आवृत इसके पश्चात् हिमवान् के शिखर के समान शुद्ध पूर्वद्वीप से द्विगुण प्रभावशाली इक्षु (ईख) के समुद्र की रेखा से आवृत थी।' यो. महा., हिन्दी अनुवाद, ज्ञान सागर यंत्रालय, मुम्बई, संवत् 1960, पृ. 219.
"After that was stretched the Plaxa-Dwipa, double the size of the farmer and encircled by Sea." Mitra, V.L., Yogavasisgtha-Maharamayana, English Translation, Delhi, 1976, Book III, Ch. XXV, verse 22, p. 351.

376. ततोऽपि द्विगुणाकारं धारयन्त्योपवेष्टिताम्।
नानाजनालंकृतया कुशाख्यद्वीपलेखया।। (यो. महा., 3.25.17)
ततो घृतादवलयस्वान्तस्थपुरमन्दिरम्।
कुशद्वीपवृतिव्याप्तं समहाशैलकोटरम्।। (वहीं, 73.57)
पश्चिमः पृष्ठमारोप्य हेमचूडेन पक्षिणा।
कुशद्वीपे कुशांगश्रीस्तरसा तारतोऽर्णवान्।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 123.9)
कुशद्वीपराजधान्यां निराधिः सकलप्रजाः।
कृतदिग्विजयः कश्चित्सुप्तः कान्तावलम्बितः।। (वही, 183.61)

377. ततः क्रौञ्चाभिद्वीप लेखयैवं प्रमाणया।
वेष्टितां खातरचया नवां नृपपुरीमिव।। (वही, 3.25.19)
इक्षूदकाब्धिपरिखं शान्तं गिरिगणान्तरम्।
क्रौञ्चद्वीपोर्वरापीठं शान्तं गतगिरिक्रमम्। (वही, 3.73.55)
क्रौञ्चद्वीपाचले पूर्वो निगीर्णो रक्षसा वने।
तद्रक्षः पाटितं तेन हृदयेऽन्त्रविकर्तनैः। (वही, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध, 123.10)
क्रौञ्चद्वीपे हेमपुरे सप्तद्वीपविवर्धिते।

378. क्षीराब्धिमुक्तावलयं समध्यगतनायकम्।
श्वेताक्षयद्वीपवलयं सभूतप्रविभागकम्।। (वही, 3.73.56)

379. ततोऽपि द्विगुणं देहं दधत्वा वलयाकृतिम्।
जगद्भूतवलताव्याप्तां शाकाख्यद्वीपलेखया। (वही, 3.25.15)

380. ततोऽपि पुष्करद्वीपलेखया द्विगुणस्तथा।
अन्ते स्वदूदकाम्भोधिलेखयैवं प्रमाणया।। (वही, 23)
स्वादूदकाब्धिवलयं सकोटरककुब्गणम्।
पुष्करद्वीपवलयं तदन्तरर्गिरिसंस्थितम्।। (वही, 73.53)
पुष्करद्वीपकः कश्चिल्लोकालोकाऽद्रिभूभुजः।
दूतेन सह निर्यातो धनभूमिदिदृक्षया।। (वही, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध, 183.66)

381. ततोऽपि च धृताम्भोधिलेखयैव प्रमाणया।
ततोऽपि शाल्मली द्वीपलेखया मलपूर्णया।। (वही, 3.25.20)
विहगाऽऽश्वासततत्वज्ञः शल्मलिद्वीपशाल्मलौ।
पश्चिमः पक्षिणीनीडे क्रीडया न्यवसत्समाः।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 123.16)
दक्षिणः शाल्मलिद्वीपे राजन्नुत्सन्नशात्रवः।
करोत्यद्याऽपि न सतो विस्मृतान्यविनिश्चयः।। (वही, 126.19)

गोमेदद्वीप[382], कर्णिकाद्वीप[383] तथा अन्तरद्वीप[384] का उल्लेख प्राप्त होता है।

जम्बू द्वीप :

विनयपिटक[385], महाभारत[386], पुराण[387] चीनी यात्रियों के अनुवृत्तों[388], मत्स्य, वायु और विष्णु पुराणों तथा ब्रह्मगुप्त के विवरणों पर आधारित अरबयात्री अल्बरूनी के उल्लेखों[389] में तथा अनेक अभिलेखों[390] में एशिया के बड़े भाग से समीकृत[391] जम्बूद्वीप का वर्णन प्राप्त होता है।

प्लक्ष द्वीप :

प्लक्षद्वीप (गोमेदकमणिधारी द्वीप) का उल्लेख सप्तद्वीप मान्यता के अन्तर्गत पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है।[392] मत्स्य तथा पद्मपुराणों के आधार पर अल्बरूनी इसे गोमद नाम से उल्लिखित करता है।[393] महाभाष्य के टीकाकार ने भी इस प्लक्षद्वीप का वर्णन किया है, जिसकी पहचान विद्याभूषण महोदय ने अरियाना से की है।[394]

कुश द्वीप :

कुश द्वीप का उल्लेख महाभारत तथा पुराण में हुआ है। मत्स्य और विष्णु आदि पुराणों पर आधारित परम्परा के अनुसार अरबयात्री अल्बरूनी इस विषय में अपना मत प्रस्तुत करता है।[395] इसका समीकरण अरबिक (Arabic) तथा

---

382. मदिराम्भोधिवलयं तज्जलेचरसंस्थितम्।
गोमेदद्वीपकटकं तन्मध्यविषयव्रजम्।। (वही, 3.74.54)
गोमेदद्वीपकः कश्चित्पुष्करद्वीपरादसुताम्।
समानेतुं वशाद्याति कपत्सेनोऽष्टमोऽभवत्।। (वही, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 183.65)

383. ताम्रीका दम्भराकीर्णाः सहकारैणकास्तथा।
वैतुण्डकास्तुम्ववनालाजिनद्वीपकर्णिकाः।। (वही, 3.36.36)

384. धानदाः सरकारश्चैव वाटधानास्तथैव च।
अन्तरद्वीपगांधारास्तथावन्तिसुरास्तथा।। (वही, 58)

385. विनयपिटक, पृ. 92.

386. महाभारत, भीष्मपर्व 6.12–13, 12.26–27, 7.20, शान्तिपर्व, 4.51–55.; Suryavanshi, B.S., 'Geography of the Mahabharat', p. 7.

387. भागवत पुराण, 1.12.5, 5.1.32, 16.5–7, 19.29–30, 20.2.; मत्स्य पुराण, 83.32, 112.43–44, 113.7, 122.2, 284.2., वायु पुराण, 11.34, 33.11.45.; अग्नि पुराण, 108.1–3.; देवी भागवत पुराण, स्कन्ध 8.

388. Sircar, D.C., 'Studies in the Geography of Ancient and Medieval India', pp. 17-18 and 24.; Beal, S., op. cit., Vol. 1, p. 17.; Watters, Thomas, op. cit., Vol.1, p. 140.

389. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 235, 243, 251, 258.

390. Minor Rock Edict of Ashoka (Rupnath Version, 3rd Century B.C.) No. 22, verse - 2. Gurjar Minor Rock Edict 1 of Ashoka (Third Century B.C.) NO. 23 A verse 2. Kurastone Inscription of the time of Tormanshahi (C. 500-515 A.D.) No. 56, verse - 19. Khalimpur Copper Plate Inscription of Dharmpal (c. 775-810 A.D., 15, verse - 33. Nalanda Copper Plate Inscription of Devapal (c. 812-50 A.D.), No. 16, verse 23-24. Bhaalpur Copper Plate Inscription of Narainpal (C3855-910 A.D.), No. 17, verse 27. Mookerji, R.K., 'Ashoka', Delhi, 1972, p. 110.

391. Survansi, B.S., op. cit., p. 234, Appendix II. 1.

392. Mahabharat, 12.14.23 footnote (vide for details - Pande, S.N., 'Geographical Horizon of the Mahabharata', Varanasi, 1980, p., 10). अग्नि पुराण, 108.1–3. विष्णु पुराण, 2.2.5., 4.11, 1.12, 5.2–20.
ब्रह्माण्ड पुराण, 2.19.19, 136, 14, 11–5. तथा 3.72.71.
पद्म पुराण, स्वर्ग काण्ड, 4.
भागवत पुराण, 5.1.32, 20, 1–7, 4.21.12, 8.19.23, 5 अध्याय 20. मत्स्य पुराण, 113, 4–5, 123.35.

393. Sachau, E.C., op. cit., Vol, 1 p. 235.

394. Ibid. Vidyabhushana, Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1902, Part 1, p. 151.

395. महाभारत, भीष्मपर्व, 11.2, 12.6, 10, 11. अग्निपुराण, 108.1–3. विष्णु पुराण, 2.2.5. भागवत पुराण, 5.1.32, 20.13–17. मत्स्य पुराण, 122.49. वायु पुराण, 33.12.48, 47–48. देवी भागवत पुराण, 8, स्कन्ध 2, अध्याय 4. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 235, 254 and 325.

इथोपिया (Ethopia) से किया गया है।[396] हमादान (Hamadana) जैसे विभिन्न पुरातन पारसीक अभिलेखों में भी एक कुशीय देश (Kushiya country) का उल्लेख प्राप्त होता है।[397] जिसे किसी न किसी रूप मे कुशद्वीप से सम्बद्ध माना जा सकता है।

क्रौञ्च द्वीप :

क्रौञ्चद्वीप का उल्लेख महाभारत[398], पुराण[399] और मत्स्य तथा पद्म पुराण पर आधारित अल्बरूनी के विवरणों[400] में प्राप्त होता है। यद्यपि पार्जिटर तथा अल्बरूनी इस नाम के देश का भी वर्णन करते हैं, जिसकी स्थिति पार्जिटर महोदय के अनुसार सह्य पर्वत के निकट खैवंगी (Khaivangi) नदी के दक्षिण में तथा उत्तर में गोमन्त पहाड़ियों या गोवा के समीप थी, तथापि जैसा कि अल्बरूनी आदि पूर्वोल्लिखित ग्रन्थकारों ने क्रौञ्च द्वीप का वर्णन किया है उसका समीकरण तिब्बत के एक भाग से किया जाता है।[401]

श्वेत द्वीप :

श्वेतद्वीप का उल्लेख महाभारत तथा पुराणों से लेकर सत्रह सौ उन्तीस ईसवी के तीर्थसागर ग्रन्थ में भी प्राप्त होता है।[402]

शाक द्वीप :

महाभारत[403] तथा पुराणों[404] में वर्णित शाकद्वीप (शकद्वीप) का उल्लेख मत्स्य तथा वायु पुराण के आधार पर अरब यात्री अल्बरूनी भी करता है।[495] प्राचीन पारसीक अभिलेख जो दारावहो प्रथम का है, उसमें भी शाकद्वीप का उल्लेख प्राप्त होता है।[406] सैयद मुज़फ्फर अली के अनुसार पुराणों का भुवन–कोश तथा पारसीकों का सूर्य–पूजक होना और दोनों ही के उल्लेखों में शाकद्वीप का विवरण होना एक ऐसा साम्य स्थापित करता है, जिसके आधार पर निष्कर्षतः शाकद्वीप की स्थिति पूर्व दिशा में प्रदर्शित होती है।[407] डे महोदय इसका समीकरण मध्य ऐशिया में शकस्थान, सीथिया (Scy-thia) साग–दिया–ना (Sog-dia-na) पामीर के पठारी क्षेत्र बोखारा (Bokhara) और समरकन्द (Samarkhand) के क्षेत्र तथा सीस्तान (Seistan) में से किसी एक से होने की सम्भावना व्यक्त करते हैं।[408]

पुष्कर द्वीप :

महाभारत[409] तथा पुराणों[410] में पुष्करद्वीप का वर्णन प्राप्त होता है। अल्बरूनी ने भी इसका उल्लेख किया है[411].

---

396. Suryavanshi, B.S., op. cit., p. 234, Appendix - Ii, 1.
397. Hamadana Godl and Silver Tablet Inscription of Darayavaush (Darius) No. 3 (around six century B C.) verse - 5.
398. महाभारत, भीष्मपर्व, 12.7. 17. 18.
399. अग्नि पुराण, 108. 1–3. विष्णु परुाण, 2.1.14. 2.5. 4.45–57. भागवत पुराण, 5.20. 17–23. ब्रह्माण्ड पुराण, 2.14. 13–26. 13. 35. 19.65–77. वायु पुराण, 30.32. 49. 59–73. मत्स्य पुराण, 122.81. 123.37. 163.88. मार्कण्डेय पुराण, 53.18. 24. 58.23
400. Sachau, E.C., op. cit.. Vol. 1, p. 235.
401. Ibid., p. 302. Pargiter, E.E., Markandeya. Purana, p. 364 n.
402. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 247
महाभारत, शान्तिपर्व 335. 8–14. Wilson, H.H., "The Vishnu Purana, London, 1866 pp. 165-172. Raychaudhari, H.C., "Studies in Indian Antiquities", p. 95. Asiatic Researches, 21, p. 99. Indian Historical Quarterly, Vol. 22, p. 128.
403. महाभारत, भीष्मपर्व अध्याय 11, शान्तिपर्व 14.23. 24.
404. वायु पुराण, 49.91. भागवत पुराण, 5.20.26. अग्निपुराण, 108.1–2. मार्कण्डेय पुराण, 53.18. 31. 106.40.
405. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 235, 252-253.
406. Naqsh-I-Rustam Inscription (A) of Darayavahush (= Darius), No. 4, verses, 25, 26 and 28.
407. Ali, S.M., "Geography of the Puranas", New Delhi, 1983, pp. 8, 10, 33, 36, 39-40.
408. Dey, N.L., op. cit., pp. 172-173.
409. महाभारत, भीष्मपर्व 12. 24–25.
410. भागवत पुराण 5.1.32. 20. 39–43. मत्स्य पुराण, 100.4. 123.13. 248.13. वायु पुराण, 49. 101–141. ब्रह्माण्ड पुराण, 2.14. 14, 19. 108–26. 140–1. 3.5. 7. 7. 267. 332.60. 44.22. विष्णु पुराण, 2.4. 72–86. 92. 2.1.5. 2.5. मार्कण्डेय पुराण, 54.6. अग्नि पुराण, 108. 1–3.
411. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, pp. 235, 255, 256, 284, 286.

जिसके आधार पर इसकी स्थिति मंगोलिया तथा चीन में सम्भावित रूप से मानी गयी है।[412] डे महोदय इसका समीकरण मध्य ऐशिया के एक उस भाग से करते हैं जो ऑक्सस (Oxus) घाटी के उत्तर से आरम्भ होता है तथा जिसमें पश्चिमी भूभाग भी सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत यूनानियों का सीथिया का प्रदेश भी थी और सम्भवतः इसका नाम भुशकर (Bhuskara) शब्द का अपभ्रंश है।[413]

शाल्मलि द्वीप :

रामायण[414], महाभारत[415] तथा पुराणो[416] में शल्मलि द्वीप की वर्णन मिलता है। अल्बरूनी ने भी इसका उल्लेख किया है।[417] डे महोदय के अनुसार कैल्डिया (Chaldia) शाल्मली–द्वीप का अपभ्रंश है और मेसोपोटामिया (Mesopotamia) या असीरिया (Assyria) से इसका समीकरण किया जा सकता है।[418]

गोमेद द्वीप :

पुराण[419] तथा अल्बरूनी[420] के विवरण गोमेद द्वीप के विषय में प्रकाश डालते हैं। इसका समीकरण वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में दुष्कर है।

कर्णिका द्वीप :

यद्यपि कर्णिका द्वीप के विषय में हमारा ज्ञान प्रश्नगत ग्रन्थ तक ही सीमित है तथापि यदि हम इसे कर्णिका स्थान मानने का साहस करें तो विजयेन्द्र कुमार माथुर के अनुसार यह बृहत् शिवपुराण में उल्लिखित है। संभवतः यह उरी और नर्मदा के संगम पर स्थित कर्नाली है।[421]

अन्तर द्वीप :

अन्तरद्वीप का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में मिलता है।[422] पार्जिटर के अनुसार अन्तरद्वीप एक द्वीप न होकर नदी के दोआब में स्थित स्थल है, जिसका सम्बन्ध त्रिगर्तों से होना चाहिए।[423]

इस प्रकार विभिन्न भौगोलिक नामों के आधार पर जो भी समीकरण सम्भव हुआ, उसे पूर्ण रूप से बताने का प्रयास किया गया है, इसके पूर्व कि हम इस सम्पूर्ण विवरण के आधार पर अनुसंधानात्मक विषय में विश्लेषित तर्क देने का प्रयास करें, यह आवश्यक हो जाता है कि उन तथ्यों पर सर्वप्रथम प्रकाश डाल दिया जाय, जिनके विषय में हम अन्य सहायक ग्रन्थों से कोई भी वर्णन प्राप्त नहीं कर सके। यहाँ पर दी गई तालिका में ऐसे असमीकृत एवं अन्य ग्रन्थ में अवर्णित, किन्तु योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित किये गये मात्र पहाड़ों के नामो के प्रस्तुत किये जा रहे हैंः—

तालिका

पहाड़ों के नाम	*योगवासिष्ठ महारामायण का सन्दर्भ*
महामेरु	1.25.23
शिवि	3.36.25

412. Ray Chaudhari, H.C., 'Studies in Indian Antiquities', p. 70.
413. Dey, N.L., op. cit., p. 163.
414. वाल्मीकि, रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 40.39.
415. महाभारत, भीष्मपर्व 11.3, 12.6
416. भागवत पुराण, 5.20.10. विष्णु पुराण, 2.4.33. अग्निपुराण, 108. 1–3.
417. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, 235, 254.
418. Dey, N.L., op. cit., p. 175.
419. विष्णु पुराण, 2.4.7. ब्रह्माण्ड पुराण, 2.19.15 मत्स्य पुराण, 123–1–11, 14, 124.50, 123.7 तथा 12. कूर्म पुराण, कुमारिका खण्ड, 37.76. Raychaudhari, H.C., 'Studies in Indian Antiquities', p. 67.
420. Sachau, E.C., op. cit., Vol. 1, p. 235.
421. माथुर, विजयेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 145.
422. मार्कण्डेय पुराण, 58.43.
423. Pargiter, F.E., 'Markandeya-Purana', p. 378n.

अश्व	3.36.50
वनोर्क	3.36.45
मेघभव	3.36.45
मधुमान्	3.36.54
शुक्तिमत	6 पूर्वार्द्ध 107.10

इस प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित भौगोलिक आकड़ों का संश्लेषण और विश्लेषण जब विभिन्न अन्य तथ्यों के साथ किया जाता है तो अनुसंधानात्मक विषय में जो तथ्य सामने आते हैं, उनमें से कुछ तो ग्रन्थ के रचनाकाल पर प्रकाश डालते हैं, परन्तु कुछ अन्य से कोई भी निष्कर्ष प्राप्त नहीं होता। जो तथ्य इस सम्बन्ध में प्रकाश नहीं डालते हैं, उनमें से प्रश्नगत ग्रन्थ में उल्लिखित भद्रगिरि, चित्रकूट, गन्धमादन, अञ्जनगिरि, मेरु, पारियात्र, सह्य, उपगिरि, ऋष्यमूक, विन्ध्य तथा मैनाक पर्वतों के नाम प्रमुख हैं।

पर्वतों से सम्बन्धित जो तथ्य अनुसंधानात्मक विषय पर प्रकाश डालते हैं, उनमे से कुछ को भाषा के आधार पर तथा कुछ को उल्लेखों और सन्दर्भों के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में हिमालय, हेमगिरि, श्रीपर्वत तथा वसुमान् पर्वतों के उल्लेख के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल को पाँचवी शताब्दी ईसवी माना गया है। कैलाश पर्वत के सन्दर्भ में भाषा की आलंकारिकता और वर्णनात्मक शैली ग्रन्थ के रचनाकाल को कालिदास तथा महाभारतोत्तर कालीन प्रदर्शित कराती है। अधिक से अधिक इसको पुराणोत्तर कालीन कहा जा सकता है, जैसा कि टी.जी. मयंकर महोदय ने भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है।[424] उनके इस स्पष्टीकरण में महाभारत तथा योगवासिष्ठ महारामायण के साम्य को ही ध्यान में रखा गया है।[425] इसी प्रकार क्रौञ्च और निषध पर्वतों के संदर्भ में ध्यान केन्द्रित करने पर ग्रन्थ की रचना छठी से लेकर नवीं शताब्दी ईसवी मानी गयी है। कोलगिरि, अस्तपर्वत, दर्दुर, चक्रवान्, माल्यवान्, मलय, मन्दर, रैवतक तथा कुरार्पण पर्वतों के उल्लेख को दृष्टि में रखते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल पर छठी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक विचार प्रस्तुत किये गये हैं। कालञ्जर तथा महेन्द्र पर्वतों के सन्दर्भो का विशलेषण ग्रन्थ के रचनाकाल को ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी ईसवी तक विचार करने के लिए उत्प्रेरित करता है। भाषा के आधार पर मलय पर्वत का उल्लेख और इसका विश्लेषण आलोच्य ग्रन्थ को महाभारतोत्तर कालीन स्वीकार करने के लिए संशलेषित तर्क प्रदान करता है।

बाहुदा, कालिन्दी तथा कृष्णवेणी नदियों के अतिरिक्त योगवासिष्ठ महारामायण में वर्णित अन्य सभी नदियों के सम्बन्ध में अरबयात्री अल्बरूनी के काल (ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी) तक जानकारी प्राप्त होती है।[426] अतः उक्त आधार पर योगवासिष्ठ महारामयण के रचनाकाल की अन्तिम तिथि ग्यारहवीं शताब्दी तक विचार की जा सकती हैं बाहुदा नदी के उल्लेख के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल को सातवीं शताब्दी ईसवी से माना जा सकता हैं कालिन्दी, कृष्णवेणी आदि नदियों की जानकारी आलोच्य ग्रन्थ में परम्परा की देन हो सकती है। अतः वास्तविकता तो यह है कि ऐसे उल्लेखों के आधार पर मात्र सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी तक का समय ग्रन्थ के रचनाकाल के प्रति एक विचारणीय

424. Mainkar, T.G., "The Vasistha Ramayana : A Study", New Delhi, 1977, pp. 55-56.

425. Ibid.

426. Sachau, E.C., op. cit., Vol., 1. pp. 157, 200, 202, 235, 247, 253-254, 256, 257, 259, 366, 261, Vol. 2, pp. 129, 134, 142, 143, 144, 245.

परिकल्पना के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

जहाँ तक विभिन्न द्वीपों का सम्बन्ध है, उस विषय में यह कहा जा सकता है कि योगवासिष्ठ महारामायण में सभी अन्य भौगोलिक आंकड़ों के साथ उनका उल्लेख एक पारम्परिक साहित्यिक देन है। अधिक से अधिक यदि उनके सन्दर्भ का आधार लिया जाय तो विभिन्न अन्य समसामयिक साहित्य में तथा आभिलेखिक विवरणों में द्वीपों का उल्लेख पाये जाने के फलस्वरूप इस ग्रन्थ के रचनाकाल पर बारहवीं शताब्दी तक विचार किया जा सकता है।

इस प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण के भौगोलिक आकड़ों की समीक्षा उसके रचनाकाल की सीमा पाँचवीं शताब्दी ईसवी से बारहवीं शताब्दी ईसवी तक निर्धारित करती है, किन्तु वास्तविकता यह है कि ये भौगोलिक सन्दर्भ इतने अल्प हैं कि इनके बल पर कोई स्पष्ट मत व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

ग्रन्थ में भौगोलिक आकड़ों की संकल्पना सृष्टि की कल्पना पर आधारित है। भारतीय साहित्य में सृष्टि के विषय में सर्वप्रथम ज्ञान ऋग्वेद से प्राप्त होता है।[427] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जल को उत्पन्न करने के पश्चात् उसमें अण्ड के रूप में समाहित हो ईश्वर ने सृष्टा ब्रह्मा को उत्पन्न किया।[428] लगभग इसी प्रकार का वर्णन उपनिषद तथा मनुस्मृति में प्राप्त होता है।[429] इसी क्रम में महाभारत का वर्णन उक्त वैदिक विचारधारा की सम्पुष्टि है[430], किन्तु आगे इसी ग्रन्थ में भगवान् नारायण की महत्ता दर्शाते हुए उनसे उत्पन्न मानस पुरुष तथा उस मानस पुरुष से सम्पूर्ण सृष्टि की संरचना की कल्पना प्रस्तुत की गयी है जो वर्णन सृष्टि के वैदिक दर्शन से कुछ भिन्न है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार महाभारत में पृथ्वी का स्वरूप कमल के समान तथा उसके मध्य में महामेरु का उल्लेख प्राप्त होता है।[431] मत्स्य पुराण मेरु पर्वत के चक्र–संस्थान वर्णित करता है, जो चार भागों में विभाजित होकर चार वर्ष या द्वीप प्रकट करता है। इनके नाम – भद्राश्व, जम्बूद्वीप, केतुमाल तथा उत्तर–कुरु, जो पूर्व–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण दिशाओं को क्रमागत रूप में इंगित करते हैं।[432] बौद्ध साहित्य में यद्यपि उक्त सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया है, तथापि उक्त साहित्य में वर्ष नामोल्लेख के क्रम में भिन्नता है।[433] सृष्टि की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए योगवासिष्ठ महारामायणकार सर्वप्रथम मात्र माया तथा परब्रह्म के अस्तित्व को बताने के पश्चात् सृष्टा ब्रह्मा का विष्णु के हृदय से उदित होना, तदनन्तर उनसे वसिष्ठ मुनि का उत्पन्न होना, जम्बूद्वीप और भारतवर्ष की सृष्टि तथा वहाँ पर शारीरिक–मानसिक व्याधियों और दुःख से सम्पूरित जीव को उससे निदान हेतु ज्ञानराशि के संचरण के लिए वसिष्ठ मुनि के वहाँ सदैव निवास का उल्लेख करता है।[434] पुनः वह कहता है कि ब्रह्म से समस्त सत्ता स्वतः उत्पन्न तथा समाप्त होती है किन्तु इसकी पूर्व स्मृति

---

427 ऋग्वेद, 10.29.1-5.

428. शतपथ ब्राह्मण, 6.1.1.

429. बृहदारण्यक उपनिषद्, पूणे, 1958, 1.4.3. छान्दोग्य उपनिषद्, पूणे, 1958, 6.2.1–3. मुण्डक उपनिषद्, पूणे, 1858, 2.1.1. तैत्तिरीय उपनिषद्, पूणे, 1958, 2.6. मनुस्मृति, 1.5.22.

430. महाभारत, 1.1.29-30 तथा टिप्पणी, तुलनीय– ऋग्वेद, प्रजापति–सूक्त मण्डल – 1.

431. अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारत सावित्री, 2, पृ. 106.

432. मत्स्य पुराण, 113.43-44.

433. Journal of the Royal Asiatic Society, 1894, p. 52. Law, B.C., 'Geography of Early Buddism', New Delhi, 1979, pp. 1 f.

434. अस्त्यनन्तविलासात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः।
चिदाकाशोऽविनाशात्मा प्रदीपः सर्वजन्तुषु।।
स्पन्दास्पन्दसमाकारात्ततो विष्णुरजायत।
स्पन्दमानरसापूरात्तरंग सागरादिव।।
सुमेरुकर्णिकान्तस्य दिग्दलादधृदयाम्बुजात्।
तारकाकेसरवनः परमेष्ठी व्यजायत।।
वेदवेदार्थविद् देवमुनिमण्डलमण्डितः।
सोऽसृजत्सकलं सर्गं विकल्पौघ यथा मनः।।
जम्बूद्वीपस्य कोणेऽस्मिन्वर्षे भारतनामनि।
ससर्ज जनसर्गौघं ह्याधिव्याधिपरिप्लुतम्।। (यो. महा., 2.10.11–15)
कर्तव्यमस्ति न ममेह हि किञ्चिदेव
स्थातव्यमित्यतिमना भुवि संस्थितोऽस्मि।
संशान्तया सततसुप्तधियेह वृत्या
कार्यं करोमि न च किञ्चिदहं करोमि।। (वही, 44)

ब्रह्म में नहीं रहती. इसी जिज्ञासा का शमन वसिष्ठ द्वारा किया गया है।[435] वस्तुतः इस पद्य के अन्तर्गत ग्रन्थकार ने दर्शन की गहनतम भावात्मकता प्रदर्शित करते हुए 'अहं ब्रह्माऽस्मि' का भाव उद्बोधित करने का प्रयास किया है[436], किन्तु सृष्टि की संकल्पना में इसका उतना ही महत्त्व है, जितना कि ग्रन्थ के अन्तर्गत ब्रह्म में पूर्णस्मृति का अभाव तथा उसके अनन्त स्वरूप का भाव अंकित है। आगे चलकर कर्पूर के समान चिदात्मा में जगत् की स्थिति[437] की व्याख्या करते हुए सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश वह सुषुप्ति की अवस्था के स्वप्न के समान वर्णित करता है।[438] इस सृष्टि की उत्पत्ति का कारण अचेतन में चैतन्य तथा चैतन्य में अज्ञान, वासना आदि विकार तथा चतुर्मुख ब्रह्मा में ज्ञान की जिज्ञासा बताया गया है।[439] औपनिषदिक वर्णनों के अनुसार सृष्टि–चक्र के पूर्व सर्वत्र शून्य था। मृत्यु का अस्तित्व सृष्टि के पूर्व ही विद्यमान था। तदनन्तर तेज, मन, जल और पृथ्वी के पश्चात् प्रजापति का अस्तित्व प्रकाश में आया। इसके अनन्तर सुर तथा असुरों की उत्पत्ति हुई[440] अन्यत्र सर्वप्रथम पुरुष और तदनन्तर स्त्री की उत्पत्ति हुई, जिनसे संसार की रचना हुई।[441] सम्पूर्ण सृष्टि का आविर्भाव शून्य से होता है और उसका विलय उसी में हो जाता है[442] अर्थात् सर्वप्रथम निराकार तत्त्व ही विद्यमान था, जो साकार–तत्त्व रूप में प्रकट होने के पश्चात् ब्रह्माण्ड को उत्पन्न कर सका। यही निराकार सत्–तत्त्व 'परब्रह्म' के नाम से जाना जाता है।[443] इस प्रकार योगवासिष्ठ महारामायण में सृष्टि की जो कल्पना प्रस्तुत की गई है उसमें माया, अज्ञान तथा शून्य को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यद्यपि यह कल्पना अपने में ब्राह्मण, पौराणिक तथा औपनिषदिक दर्शन को समेटे हुए है तथापि इसमें माया की सत्तात्मकता और उसके अपरिवर्तनीय स्वरूप का उल्लेख डॉ. अत्रेय के मतानुसार योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को शंकराचार्य के पूर्व मानने हेतु पुष्ट आधार प्रदान करता है।[444] इसी क्रम में ब्राह्मण तथा पौराणिक दर्शन के सम्मिश्रण के साथ–साथ इस ग्रन्थ में जो बौद्ध दर्शन का प्रभाव द्रष्टव्य है तथा यत्र–तत्र बिखरे स्वरूप में जो भौगोलिक आधार प्राप्त होते हैं, उन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए हम इस ग्रन्थ के रचनाकाल को उस समय तक विचार करने के लिए उत्प्रेरित होते हैं, जब इन दर्शनों का सामंजस्य स्थापित रहा होगा।

❑ ❑ ❑

---

435 यो. महा., 3.1.1

436. 'योगवासिष्ठः', वाराणसी, संवत् 2033, आनन्दबोधेन्द्र की टीका, पृ. 125–127.

437 यो. महा., 3.1.44

438. वही, 10.

439 वही, 2.35-38, 5.3–24, 6.1–4, 7.4

440 बृहदारण्यक उपनिषद्, 1.3.1 छान्दोग्य उपनिषद्, 2.1.1–9

441. वही 1.3.1.

442. छान्दोग्य उपनिषद्, 1.4.1

443. तैत्तिरीय उपनिषद्, 3.1.

444. Atreya, B.L., 'The Philosophy of yagavasistha', Varanasi, 1936, pp. 26 f.

षष्ठ अध्याय

राजा यशस्कर के उल्लेख के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल की समालोचना

विभिन्न आख्यायिकाओं में आबद्ध योगवासिष्ठ महारामायण में जहाँ दाम, कट और व्याल के सदाचार और उनके मोक्ष की कथा का उल्लेख हुआ है, वहीं पर स्थिति प्रकरण के बत्तीसवें अध्याय में भविष्य काल का प्रयोग करते हुए कश्मीर देश के एक राजा यशस्कर, उसके मंत्री नरसिंह, एक पर्वत प्रद्युम्न शिखर तथा रत्नावली विहार का सन्दर्भ भी प्राप्त होता है।[1] ये सन्दर्भ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।[2] कश्मीर में नौ सौ उन्तालीस ईसवी से नौ सौ अडतालीस ईसवी तक यशस्कर देव नामक एक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है।[3] कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार एक विद्वान् जिसने विद्यार्जन पठन--पाठन द्वारा किया था, ऐसा यशस्कर देव जब बाहर से कश्मीर घाटी में आया तब वहाँ ब्राह्मणों

---

1 काश्मीरमण्डलस्यान्तर्नगरं नगशोभितम्।
नाम्नाधिष्ठानमित्येव श्रीमत्तस्य भविष्यति।।
प्रद्युम्नशिखरं नाम तस्य मध्ये भविष्यति।
शृङ्गं लघुसरोजस्य कोशचक्रमिवोदरे।।
तस्य मूर्ध्नि गिरेर्गेहं कश्चिद्राजा भविष्यति।
अभ्रंकषमहाशालं शृङ्गे शृङ्गमिवापरम्।।
गृहस्येशानकोणेऽस्ति शिरोभित्तिव्रणोदरे।
तस्यानिशमविश्रान्तवाताधूततृणान्तिके।।
आलये दानवो व्यालः कलविङ्को भविष्यति।
प्रथमाल्पश्रुतशास्त्र इवार्थरहितारवः।।
तस्मिन्नेव तदा काले तत्र राजा भविष्यति।
श्रीयशस्करदेवाख्यः शक्रः स्वर्ग इवापरः।।
दानवो दामनामात्र मशकस्तस्य सद्मनि।
भविष्यति बृहत्स्तम्भपृष्ठच्छिद्रे मृदुध्वनिः।।
अधिष्ठानाभिधे तस्मिन्नेवान्तर्नगरे तदा।
रत्नावली विहाराख्यो विहारोऽपि भविष्यति।।
तस्मिंस्तद्भूमिपामात्यो नरसिंह इति श्रुतः।
करामलकवद् दृष्टबन्धमोक्षो निवत्स्यति।।
भविष्यति गृहे तस्य क्रीडनः क्रकरः खगः।
कटो मायासुरो नाम कृतराजतपञ्जरः।।
स नृसिंहो नृपमात्यश्लोकैर्विरचितामिमाम्।
दामव्यालकटादीनां कथयिष्यति सत्कथाम्।।
स कटः क्रकरः श्रुत्वा तत्कथासंस्मृतात्मभूः।
शान्तमित्थं महाशान्तं परं निर्वाणमेष्यति।।
प्रद्युम्नशिखरप्रान्त वास्तव्यः कलविंककः।
तत्रत्यैश्च कथां श्रुत्वा परं निर्वाणमेष्यति।।
राजमन्दिरदार्वन्तर्व्रणवास्तव्यतां गतः।
मशकोऽपि प्रसंगेन श्रुत्वा शान्तिमुपैष्यति।।
प्रद्युम्नश्रृङ्गाच्चतको मशको राजमन्दिरात्।
विहारात्क्रकरश्चेति मोक्षमेष्यन्ति राघव।। (यो. महा., 4.32. 11.25)

2. Diwanji, P.C., Proceedings of the Seventh Oriental Conference Barauda, 1933, pp. 21-22.

3. Saxena, K.S., "Political History of Kashmir", New Delhi, 1974, p. 136.

द्वारा चयनित शासक बना ; उसके पितामह का नाम वीरदेव था, जो एक सामान्य घरेलू जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति था और वीरदेव का पुत्र कामदेवप्रभाकरदेव[4], मेरुवर्धन् नामक मंत्री के पुत्र प्रभाकरवर्धन् का अध्यापक था, जो बाद में उसी का गंजाधिकारी बना। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् यशस्कर राजा बना। कश्मीर से उत्पलवंश का अन्त एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके पश्चात् कश्मीर में अराजक स्थिति उत्पन्न हो गई। इसी अराजक स्थिति से उबरने के लिए लोगों ने इस यशस्करदेव को राजा चयनित किया, जो न ही किसी राजवंश से सम्बन्धित था और न ही कोई ख्याति–प्राप्त व्यक्ति था। वह एक निम्नवर्गीय कन्या लल्ला से प्रेम करने लगा और उसने उसे अपनी महारानी बना लिया। इससे प्रशासन में खलबली मच गई। एक मंडलेश के षड्यंत्र तथा लल्ला के द्वारा किसी अन्य निम्नवर्गीयचंडाल व्यक्ति से प्रेम–सम्बन्ध स्थापित करने और यशस्कर देव द्वारा प्रशासनिक कार्यों से विमुखता ने सेना तथा प्रशासन में अराजक स्थिति उत्पन्न कर दी। अन्ततोगत्वा यह न्यायवादी, विद्वानों का आश्रयदाता, प्रशासनिक सुधार करने वाला तथा दानी राजा व्याधिग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त हुआ। त्रैलोक्यदेवी नामक उसकी रानी उसके साथ सती हो गयी।

यद्यपि मूल रूप से दोनों ही कथानकों में अन्तर द्रष्टव्य है, तथापि राजा यशस्करदेव का दोनों ही कथानकों में समान रूप से नामोल्लेख मिलता है। साथ ही योगवासिष्ठ महारामायण में जिस प्रद्युम्न शिखर नामक पर्वत का वर्णन प्राप्त होता है, उसकी पुष्टि भी राजतरंगिणी से हो जाती है[6]। योगवासिष्ठ महारामायणकार यशस्कर के कथानक में एक रत्नावली विहार का नामोल्लेख करता है[7]। इस प्रकार के एक विहार का उल्लेख गोनन्दवंशीय विक्रमादित्य के मंत्री गल्लु के संदर्भ में राजतरंगिणी के अन्तर्गत प्राप्त होता है[8]। इसी क्रम में योगवासिष्ठ महारामायण के अन्तर्गत यशस्कर की राजधानी अधिष्ठान बतायी गयी है[9]। इस शोध–प्रबन्ध के दूसरे अध्याय में पहले ही अधिष्ठान का वर्णन किया जा चुका है[10]। अतः यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि अधिष्ठान कश्मीर की राजधानी श्रीनगर का प्राचीन नाम है। इसका उल्लेख अरबयात्री अल्बरूनी भी करता है[11]।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि योगवासिष्ठ महारामायणकार जिस यशस्कर राजा का संदर्भ देता है, वह कश्मीर का ऐतिहासिक शासक था, जिसने नौ वर्ष राज्य किया। यही नहीं, आलोच्य ग्रन्थ के रचयिता को रत्नावाली विहार की भी जानकारी थी। ऐतिहासिक रूप से इस रत्नावली विहार के निर्माता गल्लुन सम्भवतः दाम, कट और व्याल नामक असुरों के कथानमक के ताने–बाने बुनते हुए प्रश्नगत ग्रन्थ के रचयिता ने ऐतिहासिक क्रमबद्धता का ध्यान नहीं दिया। सुरुचिपूर्ण कथानमक तथा गहन दर्शन का सरल रूप में ही दर्शन कराना ही समभवतः ग्रन्थकार का मुख्य उद्देश्य रहा, इसीलिए उसने मात्र सन्दर्भित शैली को अपनाते हुए ही अपने मन्तव्य को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रन्थकार को दसवीं शताब्दी के कश्मीर के राजा यशस्कर की जानकारी थी और साथ ही परम्परागत

---

4. Ray, H.C., "The Dynastic History of Northern India", Delhi, 1973, Vol. 1, p. 128.
5. Stein,M.A., Kalhana's Rajatarangini, New Delhi, 1961, 1, Book 5, verses 461-483 and Book 6, verses 1-107.
6. Ibid., 1, Book 1, verse 460 and Book 7, verse 1616.
7. यो. महा., 4.32.18.
8. Stein, M.A., op. Cit., Vol. 1, Book 3, verse 474.
9. यो. महा., 4.32.18.
10. प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध, अध्याय 2
11. Sachau, E.C., Alberuni's India, New Delhi, 1989, Vol. 1, p. 207, Vol. 2, p. 181.

रूप में उसे गोनन्दीय वंश के विक्रमादित्य के मंत्री गल्लुन द्वारा निर्मित रत्नावली विहार की भी जानकारी थी[12], जिसे वह प्रस्तुत कथानक में यशस्कर देव द्वारा निर्मित बताता है[13]। इस प्रकार उक्त आधार पर सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि योगवासिष्ठ महारामायण का रचनाकाल दसवीं शताब्दी के अनन्तर होना चाहिए। राजतरंगिणी की रचना लगभग ग्यारह सौ पचास ईसवी में मानी जाती है[14]। स्टीन के अनुसार राजतरंणि से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कल्हण को पुरातत्त्वों की जानकारी में विशेष रुचि थी और उसने सिक्कों के साक्ष्य का पूरी तरह उपयोग किया। कल्हण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ऐतिहासिक युग की घटनाओं का तिथि-क्रम अत्यन्त परिश्रमपूर्वक देता है और इतने दिनों बाद भी उसके द्वारा निश्चित तिथियों में साधारणतया पच्चीस-तीस वर्षों से अधिक का अन्तर नहीं पाया गया है[15]। समूचे भारतीय इतिहास में जो एक मात्र वैज्ञानिक इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयत्न हुआ है वह है-कल्हण की राजतरंगिणी। अपनी कुछ निर्बलताओं के बावजूद कल्हण का दृष्टिकोण प्रायः आज के इतिहासकार जैसा है। स्वयं तो वह समसामयिक स्थानीय पूर्वाग्रहों के ऊपर उठ ही गया है, साथ ही घटनाओं के वर्णन में अत्यन्त समीचीन अनुपात रखा है। विवरण की संक्षिप्तता सराहनीय है। ऐसी दशा में यह प्रश्न उठता है कि यदि योगवासिष्ठ महारामायण का संक्षिप्तीकरण नवीं शताब्दी के मध्य में हो गया था तो उसे दसवीं शताब्दी के बाद का ग्रन्थ कैसे स्वीकार किया जा सकता है। इस व्यापक प्रश्न का उत्तर हम आगे देने का प्रयास करेंगे। परन्तु यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक कश्मीरी शासक यशस्कर का सन्दर्भ प्रश्नगत ग्रन्थ में दिया गया है, अतः उसकी जानकारी ग्रन्थकार को इस तिथि के पश्चात् ही हुई होगी, ऐसी स्थिति में आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी के पश्चात् तक विचार किया जा सकता है। हम यह भी जानते हैं कि योगवासिष्ठ महारामायण के संक्षेप में यशस्कर का उल्लेख नहीं है, ऐसी स्थिति में प्रश्नगत ग्रन्थ में यशस्कर का सन्दर्भ होना उसके रचनाकाल के विचार में एक नवीन आयाम उपस्थित करता है।

❑ ❑ ❑

---

12. Stein, M.A. op. cit., Vol.1, Book 3, verse 476.
13. यो. महा., 4.32.18.
14. Ray, H.C., "The Dynastic History of Northern India", Vol. 1, p. 111.
15. Stein, M.A., Op. cit. Introduction, pp. 66-70.

सप्तम अध्याय

उपसंहार

योगवासिष्ठ महारामायण गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करने वाला तथा उनकी कृपा से सर्वत्र ब्रह्ममय जगत् की भावना का दर्शन कराने वाला, अद्‌भुत रूप से विभिन्न शास्त्रों का ज्ञानागार, बृहत् तथा ज्ञान–पिपासुओं को तृप्त करने वाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से सर्वथा स्पष्ट है –

गुरोरुत्तीर्णता केन शिष्याणामस्ति कर्मणा।।
कायवाङ्मनसा तस्माच्छिष्यैरात्मनिवेदनम्।
गुरोरुत्तीर्णता सैव नाऽन्या केनाऽपि कर्मणा।[1]
यत्सर्वं खल्विदं ब्रहम तज्जलानिति च स्फुटम्।
श्रुत्वा ह्युदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।[2]

अतः ऐसे विशद ग्रंथ के रचनाकाल की जिज्ञासा स्वाभाविक है। इसी स्वाभाविक मनोवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में तथ्यों की ऐतिहासिक समालोचना करके कुछ अनुसंधानात्मक प्रयास किये गये हैं। यह प्रयास ग्रंथ में उपलब्ध ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक, भौगोलिक आंकड़ों तथा राजा यशस्कर के कथानक सम्बन्धी तथ्यों पर आधारित हैं। यद्यपि कतिपय विद्वानों ने ग्रंथ के दार्शनिक एवं साहित्यिक पक्षों का विद्वतापूर्ण विश्लेषण किया है तथापि उसके ऐतिहासिक पक्षों का उद्‌घाटन नहीं हो पाया था। प्रस्तुत ग्रंथ में पूर्व कृतकार्यों की समीक्षा करते हुए ऐतिहासिक तथ्यों का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ग्रन्थ का वर्णनात्मक परिचय, उसकी विशेषताओं तथा विषय की उपादेयता को स्पष्ट करने के पश्चात् दूसरे अध्याय में योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के सम्बन्धित विद्वानों के दो वर्गों की विचारधाराओं का निवेशन किया गया है। प्रथम वर्ग की विचारधारा प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को चौदहवीं शताब्दी ईसवी से सातवीं शताब्दी ईसवी तक मानती है तथा द्वितीय वर्ग की विचारधारा सातवीं शताब्दी ईसवी से पाँचवी शताब्दी ईसवी तक स्वीकार करती है। अपने मत की अभिव्यक्ति में इन दार्शनिक विचारों में एक साम्य नहीं अपितु प्रत्येक विद्वान् की अपनी एक स्थिर एवं निश्चित अभिव्यक्ति है। अतः इस समस्या का निस्तारण ऐतिहासिक तथ्यों की सांख्यिकी की गवेषणा में करने का प्रयास किया गया है और इसी क्रम में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में समस्त अन्य समस्याओं का अनुशीलन करने के पश्चात् धर्म तथा दर्शन के आधार पर समालोचनात्मक रूप से रचनाकाल का निर्धारण करने–हेतु कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं। इसी विचारोन्मेष के प्रवाह में सर्वप्रथम एक स्थिर मत यह प्रतिपादित किया गया है कि योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को चार सौ तिहत्तर से चार सौ चौहत्तर ईसवी के पश्चात् ही माना जाना चाहिए। इसी क्रम में यह भी स्वीकार किया गया है कि ग्रन्थ में अनेक प्रक्षिप्त अंश हैं, अतः इसका रचनाकाल कई चरणों की देन होना चाहिए। धर्म तथा दर्शन के तथ्यों की समीक्षा अन्तिम रूप में इसे

1. यो. महा., निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, निर्वाणप्रकरण उत्तरार्द्ध, 216 22 1/2 23.

2. वहीं, 25

लगभग नवीं–दसवीं शताब्दी तक रचे जाने के विचार को सुदृढता प्रदान करती है। चतुर्थ अध्याय में ग्रन्थ के अन्तर्गत आये विभिन्न जनपदों, देशों तथा जातियों के नामोल्लेख की समीक्षा से भी ग्रंथ के रचनाकाल से सम्बन्धित तथ्य पर जो सबसे अधिक बल प्राप्त होता है, वह स्पष्ट करता है कि ग्रन्थ के रचनाकाल का आरम्भिक चरण गुप्तकाल के पश्चात् छठी शताब्दी ईसवी से मानना चाहिएं दूसरी ओर इस अध्याय की गवेषणा इसकी अन्तिम सीमा का निर्धारण बारहवीं शताब्दी ईसवी तक विचार करने की अनुमति प्रदान करती है। ग्रंथ के पंचम अध्याय में प्रश्नगत ग्रंथ के अन्तर्गत विभिन्न भौगोलिक विवरणों के आधार पर भी प्रश्नगत ग्रन्थ के रचनाकाल को पांचवी शताब्दी ईसवी से लेकर बारहवीं शताब्दी ईसवी तक अर्थात् गुप्तोत्तरकाल से बारहवीं शताब्दी ईसवी तक विचार करने के तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। षष्ठ अध्याय में इस तथ्य पर विचार किया गया है कि प्रश्नगत ग्रन्थ को कश्मीरी शासक यशस्कर देव के काल के पश्चात् होना चाहिए।

इस प्रकार जहाँ भीखन लाल अत्रेय आदि का दर्शन–मंथन तथा बीरेश्वर नाथ श्रीवास्तव का ऐतिहासिक पुट, वत्सभट्टी के अभिलेख मे कालिदास के ग्रंथ की प्रतिकृति का प्रयोग, बौद्ध दर्शन आलस विज्ञानवाद, शून्यवाद, भागवत दर्शन, पराशक्तियों का विवरण, अवतारवाद, भगवद्गीता, स्वर्ग–नर्क की परिकल्पना, अविद्या, त्रिक–दर्शन, साहित्यिक विशेषताएं, हूण हैहय, ताजिक, चीन, किरात, तंगण, गुर्जर, पिंगल, सारस्वत वत्स, दाशार्ण, प्राग्ज्योतिष, वनवास, जठर, मेखल, कंटकस्थल, कोमल रुद्रमुख्य, विवादास्पद रूप से सौवीर, दशपुर, कर्कोटा, शिवि योधेय, मालव,तनय, शक तक्षशिला, शान्तिक, माध्यमिक, कर्कर, वाटधान, लंका, अस्पष्ट रूप से माण्डव्य, हिमालय, हेमगिरि, श्रीपर्वत, वसुमान् पर्वत, कैलास पर्वत, निषध पर्वत, माल्यवान्, मलय, मन्दर, अनुमानित रूप में कुरार्पण का आधार तथा बाहुदा नदी के विश्लेषित और सन्दर्भित आधार योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल की सीमा पाँचवी से सातवीं शताब्दी ईसवी तक स्वीकार करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं, वहीं शैव तथा शाक्त दर्शन, पुनर्जन्म, गौड, गांधार, धर्मारण्य, एकपाद, फल्गुणक, गुरूह, आभीर, अवन्ति तथा वटक ग्रन्थ के रचाकाल को नवीं–दसवीं शताब्दी ईसवी तथा छठी से आठवीं शताब्दी ईसवी में स्वीकार करने हेतु नवीन आयाम प्रदान करते हैं और मार्कण्डेय पुराण तथा बृहत्कथामञ्जरी की तिथियों का आधार महाग्रीव तथा नलिकेर के उल्लेखें के आधार पर ग्रन्थ के रचनाकाल को ग्यारहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में एक रुचिकर युद्ध का वर्णन है, जिसमें विभिन्न जनपदों तथा देशों को संघ के रूप में सम्मिलित होने की बात कही थी। इसी में उत्कल का भी उल्लेख आता है, जो ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी में अपनी स्वायत्तता समाप्त कर चुका था और इसीलिए यह तर्क दिया गया कि यदि कोई देश अपनी स्वायत्तता नष्ट कर चुका है तो किसी युद्ध में वह संघ में कैसे भाग ले सकता है? इसीलिए उक्त मन्तव्य के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को बारहवीं शताब्दी ईसवी तक निर्धारित किया गया है। इसी क्रम में मत्स्य पुराण तथा खालिमपुर अभिलेख की तिथि का आधार लेकर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को छठी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक विवादास्पद रूप में स्वीकार किया गया है। बृहत्संहिता, विष्णु पुराण, मत्स्य तथा मार्कण्डेय पुराणों के तिथिक्रम को स्वीकार कर गोनर्द के उल्लेख के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को पाँचवी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक अनुमानित किया गया है। इसी प्रकार बौद्ध–ग्रन्थ दिव्यावदान की तिथि के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ में ताम्रीक के उल्लेख को ध्यान में रखते हुए योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी के पश्चात् तथा स्त्रीराज्य के उल्लेख के आधार पर ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी स्वीकार किया गया है। मार्कण्डेय पुराण, वामन पुराण, विष्णु पुराण, कूर्म पुराण, वायु पुराण, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराणों का आधार लेकर ग्रन्थ में ये दरद, सुराष्ट्र तथा पारसीकों के उल्लेख के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को आठवीं शताब्दी ईसवी स्वीकार किया गया है, परन्तु वामन, स्कन्द, शिव, मार्कण्डेय तथ विष्णु पुराणों और भागवत पुराण का आधार लेकर क्रौञ्च, निषध, दर्दर तथा कोलगिरि के आलोच्य ग्रन्थ में उल्लेखें के बल पर उसके रचनाकाल का निर्धारण छठी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक किया गया है। इत मत को और अधिक बल तब प्राप्त होता है, जब मत्स्य था पद्म पुराणों के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ के चक्रवान् पर्वत का तथा इसी प्रकार अन्यान्य आधारों पर रैवतक

पर्वत का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके आधार पर रचनाकाल का मूल्याँकन योगवासिष्ठ महारामायण को छठी से दसवीं शताब्दी ईसवी तक ले जाता है। उदधृत पुराणों के तिथिक्रम की गवेषणा जहाँ योगवासिष्ठ महारामायण में उल्लिखित कालञ्जर पर्वत को उसके रचनाकाल के लिए ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी तक विचारणीय तर्क प्रदान करता है, वहीं नागरी ताम्रपत्र लेख में महेन्द्र पर्वत के उल्लेख के बल पर योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल को बारहवीं शताब्दी तक मानते हैं। इसी क्रम में मंदाकिनी, सरस्वती, शतद्रू, चन्द्रभागा, इरावती, वेणी, कृष्णा, निर्विन्ध्या, सरयू, चर्मण्वती, वितस्ता, विपाशा, मानस, उत्तरमानस, गंगा, जम्बू तथा कावेरी नदियों के परम्परागत उल्लेख का आधर लेकर ग्रन्थ के रचनाकाल को बारहवीं शताब्दी ईसवी तक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि कश्मीरी-शासक यशस्कर का उल्लेख भी आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल को दसवीं शताब्दी ईसवी से पूर्व विचार करने हेतु कोई आधार प्रदान नहीं करता है। इस गम्भीर विषय में चिन्तन से पूर्व यह आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम यह विचार करें कि विभिन्न विद्वानों द्वारा योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के निर्धारण में जो भिन्न-भिन्न मानक निर्धारित किये गये हैं और साथ ही साहित्य और अभिलेख को दर्पण मानकर जो विभिन्न मत इसी सम्बन्ध में प्रतिबिम्बित करने के प्रयास किये गये हैं, उसके भिन्न होने का कारण क्या है? और फिर क्या इतना बड़ा ग्रन्थ सात सौ वर्षों में सम्पन्न हुआ? जिसकी संक्षिप्ति नवीं शताब्दी में ही मानी जाती है और यदि ऐसा है तो इसका क्या कारण है? इन्हीं प्रश्नों को उत्तरित करने के लिए प्रथमतः यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि मलयाली भाषा में इसी ग्रन्थ की दो पाण्डुलिपियाँ त्रिवेन्द्रम के पाण्डुलिपि पुस्तकालय में देखने को मिली जिनकी पहली विशेषता यह है कि इनका नाम मोक्षोपाय है। दूसरी विशेषता यह है कि इन पाण्डुलिपियों के उत्पत्ति प्रकरण के मात्र बारह सर्ग हैं। ये पाण्डुलिपियाँ पन्द्रहवीं शताब्दी की बतायी गयी हैं[3]। मूल प्रकाशित ग्रन्थ जो निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई में मुद्रित है, उसमें उत्पत्ति प्रकरण में एक सौ बाईस सर्ग हैं। अब सबसे पहला प्रश्न उठता है कि उक्त पाण्डुलिपियों में मोक्षोपाय शब्द का प्रयोग योगवासिष्ठ महारामायण के लिए क्यों किया गया? स्वयं मूल ग्रंथ में कहा गया है- 'सारभूत अर्थों' से पूर्ण, उपनिषद् के तुल्य मोक्षदायक मोक्षोपाय नामवाली यह वाणी बत्तीस सहस्त्र श्लोकों में प्रसिद्ध की गई है।[4] पुनश्च- 'हे राजेन्द्र ! आत्म-सत्ता को जानने वाला मैं वासिष्ठ और रामचन्द्र जी का संवाद रूप मोक्षोपाय की शुभ कथा को कहता हूँ, आप श्रवण कीजिए[5], जो स्पष्ट रूप से इस योगवासिष्ठ महारामायण ग्रन्थ के दो प्राचीन प्रचलित नामों को निर्दिष्ट करता है, जिसमें प्रथम 'वसिष्ठ राम संवाद' तथा द्वितीय 'मोक्षोपाय' हैं। पुनश्च- 'प्रारम्भ में छह काण्ड पूर्व रामायण को विचार करके अनन्तर इन मोक्ष के उपाय वक्ष्यमाण वैराग्यादि छः प्रकरणों को जो बुद्धिमान् विचारता है, वह पुनः नहीं जन्मता[6]' जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ के फल को देने वाली मोक्ष-साधन उपदेशों से पूर्ण सारभूत संहिता को मैं कहूंगा[7]' "वैषयिक सुख और दुःख और दुःख को क्षय करने वाला महा आनन्द का कारण यह जो मोक्ष का उपाय मैं कहूँगा, उसको हे राम जी !

---

3. Oriental Research Institute and Manuscript Library University of Kerala Kariyavattom Manuscript No. 10867.

4 मोक्षाभिधानेयं संहिता सारसंमिता।
त्रिंशद्द्वे च सहस्त्राणि ज्ञाता निर्वाणदायिनी।। (यो. महा. 2.17.6)

5. वसिष्ठरामसंवादमोक्षोपायकथां शुभाम्।
जातस्वभावो राजेन्द्र वदामि श्रूयतां बुधः।। (वही, 1.1.53)

6. कथोपायान्विचार्यादौ मोक्षोपायानिमानथ।
यो विचारयति प्राज्ञो न स भूयोऽभिजायते।। (वही, 1.2.3)

7 इहामुत्र च सिद्ध्यर्थं पुरुषार्थफलप्रदाम्।
मोक्षोपायमयीं वक्ष्ये संहितां सारनिर्मितम्।। (वही, 2.10.4)

सुनिए[8], श्री वाल्मीकि मुनि–रचित यह मोक्षोपाय ग्रन्थ तथा जो अन्य ग्रन्थ हैं, उनमें ब्रह्म–तत्त्व के बोधन दृष्टान्तों की यही एक व्यवस्था है[9], 'मोक्ष के उपदेश के सिद्धान्त को न प्राप्त होकर हे राम ! इन प्रश्नों के उत्तर पूर्णरीति से सुनने के योग्य न हो[10], 'मोक्ष–प्राप्ति के उपायभूत शास्त्र के विचार के अतिरिक्त अन्य से प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए यत्नपूर्वक मोक्षोपायभूत इस शास्त्र का निरन्तर विचार करना चाहिए। अहम् (मैं) इदम् (यह) यह दुविधा (द्वैत) ही अविद्या है, इससे अन्य अविद्या कहीं भी नहीं हैं, उक्त अज्ञान (अविद्या) मोक्षोपाय के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से नहीं हटता (नहीं विनष्ट होता)[11], वहाँ तुम उनके पास जाओ, क्योंकि उनके कुल–गुरु वसिष्ठ नामक मुनिश्रेष्ठ उन श्री रामचन्द्र के लिए सभा में मोक्षोपाय की दिव्य कथा कहेंगे। हे द्विज ! चिरकाल तक उसे सुनकर तुम उस पावन परम पद में मेरी ही तरह विश्रान्ति को प्राप्त हो जाओगे[12], तृष्णा रूपी चमड़े की रस्सी से कसकर बंधी हुई अज्ञानी के हृदय में जमी हुई देह, इन्द्रिय आदि में तादात्म्याध्यास रूप ग्रन्थियाँ, गृह, पुत्र, कलत्र आदि में ममताग्रहरूप ग्रन्थियाँ तथा सब प्राणियों में एकात्मकता के अनुभव से अभेद (ऐकरस्य) न होने के कारण द्वेष आदि की हेतुभूत ग्रन्थियाँ–इस मोक्षशास्त्र की कथाओं के विचारविमर्श से वैसे ही सब भूतों में अभेद को (ऐकरस्य को) प्राप्त हो जाती हैं जैसे बाल (नवोढा) स्त्रियाँ पहले बाल्यावस्थावश खेलकूद में मग्न रहने तथा रसानभिज्ञ होने के कारण पति के विषय में विशेष रुचि नहीं रखतीं परन्तु समय पाकर प्रौढ होने पर पति के साथ हिलमिल जाती हैं, हे पुत्रतुल्य कृपाभाजन भरद्वाज, ये मुक्ति के उपाय भी मन्द अधिकारी पुरुष भी यदि उनका श्रवणाभ्यास करें तो उनके भी अज्ञानान्धकार को हटाने की सामर्थ्य जिन उपायों में है ऐसे महामहिमशाली इन मोक्षोपायों को गुरुमुख से जो अधिकारी श्रेष्ठ पुरुष सुनेंगे वे तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर फिर भवचक्र में कदापि नहीं पड़ेगे। यह मेरी संक्षिप्त रहस्य–उक्ति है, इसके अतिरिक्त अधिक कथन से क्या प्रयोजन है"[13], "बुद्धिमान् पुरुषों को मोक्षोपायरूप इस कथाप्रबन्ध की समाप्ति होने पर प्रयत्नतः वक्ता को सुन्दर भवन देकर अभिमत अन्न, पान, दान द्वारा ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिए[14], जो मोक्षोपाय नामक ग्रन्थ के नाम की पुनरावृत्ति

---

8. सुखदुःखक्षयकरं महानन्दैककारणम्।
मोक्षोपायमिमं राम वक्ष्यमाणं मया श्रुणु।। (वही, 2.10.7)

9. मोक्षोपायकृता ग्रन्थकारेणान्येऽपि ये कृताः।
ग्रन्थारतेष्वियमेवैका व्यवस्था बोध्यबोधने।। (यो. महा. 2.18.60)

10. मोक्षोपायस्य सिद्धान्तमसंप्राप्य न राघव।
श्रोतुं प्रश्नोत्तराण्येतान्यलं योग्यो भविष्यति।। (वही, 4.57.9)

11. नाऽन्यत्र प्रथते ज्ञानं मोक्षोपायविचारणात्।
ऋते तस्मात्प्रयत्नेन मोक्षोपायो विचार्यताम्।।
किलाऽहमिदमित्येव नाविद्या विद्यते क्वचित्।
मोक्षोपायादृते नैतत्कुतश्चिदयतेन्यतः।। (यो. महा., निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, 139.8–9)

12. सकाशं तत्र गच्छ त्वं तस्मै कुलगुरुः किल।
वसिष्ठाख्यो मुनिश्रेष्ठः कथयिष्यति संसदि।।
मोक्षोपायकथां दिव्यां तां श्रुत्वा सुचिरं द्विज।
विश्रान्तिमेष्यति स परे पदेऽहमिव पावने।। (वही, 185.12–13)

13. तृष्णावरत्रादृढबन्धवद्धा ये ग्रन्थयोऽज्ञस्य हृदि प्ररूढाः।
सर्वे हि ते मोक्षकयाविचाराद् बाला ह्यबाला इव यान्त्यभेदम्।।
मोक्षाभ्युपायान्सुमहानुभावान् ज्ञास्यन्ति ये तत्त्वविदां वरिष्ठाः।
पुनः समेष्यन्ति न संस्सृतिं ते कोऽर्थः सुताऽन्येन बहूदितेन।। (यो. महा. 215.9–10)

14. मोक्षाभ्युपायाख्यकथाप्रबन्धे याते समाप्तिं सुधिया प्रयत्नात्।
सुवेश्म दत्वाऽभिमतान्नपानदानेन विप्राः परिपूजनीयाः।। (वही, 215.15)

कर पुष्टि करते हैं, जिसे और अधिक विस्तृत रूप में ग्रन्थ के सर्गान्तों में इस प्रकार देखा जा सकता है–

"इत्यार्षे श्रीवासिष्ठरामायणे मोक्षोपाये...सर्गः।"

तथा

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये

मोक्षोपायेषु... प्रकरणे...सर्गे।।

यदि द्वितीय नाम की उपर्युल्लिखित व्याख्या का निरीक्षण किया जाय तो ज्ञात होगा कि त्रिवेन्द्रम् से प्राप्त उपर्युक्त पाण्डुलिपियाँ सम्भवतः अपूर्ण हैं, क्योंकि मोक्षोपाय नामक ग्रन्थ में बत्तीस हज़ार श्लोक स्वयं ग्रन्थकार ने बताये हैं।[15] मयंकर का मत है कि गौडपाद की कारिकाएँ तथा मोक्षोपाय का विकास समानान्तर अथवा कारिकाओं के पूर्व हो रहा था, परन्तु दोनों का विकास एक ही वातावरण में द्रष्टव्य है, क्योंकि मोक्षोपाय की रचना के प्रारम्भिक चरण से ही उस पर नागार्जुन के प्रभाव को देखा जा सकता है[16], किन्तु इस ग्रन्थ में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा अन्तिम पटाक्षेप में कश्मीरी शैव अद्वैत दर्शन यह स्पष्ट करता है कि ग्रन्थ का समापन होने से पूर्व उसमें अन्य सभी दार्शनिक तत्त्व तो विद्यमान थे ही, उनका एक अनुक्रम भी था जिसे हम गौण रूप में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के द्वितीय तथा तृतीय अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं। मयंकर के अनुसार सम्भवतः इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण नागार्जुन के समय से लगभग दूसरी से सातवीं शताब्दी[17] तथा द्वितीय एवं अन्तिम संस्करण अभिनवगुप्त के समय में (ग्यारहवीं शताब्दी[18]) कश्मीर में ही हुआ[19] मयंकर ने यह स्पष्ट नहीं किया हे कि ग्रन्थ के किस आरम्भिक चरण में अथवा वर्णन में दार्शनिक नागार्जुन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, अतः इस ग्रन्थ के रचनाकाल की प्राचीन सीमा नागार्जुन से कैसे सम्बद्ध की जा सकती है? वास्तविकता तो यह है कि विभिन्न मातृकाओं के सन्दर्भ[20] तथा सूची की आख्यायिका[21] इस ग्रन्थ पर तांत्रिक प्रभावों का जहाँ दिग्दर्शन कराता है, वहीं बौद्ध विज्ञानवाद, जिसका आरम्भिक श्रेय दार्शनिक नागार्जुन तथा वसुबन्ध को जाता है उसके विकसित स्वरूप का दर्शन भी इसी ग्रन्थ में किया जा सकता है।[22] अब यह स्पष्ट है कि ग्रन्थ की विकसित अवस्था का नाम 'मोक्षोपाय' रहा होगा, इस ग्रन्थ के नाम के साथ रामायण शब्द का जुड़ा होना तथा 'योग' और वासिष्ठ' शब्दों के जुड़े होने के कारण के साथ इसके महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत होने का तथ्य ग्रन्थकार स्वयं ही इस प्रकार से स्पष्ट कर देता हैः–

श्रुणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामायणमखण्डितम्।
श्रुत्वावधार्य यत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि।।[23]

---

15. यो. महा., 1.2.3, 2.17.6.
16. Mainker, T.G., 'The Vasistha Ramayana : A Study', New Delhi, 1977, p. 112.
17. गुप्त, कृष्णमोहन, लेख 'नागार्जुन', हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 6, वाराणसी 1966, पृ. 287–288.
18. काणे, पाण्डुरंग, धर्मशास्त्र का इतिहास, लखनऊ, 1996, भाग–4, पृ. 15, 79.
19. Mainker, T.G., op. cit., pp. 112, 146.
20. यो. महा., निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्ध, 18.20--21.
21. वही, उत्पत्ति प्रकरण, 68–83.
22. Atreya, B.L., Seventh oriental Conference, Benaras, 'A Probable Date of Composition of Yogavasistha' pp. 55, 59.
23. यो. महा., 1.1.52.

अस्मिन्रामायणे रामकथोपायान्महाबलान्।
एतांस्तु प्रथमं कृत्वा पुराहमरिमर्दनम्।।[24]
शिष्यायास्मि विनीताय भरद्वाजाय धीमते।
एकाग्रो द त्तवांस्तस्मै मणिमब्धिरिवार्थिने।।[25]
तत एते कथोपाया भरद्वाजेन धीमता।
कस्मिंश्चिन्मेरुगहने ब्रह्मणोऽग्र उदाहृताः।।[26]
अथास्ये तुष्टो भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः।
वरं पुत्र गृहाणेति तमुवाच महाशयः।।[27]
भरद्वाज उवाच–भगन्भूतभव्येश वरोऽयं मेऽद्य रोचते।
येनेयं जनता दुःखान्मुच्यते तदुदाहर।।[28]
श्री ब्रह्मोवाच– गुरुं वाल्मीकिमत्राशु प्रार्थयस्व प्रयत्नतः।
तेनेदं यत्सारब्धं रामायणमनिन्दितम्।।[29]
एतदुक्तं भगवता यथा रामायणं कुरु।
सर्वलोकहितार्थाय संसारार्णवतारकम्।।[30]
स्मराम्यखण्डितं सर्वं संसारभ्रमशान्तये।
निषाधद्रौ पुरा प्रोक्तं यज्ज्ञानं पद्मजन्मना।।[31]
इमां मोक्षकथां श्रुत्वा सह सर्वैर्विवेकिभिः।
परं यास्यसि निर्दुःखं नाशो यत्र न विद्यते।।[32]

इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों की भाँति ही रामायण के इस परिशिष्ट में भारद्वाज, जिज्ञासु, मेरु पर्वत पर बैठे ब्रह्मा जी तथा रामायण के रचयिता बाल्मीकि निराकरणकर्ता हैं तथा वसिष्ठ जी द्वारा बताये गये उस ज्ञान को, जिससे जन मानस का भला हो, इस ग्रन्थ के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इससे विदित होता है कि वसिष्ठ की मूल कृति में उपनिषदों का समावेश था तथा विश्व का अभेद विद्यमान था जिसके बल पर ग्रन्थकार ने विवर्त सिद्धान्त की शिक्षा दी थी। सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि इसमें वे सभी बातें विद्यमान थी, जिसे गौड़पाद तथा शंकर के उपनिषद्

24. वही, 1.2.4.
25. वही, 1.2.5.
26. वही, 1.2.6.
27. वही, 1.2.7.
28. वही, 1.2.8.
29. वही, 1.2.9.
30. वही, 2.2.19.
31. वही, 2.2.27
32. वही, 2.10.8

दर्शन का प्रारम्भ कहा जा सके। वह भाग जिसमें उपनिषदों के साथ सम्विदा है, उसका विकास ग्रन्थ में उक्त मूल ग्रन्थ के बल पर हुआ होगा। ग्रन्थ के संस्करण के द्वितीय चरण में उसमें बौद्ध विचारशीलता, जो उक्त उपनिषद् धारा से सम्बद्ध थी और जिसका प्रचलन लगभग सातवीं शताब्दी में कश्मीर में हो चुका था, उसका समावेश हुआ। इस प्रकार ग्रन्थ में त्रिक–दर्शन अथवा प्रत्यभिज्ञान के बौद्धिक तथा साहित्यिक कार्य–कलाप, जिसमें दार्शनिक जिज्ञासा थी तथा भगवद्गीता के दर्शन का समावेश[33] और मयंकर के अनुसार काव्य, रस, ध्वनि, नाटय के सिद्धान्तों ने अभिनव की भाँति उसमें ऐसी छाप डाली, जो इस बात की ओर संकेत करती है कि ग्रन्थ का विाकस तीन संस्करणों में हुआ होगा।[34] अत्यन्त सशक्त रूप से ब्राह्मण–धर्म का समावेश ग्रन्थ को अन्ततोगत्वा महारामायण बनाकर योगवासिष्ठ महारामायण नाम से सुप्रसिद्ध कर गया प्रतीत होता है, जो उसके रचनाकाल की आवृत्ति का अन्तिम चरण हो सकता है। अब यहाँ एक बात स्पष्ट हो गई है कि ग्रन्थ का विकास अपनी वर्तमान स्थिति तक तीन चरणों की देन रहा होगा तथा उसी दशा में हमारे द्वारा प्रस्तुत धर्म, दर्शन तथा ऐतिहासिक और भौगोलिक सांख्यिकी यदि ग्रन्थ के रचनाकाल में सात सौ वर्षों का अन्तराल प्रस्तुत करती है तो इसमें अतिशयोक्ति का दर्शन नहीं होता।

ब्राह्मण धर्म के साधारण सिद्धान्त जैसे – तपश्चर्या से दुष्प्राप्य पदार्थ की प्राप्ति[36], संकल्प शक्ति की महत्ता[37], विलम्ब से नाश की प्राप्ति[38], दण्डनीय को दण्ड देने का नीतिगत सिद्धान्त[39], कालिदास के वर्णन का भावसाम्य[40] शून्यवाद का दिग्दर्शन[41], माया का

33. Raghavan, V., Journal of Oriental Research, Vol. 13, 'The Yogavasistha and the Bhagavadgita and the Place of the Origin of the Yogavasistha'.

34. Mainkar, T.G., op. cit., p. 168.

35. महारामायणप्रायशास्त्रप्रेक्षणमात्रतः।
एतदासाद्यते नित्यं किमेतावति दुष्करम्।। (यो. महा. निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध, 95.25)

36. तपः करोमि परममखिन्नेनैव चेतसा।
तपसैव महोग्रेण सद्दुरापं तदाप्यते।। (यो. महा. 3.68.14)

37. सर्वः स्वसंकल्पवशाल्लघुर्भवति वा गुरुः।
कर्कट्योग्रं वपुस्त्यक्त्वा सूचीत्वमुररीकृतम्।। (वही, 3.70.30)

38. क्षिप्रमोकारशब्दाभ्यां मायया सन्मुखी भव।
न किंचिद्दीर्घसूत्राणां सिद्धयत्यात्मक्षयादृिते।। (वही, 3.78.8)

39. पापानुरूपमस्याशु शापं देहि महामुने।
यदवध्यवधात्पापं वध्यत्यागात्तदेव हि।। (वही 3.90.3)

40. अथ तामतिमात्रविह्वलां सकृपाकाशभवा सरस्वती।
शफरीं हृदशोषविह्वलां प्रथमा वृष्टिरिवान्कम्पत।। (वही, 3.16.50)
तुलनीय –
अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गनधूसरस्वती।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम्।। (कालिदास, कुमारसंभवम्, वाराणसी, 1994, 4.4)
तथा–
इति देहविमुक्तये स्थितां रतिमाकाशभवा सरस्वती।
सफरीं हृदशोषविक्लवां प्रथमा वृष्टिरवान्वकम्पयत्।। (वही, 4.39)

41. यः पुमान्सांख्यदृष्टीनां ब्रह्मवेदान्तवादिनाम्।
विज्ञानमात्रं विज्ञानविदामेकान्तनिर्मलम्।।
यः शून्यवादिनां शून्यो भासको योऽर्कतेजसाम्।
वक्ता मन्ता ऋतं भोक्ता द्रष्टा कर्ता सदैव सः।। (यो. महा. 3.5., 6.7)

सिद्धान्त[42], इन्द्र[43], वायु[44], यम[45], नारद[46], सूर्य[47], ब्रह्मा[48] विष्णु[49], रुद्र[50],

---

42. क्वचिद्रुद्रपुरापूर्णं क्वचिद्ब्रह्ममहापुरम्।
क्वचिन्मायाकृतपुरं क्वचिदागामिपत्तनम्।। (वही, 3.24.38)
पिशाचराजी राजानं तस्य यावद्विदूरथम्।
समाक्रामति तावत्तां मायां स बुबुधे बुधः।।
पिशाचसंग्रामकरीं मायां वेत्ति स भूमिपः।
तया पिशाचसैन्यं तत्परसैन्ये न्ययोजयत्।। (वही, 3.49.21–22)
चिद्ब्रह्म यद्यथा येन बुध्यते स्वात्मनात्मनि।
तत्तत्तथानुभवति सर्वं सर्वाङ्गशक्तिमत्।। (वही, 3.61.20)

43. इति नारदतः श्रुत्वा शक्रः सूची निरीक्षणे।
मारुतं प्रेषयामास दशदिङ्मण्डलान्यथ।। (वही, 3.73.49)
ततस्तयौदनादर्घ मह्यमेकं समर्पितम्।
माधव्येवामृतादर्धमिन्द्रायार्तिमहत् पुरा।। (वही, 3.106.53)

44. जगामथ मरुत्संविदात्मना तामवेक्षितुम्।
अथामुच्य नभोमार्गं विचचार त्वरान्वितः।। (वही, 3.73.50)
तां प्राप्योग्रगिरिस्थलीमलिवपुर्व्योमाङ्गलग्नामिव।
व्याप्तानन्तदिगन्तपूरकबृहद्देहो विशश्राम सः।। (वही 3.73.67)

45. एवं निशाचराचारचिरघोरे रणाङ्गणे।
आहनीव जनाचारे स्थिते यामावरे हिते।। (वही, 3.40)
मुमोच दान्तावाबद्धौ कृतान्तः किंकराविव।
नीहाराभ्रकडारसु दिक्षु प्रोद्बलितासु च।
वेतालबन्धनात्तत्स्माद्दिनान्ते चलिता वयम्।। (वही, 3.106.59)

46. सदेहसंचरद्वज्रचक्रशूलासिशक्तिमत्।
क्वचिन्निर्भित्तिभवन गायन्नारदतुम्बरू।। (वही, 3.24.29)

47. आगच्छ देवदेवेश भो भास्कर महाद्युते।
स्वागतं तेस्त्विति प्रोक्तो मयासौ कथितोऽप्यथ।
कस्त्वं कथामिदं जातं जगदेव जगन्ति च।
यदि जानासि भगवंस्तदेतत्कथयानघ।।
इत्युक्तो मां समालोक्य संपरिज्ञातवानथ।
नमस्कृत्वाभ्युवाचेदमनिन्द्यपदया गिरा।।
भानुरुवाच–
अस्य दृश्यप्रपञ्चस्य नित्यं कारणतामसि।
गतः कस्मान्न जानीषे किं मामीश्वर पृच्छसि।। (वही, 3.85 34–37)
स्वर्गगीततस्तवोन्मत्तमदनाक्रान्तमार्गगम्।
अनारतवहद्धिष्ण्यचक्रलक्षितपक्षकम्।। (वही, 3.24.27)

48. सङ्कल्पोन्मुखतां यातस्त्वहंकाराभिधः स्थितः।
चित्तं जीवो मनो माया प्रकृतिश्चेति नामभिः।। (वही, 3.64.16)

49. दृष्टा मया प्रभ्रमता दारकौदनधारिणी।
गृहीतामृतसत्कुम्भा दानवेनेव माधवी।। (वही, 3.106.40. तथा 106.53, 64.16)

50. यदिदं दृश्यते किञ्चिज्जगत्तस्थावरजङ्गमम्।
सर्वं सर्वप्रकाराढ्यं ससुरासुरकिन्नरम्।।
तन्महाप्रलये प्राप्तं रुद्रादिपरिणामिनि।
भवत्यसददृश्यात्म क्वापि याति विनश्यति।। (वही, 3.9. 45–46. तथा 3.64.16)

लक्ष्मी[51], गौरी[52], सरस्वती[53], कामदेव[54], शिव[55] आदि देवताओं के पुराण सदृश उल्लेख प्राप्त होते हैं। वेताल[56],

---

51. ततो गृहजनस्तत्र स ददर्शाङ्गनाद्वयम्।
लक्ष्मीगौर्योर्युगमिव समदभासितमन्दिरम्।। (वही, 3.26.9)
नरपालात्मनो विष्णोर्लक्ष्मीमिव समागताम्।
उदितां पुष्पसंभारादिव पुष्पाकरश्रियम्।। (वही 3.57.7)

52. जातो मातुः सुमित्राया गौर्या गुह इवापरः।
पितास्य दशवर्षस्य दत्वा राज्यं वनं गतः।। (वही, 3.41.20)

53. अद्यैवारभ्यैतदर्थं देवीं ज्ञप्तिं सरस्वतीम्।
जपोपवासनियमैरातोषं पूजयाम्यहम्।। (वही, 3.16.29)
अथ तामतिमात्रविह्वलां सकृपाकाशभवा सरस्वती।
शफरीं ह्रदशोषविह्वलां प्रथमा वृष्टिरिवान्वकम्पत।। (वहीं, 50)
अथ वीरवरोत्कण्ठनृत्यदप्सरसि स्थिता।
लीलावलोकयामास व्योम्नि विद्यान्वितावनौ।। (वही, 32.1)

54. न तानि कामस्य विलासिनीह मुखेपि शोभालसितानि सन्ति।
तमालिनीले चिबुकैकदेशे सुतस्य चान्यास्यगतामिषस्य।। (वही, 120.17)

55. वही, 3.24.38.

56. पूजामादाय संध्यायां प्रगतायां यथागतम्।
अन्धकाराः समुत्तस्थुर्वेताला वपुषा यथा।। (वही, 3.4.24)
वेतालयक्षकूष्माण्डैर्द्वन्द्वकालोकनसादरैः।
आयुधापातरक्षार्थं गृहीताद्रितटैर्वृतम्।। (वही, 31.16)
सुतालोत्तालवेतालतालताण्डवसंकटम्।
पर्यस्तरथदार्वन्तरर्धान्तरितसद्भटम्।। (वही, 38.55)
वहद्रक्तनदीरंहोरूढभूचररूपिकम्।
वेतालकुलकङ्कालकर्षणाकुलकाकलम्।। (वही, 39.18)
मत्तवेतालकलहचितालातरणोज्ज्वलम्।
वहद्रक्तवसामिश्रगन्धबन्धुरमारुतम्।। (वही, 39.20)
पतद्वेतालसोल्लासमघ्यस्थासुग्विरूपिकम्।
पिशाचाकर्णिताभ्यर्णयोगिनी गणनायकम्।। (वही, 39.23)
रूपिकालोकनापूर्वत्रासार्धमृतसद्भटम्।
क्वचिद्वेतालरक्षोभिरपरीपूर्णमद्रकम्।। (वही, 39.25)
कबन्धकन्धराबन्धव्यग्रवेतालबालकम्।
यक्षरक्षः पिशाचादिकचदाकाशगोल्मुकम्।। (वही, 39.29)
भूपातालनभोदिग्भ्यः प्रलयाब्धि जलौघवत्।
समाजग्मुस्तनत्ताला वेताला वलया इव।। (यो. महा. 3.39.3)
आसीद्रणाङ्गणं गायद्वेतालकुलसंकुलम्।
क्वणत्कङ्कालकाङ्कस्थकङ्ककाकोलकेलिमत्।। (वही, 39.11)
श्वकाकयक्षवेतालतालकोलाहलोल्बणम्।
गमागमेन भूतानां समुड्डीनवनोपमम्।। (वही, 39.14)
कालताण्डववेतालकुलारब्धहलारवम्।
शून्ये रणाङ्गणे दीप्तौ नदमसिन्धवो रथौ चलौ।। (वही, 47.23)
वेतालास्त्रं ततो दत्ते तेनोत्तस्थुः शवव्रजाः।
अमूर्धानः समूर्धानो वेतालवेशवल्लिताः।। (वही, 49.35)

असुर[57], किन्नर[58], सिद्ध[59], चारण[60], गन्धर्व[61], अप्सरा[62],

---

ततः पिशाचवेतालरूपिकोग्रकबन्धवत्।
तदवभूव बलं भीममुर्वीनिगरणक्षमम्।। (वही, 49.36)
मेदोमांसोपदंशाढ्यं रुधिरासवसुन्दरम्।
क्षीबकूष्माण्डवेतालयक्षताण्डवसुन्दरम्।। (वहीं, 40)
यावद्वेतालसंकल्पो बालस्य किल विद्यते।
निर्वेतालधियस्तावदुदयस्तस्य कः कथम्।। (वही, 53.31)
सुवयस्येव कर्कट्याः परिनृत्यत्पिशाचिका।
मत्तवेतालकङ्कालकाष्ठमौनमिवास्थिता।। (वही, 77.5)
अटव्यां कर्कटी सा तौ चरनतौ राजमन्त्रिणौ।
अपश्यद्धतधैर्यास्त्रौ वेतालालोकनोन्मुखौ।। (वही, 77.18)
नीहाराभ्रकडारासु दिक्षु प्रोद्धूलितासु च।
वेतालबन्धनात्तस्माद्विदनान्ते चलिता वयम्।।
क्षणेन पक्कर्णं प्राप्ताः संध्यायां दीर्घजङ् गलात्।
श्मशानादिव वेतालाः श्मशानमितरन्महत्।। (वही, 106.59-60)

57. यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्स्थावरजङ् गमम्।
सर्वं सर्वप्रकारदयं ससुरासुरकिन्नरम्।।
तन्महाप्रलये प्राप्ते रुद्रादिपरिणामिनि।
भवत्यसददृश्यात्म क्वापि याति विनश्यति।। (वही, 3.9. 45-46)
गायत्किन्नरगन्धर्वसुरस्त्रीमण्डलं क्वचित्।
क्वचित्स्तब्धपुराकीर्णं वहत्पुरवरं क्वचित्।। (वही, 24.37)
गायत्किन्नरगन्धर्वविद्याधरसुराङ्गनम्।
नूनमद्य नभो जातमस्मत्ताताभ्यलंकृतम्।। (वही, 26.38)
गायत्किन्नरगन्धर्वकदलीखण्डमण्डपः।
मन्दानिलरवोद्भूतः पुष्पोपवनपाण्डुरः।
तत्रास्ति लवणो नाम राजा परमधार्मिकः।। (वही, 104.11)

59. सिद्धगन्धर्वमन्दारमालामोदमनोहरे।
चन्द्रमण्डलनिष्क्रान्ते रेमाते मधुरानिले।। (वही, 24.5)

60. सिद्धचारणगन्धर्वगणविद्याधरान्वितम्।
शूरग्रहणसंरब्धस्वर्गलोकाप्सरोवृतम्।। (यो. महा. 3.31.14)
दरीगृहविनिष्क्रान्त सिद्धचारणबन्दिकम्।
स्वर्गादिव समानीय लावण्यमभिनिर्मितः।। (वही, 104.10)

61. क्वचिद्दीर्घवातौघपक्षप्रोड्डीनपर्वतम्।
क्वचिद्गन्धर्वनगरसुरस्त्रीवृन्दबन्धुरम्।। (वही, 25.56)
आगच्छच्छूरसन्मानोन्मुखगन्धर्वचारणम्।
शूरोन्मुखामरस्त्रैणकटाक्षेक्षितसद्भटम्।। (वही, 31.21)
अथादधे मोहनास्त्रं सिन्धुर्गन्धर्वसौहृदात्।
प्राप्तं तेन ययुर्लोका विना मोहं विदूरथात्।। (वही, 48.24, तथा वही, 3.24.5, 37, 26.38, 31.14, 104.11)

62. लोकपालासरोवृन्दसंचाराचारच चलम्।
देव्यन्तः पुरिकादग्धधूपधूमाबुदाम्बरम्।। (वही, 24.21)
स्वस्वर्गाहूतदेवस्त्रीस्वाङ्गविभ्रष्टभूषणम्।
सामान्यसिद्धसङ्घोग्रतेजः पुञ्जतमो बलम्।। (वही, 24.22)
यस्याप्सरोभिरद्रीन्द्रमूर्धस्वमरसद्मसु।
विकासिपुलकौल्लासं गीयन्ते गुणगीतयः।। (वही, 104.16, तथा 32.1)

भूत[63], प्रेत[64], पिशाच[65], डाकिनी[66],

---

63 त्रैलोक्यवरभूतौघसञ्चाराविरलान्तरम्।
अन्योन्यादृष्टसंचारसुरासुरकुलाकुलम्।। (वही, 24.17)
रक्तमांसोन्मुखोन्मत्तभूतरक्षः पिशाचकम्।
पुष्पवृष्टिभिरापूर्णहस्तविद्याधराङ्गनम्।। (वही, 31.15)
अस्त्रमार्गनभोभागविद्रवद्भूतमण्डलम्।
आहोपुरुषिकाक्षुब्धप्रेक्षकामोदनोद्भटम्।। (वही, 31.17)
छिन्नाः पिशाचसंयुक्ता भूतापहृतहेतयः।
पातयित्वा ययुः कर्णान्दशार्णास्तर्णका इव।। (वही, 37.52)
आकाशभूधरनिकुञ्जगुहान्तराल–
पिण्डोपमण्डिततमोम्बुदपीठपूरम्।
व्यालोलभूतरभसाकुलकल्पवात–
व्याधूतलोककरकाण्डकपेटकल्पम्।। (वही, 39.30)
हस्तहार्यतमः पिण्डस्फुटकुड्ये निशागृहे।
लाभोच्छदोच्चलचते भूतसङ्घे प्रवल्गाति।। (वही, 40.2)
अध तस्या वयस्यैका राजानं तं व्यजिज्ञपत।
भूतसंग्रामसंरब्धममरेन्द्रमिवाप्सराः।। (यो. महा. 3.44.4)

64. तरुकर्दमरथ्यान्तः शून्यगेहगृहाश्चलाः।
लेलिहानाः प्रेतरूपाः कृष्णाङ्गाश्चपला इव।। (वही, 49.17 तथा 77.5)

65. पर्यन्तस्थितकूष्माण्डरक्षः पैशाचमण्डलम्।
वातस्कन्धमहावेगवहद्वैमालिकव्रजम्।। (वही, 24.18)
मातङ्गशवशैलेषु विश्रान्तताम्बुदपङ्क्तिषु।
यक्षरक्षः पिशाचेषु क्रीडत्सु रुधिरार्णवे।। (वही, 36.2)
रक्तमांसवसामेदोहरणव्यग्रडाकिनि।
चर्वितासृग्वसामांसस्रवत्सृक्किपिशाचकम्।। (वही, 39.15)
मध्यमध्यचितालोकप्रकटासृक्शवव्रजम्।
विरूपिकानीयमानस्वांसन्यस्तमहाशवम्।।
उत्ताण्डवोग्रकुम्भाण्डमण्डलोड्डामरोदरम्।
छमिच्छमितप्रलापान्तं मेदोसृग्वाप्पसाम्बुदम्।। (वही, 39.16–17)
प्रसृतान्त्रमहातन्त्रीप्रायसंपन्नवादनम्।
पिशाचवासनोत्क्रान्तपिशाचीभूतमानवम्।। (वही, 39.24)
श्यामाश्यामं पिशाचास्त्रमथ सिन्धुरचोदयत्।
तेनोदगुः पिशाचानां पङ्क्तयोऽत्यन्तभीतिदाः।।
संध्यामयामथ भीत्येव दिवसः श्यामतां ययौ।
पिशाचा भुवनं जग्मुरन्धकारभरा इव।। (वही, 49.13–13)
पिशाचराजी राजानं तस्य यावद्विदूरथम्।
समाक्रामति तावत्तां मायां स बुबुधे बुधः।। (वही, 49.21)
पिशाचसंग्रामकरीं मायां वेत्ति स भूमिपः।
तया पिशाचसैन्यं तत्परसैन्ये न्ययोजयत्।। (वही, 49.22)
जगृहुस्तान्पिशाचांस्ता दुर्बलान्दुः शिशूनिव।
पिशाचरूपिकासैन्यं तदासीदेकतां गतम्।। (वही, 49.29)
ततः पिसाचवेतालरूपिकोग्रकबन्धवत्।
तदबभूव बलं भीममुर्वी निगरणक्षमम्।। (वही, 49.36. तथा 39.23, 29)

66. वही, 39.15.

विद्याधर[67], विद्याधरी[68], भैरव[69], यक्ष[70], आकाशचारी–गण[71], कूष्माण्ड[72], यातुधान[73], कबन्ध[74],

---

67. संसारमण्डले देवि कस्मिंश्चिदभवं पुरा।
लोकान्तराब्जभ्रमरी विद्याधरवराङ्गना।। (यो. महा. 3.27.36)
गन्धमादनमन्दारमन्दिरे मदनातुराः।
पातिताः पादयोः पूर्वं विद्याधरकुमारकाः।। (वही, 27.57)
देवस्थलोपवनभूस्तदनूदितश्री–
विश्वावसोस्तदनु मन्दिरमुत्ततमं च।
कैलासभूस्तदनु मञ्जुवनश्च शैलो
विद्याधरामरविमानसमानभूमिः।। (वही, 36.67)
शैव्यास्तु खण्डिताः कौन्तैर्भ्रमत्कुन्तैर्विघट्टिताः।
शवीभूता दिवं नीता दृष्टा विद्याधरा इव।। (वही, 37.34 तथा 26.38, 31.15)

68. विद्याधरीमधुरमन्थरगीतिगर्भ–
मन्दारमाल्यवलनाकुलकामिनीकम्।
विश्रान्तकान्तसुरसिद्धविमानपङ्क्ति
व्योमोत्सवोच्चरितशोभमिवोल्ललास।। (वही, 31.36)
अपूर्वोत्तमसौन्दर्यकान्तसंगमशंसिनः
वान्ति विद्याधरस्त्रीणामलकोल्लासिनोऽनिलः।। (वही, 34.32)
नीरन्ध्रघनगम्भीरवनविश्रान्ततापसः।
विद्याधरीकृतलतादोलोपवनपत्तनः।। (वही, 104.3)

69. अनन्यशब्दाविरतहताहतिरणज्झणैः।
गायतीव क्षतक्षोभमुदितो रणभैरवः।। (वही, 34.49)

70. भीमान्धकारगहने सुमहत्यरण्ये
नृत्यन्त्यदर्शितपरस्परमेव मत्ताः।
यक्षा यथा प्रवितते परमाम्बरेऽन्त–
रेवं स्फुरन्ति सुबहूनि महाजगन्ति।। (वही, 30.34)
मातङ्गशवशैलेषु विश्रान्ताम्बुदपङ्क्तिषु।
यक्षरक्षः पिशाचेषु क्रीडत्सु रुधिरार्णवे।। (वही, 36.2)
रूपिकापेटिकावान्तारणद्रटरटारवम्।
अर्धपक्वशवास्वादलुब्धयक्षोल्लसत्त्कलि।। (वही, 39.21, तथा 31.16, 39.29, 49.40)

71. अशङ्किताागते तत्ते देव्यौ ददृशतुर्नभः।
नभश्चरगणाक्रान्तमम्बुदैरिव मालितम्।। (वही, 31.13)
कूष्माण्डकोत्ताण्डवदण्डपाद–
क्षुब्धासृगुत्क्षिप्ततरङ्गसिक्तैः।
संध्याभ्ररागोत्करकोटिकान्ति
भ्रमैरसृक्स्रोतसि दत्तसेतु।। (वही, 49.41 तथा 3.31.16, 49.40)

73. तथैव रतिकादर्शा अन्तरादर्श एव च।
ततः पिङ्गलपाण्डव्यं यामुने यातुधानकरः।। (वही, 36.61)
खर्वगाः खदिताः क्षुद्रा यातुधानैः परावृताः।
तेजः परममाजग्मुः शान्ताग्नय इवेन्धनैः।। (वही, 37.58)

74. नृत्यत्कबन्धदोर्दण्डमण्डलानमिताम्बरम्।
मदमेदोवसागन्धपीडार्द्रघ्राणकोटरम।। (वही, 38.29)
मर्मच्छेदशराघातव्यथाविदितदुष्कृति।
कबन्धबन्धप्रारब्धवेतालवदनाक्रमम्।। (वही, 38.41)
अथोदभूद्वलं भीमं ससुरासुरभीतिदम्।
गर्जद्रक्षोमहानादवाद्यनृत्यत्कबन्धकम्।। (वही, 49.39 तथा 39.29, 49.36)

योगिनी[75], रूपिका[76], पूतना[77], राक्षस[78], दैत्य–दानव[79], निशाचर[80] आदि पराशक्तियों का उल्लेख तथा मातृदेवियों विशेष रूप से योगीश्वरी[81], विभिन्न अपर लोकों का उल्लेख तथा स्वर्ग–नर्क की परिकल्पना[82] अनुप्रास अलंकार की विधा का प्रयोग[83], बीभत्स रस का प्रयोग[84], रस–नाट्य[85] आदि के वर्णन ग्रन्थ के उत्पत्ति प्रकरण को गुप्तकाल के अनन्तर विचार

---

75. वही, 3.39.23.

76. स्वरूपिकास्कन्धपतच्छवत्रस्तनिशाचरम्।
नभः संघट्टितापूर्वभूतपेटकसङ्कटम्।। (वही, 39.26)
उदगुर्भुतलाद्व्योम्नो रूपिका ऊर्ध्वमूर्धजाः।
निर्मग्नविकरालाक्ष्यश्चलच्छोणिपयोधराः।। (वही, 49.24. तथा 39.25, 49.23,36)

77. वही, 3.39.21, 25, 26, 49.23, 36.

78. अथेतरोऽपि भूपालो मायां सञ्चार्य तां गुरौ।
राक्षसास्त्रं ससर्जाथ त्रैलोक्यग्रहणोन्मुखम्।।
उदगुः पर्वताकाराः सर्वतः स्थूलराक्षसाः।
देहमाश्रित्य निष्क्रान्ताः पातालान्नरका इव।। (वही, 49.37–38)

79. कदाचिदास्पदाम्भोधिकम्पकम्पितदिग्दलम्।
अधोनालगतानन्तदैत्यदानवकण्टकम्।। (वही, 25.6)
चक्रव्यूहकराक्रान्तदुर्वृत्तसुरभासुरम्।
गरुडव्यूसंरम्भविद्रवन्नागसंचयम्।। (वही, 32.21)

80. यो. महा., 3.40.1.

81. क्वचिन्निरम्बरोन्नृत्तमातृमण्डलमालितम्।
क्वचिन्नित्यं नवक्षीवक्षुब्धयोगीश्वरीगणम्।। (वही, 3.24.35)

82. ध्रुवमार्गोत्तरं गत्वा साध्यानां मार्गमेत्य च।
सिद्धानां समतीत्योर्वीमुल्लङ्घ्य स्वर्गमण्डलम्।।
ब्रह्मलोकोत्तरं गत्वा सुषितानां च मण्डलम्।
गोलोकं शिवलोकं च पितृलोकमतीत्य च।। (वही, 3.29.42–43)
स्वर्गार्हशूरानयनव्यग्रेन्द्रभटभासुरम्।
शूरार्थालङ्कृतोत्तुङ्गलोकपालाख्यवारणम्।। (वही, 31. 20)
शास्त्रोक्ताचारयुक्तस्य प्रभोरर्थेन यो रणे।
मृतो वाथ जयी वा स्यात्स शूरः शूरलोकभाक्।।
अन्यथा प्राणिकृत्ताङ्गो रणे यो मृतिमाप्नुयात्।
डिम्भाहवहतः प्रोक्तः स नरो नरकास्पदम्।।
अयथाशास्त्रसञ्चारवृत्तेर्थेन युध्यते।
यो नरस्तस्य संग्रामे मृतस्य निरयोऽक्षयः।।
यथा संभवाशास्त्रार्थलोकाचारानुवृत्तिमान्।
युध्यते तादृशश्चैव भक्तः शूरः स उच्यते।।
गोरर्थे ब्राह्मणस्यार्थे मित्रस्यार्थे च सन्मते।
शरणागतयत्नेन स मृतः स्वर्गभूषणम्।। (वही, 31.24–28)
अप्रबुद्धधियः सिद्धलोकान्पुण्यवशोदितान्।
न समर्थाः स्वदेहेन प्राप्तुं छाया इवातपान्।। (वही, 53.29)

83. स्वविनाशक्रियां चैतां मन एवं करोत्यलम्।
मनो ह्यात्मवधं नाम नाटकं परिनृत्यति।। (वही, 102.35)

84. वही, सर्ग 37 से 41 तक।

85. रसनाद्रसतामेति विचित्रास्तत्र वृत्तिषु।
नाटके नटवद्देहे मन एवानुवर्तते।। (वही, 110.19)
स्वचित्तवृत्तिरेवेह जाग्रत्स्वप्नदृशोदितम।
रसावेशादुपादत्ते शैलूष इव भूमिकाम्।। (वहीं, 49)

करने हेतु तर्क प्रदान करते हैं। शैब्य, आरमरकाय, अच्छू, अगुहुत्व, अनियम, हैहय, सुह्य, गाय, ताजिक, हूण, आदि में हैहय, हूण तथा ताजिक के समीकरण के आधार पर उत्पत्ति प्रकरण के रचनाकाल को छठी–सातवीं शताब्दी अर्थात् गुप्तोत्तर काल में स्वीकार किया जा सकता है।[86] इसी क्रम में चीन[87], किरात[88], गौड[89], भासक[90], तंगण[91], चेदि[92], गुर्जर[93], गांधार[94], आभीर[95], वत्स[96], दशार्ण[97], अंग[98], वंग[99], उपवंग[100], पुंड[102], जठर[103], विदर्भ[104], मेखल[105], शबराननवर्ण[106], कर्णात्रिपुरपूरक[107], कंटकस्थल[108], पृथग्दीपक[109], कोमल[110], कर्णाध्र[111], चौलिक[112], चार्मण्वत[113], काकका[114], हेमकुडय[115], श्मश्रुधर[116], बलिग्रीव[117], महाग्रीव[118],

---

86. यो. महा. 3.36.47.
87. वही 3.37.15.
88. वही, 3.36.24, 66, 37.29, 30, 31, 76.1, 16, 77.1, 14–17.
89. वहीं, 3.37.22, 24.
90. वही, 37.23.33.
91. वही, 3.37.33, 19, 42, 17.23.
92. वही, 3.37.19, 41, 42, 36.26.
93. वही, 3.37.19.42.
94. वही, 3.37.24, 36.58.
95. वही, 3.37.21, 36.40.
96. वही, 3.36.26.
97. वही, 3.36.26.37.18.
98. वही, 3.36.26, 37.30.
99. वही, 3.36.26.
100. वही, 3.36.26, 39.22.
101. वही, 3.36.27.
102. वहीं.
103. वही.
104. वही.
105. वही, 3.36.22,27, 37.54.
106. वही, 3. 36. 27.
107. वहीं.
108. वही, 3.36.28.
109. वहीं.
110. वहीं.
111. वही.
112. वहीं.
113. वहीं.
114. वह, 3.36.29.
115. वहीं.
116. वहीं.
117. वहीं.
118. वहीं.

किष्किन्ध[119], नालिकेर[120], पाश[121], कोसल[122], काशी[123], मगध[124], मिथिल[125], उत्कल[126], कर्कर[127], मुद्रसंग्राम[128], शौण्डक[129], मुख्य[130], रुद्रमुख्य[131], ताम्रलिप्त[132], प्राग्ज्योतिष[133], वाजिमुख[134], अम्बष्ठ[135], पुरुषादक[136], वर्णकोष्ठ[137], विश्वोत्र[138], आममीनाशन[139], व्याघ्रवक्र[140], सौवीर[141], एकपादक[142], हिम[143], विन्ध्य[144], कुसुमापीड[145], दर्दुर[146], मलय[147], सूर्यवान्[148], राज्यसमृद्ध[149], अवन्ति[150],

---

119. वहीं.
120. वहीं.
121. वही, 3.37.18.
122. वही, 3.36.22.
123. वहीं.
124. वहीं.
125. वहीं.
126. वहीं.
127. वहीं.
128. वहीं.
129. वहीं.
130. वही. 3.36.23.
131. वहीं,
132. वहीं.
133. वहीं.
134. यो. महा. 3.36.23.
135. वहीं.
136. वहीं.
137. वही, 3.36.24.
138. वहीं.
139. वहीं.
140. वहीं.
141. वही, 3.36.24.40.
142. वही, 3.36.24, 56.
143. वही, 3.36.23.
144. वही, 3.36.30.
145. वहीं.
146. वहीं.
147. वही, 3.36.32.
148. वहीं.
149. वहीं.
150. वही, 3.36.32, 58, 37.8.

शाम्बवती[151], दशपुर[152], चक्रार[153], इषिका[154], आतुर[155], कच्छप[156], वनवास[157], उपगिरि[158], भद्रगिरि[159], नागर[160], दण्डक[161], नृराष्ट्र[162], साह[163], शैव[164], ऋष्यमूक[165], कर्कोट[166], वनबिम्बिल[167], पम्पानिवासी[168], कैरक[169], कर्कवीर[170], स्वेरिक[171], याकिस[172], धर्मपत्तन[173], पञ्जिक[174], कशिक[175], तृष्णखल्लूल[176], याद[177], ताम्रपर्णक[178], गोनर्द[179], कनक[180], दीनपत्तन[181], ताम्रीक[182], दम्भराकीर्ण[183],

151. वही, 3.36.31
152. वही, 3.36.32.
153. वहीं.
154. वहीं.
155. वहीं.
156. वहीं.
157. वहीं.
158. वहीं.
159. वहीं.
160. वही, 3.36.33.
161. यो. महा. 3.36.33. 37.13.
162. वही, 3.36.33.
163. वहीं.
164. वहीं.
165. वहीं.
166. वहीं.
167. वहीं.
168. वही, 3.36.34
169. वहीं.
170. वहीं.
171. वहीं.
172. वहीं.
173. वहीं.
174. वहीं.
175. वही, 3.36.25.
176. वहीं.
177. वहीं.
178. वहीं.
179. वहीं.
180. वहीं.
181. वहीं.
182. वही, 3.36.36.
183. वहीं.

सहकार[184], ऐणक[185], वैतुण्ड[186], तुम्बवनला[187], जिन[188], द्वीपकर्णिका[189], कर्णिकाभा[190], शिवि[191], कोंकण[192], चित्रकूटक[193], कर्णाट[194], मंट[195], वटक[196], महाकटकी[197], आन्ध्र[198], कोलागिरि[199], आवन्तिक[200], विचेरिक[201], चण्डायत्त[202], देवनक[203], क्रौञ्चवाह[204], शिलाक्षारोद[205], भोनन्द[206], मर्दन, मलय, चित्रकूट के शिखर[207], तथा लंका के निवासी रक्षोगण[208], गिरिमति[209], वेणुपति[210], नरपति[211], फल्गुणक[212], माण्डव्य[213], अनेकनेत्रक[214], पुरुकुन्द[215], पार[216], भानुमण्डल[217], भावन[218],

184. वहीं.
185. वहीं.
186. वहीं.
187. वहीं.
188. वहीं.
189. वहीं.
190. यो. महा. 3.36.37.
191. वहीं.
192. वहीं.
193. वहीं.
194. वही, 3.36.37, 37.16, 17.22
195. वही, 3.36.37.
196. वहीं.
197. वहीं.
198. वही. 3.36.38
199. वहीं.
200. वहीं.
201. वहीं.
202. वहीं.
203. वहीं.
204. वहीं.
205. वही, 3.36.39.
206. वहीं.
207. वहीं.
208. वहीं.
209. वही, 3.36.51.
210. वहीं.
211. वहीं.
212. वही, 3.36.52.
213. वही. 3.36.52, 37.5.
214. वही, 3.36.52.
215. वहीं.
216. वहीं.
217. वहीं.
218. वही, 3.36.52.

वन्मिल[219], नलिन[220], दीर्घ[221], रंग[222], स्तनिक[223], गुरूह[224], लुह[225], स्त्रीराष्ट[226], मद्र[227], वारेव[228], यौधेय[229], मालव[230], शूरसेनिक[231], राजन्य[232], अर्जुना[233], तनय[234], त्रिगर्त[235], एकपाद[236], क्षुद[237], स्वस्तवासी[238], अबल[239], प्रखर[240], शाक[241], क्षेम[242], घूर्ति[243] दशधानागा[244], अवसन्य[245], हन्यसनास्तथा[246], धानदा[247], सरका[248], वाटधाना[249], अन्तरद्वीप[250], गान्धार[251],

219. वही, 3.36.53.
220. वही. 3.36.53.
221. वहीं.
222. वहीं.
223. वहीं.
224. वहीं.
225. वहीं.
226. वहीं.
227. वहीं.
228. वहीं.
229. वहीं.
230. वहीं, 3.36.55, 64.
231. वहीं, 3.36.55, 37.4.
232. वहीं, 3.36.56.
233. वहीं.
234. वहीं.
235. वहीं.
236. वहीं.
237. वहीं.
238. वहीं.
239. वहीं, 3.36.57.
240. वहीं.
241. वही, 3.16.57, 37.17, 25.
242. वहीं.
243. वहीं.
244. वही. 3.36.57.
245. वहीं.
246. वहीं.
247. वही, 3.36.58.
248. वहीं.
249. वहीं.
250. वहीं.
251. वहीं.

सुरा[252], तक्षशिला[253], बीलव[254], गोधनी[255], पुष्करावर्त[256], नाभिमती–भूमि[257], तिक्षाभूमि[258], कालवराभूमि[259], काहक[260], सुरभूतिपुर[261], रतिकादर्श[262], अन्तरादर्श[263], पिंगल[264], पाण्डत्य[265], यातुधान[266], मानव[267], नांगना[268], हेमताला[269], स्वस्वमुखा[270], शान्तिक[271], दरद[272], कीकट[273], वाहलीक[274], नाग[275], सुराष्ट[276], मालदेश[277], माध्यमिक[278], धर्मारण्य[279], पांचाल[280], कुरुक्षेत्र[281], सारस्वत[282], पौरव[283], माथुर[284],

---

252. वहीं.
253. वही, 3.36.59.
254. वहीं.
255. वहीं.
256. वहीं.
257. वही. 3.36.60
258. वहीं.
259. वहीं.
260. वहीं.
261. वहीं.
262. वही, 3.36.61.
263. वहीं.
264. वहीं.
265. वहीं.
266. वहीं,
267. वही, 3.36.62
268. वहीं.
269. वहीं.
270 वहीं.
271. वही, 3.36.46, 37.11.
272. वही, 3.36.65, 37.14.
273. वही, 3.36.41.
274. वहीं.
275. वही, 3.72.31.
276. वही, 3.17.22.
277. वही, 3.17.23.
278. वही, 3.37. 3–4.
279. वही, 3.37.7.
280. वहीं.
281. वहीं.
282. वहीं.
283. वही, 3.37.43.
284. वही, 3.37.6.

पाञ्चनद[285], कैकय[286], पारसीक[287], शूद्र[288], सिद्धखण्ड[289], महाराज्य[290], कालिरूह[291], धूम्र[292], तुम्बक[293], तोकनि[294], अन्तकपञ्चजन[295], भारक्षत[296], कर्क[297], गिरिपर्ण[298], वम[299], कालुत[300], ब्रह्मपुत्र[301], कुणिद[302], खदिन[303], रन्ध्रराज्य[304], वन[305], राष्ट्र[306], केडव[307], सिंहपुत्र[308], वामन[309], सावकच[310], चापलवाह[311], कामिर[312], अभिसासद[313], जाव[314], अर्क[315], वलोल[316], कुवि[317], गुड[318],

---

285. वही, 3.37.8.
286. वही, 3.37.29.
287. वही, 3.37.25.
288. वही, 3.36.40.
289. वही, 3.36.41.
290. वही, 3.36.40
291. वही, 3.36.41.
292. वही, 3.36.42.
293. वहीं.
294. वही, 3.36.43.
295. वही, 3.36.46
296. यो. महा., 3.36.47
297. वही, 3.36.48
298. वहीं,
299. वहीं,
300. वही, 3.36.64
301. वहीं,
302. वहीं,
303. वहीं,
304. वहीं,
305. वहीं,
306. वहीं,
307. वही, 3.36.65
308. वहीं,
309. वहीं,
310. वहीं,
311. वहीं,
312. वहीं,
313. वही, 3.36.66
314. वहीं,
315. वहीं,
316. वही, 3.36.66
317. वहीं,
318. वही, 3.37.4

अश्वघ[319], नायक[320], उत्तम[321], ज्योतिभद्र[322], मद[323], सालूक[324], कोघमालास्य[325], दौर्ज्ञेय[326], पिप्लायन[327], पाण्डुनगर[328], सौग्रीव[329], गुरुग्रह[330], पारिपात्र[331], कुराष्ट्र[332], यामुन[333], उदुम्बर[334], राज्याव्ह[335], उज्जिहान[336], कालकोटिक[337], नलद[338], दशक[339], निगड[340], कंक[341], काश[342], नार्मद[343], साल्व[344], कुन्ति[345], अहीन[346], पाण्डुनगर[347], तंदेहक[348], ब्रह्मावत्सनक[349], नीप[350], भद्र[351],

---

319 वहीं,
320. वहीं,
321. वहीं,
322. वहीं,
323 वहीं,
324. वही, 3.37.5
325. वहीं,
326. वहीं,
327. वहीं,
328. वहीं.
329. वहीं
330. वहीं
331. वही, 3.37.6
332. वहीं,
333 वहीं,
334. वहीं,
335. वहीं,
336. वहीं,
337. वहीं,
338. वही, 3.37.16
339. वही, 3.37.17
340. वही, 3.37.20
341. वही, 3.37.29
342. वही, 3.37.31
343. वही, 3.37.32
344. वही, 3.37.33
345. वही, 3.37.34
346. वही, 3.37.35
347. वहीं,
348. वही, 3.37.36
349. वही, 3.37.37
350. वहीं,
351. वही, 3.37.38

काष्ठयोध[352], मतंगजा[353], मित्रगर्त[354], वलिन[355], कन्दाकस्थल[356], तांजिगीषवन[357], तुषाकामेखल[358], कच्छलन[359], प्रस्थवास[360], कौन्त[361], द्विपि[362], बाहुधान[363], क्षुद्रखर्वग[364], हिमालय[365], कैलास[366], भद्रगिरि[367], हेमगिरि[368], क्रौञ्च[369], कुरार्पण[370], कोलगिरि[371], अस्तपर्वत[372], चक्रवात[373], लोकालोक[374], महेन्द्र[375], माल्यवान्[376], चित्रकूट[377], गन्धमादन[378], अञ्जनगिरि[379], मन्दर[380], मणिमान्[381], मेरु[382], पारियात्र[383], रैवतक[384],

---

352. वही, 3.37.39
353. वहीं,
354. वही, 3.37.40
355. वही, 3.37.41
356. यो. महा. 3.37.47
357. वही, 3.37.53. अच्युत ग्रन्थ माला संस्करण, पृ. 260
358. वही, 3.37.57
359. वहीं.
360. वही, 3.37.55
361. वहीं.
362. वही, 3.37.56.
363. वहीं.
364. वही, 3.37.58.
365. वही, 3.24.13. 36.54. 62. 74. 13. 20. 68.2. 76.17. 82.21.
366. वही, 3.36.55, 62, 86.1.
367. वही, 36.30–32.
368. वही, 3.36.40–41.
369. वही, 3.36.54.62.
370. वही, 3.36.44–45.
371. वही, 3.36.30–38.
372. वही, 3.36.45.
373. वहीं.
374. वही, 3.25.27. 73.52.
375. वही, 3.17.24. 36. 49.
376. वही, 3.36.22–25.
377. वही, 3.36.37.39.
378. वही, 3.27.57.
379. वही, 3.36.21. 71.22.
380. वही, 3.37. 26. 27.28.
381. वही, 3.36.45.
382. वही, 3.73.59. 36 54–55.
383. वही, 3.36.50.
384. वही, 3.36. 40–42

उदयगिरि[385], उपगिरि[386], वसुमान्[387], ऋष्यमूक[388], विन्ध्य[389], दर्दुर[390], जम्बूद्वीप[391], प्लक्षद्वीप[392], कुराद्वीप[393], क्रौञ्चद्वीप[394], श्वेतद्वीप[395], शाकद्वीप[396], पुष्करद्वीप[397], शाल्मलीद्वीप[398], गोमेदद्वीप[399], कर्णिकाद्वीप[400] तथा अन्तरद्वीप[401] के आधार पर भी उत्पत्ति प्रकरण को गुप्तोत्तरकाल में ही रखा जा सकता है।

इस प्रकार सांख्यिकीय पद्धति के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि प्रश्नगत ग्रन्थ की प्रथम आवृत्ति उत्पत्ति प्रकरण तक ही हुई होगी और इस आवृत्ति के काल को गुप्तकाल से पूर्व नहीं रखा जा सकता है। प्रश्नगत ग्रन्थ में एक ओर लीला तथा सरस्वती का कथानक उसके अन्य प्रकरणों को परवर्ती काल में रचे गये होने की ओर संकेत करता है साथ ही इस प्रकार का वर्णन तथा आलोच्य ग्रन्थ में अन्य ग्रन्थों की प्रतिकृतियों का बाहुल्य उसमें प्रक्षिप्त अंशों की आवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

सम्भवतः अपने सर्वप्रथम आवर्तन में यह ग्रन्थ वसिष्ठ–राम–संवाद नाम से प्रसिद्ध रहा होगा।[402] ग्रन्थ में 'वसिष्ठ–राम–संवाद' नाम की 'मोक्षोपाय' नाम के साथ आवृत्ति उसके प्रथम नाम 'वसिष्ठ–राम संवाद' होने की बात स्पष्ट करती है। इसी क्रम में मयंकर का यह कथन मनन योग्य है, जिसमें वे कहते हैं कि भीखन लाल अत्रेय का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि सनत्सुजातीय के भाष्य में योगवासिष्ठ महारामायण के दो श्लोकों का उद्धरण है। इससे यह सिद्ध होता है कि तत्सम्बन्धित भाष्य से पूर्व अर्थात् शंकराचार्य के पूर्व योगवासिष्ठ महारामायण ग्रन्थ विद्यमान था।[403] इसी क्रम में यह विचार भी सम्मिलित किया जा सकता है कि सनत्सुजातीय में एक स्थल पर अपने सम्पूर्ण दर्शन को एक महत्त्वपूर्ण योग–शास्त्र बताया गया है।[404] यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि महाभारत के चार प्रमुख चिन्तनपूर्ण

---

385. वही, 3.36.25.
386. वही, 3.36.32.
387. वही, 3.36.55,62.
388. वही, 3.36.33.
389. वही, 3.30.15, 68.3.
390. वही, 3.36.30.
391. वही, 3.25.8.14, 31.10, 68.11, 73.59–61, 74.13.
392. वही, 3.25.22.
393. वही, 3.25.17, 73.57.
394. वही, 3.25.19, 73.55.
395. वही, 3.73.56.
396. वही, 3.25.15.
397. वही, 3.25.23, 73.53.
398. वही, 3.25.20.
399. वही, 3.74.54.
400. वही, 3.36.36.
401. वही, 3.36.58.
402. वसिष्ठरामसंवादं मोक्षोपायकथां शुभाम्।
 जात स्वभावो राजेन्द्र वदामि श्रूयतां बुधः।। (यो. महा. 1.1.53)
403. Mainkar, T.G., op. cit., p. 122.
404. अध्यापयेन्महदेतद् यशस्यं वाचो विकाराः कवयो वदन्ति।
 अस्मिन् योगे सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।
 (महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2045 सनत्सुजातपर्व, 45.18)

दर्शन पर्वों—उद्योगपर्व में सनत्सुजातीय, भीष्मपर्व में भगवद्गीता, शान्तिपर्व में मोक्षधर्म, तथा आश्वमेधिकपर्व में अनुगीता का विशेष स्थान है। जहाँ तक सनत्सुजात का प्रश्न है, रचनाकाल की तिथिक्रम के अनुसार वी.जी. राहुरकर द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व को वह काल मानते हैं, जब उसकी आवृत्ति महाभारत में हुई होगी।[405] प्रश्न उठता है कि यदि सनत्सुजात, जो कि एक योगशास्त्र कहा गया है, द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व का है, जिसके भाष्यकार शंकराचार्य ने योगवासिष्ठ महारामायण को उद्धृत किया है तो क्या योगवासिष्ठ महारामायण अपनी प्रथम आवृत्ति में द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से भी पहले रहा होगा?

इस विषय में दो विशेष बातों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहेंगे— प्रथम तो वह, जिसके अन्तर्गत ऐतिहासिक विधि द्वारा सांख्यकि पद्धति से यह स्पष्ट किया गया है कि ग्रन्थ का उत्पत्ति प्रकरण गुप्तोत्तर काल की ही देन है। द्वितीय यह कि वी. राघवन् ने स्पष्ट रूप से यह मत प्रतिपादित किया है कि योगवासिष्ठ महारामायण के उत्पत्ति प्रकरण में यह कहा गया है कि—

अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमद्वयम्।
अत्र प्रमाणं वेदान्ता गुरवोऽनुभवस्तथा।।[406]

अर्थात् इस ब्रह्माण्ड का जो कुछ यह प्रपञ्च है वह सब मिथ्या है केवल अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, इस विषय में मुख्य प्रमाण वेदान्त हैं और वेदान्त के तात्पर्य को अनुभव करने के लिए गुरु महात्मा लोग हैं और अन्त में फलीभूत अपना अनुभव है, जो सरस्वती के द्वारा लीला को उपदेश की भाँति अपनी सम्पूर्णता में शंकराचार्य की एक इतर रचना 'ब्रह्मानुचिंतन' (वाणी विलास संस्करण, खण्ड 16, पृ. 85) से लिया गया है।[407] अब यदि सनत्सुजातीय के भाष्यकार द्वारा योगवासिष्ठ महारामायण का कोई अंश उद्धृत किया गया तो उक्त ग्रन्थ को सनत्सुजात के भाष्यकार से पूर्व का कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि यह सम्भव है कि शंकराचार्य और योगवासिष्ठ महारामायणकार सम–सामयिक रहे हों। महाभारत के अनुशासनपर्व के छठे सर्ग तथा आलोच्य ग्रन्थ के मुमुक्षु—व्यवहार प्रकरण के दसवें सर्ग का तुलनात्मक अध्ययन कर्म पर भाग्य की महत्ता समान रूप से स्पष्ट करता है, दूसरी ओर प्रश्नगत ग्रन्थ के निर्वाण प्रकरण का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि 'हे पाप शून्य, युग—युग में— प्रत्येक द्वापर के अन्त में निर्माताओं के भेद से अनेक पाठ वाले, एकार्थक तथा अत्यन्त विस्तारयुक्त पुराण प्रवृत्त होते हैं— इसका मुझे स्मरण है[408] युग—युग में वेद आदि शास्त्रों के विद्वान् व्यास, वाल्मीकि आदि महर्षियों द्वारा विरचित उन्हीं महाभारत, रामायण आदि इतिहासों का भी मैं स्मरण करता हूँ[409] महाराज, मैं आश्चर्यजनक महती घटनाओं से परिपूर्ण, प्रसिद्ध रामायण से भिन्न दूसरे रामायण नामक लक्षश्लोकात्मक ज्ञानशास्त्र का, जो ब्रह्मदेव द्वारा वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि को उपदिष्ट था, स्मरण करता हूँ[410] उस ज्ञानशास्त्र में

---

405. Sinha, Gopal Chandra Commemoration Volumes, 16-18, 'Jourrnal of Akhil Bharatiya Sanskrit Parishad', Lucknow, January 1984-July 1986, pp. 285-286.

406. यो. महा. 3.21.35.

407. Raghvan, V., Journal of Oriental Research, Madras, 1939, Volume 13, p. 120.

408. एकार्थानि समग्राणि बहुपाठनि मेऽनघ।
पुराणानि प्रवर्तन्ते प्रसृतानि युगं प्रति।। (यो. महा., निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध 22.20)

409. पुनरस्तानेव तानेवमन्यानपि युगे—युगे।
वेदादिवित्प्रचितानितिहासान् स्मराम्यहम्।। (वही, 21)

410. इतिहासं महाश्चर्यमन्यं रामायणाभिधम्।
ग्रन्थलक्षप्रमाणं च ज्ञानशास्त्रं स्मराम्यहम्।। (वही, 22)

मनोयोग देने वाले महानुभावों के अन्तःकरण में हाथ में फल के सदृश, 'श्रीराम जी के भाँति व्यवहार करना चाहिए और रावण के विलास की भाँति विलास नहीं करना चाहिए' यह ज्ञान समर्पित किया गया है।[411] उस ज्ञानशास्त्र के निर्माता महर्षि वाल्मीकि हैं और जब उनके द्वारा 'वसिष्ठ–राम–संवाद' रूप दूसरे बत्तीस हजार श्लोकात्मक महारामायण रूप ज्ञानशास्त्र की जो रचना की जायगी, उसका भी दिव्यज्ञान की सामर्थ्य से मैं स्मरण करता हूँ, आप भी समय आने पर उसे जान जाँयगे।[412] महाराज वसिष्ठ जी, इस भावी 'वसिष्ठ–राम–संवाद' रूप ज्ञानशास्त्र की पूर्वकल्प के अथवा दूसरे किसी और वाल्मीकि नाम के जीव के द्वारा यद्यपि पहले ही रचना की गयी थी, तथापि कल्प के अन्त में व्यवहारकर्ताओं की परम्पराओं के उठ जाने से वह उच्छेद को प्राप्त हो गया था, अतः वर्तमान में उसकी पुनः बारहवीं बार रचना की जायगी।[413] महाराज, इसी ज्ञानशास्त्र के बराबर दूसरा ज्ञानशास्त्र था, जिसकी भारत (महाभारत) नाम से प्रसिद्धि थी एवं प्राक्तन व्यास जी के द्वारा रचना की गयी थी और जो इस समय में जगत् में विस्मृति को प्राप्त हो चुका है– मैं उसका स्मरण करता हूँ।[414] उसी (पूर्वकल्प के) अथवा दूसरे किसी और व्यास जीव द्वारा किये गये तथा कल्पान्त में विस्मृति को प्राप्त हुए उसकी (भारत, महाभारत की) सातवीं बार रचना की जायगी[415] अर्थात् जिस समय आलोच्य ग्रन्थ का निर्माण पूर्ण हो रहा होगा, उस समय से पूर्व भी यह ग्रन्थ अपनी किसी अवस्था में विद्यमान रहा होगा, जिसे हम अनुमानतः उसके प्रथम चरण में 'वसिष्ठ–राम–संवाद' तथा द्वितीय चरण में 'मोक्षोपाय' अथवा 'योगवासिष्ठ' नाम से अभिहित कर सकते हैं क्योंकि नवीं शताब्दी के मध्य में ही 'मोक्षोपाय–सार' 'योगवासिष्ठ–सार' नाम से ग्रन्थ की संक्षिप्ति प्रचलित थी।[416] परवर्ती युग में जब इस ग्रन्थ में अन्यान्य विषयों का निवेशन हुआ तो यह ग्रन्थ योगवासिष्ठ महारामायण के नाम से विख्यात हुआ होगा। इस प्रकार ग्रन्थ की प्रथम आवृत्ति के समय का निरूपण चार सौ तिहत्तर–चौहत्तर ईसवी से लेकर सात सौ अट्ठासी से आठ सौ बीस ईसवी के लगभग हो गया प्रतीत होता है, क्योंकि इसके उत्पत्ति प्रकरण में कालिदास का भावसाम्य द्रष्टव्य है और कालिदास के ग्रन्थ की प्रतिवृ्ति सर्वप्रथम वत्सभट्टी के मन्दसौर से प्राप्त अभिलेख में देखी जा सकती है, जो उक्त तर्क को सर्वथा बल प्रदान करता है। इसके बाद ही यह अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रन्थ का समापान स्थिति प्रकरण से लेकर निर्वाण प्रकरण तक़ के सम्पूर्ण अंशों के निवेषन के साथ बारहवीं ईसवी के लगभग हो गया होगा।

इस सन्दर्भ में यह विशेष तथ्य ध्यान देने योग्य है कि आलोच्य ग्रन्थ का रचयिता पुराणों के भिन्न–भिन्न संस्करणों के विषय में जानता है साथ ही वह महाभारत के सप्तम संस्करण के विषय में भी अपनी जानकारी प्रस्तुत करता है। हमें ज्ञात है कि बुद्ध पूर्व काल में महाभारत 'जय' नाम से विख्यात था तदनन्तर जब गुप्तकाल में इसका जनमानस में प्रचलन हुआ तो इसे 'भारत' कहा गया और तदनन्तर इसका 'महाभारत' नाम पड़ा[417] जिसके 'भारत' नाम की स्पष्ट

---

411. रामवद्व्यवहर्तव्यं न रावणविलासवत्।
इति यत्र धियां ज्ञानं हस्ते फलमिवाऽर्पितम्।। (वही, 23)

412. कृतं वाल्मीकिना चैतदधुना यत्करिष्यति।
अन्यच्च प्रकटं लोके स्थितं ज्ञास्यसि कालतः।। (वही, 24)

413. वाल्मीकिनाम्ना जीवेन तेनैवाऽन्येन वा कृतम्।
एतच्च द्वादशं वारं क्रियते विस्मृतिं गतम्।। (यो. महा. निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध 25)

414. द्वितीयमेतस्य समं भारतं नाम नामतः।
स्मरामि प्राक्तनव्यासकृतं जगति विस्मृतम्।। (वही, 26)

415. व्याससभिधेन जीवेन तेनैवाऽन्येन वा कृतम्।
एतत्तु सप्तमं वारं क्रियते विस्मृतिं गतम्।। (वही, 27)

416. Mainkar, T.G., op. cit., pp. 69, 144, 164, 167, 177.

417. Majumdar and Pusalker, 'The History and Culture of the Indian People', Bombay, 1988, Vol. 3, pp. 420, 421, Vol. 2, pp. 90, 96, 103, 107, 163, 165, 166, 221, 245-52, 255, 276, 203, 304, 305, 320, 331, 334, 402, 405, 447, 453. Keith, A.B., 'A History of Sanskrit Literature', Delhi, 1973, pp. 9, 12, 13, 41, 45, 70, 109, 137, 159, 165, 227, 242, 248, 256, 261, 264, 276, 279, 362, 371, 439, 451, 480, 489. पाणिनि, अष्टाध्यायी, वाराणसी, सं. 1981. 4.2.56. Winternitz, M., 'History of Indian Literature', Delhi, 1987, p. 398, 465. Pargiterr, F.E., Ancient Indian Historial Tradition, Delhi, 1962, pp. 77, 119 ff. Srivastava, B.N. Harsha and His Times, Varanasi, 1976, p. 320 n.

जानकारी योगवासिष्ठ महारामायणकार को है परन्तु महाभारत तथा उसके अन्तिम नाम अर्थात् भारत–सावित्री[418] की जानकारी प्रश्नगत ग्रन्थ के रचयिता को नहीं है, अन्यथा वह इसका भी उल्लेख करता। सम्भवतः महाभारत की चली आ रही साहित्यिक परम्परा को योगवासिष्ठ महारामायण में निभाया गया और इस प्रकार पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी तक इस ग्रन्थ की रचना विभिन्न चरणों में होती रही।

विविध दृष्टियों से प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त अध्ययन के बाद भी प्रश्नगत ग्रन्थ में अभी अन्य विषय ऐसे हैं, जिनका अध्ययन, मनन, संश्लेषण–विश्लेषण तथा अनुशीलन इसलिए आवश्यक है कि सामयिक दृष्टि से आलोच्य ग्रन्थ के रचनाकाल के विभिन्न चरणों पर एक निश्चित मत प्रतिपादित किया जा सके। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए यहाँ सामयिक रूप में उन विषयों को उल्लिखित कर देना उचित है, जिन पर किया गया गहन अध्ययन हमारे अध्ययन की रिक्ति को पूर्ति प्रदान कर सकता है। ये विषय निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट किये जा रहे हैं–

तालिका

	विषय		*सन्दर्भ ग्रन्थ–योगवासिष्ठ महारामायण*
(क)	**सामाजिक व्यवस्था–**		
	शारीरिक संरचना	:	3.36.29, 51.16, 68. 4–6, 19, 106.41, 50, 56, 107.4 तथा स्थिति प्रकरण का पच्चीसवाँ सर्ग.
	दासत्व	:	3.107.17.
	अन्तिम संस्कार	:	3.35.24, 39.12, 56.47–49, 58.5–8, 4.16.22.
	आभूषण	:	1.10.13, 21.5, 33.15-17, 3.4.15, 28.33.34, 34. 11, 38.25, 43.56, 51.7, 59.9, 82.49, 120.19, 5.28.7, 45.13, निर्वाण प्रकरण, पूर्वार्द्ध 106.30, 37, 45, 109.33, 115.34.
	शिल्प एवं स्थापत्य	:	1.3.37–38, 3.73.56, 28.44, 51.10, 4.25.13, 32.13, 5.45.17.
	रीति–रिवाज	:	1.3. 25–27, 28, 4.1, 2, 9, 6. 7–9, 14–16, 24–26, 32, 38, 10.2, 32. 5–7, 10, 2.1.20, 3. 4.10, 13, 16.1.7, 11, 76.7, 8. 9, 13, 82.44, 106.51-58, 107.1, 9, 120.41, 121.6.
	क्रीडा	:	3.16.10, 14, 15, 4.32.18.
	आश्रम–व्यवस्था	:	1.1. 23–24, 3.41.18, 20.
	बर्तन	:	1.6.21, 33.7, 3.29.7, 51.2, 101.24, 4.16.11.
	जाति–व्यवस्था	:	1.1.9–10, 3.86.3, 89. 9–10, 4.16.71, 48. 36,

418. इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्मधिगच्छति।। (महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व, 5.64)

		5.20. 16–17, 26–27, 47.25, 27, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध 83.11, 124.1, 23.2, 12, उत्तरार्ध 108.10, 215.15, 16, पूर्वार्द्ध 23.12, 3.27.48, 51.6, 106. 46, 50, 107.1, 6, 120.8–9, 23, 107.16, 17, 5. 45.2, 8, 46.16, 21–23, 30, 47.25, 35, 42, 57.
वेशभूषा	:	1.33.7, 15, 16, 17, 3.4.15, 43.56, 4.51.8, 3. 28.33–34, 29.8, 106.41, 107.9–10, 17.52, 59.8, 35.8, 36.17, 36.36, 37.9, 25, 31, 33, 38. 27, 46.3,47.15, 17, 4.29. 32–33, 3.43.56, 82. 49, 120.19, निर्वार्ण प्रकरण पूर्वार्द्ध, 106.24,30, 32, 45, 115.34, 3.29.8, 9, 25, 35. 8.17, 36.36, 37. 9, 25, 4.15, 17.52, 37.31, 27, 1.10.13, 21.5, 53.7, 15, 16, 17, 3.4.14–17, 16.12–13.
परिवार	:	3.29.5–11, 109.6.
सती व्यवस्था	:	5.19.20–21.
खान–पान	:	3.16.13, 28.32, 38, 44, 36.24, 54, 76.16, 101. 25, 106.46, 54, 63, 64, 72, 107, 13, 5.58.10, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध 106.24, 112.32, 35, 120.1.
असामाजिक तत्त्व	:	3.51.3, 5, 6, 7, 8, 12, 13, 82. 42–43, 53–54, 4.10.65, 5.37.18, 46.38.
शिक्षा	:	1.1. 9–10, 6.45, 48, 53, 29. 15, 32.6,2.1. 21–24, 22–23, 8.20, 10.19, 11.11.12, 17, 3. 12.14, 15.21, 54.32, 39, 77.20, 22, 29, 56. 21–22, 104.30, 25, 4.10.71, 13.4, 32.15, 33, 55, 51.32, 34, 62.1, 5.22.1, 44.4, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध 77.45, 103.39, 42–43, 20–23, 25, 44, 45, 8.6, 22.1, 180.22–23, 197.34.
संगीत	:	3.16.16, 24.16, 104.9, 4.6.6, 15, 25.17, 5.46. 11, 1.1.29, 30, 3. 28, 24.8, 21, 33.5, 3.16.16, 17.26, 32. 17, 20, 34.9.38.12, 51.14, 15, 59. 5.104.22, 106.72, 4.6.15, 5.39.7, 46.9, निर्वाण प्रकरण उत्तरार्ध 16.16.22.
साधु, संत तथा ऋषि	:	1.1.4–5, 6.10–12, 17–23, 32.5, 10, 33.5, 2, 6, 15, 16, 18, 19, 2.1, 4, 7, 19, 43, 2.14, 3. 21, 30, 8.21, 11.6–8, 11, 12, 17, 3.24.29, 90. 4, 106.20, 28, 109.30, 4.5.7, 9, 48. 16, 18,

19, 3.51. 1, 5.1.34, 38–39, 19.11, 12, 20, 29, 51.13, 58.21, 61.17, 65.20, 23, 85. 21–23, 84.1, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध 14.3, 5, 22.6, 8, 74. 18, 117.4, 23.32, 113.38, 115.50, 120.19, 180.3.

विवाह : 3.106.49, 51, 52, 58, 70–72, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध, 106.5, 6, 10, 11, 14, 15, 19, 20, 21, 22–24, 31, 32, 52, 53, 57, 59, 26, 29, 30, 36–38, 36–38, 54–56.

स्त्री : 1.10.12, 16, 20, 31, 30.6, 32.8, 2.1.24, 3.15. 25–28, 31, 33, 17.20, 55, 28.34, 39, 28.50, 53, 29. 5–7, 8, 9, 10, 11, 12–14, 36.54, 37. 19, 38.34, 43.48, 53, 54, 51.2, 3, 8, 10, 12, 22, 73.66, 89.8, 10, 19, 21–22, 90.5, 104.9, 106.40, 41, 107.3, 16.3, 16, 17, 5.45.45, 6. 115.34, 3.52.48, 120.24.

(ख) राजनैतिक–व्यवस्था–राजा का चयन : 5.45, 28–29.

सेना : 1.8. 2–4, 23, 3.32.8,9, 36.20, 8, 16, 17, 35. 13, 19, 36.6, 7, 11, 12, 13, 14, 15–17, 44. 7, 47.25, 29, 6.108.11, 3.17.21, 35.1, 13, 36. 5, 51.9, 4, 6.108.11, 3.17.21, 32.26, 33.17, 35.13, 36.5, 43.22, 46.27, 47.26, 23, 28, 37. 8, 48, 46.5–7, 9, 50.23, 6.26.30, 47, 108.37, 112.25.

रणनीति : 3.32.4, 7–9,10, 33.4, 8, 19, 34.19, 24, 43, 35.11, 13, 36.3–8, 10–12, 13–15, 16–17, 37.53, 38.35, 43.8, 12, 14, 43.22, 53–55, 56, 58, 44.6, 10, 46.20, 27, 47.23, 28, 30, 48.26, 50.20, 21, 23–25, 27, 28, 37–42, 44, 47, 48, 51.1, 8, 4.29.3–4, 28.7, 8, 6.108.43–44, 110. 2,12, 15, 20, 109.2–4, 5–7, 10.

राजा, दरबार तथा राजमहल के आचार व्यवहार और साज–सज्जा : 3.51.18,14.22, 23, 5.3.11-12.46.1

उपाधियाँ : 3.51.11.

कूटनीतिक सम्बन्ध : 3.17.21, 23, 37.24, 38.8–10, 11, 12.

अस्त्र–शस्त्र	:	3.24.29, 32.5, 6, 20, 23, 24, 28, 33.4, 6, 7, 9, 11, 34. 10, 12, 35, 35.4,11, 36.11–16, 18, 37. 13, 15, 19, 24, 33, 37, 43, 44, 54, 56, 43. 6, 11, 36, 46.12, 21–24, 27, 31, 47.21–24, 26, 29, 33, 34, 48.3, 4, 6–9, 14, 22, 24, 28, 32, 33, 39, 43, 44, 47, 53, 54, 56, 61, 70, 75, 85, 49.4, 9, 10, 11, 12, 23, 35, 37, 50.3, 7, 8, 10, 11–13, 15–16, 21, 24, 25, 26, 28, 48, 4.10.22, 18, 25.13, 16, 26.28–31, 38–39, 45–46, 28.6, 10, 12–15, 6.111.20, 108.48.
राज्याधिकारी	:	3.104.21, 23, 24, 4.32, 19, 5.1.9, 33, 3.13-17, 28.2–3, 6.108.11,
राजा के कर्तव्य	:	3.78.36, 37-39 82.11-13, 46. 78. 40–41, 90. 2–3, 104.20, 5.41.32, 40.12, 58.14, निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध 52.11, 107.7, 108.7, 8, 23–25, 109.16, 20–21, 122.1.
राजदूत	:	6.108. 14–16, 17, 18, 19, 20–21.
राज्याभिषेक	:	3.51, 9, 11, 5.41. 26–27, 45.42–43, 35–39.
सार्वभौमिकता	:	3.51.15, 17.
राज्य का वर्गीकरण	:	3.36.31.
राजकोष	:	3.51.5.
(ग) आर्थिक–व्यवस्था जनमानस की आर्थिक स्थिति	:	2.11.13, 14, 3.28.34, 36, 38, 29.8.
कराधान	:	5.30.10.
व्यापार	:	5.58.10.
परिवहन	:	1.1.28, 3.16.15, 17, 17.21, 27, 36.8, 51.2.

इस प्रकार उपर्युक्त विषयों को संदर्भित करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के माध्यम से इस बात का निराकरण करने का सार्थक प्रयास किया गया है कि योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के विषय में विद्वानों की विभिन्न धारणाएं किन्तु निश्चित मत अलग–अलग क्यों हैं? गम्भीरता से विचार करने पर प्रतीत होता है कि बत्तीस हजार श्लोकों के स्तवकों से मण्डित यह विशाल ग्रन्थ रामायण का परिशिष्ट है। इसमें अनेक प्रक्षिप्त अंश हैं। इसकी पाण्डुलिपियों का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि अपनी सम्पूर्णता में यह शारदा लिपि में लिखा गया रहा होगा। इस लिपि का प्रचलन कश्मीर में सातवीं–आठवीं शताब्दी में हो गया था। दसवीं शताब्दी में इसी लिपि में लिखा गया एक लेख भी कश्मीर से प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में यह अनुमान किया जा सकता है

कि आलोच्य ग्रन्थ की प्रथम तथा द्वितीय आवृत्ति सातवीं से दसवीं शती के मध्य हो गयी होगी किन्तु जब तक इस विषय में प्रकरण–क्रम से ऐतिहासिक दृष्टिकोण रखते हुए अध्ययन न किया जाय तब तक रचनाकाल के विभिन्न चरणों की कालप्रक्रिया पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वाल्मीकि रामायण में घटित राम से सीता के वियोग का निरपेक्ष रूप में उल्लेख 'योगवासिष्ठ महारामायण' के अन्तर्गत देखा जा सकता है,[419] जबकि आलोच्य ग्रन्थ में वर्णित वसिष्ठ द्वारा श्री रामचन्द्र को दिये गये उपदेश अथवा उनके वैराग्य और बचपन में की गयी तीर्थयात्रा के विषय में 'रामायण' महाकाव्य में वर्णन प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार गम्भीरता से विचार करने पर भी हम मयंकर के इस विचार से सहमत नहीं हो सकते कि किसी स्थिति में प्रश्नगत ग्रन्थ सूत्र–काल से ही विद्यमान था, प्रत्युत यह कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ को 'रामायण' से परिचित होने के कारण तथा कालिदास के ग्रन्थों के प्रतिकृति स्वरूप में उद्धृत किये जाने के कारण प्रारम्भिक स्थिति में पाँचवीं शताब्दी से पूर्व विचार करना उचित नहीं है और न ही ऐसा विचार प्रस्तुत करने के लिए किसी पुष्ट आधार की प्राप्ति होती है।[420] स्पष्ट रूप से शोध विषय में निष्कर्ष रूपेण यह मत प्रतिपादित किया जा सकता हैं कि पाँचवीं से लेकर बारहवीं शताब्दी तक इस ग्रन्थ के रचनाकाल की सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। इस क्रम में ग्रन्थ के रचनाकाल के विभिन्न चरणों की स्थिति जो है, उसके लिए अलग प्रकरणों का भाषागत अध्ययन एवं प्रक्षिप्तांशों तथा ऐतिहासिक तथ्यों का मूल्याँकन आवश्यक है।

अतः सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में दो प्रमुख मतों को मुख्य रूप से स्पष्ट किया गया है। प्रथमतः योगवासिष्ठ महारामायण के रचनाकाल के सन्दर्भ में मत–मतान्तर होने का कारण यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ की रचना पाँचवीं शताब्दी ईसवी से बारहवीं शताब्दी ईसवी तक के काल–क्रम के विभिन्न चरणों की देन है। द्वितीयतः ग्रन्थ के उत्पत्ति–प्रकरण तक प्रथम आवृत्ति शंकराचार्य के समय के लगभग हो गई होगी, क्योंकि इसी समय अर्थात् नवीं शताब्दी के मध्य में जब इस ग्रन्थ की संक्षिप्ति हुई तो उसके अन्तर्गत आगे के प्रकरण में आये राजा यशस्कर की कथा आदि विभिन्न कथानकों का अभाव है, इसीलिए सम्भवतः उसके उत्पत्ति प्रकरण के बाद के सभी प्रकरणों का निवेशन नवीं शताब्दी के पश्चात् तथा लगभग बारहवीं शताब्दी ईसवी तक हुआ होगा, उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित प्रस्तुत तर्क प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की एक विशेषता है।

□ □ □

---

419. यो. महा. 1.1.57-66.

420. Mainkar, T.G., op. cit., p. 164.

परिशिष्ट

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

(हिन्दी–क्रम)

अग्रवाल, वासुदेव शरण, **भारत–सावित्री**, सस्ता सहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1957 ई.

अत्रेय, भीखन लाल, **योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त**, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस, 1956 ई.

अत्रेयी, बिस्वास, **प्राचीन भारत का राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास**, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1982 ई.

अवस्थी, अवध बिहारी लाल, **प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप**, प्रथम आवृत्ति, 1964 ई. कैलाश प्रकाशन, लखनऊ.

अश्वघोष, **बुद्धचरित**, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, 1966 ई.

आनन्द रामायण, द्वितीय संस्करण, मुंबई, 1926 ई.

उपाध्याय, बलदेव, **भागवत सम्प्रदाय**, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2010.

उपाध्याय, बलदेव, **भारतीय साहित्य में श्री राधा**, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, संवत् 2020.

उपाध्याय, भगवतशरण, **गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास**, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1969 ई., हिन्दी समिति ग्रन्थमाला, संख्या : 164.

उपाध्याय, भरत सिंह, **बुद्धकालीन भारतीय भूगोल**, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 1883

उपाध्याय, वासुदेव, **गुप्त–साम्राज्य का इतिहास** (दो खण्डों में) इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1969–1970 ई.

काणे, पाण्डुरंग वामन, **धर्मशास्त्र का इतिहास** (पाँच भागों में), अनुवादक–अर्जुन चौबे काश्यप, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग) राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ 1992ई.–1996 ई.

कादम्बिनी, हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली, अक्टूबर, 1962 ई.

कालिदास, **कुमारसम्भवम्**, आदितोऽष्टसर्गावधि मल्लिनाथकृतयाऽष्टमतोऽन्तावधि सीतारामकृतया च स जीविन्या समेतम्. सान्वय 'प्रकाश' – हिन्दी – व्याख्योपेतञ्च, हिन्दी व्याख्याकार – श्री पं. प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, 1994 ई., विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला, 105.

कालिदास, **रघुवंश महाकाव्य** (ब्रजभाषानुवाद एवं राजा लक्ष्मण सिंह के गद्यानुवाद–सहित) अनुवादक–श्री हरिदयालु सिंह 'श्री हरिनाथ', भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1973 ई.

कौल, कैलाशनाथ, **स्वतंत्र भारत हिन्दी दैनिक,** प्रातः कालीन संस्करण, लखनऊ, दिनाँक फरवरी 6, 1980 ई.

क्षेमेन्द्र, **बृहत्कथामञ्जरी,** द्वितीय संस्करण बम्बई, निर्णय सागर प्रेस, 1931 ई.

क्षेमेन्द्र, **बृहत्कथामञ्जरी,** काशीनाथ शर्मा पाण्डरंग और शिवदत्त शर्मा–संशोधित, नई दिल्ली, 1982 ई.

गुप्त, श्री मुनिलाल (अनुवादक) **श्री विष्णु पुराण** (मूल श्लोक और हिन्दी–अनुवाद सहित) मुद्रक तथा प्रकाशक– घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर। संवत् 1990 से 2014.

गोयल, श्रीराम, **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह,** मूलपाठ, अनुवाद तथा व्याख्या–सहित, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण, जयपुर, 1982 ई., बिहार प्रस्तर स्तम्भ, सं. 1.9.

गोरे, एन.जी., **केसरी,** पूणे.

गोस्वामी, श्रीरूप, **लघुभागवतामृतम्,** वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई.

स्वर्गीय चतुर्वेदी, द्वारका प्रसाद शर्मा तथा झा, पण्डित तारिणीश, **संस्कृत–शब्दार्थ कौस्तुभ,** प्रकाशक– रामनारायण लाल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1957 ई.

चौधरी, हेमचन्द्र राय, **प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,** किताब महल, इलाहाबाद, 1971 ई.

जीवानन्द, विद्यासागर, **पातञ्जल–दर्शनम्** (योग सांख्य) कलकत्ता, 1874 ई.

जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, **मथुरा की मूर्तिकला,** मथुरा संग्रहालय, मथुरा, 1965 ई.

जोशी, भंवरलाल, **काश्मीर शैव दर्शन और कामायनी,** चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, ऑफिस, वाराणसी, 1968 ई.

तिवारी, देवी प्रसाद, **प्राचीन भारत में विधवाएं,** तरुण प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, जनवरी, 1994 ई.

त्रिपाठी, रमाशंकर, **प्राचीन भारत का इतिहास,** मोतीलाल बनारसीदास, 1988 ई.

त्रिपाठी, शिवसागर, **इतिहास–पुराण निर्वचन कोश,** देवनागर प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1988 ई.

दण्डी, **काव्यदर्श,** व्याख्याकार– धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, मेहरचन्द लक्ष्मनदास, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1973 ई.

दीक्षित, भट्टोजि, **सिद्धान्त कौमुदी,** वाराणसी, 1941 ई.

दण्डी, **दशकुमारचरित,** निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1951 ई.

दीक्षित, भट्टोजि, **सिद्धान्तकौमदी,** श्री तारानाथ तर्क वाचस्पति भट्टाचार्य वाल्यूम I, II संकलित सरलाख्या, व्याख्या, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1871 ई. विद कमेन्ट्री आफ वासुदेव दीक्षित उत्तरार्धन, त्रिशिरः पुरवास्तयेन, त्रिचिनापल्ली, 1911 ई.

देवराज, नन्द किशोर, **भारतीय दर्शन,** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1992 ई.

निरंजनी, साधुराम प्रसाद, **श्रीयोगवासिष्ट भाषा** (दो भागों में) प्रकाशक– तेजकुमार बुक डिपो (प्र.) लिमिटेड, लखनऊ, उत्तराधिकारी, नवल किशोर बुक डिपो, लखनऊ, 1955 ई.

पतञ्जलि, **पातञ्जल–दर्शनम्** (योग सांख्य), कलकत्ता, 1974 ई.

पतञ्जलि, **पातञ्जल–योगसूत्राणि,** आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पुणे, 1932 ई.

पतञ्जलि, **महाभाष्य,** द्वितीय संस्करण, मुम्बई.

पाठक, विशुद्धानन्द, **उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास,** हिन्दी समिति, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, हिन्दी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ, 1977 ई.

पाणिनि, **अष्टाध्यायी,** (पदच्छेद – वृत्ति–वार्तिक–टिप्पणी–सहित) परिष्कर्ता गोपाल शास्त्री, 'दर्शनकेसरी', सम्पा. गोपालदत्त पाण्डेय एवं प्रह्लाद गिरि, संवत् 1981 (2वाल्यूम चौखम्बा सुर भारती ग्रन्थमाला, 19).

पाण्डेय, गोविन्द चन्द, **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास,** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1983 ई.

पण्डेय, राजबलि, **विक्रमादित्य** (संवत्–प्रवर्तक), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी–1, विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला – 25.

पाण्डेय, राजबलि, **हिन्दू धर्मकोश,** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रयाग) राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 1988 ई.

पुरातत्त्व विभाग की बुलेटिन, 1947 ई.–48 ई.

बहादुर, राधाकान्त देव, **शब्द–कल्पद्रुम,** 71 – पाथुरीघाट स्ट्रीट, कलकत्ता, शकाब्दा : 1808.

बाणभट्ट, **कादम्बरी,** सम्पादक वैद्य, पी.एल., पूणे, 1935 ई.

बाणभट्ट, **हर्षचरितम्,** मणिशंकर कविरचितया संकेतचितया संकेताख्यया, व्याख्यया समेतम्, बम्बई निर्णय सागर प्रेस, शक् 1814

बाणभट्ट, **हर्षचरितम्,** श्री शंकर विरचित–'संकेत' व्याख्योपेतम्, हिन्दी व्याख्याकारः पं. श्री जगन्नाथ पाठक साहित्याचार्य, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, संवत् 2015 विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला – 36.

बुल्के, कामिल, **रामकथा – उत्पत्ति एवं विकास,** हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, मुद्रक – महादेव प्रसाद, आजाद प्रेस, प्रयाग, 1950 ई.

भट्टाचार्य, तारानाथ – तर्क वाचस्पति, **वाचस्पत्यम्,** वाराणसी, 1962 ई.

भट्टाचार्य, रमाशंकर, **गरुड पुराण,** चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1964 ई.

भारवि, **किरातार्जुनीयम्,** कलकत्ता, 1815 ई.

मनु, **मनुस्मृति,** निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई 1925 ई.

माथुर, विजयेन्द्र कुमार, **ऐतिहासिक स्थानावली,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, द्वितीय संस्करण, जयपुर, 1990 ई.

मिराशी, वा. वि., **सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख,** अनुवादक– डॉ. व्यंकटेश विश्वनाथ द्रविड़, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1982 ई.

मिश्र, उमेश, **भारतीय दर्शन,** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग) राजर्षि पुरुषत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ।

मिश्र, उर्मिला प्रकाश, **प्राचीन भारत में नारी,** मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल, 1987 ई.

मिश्र, जयशंकर, **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,** बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 15 अगस्त, 1980 ई.

मुकर्जी, राधाकुमुद, हिन्दू सभ्यता, प्रथम संस्करण, अनु. वासुदेव शरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

राय, उदयनारायण, **गुप्त सम्राट और उनका काल,** लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977 ई.

रायचौधरी, हेमचन्द्र, **प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,** किताब महल, इलाहाबाद, 1971 ई.

राही, ईश्वरचन्द्र, **भारतीय लिपि का इतिहास खण्ड – 1,** पृ. 157, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1983 ई.

लाल, कन्हैया, भाषा टीका **'योगिनी तंत्र'** वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, संवत् 1949.

वाक्पति राज, **गउडवहो,** शंकर पाण्डुरंग पण्डित की प्रस्तावना–सहित, नारायण बापू जी उतगीकर, भण्डारकर, ओरिएन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूणे, 1927 ई.

वाक्पतिराज, **गउडवहो,** नरहरि गोविन्दसूर, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, अहमदाबाद, वाराणसी, 1975 ई.

वाल्मीकि, **योगवासिष्ठ,** श्रीमदच्युत ग्रन्थमाला– विश्वनाथ पुस्तकालयाध्यक्षेण सा. आ. पं. श्रीकृष्णपन्तशास्त्रिणा च विरचितेन भाषानुवादेन समलंकृतः, प्रकाशनस्थानम् – अच्युतग्रन्थमाला – कार्यालय : काशी, प्रथमावृतिः संवत् 2005.

वाल्मीकि, **योगवासिष्ठ,** श्रीवासिष्ठमहारामायणतात्पर्यप्रकाशव्याख्यासहित (प्रथमो भाग) प्रकाशन स्थान – अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी, संवत् 2033.

वाल्मीकि, **योगवासिष्ठ,** (पाण्डुलिपि, शारदालिपि) केन्द्रीय पुस्तकालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी.

वाल्मीकि, **योगवासिष्ठ** (पाँच खण्डों में), तारापुर, वाराणसी.

वाल्मीकि, **योगवासष्ठि** (पाण्डुलिपि, सटीक), टीका– वासिष्ठ चन्द्रिका, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ.

वाल्मीकि, **श्री योगवासिष्ठ महारामायण,** पूर्वार्द्धम् वैराग्यमुमुक्षूत्पत्तिस्थित्युपशमप्रकरणकात्मकम् विद्वज्जनपदानुरक्त बी. ए.एफ.ए.यू. इत्याद्युपपदालंकृतश्रीयुद्विद्वद्वर पं. ठाकुरप्रसादशर्माचार्य–विरचितभाषानुवादसमेतम्, मुबय्यां श्री ज्ञानसागरयन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये 'ज्ञानसागर' यन्त्रालये मुद्रितम् संवत् 1960 शकाब्दाः 1825.

वाल्मीकि, **योगवासिष्ठ महारामायण** (दो खण्डों में), आनन्द बोधेन्द्र की टीका–सहित, सम्पादक वासुदेव शास्त्री पानसेकर, तृतीय संस्करण, 1937 ई.

वाल्मीकि, **योगवासिष्ठसार** (टंकित पाण्डुलिपि), प्रस्तुतिकारक त्रिपाठी एस.पी., 1953 ई., आयुमान् सम्वत् 1915, टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ–विश्वविद्यालय, लखनऊ

वाल्मीकि, **रामायण,** मुद्रक और प्रकाशक – खेमराज श्री कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम–प्रेस, बम्बई, संवत् 2020

वाल्मीकि, **वासिष्ठ रामायण** (पाण्डुलिपि), विशेष विवरण, "वाशिष्ट चन्द्रिका विवृत्ति", आत्मसुख–कृत "वाशिष्ट विवरणो" भी, अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी, लखनऊ

विद्यालंकार, सत्यकेतु, **'मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति',** श्री सरस्वती भवन, मसूरी, 1977 ई.

विद्यालंकार, सत्यकेतु, **मौर्य साम्राज्य का इतिहास,** श्री सरस्वती सदन, मसूरी, 1976 ई.

विशाखदत्त, **मुद्राराक्षस,** लखनऊ, 1973 ई.

वेदालंकार, हरिदत्त, **प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,** हिन्दी समिति, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ.

वेदालंकार, हरिदत्त, **भारत का सांस्कृतिक इतिहास,** आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट–6, दिल्ली, 1992 ई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **अग्निपुराण,** आनन्दाश्रम, पूणे.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **अध्यात्म रामायण** (दो खण्डों में) कलकत्ता संस्कृत सीरीज़, अनुवादक मुनिलाल, हनुमान् प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वादश संस्करणम्, संवत् 2017.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **कालिका पुराण,** वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **कूर्म पुराण,** वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **गरुड पुराण,** वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **देवी भागवत पुराण,** खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खम्बाटा लेन, मुंबई

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **नारद पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **पद्मपुराण**, आनन्दाश्रम, पूना 1874 ई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **ब्रह्माण्ड पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **मत्स्य पुराण**, आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज़, पूणे, 1907 ई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **महाभारत**, प्रकाशक– गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2012 से 2045 तक चतुर्थ संस्करण.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **महाभारत**, खण्ड 6, भगवद्गीता, अध्याय 34, गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **महाभारत**, सुक्थांकर तथा बेलवाल्कर संस्करण, एनाल्स ऑव द भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **मार्कण्डेय पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1867 ई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **लिंग पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **वराह पुराण**, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1893 ई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **वामन पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **वायु पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **विष्णुधर्मोत्तर पुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **विष्णु पुराण**, गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् 2016.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **शिवपुराण**, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **श्रीमद् भगवद्गीता**, हिन्दी – टीका सहित एवं पद्मपुराणान्तर्गत प्रत्येक अध्याय के माहात्म्य सहित मुद्रक तथा प्रकाशक – मोतीलाल जालान गीताप्रेस, गोरखपुर।

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **श्रीमद्–भागवत पुराण**, हिन्दी टीका सहित, टीकाकार–गोलोकवासी लाला शालिग्राम जी वैश्य, संशोधनकर्ता–विद्यावारिधि पं. ज्वाला प्रसाद जी मिश्र, खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, बम्बई, 1995 ई.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **स्कन्द महापुराण**, मनसुख राय मोरे, 5 क्लाइव रो, कलकत्ता – 1, सम्वत् 2016.

व्यास, कृष्ण द्वैपायन, **हरिवंश पुराण**, गीताप्रेस – गोरखपुर, 1959 ई.

शंकराचार्य, **ब्रह्मसूत्र, भाष्य – वेदान्तदर्शन**, टीका गोविन्दनन्द, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1863 ई.

शंकराचार्य, भाषा **वेदान्त दर्शन** (ब्रह्मसूत्र), टीका – गोविन्दनन्द संस्करण, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता 1863 ई.

शर्मा, राणाप्रसाद, **पौराणिक कोश**, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, द्वितीय संस्करण, 1986 ई.

शर्मा, श्रीराम, **ब्रह्मपुराण** (दो खण्डों में) मूल व सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण, प्रकाशक – संस्कृति, संस्थान ख्वाजाकुतुव (वेदनगर), बरेली (उ.प्र.).

शर्मा, श्रीराम, **योगवासिष्ठ** (दो खण्डों में), जनपयोगी सरल हिन्दी भावार्थ–सहित, प्रकाशक – संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब (वेद नगर) बरेली, (उ.प्र. तृतीय संस्करण, 1980 ई.).

श्रीमद् आनन्दरामायणम्, गोपाल नारायण, आणि कं. द्वितीय संस्करण मुंबई 1926 ई.

श्वेताश्वतर उपनिषद्, शांकरभाष्य–सहित, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई

सरस्वती, (हीरक–जयंती विशेषांक) 1900 ई.–1959 ई., सरस्वती हीरक जयंती समारोह समिति द्वारा डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को समर्पित, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली, रविवार, 31 दिसम्बर, 1961 ई.

सांकृत्यायन, राहुल, **वोल्गा से गंगा तक,** किताब महल, इलाहाबाद, 1993 ई.

सिंह, अमर, **अमरकोष** – चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी – 1, 1970 ई. काशी संस्कृत ग्रन्थ माला – 198

सिंह, अमर, **अमरकोष,** ब्रेइल संस्करण (हस्तलिखित) द्वारा–डॉ. तेज सिंह, वाराणसी, दिसम्बर 3, 1973 ई.

सिंह, आनन्दशंकर, **भारत की प्राचीन मुद्राएं,** शारदा पुस्तक भवन, 11, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1995 ई.

सिंह, राजकिशोर, **संस्कृत भाषा–विज्ञान,** विनोद पुस्तक मन्दिर – आगरा, पंचम संस्करण – 1981

सोमदेव, **कथासरित्सागर,** टीका, स्वं. पं. केदारनाथ शर्मा सारस्वत, विहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1961 ई.

सोमेश्वर, **मानसोल्लास,** टीका : गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज़, 1939 ई.

हिन्दी विश्वकोष, 12 खण्डों में, नागरणी प्रचारणी सभा, वाराणसी.

शोध–प्रबन्धः

उपाध्याय, श्यामानन्द, **हिन्दू प्रतिमा विज्ञान में मातृकाएं,** अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 1994 ई.

❏ ❏ ❏

Bibliography

(List of Works in English)

Agrawala, V.S., **India as Known to Panini,**
Printed by J.K. Sharma at Allahabad, Law Journal Press, Allahabad, 1953.

Matsya Purana - A Study,
First Edition, 1963, Printed at the Tara Printing Works, Varanasi.

Vaman Purana - A Study,
Prithivi Prakashan, Varanasi, 1964.

Ali, S.M. **The Geography of the Puranas,**
People's Publishing House, New Delhi, 1883.

Annual Report of South Indian Epigraphy,
1917.

Anguttar Nikaya English Translation
(The Book of Gradual saying Vol. II and V by F.L. Woodward and Volume III and IV by E.M. Hare, Pali Text Society, London, 1932-1936.

Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute,
Poona, Vols. 10, 13, 17.

Archaeological Survey Report, Vols. 1, 2, 3, 5, 8, 12, 15, 16, 20, 21. 22.

Archaeological Survey Report,
Mysore, 1941.

Archaeological Survey Report of India,
1911-1913, 1923-1924, 1928-1929 and Vols. 1, 2, 5, 14.

Archaeological Survey of South India, Vol. 1.

Archaeological Survey Report of Western India, No. 5.

Asiatic Researches, Vol. 6, 8, 12, 21.

Atreya, B.L., **Seventh Oriental Conference,**
Benaras;

A Probable Date of Composition of Yogavasistha. Benaras, 1932,
The Philisophy of Yogavasistha, Varanasi, 1936,

Awasthi, A.B.L., **Studies in Skandpurana,** in four parts,
Kailash Prakashana, Lucknow, 1976-1983.

Basham, A.L., **A Cultural History of India,**
Delhi, Oxford University Press, Bombay, Calcutta, Madras, First Indian Impression, 1983.

The Wonder That was India,

Published by Rupa & Co., Bankim Chatterjee Street, Calcutta, 1984.

Bulletin of the School of Oriental and African Studies, Vol. 15, London.

Basak, Radha Govind, **The Indian Antiquary,** June 1919.

Banerji, R.D., **Pals of Bengal,** Memoirs of the Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta, Vol. 5.

Beal Samuel, **SI-YU KI, Buddhist Records of the Western World** in two Volums, bound in one, Published by Narendra Prakash Jain for Motilal Banarsidass, Delhi, 1981.

Belvalkar, S.K., **Introduction and English Translation of Uttar-Ram-Charita** by Bhavbhuti, Horvert Oriental Series, Poona, 1981.

Bhattacharya, Shivaprasad, **Proceedings of the Third Oriental Conference,** Madras 1924.

Bhattacharjee, Arun. **History of Ancient India,** Sterling Publishers Private Limited. L-10, Greenpark Extension, New Delhi - 110016, First Edition 1979,

Bhandarkar, D.R., **Vaisnavism and Minor Sects,** Poona - 1918.

Bhandarkar, D.R., **Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society,** 1903.

Foreign Elements in Hindu Population, The Indian Antiquary, 1911.

Journal of the Andhra Historical Research Society, Vol. 10.

Bhartrihari, **Bhashatatva Aur Vakyapadiya (Lingusitics and Vakyapadiya with a summary in English)** New Delhi, Bhartiya Prakashan Mandir, New Delhi, June 1964.

Biswas, Atryi, **The Political History of Hunas in India,** Munshiram Manoharlal Publishers, Pvt. Ltd., New Delhi, 1971.

Bloomfield, N., **English Translation in Parts of Atharvaveda,** The Sacred Books of the East Vol. 13, Oxford, 1897.

Bose, D.N., **Yogavasistha-Ramayana,** Calcutta, 1958, Oriental Publishers and Co.

Bombay Gazzeteer, Vols. 1, 2.

Buhler, G., Bilhana Vidyapati, **Vikramankdevacharita,** Bombay Sanskrit Series, Bombay, 1875.

The Indian Antiquary, Vol. 42, 1913.

Caland, W., **The Panchvinsa Brahmana,** The Brahman of twentyfive Chapters, English Translation (Complete Work) Printed at the Apist Mission Press, Published by the Asiatic Society of Bengal, 1-Park Street, Calcutta, 1931.

Calcutta Review, October, 1924.

Candaranprasad, **Indo Aryan Races,** Rajshahi, Publication, 1916.

Campbell, J., **The Gurjaras,**

Bombay Gazetteer, Vol. IX.

Cappeller, Carl, **A Sanskrit English Dictionary,**
Publisher : The Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi -1, First Edition, 1973.

Catalogue of the Coins of Ancient India in British Museum,
London, 1936.

Chakravarti, N., **Journal of Royal Asiatic Society,** 1902.

Chattopadhyay, Sudhakar, **Early History of North India,** Second Edition,
Calcutta, 1968.

Chaudhury Gupta K.K., **Nalinikanta Bhattasali-Commoration Volume,**
Dacca, 1966.

Chaudhari, R.K., **The Huna Invasion on India,**
Journal of the Bihar Research Society, Altekar Memorial Volume, 1959.

comaraswami, A.K., **Yakas,**
Munshirm Pvt. Ltd., Second Edition, Delhi, 1980.

Cowell, E.B. and Neil, R.A., **Edition of Divyavadan,**
Cambridge, 1886.

Cowell, E.N., and Thomas, F.W., **English Translation of Harshacharitra of Banabhatta,**
London, 1897.

Cunningham, A.A., **Archaeological Survey Report,** Vol. IX, II, XVII-

Coins of Ancient India from the Earliest Times Down to the Seventh Century A.D.,
London, 1891.

Transection of Ninth Congress - Orientalists,
The Indian Antiquary, 1896.

Kalidas and the Hunas of the Oxus-Valley,
Indian Antiquary, 1912, Vol. 41.

Ancient Geography of India,
Anundoram Boroah Publication, Board, Assam, Gauhari - 3, 1971.

Dasgupta, Surandranath, **History of Indian Philosophy,** Vol. II,
Cambridge University, 1965.

Dash, Narendrakumarr, **An Encyclopaedic Dictionary of Indian Culture,**
Agra Kalaprakashan, Delhi, 1992.

Dey, Nandulal, **The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India,**
Published by Mrs. Nirmal, D. Jain for Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, 55
Third Edition, September, 1971.

Dikshitar, V.R., **South India in the Ramayana,**
Proceedings of the Seventh Oriental Conference, 1933.

Diwanji, P.C., **Proceedings of the Seventh Oriental Conference,**
Barauda, 1933.

Dutta, N.K., **Aryanisation of India,**
Published from Calcutta in the year 1925.

Elliot and Dawson, **History of India as Told by Its Own Historians,** in two Volumes,
London 1867-1877, Reprinted in India, Ktabmahal, Allahabad.

Epigraphia Indica,

Archaeological Survey of India, Government of India, Printed at Pearl Office, 5/33, Kiriti Nagar, New Delhi, India, Ara, New Delhi-15, Vols. 6, 12, 14, 20, 25,31, 1, 4,34,18,23,24,9,10,5,2,12,31,14,16,11,8,26,14,3.

Farquhar, J.N., **An Outline of Indian Religious Literature,**
Oxford, 1966.

Fleet, J.F., **Corpus Inscriptionum Indicarum,** Vol. III.
Published by Rameshwar Singh, Indological Book House, Varanasi

Epigraphia Indica, Vols. 9 and 18.

Journal of Department of Letters, Vol. 10.

Ganguli, D.C., **Indian Historical Quarterly,** 1912.

Gieger, W., Assisted by Mabel, H., Bade, English Translation of **The Mahavansa,** The Great Cronicle of Ceylone,
London, 1912.

Gopal, Ram, **India of Vaidik Calpsutras,**
National Publishing House, Daryaganj, Delhi, 1950.

Growse, F.S., **The Indian Antiquary,** Vol. 25.

Gwaliyor State Gazzeteer, Vol. 1.

Haug, Martin, **Aitreya Brahman,** English Translation, Vol. II,
Bhartiya Publishing House, Delhi, 1977.

Hawkins, Joyce M. **The Oxford Reference Dictionary,**
Oxford University Press, Delhi, 1987.

Illustrated Historical Map of India - Ancient and Aryan Period,
Five Thousand B.C. to six hundred B.C., Government of India Publication Delhi.

Imperial Gazzeteer of India, Vol. VII.

Indian Culture, Journal of the Indian Research Institute,
Edited by Deve Dutta, Ramkrishna, Bhandarker, Benimadhav, Barua, Bimlachuran, Law,
Published by Satishchandra, Caul, The Indian Research Institute,

Indian Historical Quarterly, Vols 1, 7, 10, 12, 16, 20, 21, 22, 23

Inscription in the Central Provinces and Berar, Second Edition,
Nagpur, 1932.

Jatakas,
Edited by Fausboll, London, 1977-1996.

Jonaraja Edition of **Rajtarangini** of Kalhan of Kashmir,
Bombay, 1996.

Joshi, U.P., **The Complete Works of Kalidas,**
Published by Munshiram Manoharlal, Lakhani Book Deport, Girgaum, Bombay - 4, 1976.

Journal of Asiatic Society of Bengal, Vols. 5, 15, 17, 18, 37, 46, 47, 62

Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vols. II, V, IX.

Journal of Marine Archaeology Vol. 1,
January 1990, Madras.

Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. 23.

Journal of the Numismatic Society of India,

Bombay, Vols . 2, 5, 13, 18, 27.

Journal of the Royal Asiatic Society, Vols. 1, 8, 10, 15.

Karmaker, R.D., **The Chronological Order Kalidasa's Works,** Proceedings of Second Oriental Conference.

Kaul, Kailashnath, **Conference of The Bhartiya Gyanvithika, Lucknow** U.P. Lecture read on **Truth of Sumeru Mountain,** at Hindi Bhavan, 1980-1981.

Keith, A.B., Edited with Translatation into English **Aitreyabrahmana,** Horvert Oriental Series, No. 25, Cambridge, Mass, 1920.

A History of Sanskrit Literature, Oxford University Press, Delhi, 1973.

Kern, H., **Manual of Indian Buddhism,** Motilal Banarasidass, Delhi-Varanasi-Patna, Reprint 1974.

E. tr., Varahmihir's **Brihadsanghita,** BI, Cal., 1865.

Kono, S. Lanman, C. R. **Rajshekhar's Karpurmanjari,** English Translation, A drama by the poet of about nine hundred A.D., The Horvert Oriental Series, Motilal Banarsidass, Delhi 6, Second Edition, 1963.

Kuppuswami, S. Mahamahopadhyaya, **History of Advait,** S. Kuppuswami Research Institute, Madres, 1946.

Compromises in History of Advaitik Thought, S. Kuppuswami Research Institute, Madras, 1946.

Lakota, F., **Essay on the Gunadhya and the Brihatkatha,** Translated by Tabard, Rev. S.N., Annals of the Bhandarkar Institute Poona, 1920-21.

Lathan, R.G., **Tribes and Races - A Descriptive Ethology of Asia, Africa and Europe** First Edition entitled **Descriptive Ethonology,** 1959, Reprint in 1983, Cultural Publishing House, Delhi, 1983.

Law, B.C., **Ancient Indian Tribes** in two volumes, Published by Motilal Banarsidass, Proprietors, the Punjab Sanskrit Book Depot, Lahore, 1926, Law's Research Series Publication No. I, Luzac and Co., 46, Great Russel Street, Calcutta, 1934.

Law, Bimlachuran, **Historical Geography of Ancient India,** Printed by Norman, A. Ellis, Bbaptist Mission Press, 41A, Lower Circular Road, Calcutta- 16.

Mountains of India, Calcutta Geographical Society, Publication No. 5 (Historico-Geographical Study), 1944, Calcutta.

Holly Places of India, Calcutta Geographical Society, No. 3.

Rivers of India, Publication No. 6, Published by Dr. S.P. Chatterjee and Dr. D.P. Ghose, Hony. Joint Secretary, The Calcutta Geographical Society, Darbhanga Building, Calcutta University, 1944.

Geographical Essays, No. 10, Calcutta Geographical Society.

Geography of Early Buddhism, Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, 1979.

Panchals and Their Capital Ahichhatra,

Memories of The Archaeological Survey, No. 67.

Luard, **Gwaliyer State Gazzeteer,** Vol. 1.

Ludvich, B., **Chandra-Vijaakaran,**
The Indian Antiquary, 1886.

Macdonell, A.A., Revised, Edition **Mahavira-charita of Bhavbhuti,**
Critical Edition by Todarmal, Lahore, 1928.

The Vedic Index of Names and Subjects,
Third edition, Motilal Banarsidas Publishers, Pvt. Ltd. New Delhi, 1967.

Mackay, Aernest, **Early Indus Civilisation,**
Published by S.B. Singh, Indological Book Corporation, 2/7, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi, 1976.

Mahtab, Sri Harekrushna, **The History of Orissa,**
Published by Lucknow Universitiy (Radha Kumud Mookerji Endowment Lectures), 1947.

Mainkar, T.G., **The Vasistha Ramayana : A Study,**
Meharchand Lachhamandas Oriental Booksellers and Publishers, 2736, Daryaganj, New Delhi, 1977.

Majumdar, N.G., **Inscriptions of Bengal** - Containing Inscriptions of the Chandras, the Varmans, the Senas and of Ishvar Ghosh and of Damodar, Bengal Rajshahi, 1929.

Majumdar, R.C., **Gurjarpratiharas,** Journal of the Department of Letters,
Calcutta University, 1923, Vol. 10.

Madras Census Report of 1891.

The History of Bengal, Vol. 1, Hindu Period,
N.V. Publications, Lohanipur, Patna 3, 1971.

Majumdarr and Pusalker, **The History and Culture of the Indian People,**
Bhartiya Vidyabhavan Bombay in 11 Volumes, Fourth Edition.

Mallalsekhar's **Dictionary of Pali Proper Names".**

Mc-Crindle John W., **Ancient India as Described in Classical Literature,**
Published by Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, First Indian Edition, 1979.

Memoirs of the Archaeological Survey of India, No. 66.

Mirashi, V.V., **Annals of the Bhandarkar Oriental Research,**
Poona, Vol. 27.

Mirashi, V.V. & Kulkarni, D.R., **Anjanavati Copper Plate of Govind III,**
Epigraphia Indica, Vol. 23.

Misra, Shiva Nandan, **Ancient Indian Republics,**
The Upper India Publishing House, Pvt. Ltd. Aminabad, Lucknow, 1976.

Mitra Viharilala, **The Yogavasistha-Maharamayana,** English Translation,
Bharitya Publishing House, Delhi, 1976.

Mookerji, R.K., **Ashoka,**
Published by Sundarlal Jain for Motilal Banarshidass, Delhi - 7, 1972.

Ancient India, The India,
The Indian Press (Publications), Pvt. Ltd. of Allahabad, 1956.

Mookerji, Radha Kumud, **The Gupta Empire,**
Motilal Banarsidass, Delhi-Patna, Fifth Edition, 1973.

Motichanda, **Stone Sculpture Bombay,**
Prince of Wales Museum, Bombay, 1974.

Kariyavattom,
Oriental Research Institute and Manuscript Library, University of Kerala.

Pandey, S.N., **Geographical Horizen of the Mahabharata,**
Bharat Bharti Oriental Publishers and Booksellers, B28/15, Durgakund, Varanasi - 221005, 1980.

Hindukush or Hindukasa,
Published in Northern India Patrika, Allahabd, October 17-18, 1976.

Article, **Hindustan or Hindujasa,** Published in All India Oriental Conference, 1978, Dharvad, Karnataka.

Parab, **Kadambari of Banabhatta,**
C.M. Ridding, Bombay, 1896.

Pargiter, F.E., **The Markandeya Puran,** Translated with Notes by F. Eden Pargiter, B.A., Indian Civil Services, Judge of the High Court of Judicature, Calcutta, Lata Boden Sanskrit Scholar, Oxford, Published by S.B. Singh, Indological Book House, Varanasi, 1904.

Ancient Indian Historical Tradition,
Published from Sundarlal Jain Motilal Banarsidass Bungalow Road, Jawaharnagar, Delhi-6, 1962.

Pandit, S.P., **Atharvaveda** with Sayan's Commentary,
Bombay, 1895-1898.

Patil, D.R., **The Monuments of Udaigiri Hills,**
Published in Vikram Volume, Edited by Mookerji, R.K., 1948.

Patil, K.B., **Journal of Bombay Branch of the Asiatic Society,** Vol. 19.

Radjatarangini Histoire, Des, Rois Du Kachmir, Traduite Et Commentee,
par M.A. Troyer Tomel, Paris, Imprime Par Autorisation Demle Grade Des & Sceaux, A L ' Imprimerie Royale M D CIC XI.

Raghvan, V., **Journal of Oriental Research,** Vol. 13,
Madras, Part I & II, 1939

Ray Chaudhary, H.C., **Political History of Ancient India,**
Second Edition, Allahabad.

Ralph, T.H., Griffith, **The Hymns of the Rgveda,**
Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd., Reprinted Delhi, 1991.

Rapson, E.J., Catalogue No. 907, **Inscription of the Silver Coins of Rudrasimha III,** No. 11.

The Indian Antiquary Volume I, Part II, 1893.

The Cambridge History of India in two Volumes **Ancient India,**
edited by Rapson, first Indian Reprint, Delhi, 1955, Published in India by S. Chand and Co. by Arrangement with Cambridge University Press, London.

Ray Chaudhari, Hemchandra, **Studies in Indian Antiquities,**
Published by the University of Calcutta, 1932.

Ray, H.C., **The Dynastic History of Northern India,** Munshiram Manoharlal,
Publishers Private Ltd. in two Volumes, Delhi, 1973.

Ray, Kamala, **The Ten Incarnations of Vishnu in Bengal,** The Indian Historical Quarterly,
Vol. 17, 1941, Calcutta.

Ray, S., English Translation of **Bhavbhuti's Uttar Ramcharita,** Calcutta, 1934.

Rhys Davids, T.W. (ed.) **Sumangalvilasini,** Commentary on the Dighnikay, Pali Text Society, London, 1886.

Millindpanha (Tronckner) The Sacred Books of the East, Oxford, London, 1890-1894.

Rhys Davids, T.W., and Woodward, F.L., English Translation of the **Sanyuktta Nikaya,** Pali Text Society, London, 1917-1930.

Rice, E.P., **Kannaris Literature,** Calcutta, 1918.

Risley, Herbert, **The People of India,** Second Edition, 1959, Delhi.

The Tribes and Castes of Bengal, Vol. I, Calcutta, 1891.

Roy, S.N., **Historical and Cultural Studies in the Puranas,** Puranic Publications Allahabad, First Edition, 1978.

Sachau, E.C., **Alberuni's India,** Vols. I and II (Bound in one), Atlantic Publishers & Distributors, 4215/1, Ansari Road, Dariyaganj, New Delhi, Reprinted, 1989, and Tarikh'L Hindi, Translated in to English, First, Tribner's Oriental Series, London, 1910.

Sankalia, H.D., An Article on **Ramayana Archaeology, The Times of India,** Ahamadabad Edition, dated October, 1975.

Sanwal, B.D., **Nepal and the East India Company,** Asia Publishing House, Lucknow, 1965.

Saxena, K.S., **Political History of Kashmir,** S. Chand and Company Pvt. Ltd., Ramnagar, New Delhi, 1972.

Schoff, Wilfred H., **The Periplus of the Erythraean-Sea,** Oriental Book Reprint Corporation, 54, Ranijhansi Road, New Delhi - 110055, Second Edition, 1974.

Sewell, R., **Archaeological Survey of South India,** Vol. I.

Shamasastri, R. (ed.) **Arthshastra of Kautilya,** Mysore, 1919.

Sharma, Dashratha, **Rajasthan Through the Ages,** Vol. I, Bikaner, Rajasthan, 1966.

Shastri, Chinnaswami, A., Edited and Translated into English -**The Baudhayana Dharmasutra** with the Commentary of Govindaswami, Kashi Sanskrit Series, Benaras, 1934.

Shastri, H.K., **The Sculpture Pillar on the Indrakila Hill at Vezwada,** Annual Report of the Archaeological Survey of India, 1915-1916.

Singh, Amar, **Amarkosha** with Commentary of Malaya, Department of Indian Studies, 1972.

Singh, B.N., **Dictionary of Indian Phillosophical Concepts,** Asha Prakashan, Varanasi, First Edition, 1988.

Sinha, Gopal Chandra, Commemoration Volume Vol. 18, Journal of Akhil Bhartiya Sanskrit Parishad, Lucknow, Jan. 1984-July 1986.

Sircar, D.C., **Studies in the Geography of Ancient and Medieval India,** Motilal Banarsidass, Delhi-Varanasi-Patna, 1971.

Sircar, Dinees Chandra, **Select Inscriptions bearing on Indian History and Civilisation** in two

Volumes,
V.K. Publishing House, Delhi 1991 : Vol. I, First Edition, Vol. II, Published by Shanti Lal Jain Motilal Banarsidass, Delhi, 1983, Barah Copper Pl. Ins. of Bhoj I, No. VIII, Kajuraha Stone Inscription of Dhanga of the time of Vinayapala No. 14, Garra Copper P1. Ins. of Trailokyavarman No. 1 & 25.

Visakhapatnam Copper-plate Inscription of Anantvarman Chodaganga No. 33, Second Plate, Second Side, Third Plate First Side,

Nagri Copper-plate Inscription of Anangabhim III, No. 34.

Nasik Cave Inscription of Vasisthiputta Pulumavi, No. 86.

Paschimbhag Copper Plate Inscription of Srichandra, No. 19.

Rajahmundry Copper Plate Inscription of Raghudeva, No. 35.

Sircar, Dinees Chandra, **Malkapuram Stone Pillar Inscription** No. 15, Second side.

Kanchipuram Copper Plate Inscription No. 16, First Plate.

Nagarjunikondu Inscription of Virpurushdatta No. 101.

Talgunda Stone Pillar Inscription, No. 69.

Aihol Stone Inscription, No. 1.

Ragholi Copper Plate Inscription, No. 26.

Patan Nesarik Copper Plate Inscription,

Nalanda Copper Plate Inscription, No. 16.

Gwaliyer Stone Inscription, No. 10.

Badal Stone Pillar Inscription, No. 18.

Sanjan Copper Plate Inscription, No. 19.

Belahari Stone Inscription, No. 26.

Nilgunda Copper Plate Inscription, No. 10.

Nagpur Museum Stone Inscription, No. 35.

Delhi Shivalik Stone Pillar Inscription, No. 37

Varanasi Copper Plate Inscription, No. 28, Second Plate.

Damodarpur Copper Plate Inscription, No. 39.

Leiden Cooper Plate Inscription, Pt. 4.

Velurpalaiyam Cooper Plate Inscription, No. 3

Minor Rock Edict, No. 22.

Sircar, Dinees Chandra, **Gurjar Minor Rock Edict,** No. 23A.

Kura Stone Inscription, No. 56.

Khalimpur Copper Plate Inscription, No. 15.

Nalanda Copper Plate Inscription, No. 16.

Bhagalpur Copper Plate Inscription, No. 17.

Hamadana Gold and Silver Tablet. Inscription, No. 3.

Naqsh-I-Rustam Inscription, (A), No. 4.

Inscription of the Arya Mahameghavahana, No. 91.

Hathigumpha Cave Inscription at Udaigiri, near Bhubaneshwar, No. 91.
Gwalior Stone Inscription, No. 10.
Kaushambi Pillar Edict, No. 34.
Kosam Stone Inscription, No. 10 A & 36 A.
Sarnath Stone Inscription, No. 20.
Mahasthan Fragmentary Stone Plaque Inscription, No. 45.
Nasik Cave Inscription, No. 86.
Inscription on Some Coins of Demetrios, No. 11.
Junagadh Rock Inscription, No. 67.
Ashoka Rock Edict, No. 10.
Samoli Stone Inscription, No. 31.
Anjanavati Copper Plate
Nasik Cave Inscription, No. 59.
Baijnath Stone Inscription, No. 39-40.
Persopolis Inscription (E), No. 2.
Sircar, Dinees Chandra, **Khalimpur Copper-plate Inscription of Dharmapala,** No. 15
Taxila Fragmentary Aramaic Inscription No.-44
Besnagar Garuda Pillar Inscription No.2
Taxila Copper Plate Inscription, No. 27.
Taxila Silver Scroll Inscription, No. 34.
Taxila Silver Vase Inscription, No. 36.
Patna Image Inscription, No. 8.
Parkham Image Inscription, No. 7.
Kasam Stone Inscription, No. 10 A.
Pabhosa Cave Inscription of the Time of Vdaka, No. 10.
Bisutum (Behistum) Column (No.1) Inscription, No. 1.
Allahabad Stone Pillar Inscription, No. 2.
Copper-plate Inscription, No. 1.
Smith, Vinsent Adam, **Journal of Royal Asiatic Society,** 1908.
Smith, V.A., **Catalogue of the Coins in the Indian Museum,** Vol. I,
Calcutta and Oxford, 1906.
Early History of India,
Oxford, 1924.
The Oxford History of India,
Indian Publication, New Delhi, 1988.
Senrt, E., (ed.), **Mahavastu,**
Paris, 1882-1897.
Srivastava, B.N., **Harsha and His Times : A Glimpse of Political History During the Seventh Century A.D.,**

The Chowkhamba Sanskrit Studies, Vol. IXXXVI, The Chaukhamba Sanskrit Series Office, Varanasi - 1 (India), 1976.

Stein, M. Aurel, **White Huns and Kindred Tribes in the History of the Indian North, West Frontier, The Indian Antiquary,** April, 1905.

Kalhana's Rajatarangini in two volumes, Motilal Banrsidass, Delhi, Patna-Varanasi, by arrangement with M/s A Constable & Co., Ltd., London, 1961.

Subrahmanya, Aiyer K.B., **South Indian Inscription** in two Volumes, CASI, New Imperial Series, Vols. 52-53.

Suryavanshi, Bhagwan Singh, **Geography of the Mahabharata,** Published by Ramanand Vidya Bhawan, New Delhi, 1986.

Suzuki, D.T., **Lankavatarasutra,** English Translation, London, 1932.

Thaplyal, Kiran Kumar, **Studies in Ancient Indian Seals,** Akhil Bhartiya Sanskrit Parishad, Lucknow, First Edition, 1972.

The Indian Antiquary, Vols. 1,2,4,5,6,7,9,12,13,19,158, 1889, 1891, 1896, 1914, 1981.

The Mahakuta Pillar Inscription, The Indian Antiquary, Vol. 19.

The Sacred Books of the East, Vol. 17.

Tinnevelly District Gazzeteer, Vol. I.

Tola, Fernando and Cermen, Dragonetti, **India and Greece before Alexander,** Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Vol. 67, 1986.

Tripathi, Ramashankar, **History of Kannauj to the Moslem Conquest,** Published by Sundar Lal Jain for Motilal Banarsidass, Delhi, 1959.

Udaypur Inscription, No. 50 (Epigraphia Indica,) Vol. I).

Upadhyaya, B.S., **India in Kalidas,** Printed by J.K. Sharma at the Allahabad, Law Journal Press, Allahabad, and Published by Kitabistan, Allahabad, First Published in 1947.

Vaidya, C.V., **History of Medieval Hindu India,** in three Volumes 1921-1926, Poona.

The Riddle of the Ramayana, Bombay, 1909.

Vettam Mani, **Puranic Encyclopaedia** by Narendra Kumar Jain for Motilal Banarasidass, Delhi-Patna-Varansi, Reprinted, 1979.

Vidyabhushana, **Journal of the Asiatic Society of Bengal,** 1902, Pt. I.

Vishvanatha, S.V., **Racial Synthesis of Hindu Culture,** Published from London, 1928.

Vogel, **Epigraphia Indica,** Vol. 16.

Nagarjunikonda Inscription, Epigraphia Indica, Vols. 20 & 21.

Vyas, Shantikumar Nanooram, **India in the Ramayana Age,** Atmaram and Sons, Kashmere Gate, Delhi-6, 1988.

Watters, Thomas, **On Yuan-Chawangs Travels in India** Originally Published by Royal Asiatic Society London in 1904-1905, Printed by Mohammad Ishaq at Taj Offset Press, Urdu Bazaar, Delhi- 110006, Second Indian Edition, 1973.

Weber, Albrecht (ed.) **The Catpatha Brahman in the Madhyandina Cakha,** extracts from the commentaries of Sayana, Hariswamin and Verlagsbuchhandlung,
London Williams and Norgate, 14, Henrietta Street Covent Gaden, August, 1855, Printed at the Royal Academy of Science in Berlin.

Willams Sir Monier Monier, **Religious Life in Ancient India,**
Sanjaya Prakashan, Delhi, 1990.

A Sanskrit-English Dictionary,
Published by Shantilal Jain for Motilal Banarsidass, Delhi, 1986.

Wilson, H.H., **The Vishnu Purana : A System of Hindu Mythology and Translation,** Translated from the Original Sanskrit and Illustrated by notes, derived Chiefly from other Puranas,
Edited by Fetzedward Hall, London Trubner & Co. 60, Paternoster Row, 1866.

Winternitz, M., **History of Indian Literature,** Buddhist Literature, Vol. 2,
Bhartiya Vidya Prakashan, Delhi, 1987.

Thesis

Atreya, B.L. **Philosophy of Vasistha as Presenteed in Yogavasistha,** D. Litt. Thesis
Department of Philosophy, Benaras Hindu Vishvavidyalaya, Varanasi, 1928.

Lal, Lakhpat, **A Sociological Study of R.K. Narain's Novels.** Ph.D. Thesis,
Department of English, University of Gorakhpur, 1979.

ADDENDA FOR ENGLISH BIBLIOGRAPHY

Limaye, V.P., and Vedaker, R.D., edition, **Eighteen Principal Upnisads,**
Gandhi Memorial Edition, Upanishadic Text with Parallels from Extant Vedic Literature Exegetical and Grammatical Notes, Edited form (Vaidic Sanshodhana Mandala): Poona, 1958.

Mitra, Rajendralal, edition of **The Taiteriya Aranyaka of The Krishna Yajur Veda** with the Commentary of Sayanacharrya,
Printed by C.B. Lewis at the Baptist Mission Press, Bibliothica Indica Oriental Works, Publihsed under the Superintendence of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1872.

Pandey, Sangam Lal, **Pre-Samkara Advaita Philosophy,**
Darshan peeth, Allahabad, 1974.

Rhys-Davids, T.W., **Buddhist India,**
Indological Book House, Delhi, 1970.

Sircar, D.C., **Inscriptions of Asoka,**
Publication Division Ministry of Information on and Broadcastig Government of India, Printed by the Ganges Printing Company Limited, Calcutta, 1975.

Thakur, Upendra, **The Hunas in India,**
The Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1967.

❑ ❑ ❑